मध्यकालीन
हिन्दी काव्य की तांत्रिक पृष्ठभूमि

मध्यकालीन

हिन्दी काव्य की तांत्रिक पृष्ठभूमि

डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
एम० ए० (हिन्दी : संस्कृत) पीएच० डी०
हिन्दी, विभाग,
गवर्नमेण्ट कालेज, नैनीताल

साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : १९६३ ईसवी

दस रुपया मात्र

मुद्रक—यू० पी० प्रिंटिंग प्रेस, ४२, एडमान्सटन रोड, इलाहाबाद।

समर्पण

संत साहित्य के सिद्धाचार्य

सम्मान्य श्री परशुराम चतुर्वेदी

को

सादर

अनुक्रम

भूमिका

हिन्दी के मध्यकालीन संत एवम् वैष्णव काव्य को समझने के लिए इस देश के नाना-मतमतान्तरों और साधनाओं का ज्ञान परमावश्यक है क्योंकि काव्य में अभिव्यक्त किसी युग का 'बुद्धितत्व', पूर्ववर्ती चिन्तनधारा को बिना हृदयंगम किये हुए अस्पष्ट ही रहता है। काव्य एक संश्लिष्ट मानसिक-क्रिया है, उसमें कवि की चिन्तनधारा इतनी संकुल-पद्धति पर व्यक्त होती है कि उसके विश्लेषण के समय हमें आश्चर्य होता है; जब हम देखते हैं, कि कवि विशेष की 'अपने' वर्तमान के प्रति प्रतिक्रिया में भूतकाल का पर्याप्तमात्रा में सन्निवेश होता है। भूतकाल का यह प्रयोग, भूतकाल की पुनर्व्याख्या के रूप में भी हो सकता है और परंपरा के कुछ अंश को यथावत् स्वीकार करके भी हो सकता है। भविष्य सम्मुख न रहने से वर्तमान के समाधान के लिए प्रायः कवि और विचारक भूतकाल की ओर मुड़ते हैं। विशेषकर कवि में 'पूर्णता' की प्यास सबसे अधिक होती है। भविष्य की अपूर्णता कवि के सम्मुख न होने से और वर्तमान से बुद्धि को चकराने वाले प्रश्नों के समाधान में भूतकाल के एक सीमा तक समर्थ होने से कविगण भूतकाल को केवल रोमानी दृष्टि से देखकर उसका गौरवगायन ही नहीं करते अपितु उनकी बौद्धिक-प्रतिक्रिया भूतकालात्मक हो जाती है। यह प्रवृत्ति हिन्दी के संतों और भक्तों के काव्य में सबसे अधिक दिखायी पड़ती है।

सूर-तुलसी, कबीर, नानक, दादू आदि कवियों का काव्य मुख्यतः साधनात्मक है। ये भक्त और साधक पहले थे, कवि बाद में। अतः सर्वप्रथम इस तथ्य का उद्घाटन इनके काव्य को समझने के लिए अनिवार्य होगा कि इन संतों और वैष्णवों की साधना का स्वरूप क्या है और चूँकि साधना और भक्ति के लिए 'सम्प्रदाय' आवश्यक थे; सम्प्रदाय अर्थात् साधना की प्रयोगशालाएँ; अतएव इन सम्प्रदायों अथवा प्रयोगशालाओं का विकास समझना आवश्यक हो जाता है। यही कारण है कि मध्यकालीन काव्य का मर्मोद्घाटन वही आलोचक सफलतापूर्वक कर सके हैं जिन्हें तात्कालिक तथा पूर्ववर्ती सम्प्रदायों का सम्यक् ज्ञान था। मध्य-

कालीन काव्य में अभिव्यक्त चिन्तनधारा में शैवमत, शाक्तमत, पांचरात्रमत और तांत्रिक बौद्धमत ताने-बाने की तरह बुना हुआ है। कारण यह है कि पुराणों के प्रयत्न से परस्पर-विरोधी मतों, साधनाओं, देवी-देवताओं और आचार-विचारों में हिन्दी-काव्य के श्रीगणेश के पूर्व ही अंतर्भुक्ति स्थापित की जा चुकी थी। एक विराट राष्ट्र में नाना कबीलों, जातियों और वर्गों की संस्कृति पौराणिकों की दूर-दृष्टि के कारण मिल-जुलकर सतरंगी लहरों की तरह एक ही प्रवाह के रूप में बहने लगी थी। इसीलिए मध्यकालीन हिन्दी काव्य में जो कुछ पुराना है, उसमें अंतर्विरोध ढूँढने के स्थान पर, उसके प्रति अटूट श्रद्धा ही नहीं, उसका अनुसरण ही जीवन का उद्देश्य माना गया है। जो आलोचना है, वह किसी नवीन जीवन-दर्शन अथवा समाज-दर्शन की प्रतिष्ठा करने के लिए नहीं है अपितु दुर्बलताओं को दूर करने के लिए है। परिणामतः मध्यकालीन काव्य में व्यक्त चिन्तनधारा और साधना का निर्माण जिन सूत्रों से हुआ है, उनकी पहचान के लिए इस पुस्तक में पांच मतों का किंचित् विस्तार से वर्णन हुआ है। मेरा विश्वास यह है कि तंतुओं की पहचान के बिना वस्त्र की पहचान नहीं हो सकती। मध्यकालीन हिन्दी-काव्य के परिपाक में समवाय सम्बंध से स्थित नाना साधना-सूत्रों और चिन्तन-सूत्रों के स्वरूप को समझने के लिए इस काव्य की 'तांत्रिक पृष्ठभूमि' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

मध्यकालीन हिन्दी-काव्य के चिन्तन और साधना को समझने के लिए ही, प्रस्तुत पुस्तक नहीं लिखी गई अपितु उक्त काव्य की 'कल्पना' और 'भाव' की क्रिया, कल्पना के द्वारा पाये गए उपकरण, रूपों की सृष्टि, भाव के आधार तथा भाव और अभिव्यक्ति के प्रकारों को समझने के लिए भी शैवमत, शाक्तमत, पांचरात्रमत तथा तांत्रिक बौद्धमत का अनुशीलन आवश्यक है। इन सम्प्रदायों की बहुत-सी सामग्री विविध रूपों में मध्यकालिक भारत संस्कृति और काव्य में रची बसी हुई है। स्थापत्य, मूर्तिकला और चित्रकला भी इन्हीं सम्प्रदायों से प्रेरित है। परवर्ती युग में शिव-शक्ति अथवा करुणा-उपाय के आदर्श पर राधा-कृष्ण का चित्रण हुआ; कला और काव्य दोनों में यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है अतः मध्यकालीन काव्य का 'आविष्कार' जिन तत्त्वों से बना था, उनमें उक्त सम्प्रदायों की बहुत-सी सामग्री भी मिलती है। इस सामग्री में परिवर्तन मिलता है, कहीं-कहीं वह इतने परिवर्तित रूप में है कि उसकी पहचान कठिन है, कहीं-कहीं साम्प्रदायिक कारण इन सम्प्रदायों का रूप ज्यों अंगीकार करना पड़ा और कहीं-कहीं वह स्पष्ट

देखी जा सकती है अतः केवल काव्य के बुद्धितत्त्व की दृष्टि से ही नहीं अपितु उपमान, प्रतीक, भाव और कथन-पद्धति की दृष्टि से भी उक्त सम्प्रदायों का अध्ययन आवश्यक है।

किन्तु इन सम्प्रदायों को प्रकाशित करते समय यह कह देना आवश्यक है कि इनका धर्म-दर्शन (Theology) की दृष्टि से भी महत्त्व है और जो सज्जन केवल इन्हीं सम्प्रदायों के अध्ययन में रुचि रखते हैं, उनके लिए भी इन में रोचक सामग्री मिल सकती है।

मुझसे इन निबन्धों को लिखते समय यह प्रश्न बार-बार पूछा गया कि अतः काव्य के अध्ययन में यदि प्राचीन मत-मतान्तरों के इतने गंभीर अध्ययन की आवश्यकता है तब काव्य-अनुशीलन और धर्म-दर्शन में क्या अन्तर रह जाता है? मेरा उत्तर है कि सीमाएँ आपकी बनायी हुई हैं। ज्ञान एक और अखंड है। यदि आपको कबीर को समझने के लिए धर्म-दर्शन पढ़ना ही पड़ता है तब काव्य का अनुरागी यदि कबीर के काव्य को ध्यान में रखकर उन प्राचीन धार्मिक और दार्शनिक तत्वों की छान-बीन करे तो इसमें आपत्ति की बात क्या है? हिन्दी में असम्बद्ध ज्ञान का अभाव नहीं है किन्तु इधर 'टु द प्वाइंट' के चक्कर में इतना उथलापन आया है कि भारी पोथों में भी कोई नवीन सूचना नहीं मिलती। 'नयी व्याख्या' और 'वैज्ञानिक व्याख्या' की आशा तो दुराशा में परिणत हो रही है।

इसके सिवाय मेरा दृष्टिकोण भी काव्य के अध्ययन के प्रति भिन्न है। मैं काव्य को किसी देश या जाति की समग्र संस्कृति का पुष्प मानता हूँ। वैज्ञानिक की तरह इस 'पुष्प' की पहिचान के लिए पुष्प के रंग, उसके प्रभाव आदि का वर्णन होना चाहिए। मैं भूमि की परीक्षा भी पुष्प-ज्ञान के लिए आवश्यक मानता हूँ अतः भूमि और भूमि में विकसित पुष्प, अथवा दूसरे शब्दों में समाज और समाज में विकसित काव्य—ये दोनों विषय मेरी दृष्टि में सम्बद्ध रूप में—एक साथ—आलोच्य के योग्य हैं।

इस दृष्टि से अध्ययन करने पर मध्यकालीन काव्य में केवल सुन्दर शब्द, अलंकार और रस ही नहीं मिलेंगे अपितु इस काव्य के प्रयोजन के रूप में कुछ ऐसी धाराएँ मिलेंगी जो तत्कालिक समाज को संतप्त भी करती हैं और उनके स्पष्टतः दिग्दर्शन का भी लेखा-जोखा प्रस्तुत करती हैं। आश्चर्य तब होता है जब,

ऐसी धाराएँ प्रागैतिहासिक काल से मध्यकाल तक एक अविच्छिन्न शृंखला के रूप में दिखायी पड़ती हैं और कालक्रमानुसार सुखती छिपतीं, मार्ग बदलतीं और जल के गुण में परिवर्तन लातीं हुईं, मध्यकालीन काव्य-प्रवाह में अपनी विशिष्टता की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए हमें प्रेरित करती हैं अतः यह भी आवश्यक *हो जाता है कि शाक्तमत, शैवमत, पांचरात्रमत और तांत्रिक बौद्धमत के आदिम* रूप को भी हम स्मरण रखें तभी हम इस प्रबल धारा का ऐतिहासिक योगदान निश्चित कर सकते हैं और इस धारा की सहायता से भारतीय समाज के विकास को भी हम समझ सकते हैं।

जिस प्रकार किसी एक कवि की कविता के अनुशीलन के लिए उसकी मानसिक-स्थितियों अथवा उसके अवचेतन की छान-बीन आवश्यक होती है, उसी प्रकार युग-विशेष का भी एक अपना अवचेतन होता है। मेरा निवेदन यह है कि मध्यकालीन हिन्दी-काव्य में प्रतिबिम्बित 'सामूहिक अवचेतन' के समझने के लिए जहाँ अन्य मतों और साधनाओं को विस्तार पूर्वक समझना आवश्यक है, वहीं इस कार्य के लिए आगम या तंत्र-धारा को समझना भी आवश्यक है। इसलिए इस पुस्तक के लिए मैं किसी क्षमा-याचना की आवश्यकता नहीं समझता।

शैवमत, शाक्तमत, पांचरात्रमत और तांत्रिक बौद्धमत अनार्य, अवैदिक, आगम, ब्राह्मणवादविरोधी, वाममार्गी, आदि नामों से अभिहित किया गया है। यह धारा उक्त सम्प्रदायों के रूप में संगठित होने के पूर्व किस रूप में प्रचलित थी, इस तथ्य पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है। इससे प्राचीन और मध्यकालीन युग शृंखलित और सम्बद्ध रूप में प्रतीत होने लगेगा।

पाश्चात्य इतिहासकार और पुरातत्ववेत्ता बहुमत से वैदिक आर्यों के भारत आगमन को १५०० ई० पूर्व में मानते हैं अर्थात् यह अंतिम सीमा है। आर्यों का आगमन धाराओं में माना जाता है। कुछ कबीले २००० ई० पूर्व में भी आ गए होंगे, शायद और भी पहले आर्यों के कुछ दल आए हों लेकिन १५०० ई० पूर्व के बाद में आर्य आगमन मानने पर भाषा और साहित्य के विकास को नहीं समझाया जा सकता।

इधर कुछ विद्वानों ने आर्य-आगमन की कथा को सर्वथा अप्रमाणित और कल्पित सिद्ध किया है। क्योंकि भाषाओं के अध्ययन के आधार पर यह भी सिद्ध हो जाता है कि आर्य भारत से पश्चिमी एशिया अथवा मध्य एशिया गए। अतः

ऐसे विद्वान यह मानकर चलते हैं कि आर्यों का आगमन प्रमाणित नहीं होता तब वैज्ञानिक दृष्टि यह है कि आर्य भारत में रहते थे और पश्चिमोत्तर प्रदेशों से उनका विस्तार पूर्व और दक्षिण की ओर हुआ। किन्तु अभी तक बहुमत से आर्यों का आगमन एक तथ्य माना जाता है।

कुछ विद्वान मिस्र, मैसोपोटामिया तथा एशिया के भूवपश्चिमवर्ती देशों और द्वीपों में होने वाली खुदाई में प्राप्त सामग्री से आर्य-आगमन को सिद्ध करते हैं किन्तु उनका समय ई० पूर्व० पांच सहस्र वर्ष अथवा उससे भी पूर्व निर्धारित करते हैं। डॉ० हर्षे का कथन है कि मैसोपोटामिया के राज्य-निर्माता आर्य ही थे और असीरिया में असुरों द्वारा आक्रमणों से श्रान्त हो कर आर्य भारत आये।[1]

डॉ० हर्षे के अनुसार वेद-वर्णित मरीचि, भृगु, अत्रि, अंगिरा, वशिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतस-दक्ष, तथा स्वयम्भुव मनु—इन दस प्रजापतियों तथा आदित्य, अप्सरस, नाग आदि के उल्लेख पश्चिमी एशिया में मिलते हैं। उदाहरणतः मिस्र की प्राचीन जातियों के नाम सर्प, नाग, गिद्ध, गरुड़, बाज जैसे जीवों और पौधों के नाम पर हैं। यह भी कहा गया है कि ३५६० ई० पूर्व में ये जातियाँ 'फेरो-राज्य' के रूप में संगठित हो गईं। उधर पुराणों में भी कबीलों या जातियों के नाम पशु-पक्षियों आदि पर आधारित हैं यथा तार्क्ष्य, उन वार्ष्णेय, कपि, अज, नाग आदि। चूंकि मिस्र की उक्त प्रागैतिहासिक जातियों का समय ४००० ई० पूर्व है अतः वेदों का समय भी यही मानना होगा, यह डा० हर्षे का कथन है।

इसके सिवाय डॉ० हर्षे एशिया माइनर के फ्रीजिया (Phrygia) से 'भृगु' का, ईराक के वारक या उरुक (Warak or Uruk) से 'वृकजोन' का, ईराक के पेंजवान (Penjwan) से पुरुष और वशिष्ठ का, फिलस्तीन का पुरुत्स से, नैनवादी से 'करंभ' का, और मध्य एशिया से स्वयम्भुव मनु का सम्बंध जोड़ते हैं। इसी प्रकार माइकल के 'रेशेफ' (RESHEF) मूर्ति से ऋषभदेव का, इजनामपगाह से 'गम्भगो' का, ईराक के वायस प्रदेश से 'वायस लिंगम' का, मैसोपोटामिया प्रदेश से अगस्त्य और मित्रावरुण का, 'उर' (Ur) प्रदेश से उर्वशी का, मद्रास से ऋग्वेद के मद्र, मद्रका तथा मद्रपति का, तथा मिस्र देश से धन्वन्तरि का

1 The Trails of the Vedic Civilization in the Middle-East R. G Harshe—K. P. Bhatnagar Commemoration Volume. KANPUR, Page 165

सम्बंध स्थापित किया गया है। चाल्डियन स्रोत से जो सूर्य-सूक्त मिला है, वह वेद के सूर्य-सूक्त से यथावत् मिलता है, यह भी कहा गया है।

इस प्रकार डॉ० हर्ष ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भारत में आने के पूर्व आर्य कबीले सुमेरिया में रहते थे और असीरिया के असुरों से परास्त होकर भारत आये। पुराणों में जिस देवासुर-संग्राम का वर्णन मिलता है वह वस्तुतः सुमेर-देश के आर्यों और असीरिया के असुरों के युद्ध की यादगार है।

उक्त शोध मुख्यतः शब्द-सादृश्य पर आधारित है, किन्तु केवल शब्दों के साम्य से इतिहास-निर्माण का प्रयत्न संदेहास्पद ही रहता है।

किन्तु एक तथ्य उक्त शोध से भी पुष्ट होता है कि आर्य विभिन्न कबीलों में से संगठित थे क्योंकि भारत में आने पर भी उनके नाम टोटेमपरक रहे। इस तथ्य से हमारे विषय का घनिष्ठ सम्बंध है।

डॉ० हर्ष का अध्ययन अधिकतर शब्दसादृश्य पर आधारित है अतः सम्भावना कुछ भी हो, केवल सम्भावना को प्रमाण नहीं माना जा सकता। इस सम्बंध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रो० बेडरिक ह्राज़्नी ने किया है। उनका दावा है कि उन्होंने मोहनजोदड़ो की लिपि को पढ़ लिया है और इस लिपि के आधार पर उन्होंने पश्चिमी एशिया तथा सिंधु-घाटी के समाज और धर्म के विषय में कुछ सर्वथा नवीन सूचनाएँ दी हैं।

प्रो० ह्राज़्नी के अनुसार सुमेर-अक्कादियन सभ्यता आर्य-सभ्यता नहीं थी।[1] ई० पूर्व ३००० से १६०० तक विकसित इस सभ्यता के विषय में उक्त लेखक ने बताया है कि सुमेर-प्रदेश में राज्य-निर्माण हो चुका था परन्तु कबीलों में जनता विभाजित थी। राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। मंदिरों में देवताओं और देवियों की पूजा होती थी। देवताओं में चन्द्र, पृथिवी, सूर्य, युद्धदेव आदि का उल्लेख मिलता है। डॉ० हर्ष यह नहीं देख सके कि प्रागैतिहासिक काल में कबीला-व्यवस्था में देवताओं में भी सादृश्य मिलता है और कबीलों के नामों में भी किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि सिंध और सुमेर के कबीले आर्य कबीले थे। जिस प्रकार वेद में इंद्र देवताओं में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सुमेर देश में भी 'मार्दुक' को बहुत संघर्ष के बाद श्रेष्ठ देवता माना गया।

---

1 Ancient History of Western Asia, India and Crete, Bedrich Hrozny. New york

यही नहीं, पिण्ड में ब्रह्माण्ड की कल्पना भारत से पूर्व सुमेर देश में मिलती है। उपनिषदों में जो यह कहा गया है कि देवताओं के अंश, शरीर बन जाने पर विभिन्न अंगों में प्रविष्ट होते हैं, यह विचार सुमेर प्रदेश में मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के विश्वास समान व्यवस्था में सर्वत्र मिलते हैं क्योंकि विश्वास व्यवस्था के अनुरूप ही कल्पित होते हैं।

परवर्ती त्रिदेव की तरह सुमेर अक्कादियन सभ्यता में आकाशदेव 'अन' या 'अनम' था। उसकी पत्नी थी 'अनत'। पृथिवी का देवता था इनलिल या इन्लिल, उसकी देवी थी, निनलिल। जल का देवता था इय या इन्की और उसकी पत्नी थी 'दमकिन'। इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र, रति आदि की पूजा भी होती थी। भारतीय पुरोहित की तरह यहाँ भी पुरोहित का स्थान महत्त्वपूर्ण था। यहाँ के विशाल पौराणिक साहित्य को देखकर यह कहना कि ये आर्य थे, अप्रमाणित तथ्य है। प्रो० ह्राजनी भी सुमेर-सभ्यता को स्वतन्त्र सभ्यता मानते हैं।

हमारे लिए महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि सुमेर की 'इश्तर' नामक देवी अत्यधिक प्रबल थी। भारतीय शक्ति-पूजा से 'इश्तर-पूजा' का अद्भुत सादृश्य मिलता है किन्तु प्रागैतिहासिक युग में शाक्त-पूजा सर्वत्र मिलती है। देवी को प्रेम और उपज का देवता माना जाता था और इसीलिए शाक्त-सम्प्रदाय की तरह इश्तर-सम्प्रदाय में 'भोग' के गुह्यसाधन और वेश्यावृत्ति प्रचलित रही। जादू का सम्बन्ध धर्म के प्रारम्भिक रूप में सर्वत्र मिलता है। तन्त्रों के यन्त्र,मन्त्र की तरह सुमेर में भी यन्त्रों और मन्त्रों का प्रचार था। रोगनाश के लिए भूतविद्या का प्रचार अथर्ववेद की तरह यहाँ भी मिलता है। तान्त्रिक सम्प्रदायों की तरह रहस्यमयता का सम्बन्ध भी इन आचारों के साथ था।

ह्राजनी हिट्टाइट या हत्ती जाति के साथ आर्यों का सम्बन्ध स्वीकार करते हैं, सुमेर-निवासियों के साथ नहीं, यह स्मरणीय है। हत्तीभाषा भी अब भारोपीय परिवार की मानी जाती है। इस भाषा में कतिपय ग्रन्थ मिले हैं जिनमें पारसी, पार्वेशा", जादू के मन्त्र तथा गीत मिलते हैं। यज्ञों का वर्णन भी मिलता है। [illegible] इन कतिपय ग्रन्थों का समय ईसा पूर्व १६०० वर्ष मानते हैं। हत्तीभाषा भाषियों के मित्र 'हुरियन' भी सम्भवतः आर्य थे। इनके यहाँ वैदिक देवों के उल्लेख मिलते हैं। ह्राजनी के अनुसार १६०० ईसा पूर्व के आसपास एशिया का दक्षिणपश्चिम-भाग आर्यों का क्षेत्र था। इस काल में आर्य उत्तरी मैसोपोटामिया तक फैल गए थे। अश्वशाला और रथ-दौड़ों के उल्लेख हत्तीभाषा में मिलते हैं। ह्राजनी के

सम्बंध स्थापित किया गया है। चाल्डियन स्रोत से जो सूर्य-सूक्त मिला है, वह वेद के सूर्य-सूक्त से यथावत् मिलता है, यह भी कहा गया है।

इस प्रकार डॉ० हर्षे ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भारत मे आने के पूर्व आर्य कबीले सुमेरिया में रहते थे और असीरिया के असुरों से परास्त होकर भारत आये। पुराणों में जिस देवासुर-संग्राम का वर्णन मिलता है वहाँ वस्तुतः सुमेरु-देश के आर्यों और असीरिया के असुरों के युद्ध की यादगार है!

उक्त शोध मुख्यतः शब्द-सादृश्य पर आधारित है, किन्तु केवल शब्दों के साम्य से इतिहास-निर्माण का प्रयत्न संदेहास्पद ही रहता है।

किन्तु एक तथ्य उक्त शोध से भी पुष्ट होता है कि आर्य विभिन्न कबीलों में में संगठित थे क्योंकि भारत में आने पर भी उनके नाम टटैमपरक रहे। इस तथ्य से हमारे विषय का घनिष्ठ सम्बंध है।

डॉ० हर्षे का अध्ययन अधिकतर शब्दसादृश्य पर आधारित है अतः सम्भावना कुछ भी हो, केवल सम्भावना को प्रमाण नहीं माना जा सकता। इस सम्बंध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य प्रो० बेदरिक ह्राज़नी ने किया है। उनका दावा है कि उन्होंने मोहनजोदड़ो की लिपि को पढ़ लिया है और इस लिपि के आधार पर उन्होंने पश्चिमी एशिया तथा सिंधु-घाटी के समाज और धर्म के विषय में कुछ सर्वथा नवीन सूचनाएँ दी हैं।

प्रो० ह्राज़नी के अनुसार सुमेर-अक्कादियन सभ्यता आर्य-सभ्यता नहीं थी।[1] ई० पूर्व ३००० से १६०० तक विकसित इस सभ्यता के विषय में उक्त लेखक ने बताया है कि सुमेर-प्रदेश में राज्य-निर्माण हो चुका था परन्तु कबीलों में जनता विभाजित थी। राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। मंदिरों में देवताओं और देवियों की पूजा होती थी। देवताओं में चन्द्र, पृथिवी, सूर्य, युद्धदेव आदि का उल्लेख मिलता है। डॉ० हर्षे यह नहीं देख सके कि प्रागैतिहासिक काल में कबीला-व्यवस्था में देवताओं में भी सादृश्य मिलता है और कबीलों के नामों में भी किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मिस्र और सुमेर के कबीले आर्य कबीले थे। जिस प्रकार वेद में श्रेष्ठ देवताओं में स्पर्धा है, उसी प्रकार सुमेर देश में भी 'मार्दुक' को बहुत संघर्ष के बाद श्रेष्ठ देवता माना गया।

1 Ancient History of Western Asia, India and Crete, Bedrich Hrozny. New york

यही नहीं, पिण्ड में ब्रह्माण्ड की कल्पना भारत से पूर्व सुमेर देश में मिलती है। उपनिषदों में जो यह कहा गया है कि देवताओं के अंश, शरीर बन जाने पर विभिन्न अंगों में प्रविष्ट होते हैं, यह विचार सुमेर प्रदेश में मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के विश्वास समान व्यवस्था में सर्वत्र मिलते हैं क्योंकि विश्वास व्यवस्था के अनुरूप ही कल्पित होते हैं।

परवर्ती त्रिदेव की तरह सुमेर व बेबीलोनियन सभ्यता में आकाशदेव 'अन' था। उसकी पत्नी थी 'अनम'। पृथ्वी का देवता था इनलिल या एन्लिल, उसकी देवी थी, निनलिल। जल का देवता था इय या इन्की और उसकी पत्नी थी 'दमकिन'। इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र, रति आदि की पूजा भी होती थी। भारतीय पुरोहित की तरह यहाँ भी पुरोहित का स्थान महत्त्वपूर्ण था। यहाँ के विद्वान पौराणिक साहित्य को देखकर यह कहना कि ये आर्य थे, अप्रमाणित तथ्य है। प्रो० हाजनी भी सुमेर-सभ्यता को स्वतन्त्र सभ्यता मानते हैं।

हमारे लिए महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि सुमेर की 'इन्नर' नामक देवी अत्यधिक प्रबल थी। भारतीय शक्ति-पूजा से 'इन्नर पूजा' का अद्भुत सादृश्य मिलता है किन्तु प्रागैतिहासिक युग में शक्ति-पूजा सर्वत्र मिलती है। देवी को प्रेम और उत्पत्ति का देवता माना जाता था और इसीलिए शक्ति-सम्प्रदाय की तरह इन्नर-सम्प्रदाय में 'योनि' के गुणगान और वेश्यावृत्ति प्रचलित रही। जादू का सम्बन्ध धर्म से प्रारम्भिक रूप में सर्वत्र मिलता है। तन्त्रों के मन्त्र-यन्त्र की तरह सुमेर में भी मन्त्रों और दवा का प्रचार था। रोगनाश के लिए भूतविद्या का प्रचार अथर्ववेद की तरह यहाँ भी मिलता है। तान्त्रिक सम्प्रदायों की तरह रहस्यमयता का सम्बन्ध भी उक्त आचारों के साथ था।

हाजनी हिट्टाइट या हत्ती जन के साथ आर्यों का सम्बन्ध स्वीकार करते हैं, सुमेर-निवासियों के साथ नहीं, यह स्मरणीय है। हत्तीभाषा भी अब भारोपीय परिवार की मानी जाती है। इस भाषा में कार्गेन ग्रन्थ मिले हैं जिनमें पारसी, प्रार्थनाएँ, जादू के मन्त्र तथा गीत मिलते हैं। घोड़ों का वर्णन भी मिलता है। इन लेखन का धार्मिक ग्रन्थों का समय ईसा पूर्व १६०० वर्ष माना है। इनकी भाषा मितन्नी के निवासी 'हुरियन' भी शायद आर्य थे। इनके यहाँ वैदिक देवों के उल्लेख मिलते हैं। हाजनी के अनुसार १६०० ईसा पूर्व के आसपास एशिया का पश्चिमी-भाग आर्यों का क्षेत्र था। इस काल में आर्य उनकी मैसोपोटामिया तक फैल गए थे। अश्वपालन और रथ-घोड़ों के उल्लेख इतिहास में मिलते हैं। हाजनी के

प्रस्तुत करने की बलवती इच्छा के परिणामस्वरूप संस्कृत में 'रामकथा' पर आधारित महाकाव्यों का प्रचुर निर्माण हुआ। इनमें से अधिकतर ऐसे हैं जिनमें आदि से अन्त तक 'रामचरित' का ही चित्रण किया गया है किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जिनमें अन्य चरित्रों के वर्णन के साथ कुछ अध्यायों में 'रामचरित' का भी समावेश हो गया है।

प्रथम प्रकार के महाकाव्यों के अन्तर्गत 'रामायण मंजरी', 'रामचरित' 'जानकी हरण' 'उदार राघव' 'रघुवीर चरित' 'राम विजय' तथा 'राघवीय' आदि ग्रंथों की गणना है। द्वितीय प्रकार के काव्यों में 'रघुवंश' और 'दशावतार चरित' आदि प्रमुख हैं।

(१) रामायण मंजरी—क्षेमेन्द्र के इस महाकाव्य में सात काण्ड हैं। प्रत्येक काण्ड के अन्त में 'इति क्षेमेन्द्र विरचिते रामायण कथासारे समाप्तोऽयं "" "काण्ड लिख कर महाकवि ने इसे 'वाल्मीकि रामायण' का 'कथासार' स्वीकृत किया है। इसमें 'युद्धकाण्ड' को छोड़ कर शेष काण्डों के नाम तो 'मानस' में समान हैं किन्तु उनका वस्तु-विभाजन ,समान नहीं है। इस महाकाव्य में 'वाल्मीकि-नारद-संवाद' से लेकर 'राम स्वर्गारोहण' तक के समस्त कथानक का वर्णन किया गया है।

कथावस्तु की दृष्टि से तुलना करने पर इस काव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

इसमें दशरथ के द्वारा 'पुत्र-काम-यज्ञ' से पूर्व 'अश्वमेध-यज्ञ'[१] का भी उल्लेख किया गया है जो 'मानस' में नहीं है।

'पृथ्वी का गो-रूप में देवलोक जाना' इसमें वर्णित नहीं है किन्तु 'मानस' में है। यहाँ देवगण ही ब्रह्मा के नेतृत्व में विष्णु के समीप जाकर उनसे चतुर्धा रूप में विभक्त होने दशरथ-पुत्र बनकर अवतार लेने तथा रावण-वध करने की प्रार्थना करते हैं।[२]

इसमें 'चरु वितरण' 'मानस' के समान ही है किन्तु यहाँ सुमित्रा अपने 'चरु' के स्वयं ही दो भाग[३] कर लेती है किन्तु 'मानस' में कौशल्या और कैकयी अपने हाथों से उनके दो भाग करके सुमित्रा को दे देती हैं।[४] इस ग्रन्थ में ताटका के वध में उसके स्त्रीत्व के कारण राम की हिचकिचाहट की सम्भावना करके विश्वामित्र उन्हें 'स्त्री-वध' के अनेक उदाहरण देते हैं।[५] 'मानस' में इसका कोई उल्लेख नहीं है। इसके

---

१ रा० मंजरी। बाल। ४१

२ तस्मात्दशरथस्याथ अपत्यत्वम् व्रजताम् ॥ ६८ ॥
चतुर्धा सोपमास्थाय विभज्यात्मानमात्मना।
अवतीर्य चरां विष्णो जहि त्रैलोक्यकण्टकम् ॥ ६९ ॥ —रा० मंजरी।

३ तयोरर्धं प्राप कौशल्या चतुर्भागं च कैकयी।
चतुर्भागं सुमित्रा च स्वयं तेन द्विधा कृतम् ॥ ७४ ॥—रा० मंजरी।

४ अर्ध भाग कौशल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा ॥
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ ॥
कौशल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ॥ —मानस १।१९०

५ रा० मंजरी। बाल। ११६-११९

अतिरिक्त यहाँ (मानस में) ताटका-वध करने के पश्चात् राम को विश्वामित्र के द्वारा 'विद्याएँ' देने का वर्णन मिलता है,[1] जबकि इस ग्रंथ में यह उसके पूर्व हो है ।[2]

इसने 'अहल्या शाप' में उसके निराकम्ब भस्मशायिनी और अदृश्य होने का वर्णन किया गया है [3] जबकि 'मानस' में वह 'शिला' हो जाती है ।[4]

'धनुर्भंग' के पूर्व इसमें न तो पुष्पवाटिका-मिलन का वर्णन मिलता है और न 'स्वयंवर-समारोह' का ही । मानस में ये दोनों वर्णन बड़े ही सरस और रोचक हैं ।[5]

'परशुराम प्रसंग' भी इसमें राम आदि के विवाह के पश्चात् बारात के लौटते समय अयोध्या के मार्ग में वर्णित किया गया है [6] और उसमें परशुराम के साथ विवाद में लक्ष्मण कोई भाग नहीं लेते, किन्तु 'मानस' में यह 'प्रसंग' राम-विवाह के पूर्व मिथिला में ही घटित हो जाता है ।[7]

इस काव्य में राम के किसी पूर्व पदाघात के प्रतिकार के लिए ही मन्थरा उनके निर्वासन का षड्यंत्र रचती है ।[8] 'मानस' में इसके स्थान पर 'शारदा-षड्यंत्र' है ।[9] यहाँ 'राम-निर्वासन' के अवसर पर लक्ष्मण के कोप और राम से बलपूर्वक राज्य ग्रहण करने के लिए उनकी प्रार्थना का विस्तृत वर्णन किया गया है ।[1] 'मानस' में इस कोप आदि का कोई संकेत भी नहीं है ।

इसमें वन गमन के लिये प्रस्तुत राम को दशरथ धन, रत्न और सेना आदि सर्वस्व देने की इच्छा व्यक्त करते हैं ताकि भरत उनके राज्य पर राज करें और राम वन में भी पूर्ण सम्पन्न रहें [11] किन्तु कैकेई उन्हें ऐसा करने से रोकती है । 'मानस' में इस प्रसंग का कोई उल्लेख नहीं है ।

इस ग्रंथ में 'जयन्त प्रसंग' भरत के चित्रकूट आगमन से पूर्व मिलता है, किन्तु 'मानस' में वह उसके पश्चात वर्णित हुआ है । इसके अतिरिक्त उसके विस्तार में भी भिन्नता है । 'मानस' के समान जयंत यहाँ राम की बल परीक्षा[12] के लिए सीता

---

१ मानस १।२०९ २ रा० मंजरी । बाल । ११५

३ चिरमस्मिन्निरालम्बा काममे भस्मशायिनी ।
अदृश्या प्राप्स्यसि मुक्तिं रामसंदर्शनावधि ॥ —रा० मंजरी । बाल । ३०७

४ मानस २।२१० ५ मानस १।२२७-२४१

६ रा० मंजरी । बाल । ११६ १२५ ७ मानस १।२६८-२८५ ।

८ सौधर्मे दिवस रामेण पुरा प्रणयकोपतः ।
चरणेनाहता तत्र चिरं कोपमुवाह सा ॥ रा० मंजरी । अयोध्या । ६१७

९ मानस २।१२ १० व्यसिनी स्थविरो राजा यदि स्त्रीवशतां गतः ।
तदस्माकं किमायातं ये त्यजाम स्वकं पदम् ॥ ८३८ ॥
भरतेन प्रयुक्ते यं यदि बध्ये नवक्रमः ।
तमेवं पुत्रो याति मम अवतरं पदम् ॥ ८४० ॥ रा० मंजरी । अयोध्या

११ धनं रत्नानि सैन्यं च राममेवानुगच्छतु ।
वर्षाणिवाठकुसुमां प्राप्नोतु भरत प्रियम् ॥ ८८६ ॥ रा० मंजरी

१२ मानस ३।१

पर प्रहार नहीं करता है किन्तु 'मृग मांस' की सुरक्षा करती हुई सीता जब उसे बारम्बार रोकती है तब वह अपने पंखों, चोंच और नखों से उसे आहत कर देता है।[1]

इस काव्य की चित्रकूट सभा में निराश भरत राम की कुटी के सामने कुश शय्या बिछा कर निरालम्ब निराहार निष्क्रिय और मौन व्रती होकर तप करने की घोषणा करते हैं।[2] 'मानस' में ऐसे सत्याग्रह का कोई वर्णन नहीं है।

इस काव्य में विराध के वध का कारण उसके द्वारा किया गया 'सीता-हरण' बतलाया गया है।[3] 'मानस' के राम उसका अकारण ही वध करते हैं —

'मिला असुर विराध मग जाता। आवतहीं रघुबीर निपाता' ।।३।७

राम-मिलन के अवसर पर इस ग्रन्थ के अगस्त्य उन्हें 'वैष्णव धनुष' सर्वदैत्य मारक ब्रह्म बाण 'अक्षय तूणीर-द्वय' 'तप्त हेमप्रभ खड्ग' और इन्द्रप्रिय अभेद्य-कवच आदि भी देते हैं।[4] 'मानस' में इस अस्त्रदान का कोई वर्णन नहीं है। वहाँ अगस्त्य राम की केवल स्तुति करते हैं।[5]

ब्रह्मा की आज्ञा से इस काव्य के इन्द्र अशोक वाटिका में स्थित सीता को ऐसी 'दिव्य हवि' दे जाते हैं कि उन्हें भूख प्यास अथवा थकावट आदि की किसी बाधा का अनुभव न हो।[6] 'मानस' में ऐसा कोई प्रसंग नहीं है।

इस काव्य में आहत जटायु को देख कर राम उसे भ्रमवश राक्षस समझ लेते हैं और जब वे उसे मारने के लिये दौड़ते हैं, तब वह उन्हें अपना परिचय देकर सीता हरण का वृत्तान्त भी बतलाता है और यह कह कर उन्हें आश्वस्त भी करता है कि

---

१ अतिघोषेण वैदेही पत्युर्नाम्नमकल्पयत् ।।१४२।। रा० मंजरी। अरण्य
मांसपेशस्य रक्षार्थं समाविष्टा प्रियेण सा।
पक्षतुण्डनखाघातैः काकेनोद्वेजिता भृशम् ।।१४३।।

२ ततो जगाद भरतः सुमार्गं व्यवसितेन्द्रियः ।।२८९।।
कुशे शय्याय मे यथा तपसार्थं प्रतीक्षति।
निराहारो निरालम्बस्त्यक्तकर्मा निराश्रय ।।२९०।।
अथाम्येष वने मौनी यावदार्य प्रसीदति ।।२९१।। रा० मंजरी। अरण्य

३ राजसोऽपि मृतां कृत्वा धर्मेणापूरयन्गिरा।
दोर्भ्यामादाय वैदेहीं रामस्याभिमुखो ययौ ।।१६७।।

४ रा० मंजरी। अरण्य। ४९३-४९६   ५ मानस ३।१२

६ अथान्तरे ब्रह्मणाप्यावस्थितं देव सुरेश्वरः।
विधाय निद्रया मोहं राक्षसीनामसंशितः ।।६४२।।
अभ्येत्य सीतां प्रोवाच तुषिताशिरिभूषणाम्।
तृषि रामेण न चिरात्संगमस्ते भविष्यति ।।६४३।।
इत्याश्वास्य ददौ सीतां तस्यै क्षुत्पिपासावारणम्।
दिव्यं हवी हविस्तृष्णाक्षुत्श्रमापहरं परम् ।।६४४।।

'मृत्यु मुहूर्त' में सीता-हरण होने से रावण का निश्चय ही वध होगा और उनको सीता की पुन: प्राप्ति होगी।[1] 'मानस' का जटायु राम का पूर्व परिचित है और मरते समय वह चतुर्भुज रूप धारण करके राम के ईश्वरत्व का वर्णन करता हुआ उनकी स्तुति करता है। वहाँ राम उसका पितृवत् अग्नि-संस्कार भी करते हैं।[2]

राम के द्वारा शाप मुक्ति होने पर इस ग्रन्थ में कबन्ध उनसे सीता प्राप्ति के लिये सुग्रीव मैत्री की प्रार्थना करता है।[3] 'मानस' में यह प्रार्थना शबरी करती है।

'पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहं होइहि सुग्रीव मिताई॥' ३।३६

'बालि-वध' के प्रसंग में इस काव्य की तारा राम को शाप देती है कि वे सीता को प्राप्त करके भी उसका उपभोग न कर सकेंगे।[4] 'मानस' में ऐसा कोई संकेत नहीं है।

सीता-खोज के लिये वानरों को चतुर्दिक भेजता हुआ सुग्रीव यहाँ सभी दिशाओं की नदियों, पर्वतों और नगरों का विस्तृत वर्णन करता है। राम के प्रश्न पर वह अपने इस भौगोलिक ज्ञान का कारण 'बालिभास' बतलाता है जिसके फलस्वरूप उसे सर्वत्र भटकना पड़ा था।[5] 'मानस' में यह 'दिग्वर्णन' नहीं है।

'सम्पाति प्रसंग' में 'मानस' के 'चन्द्रमा मुनि' के स्थान पर इस ग्रंथ में 'निशाकर मुनि' का उल्लेख है। यहाँ सम्पाति अपने पुत्र सुपार्श्व द्वारा आँखों देखा 'सीता हरण' का विवरण भी प्रस्तुत करता है। उसके संकेत से सुपार्श्व समुद्र-लंघन के लिए वानरों को अपनी सेवायें अर्पित करना चाहता है किन्तु अंगद अभिमानवश, उसे अस्वीकार कर देता है।[6] 'मानस' में सुपार्श्व और उसके उद्योग का कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

रावण के अन्त:पुर में अर्धरात्रि में सीता की खोज करते हुये इस काव्य के हनुमान् सुप्त और विवसन अनेक राक्षसियों के दर्शन से बड़े दुखी होते हैं किन्तु अपने मन को फिर भी सर्वथा शुद्ध पाकर उन्हें बड़ा सन्तोष होता है।[7] 'मानस' में इस प्रकार का कोई वर्णन नहीं है।

इस ग्रन्थ के हनुमान्-सीता-संवाद में, सीता 'विन्ध्य' नामक एक राक्षस का उल्लेख हनुमान् से करती हैं जो उन्हें राम-सुग्रीव-मैत्री का समाचार बहुत पहले ही बता देता है।[8] 'मानस' में विन्ध्य राक्षस या किसी अन्य राक्षस के ऐसे उद्योग का कोई

---

१ रा० मंजरी। अरण्य। १०४१–१०६२ २ मानस ३।१२

३ ऋष्यमूकगिरेः शृंगे सुग्रीवो वानरेश्वर
गिरस्थो बालिना भ्राता भवतस्त्वायमे स्थित: ॥ १०९१ ॥ मंजरी अरण्य
तेन सख्यं विधाय त्वं सीतामधिगमिष्यसि।
एष ते दक्षिणे पम्पा यत्र पम्पासरो महान् ॥ १०९२ ॥ मंजरी अरण्य

४ वैदेहीविरहे शापं वितरामि न ते सती।
किं तु प्राप्तामपि चिरं न सीतामुपभोक्ष्यसे ॥ ११० ॥ रा० मंजरी। किष्किन्धा ॥

५ रा० मंजरी। किष्किन्धा। २१४-२६४ ६ रा० मंजरी। किष्किन्धा। ४२० ४४०

७ " सुन्दर ६४ १०१ ८ " सुन्दर १४०

संकेत नहीं मिलता है।

'लंका दाह' के साथ-साथ सीता के दाह की भी आशंका करके इस काव्य के हनुमान को बड़ी आत्मग्लानि होती है, किन्तु अन्त में सीता को स्वस्थ पाकर वे प्रसन्न चित्त हो जाते हैं।[1] 'मानस' में उनकी ऐसी किसी भी आशंका का उल्लेख नहीं है।

अपनी माता के अत्यधिक आग्रह पर ही 'रामायण मंजरी' का विभीषण रावण को सीता-त्याग का परामर्श देता है।[2] 'मानस' में वह 'राम-भक्ति' से प्रेरित होकर ऐसा करता है।[3] इस ग्रंथ में रावण क्रुद्ध होकर विभीषण पर चरण प्रहार तो करता ही है, खड्ग लेकर भी दौड़ता है किन्तु प्रहस्त द्वारा रोक लिया जाने पर वह विभीषण को तुरन्त सभा से बाहर निकलवा देता है।[4] 'मानस' में केवल 'चरण प्रहार' का वर्णन है और उसके बाद भी विभीषण रावण को इस प्रकार समझाता है—

अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। राम भजें हित नाथ तुम्हारा॥ ५।४१

इस काव्य में 'सेतुबन्ध' के पूर्व समुद्र प्रगट होकर राम से अपनी दशरथ मित्रता और एक मास के अयोध्या प्रवास का भी उल्लेख करता है।[5] 'मानस' में समुद्र की मित्रता अथवा प्रवास का कोई संकेत नहीं है।

इसमें रावण राम के कटे हुए 'माया-शिर' के प्रदर्शन से सीता को वंचित करने का प्रयत्न करता है,[6] जो 'मानस' में नहीं है।

'मानस' में जाम्बवान्[7] राम को 'अंगददौत्य' का परामर्श देता है, किन्तु इस ग्रंथ में यह कार्य विभीषण करता है।[8] इसमें रावण के लिये राम एक लोभ एवं मिश्रित विद्रूप संदेश भी अंगद को देते हैं, जिसे सुनकर क्रुद्ध रावण अंगद-वध के लिए कुछ राक्षसों को संकेत करता है। अंगद उन सबको लेकर आकाश में उड़ जाता है और उन्हें ऊँचाई से पटक कर राम के समीप सकुशल लौट आता है।[9]

---

१ अहो प्रमादिना मौहात्स्वमीक्षितकारिणा।
कृतेन सहसा लंका मया दग्धैव जानकी ॥५७३॥ रा० मंजरी किष्किन्धा

२ रा० मंजरी। लंका। १४-१७   ३ मानस। ५।३८।१६

४ तमभ्यधावद्रावण्यः खड्गं ज्वालासमुद्यतः।
रावणश्चरणाघातस्ताडितस्तिर्य इवाम्बुदः ॥ १५४ ॥
स निरुद्धः प्रहस्तेन बाहुभ्यां प्रियवादिना।
तूर्णं निष्कास्यतामेष मित्रवादिरवप्रपः ॥ १५६ ॥ रा० मंजरी लंका

५ ततो जलनिधिः प्रीत्या काकुत्स्थमवदत्पुनः।
राजा दशरथो नाम ममाभूदपि सुहृत् ॥२४४॥
अयोध्यायां गृहे तस्य मासमध्युषितं सुखम्।
सौहार्दप्रीति सर्वस्वैरस्यापारैराहुरिमे ॥२४७॥

६ रा० मंजरी। लंका। ३४३-३६५

७ मानस ६।१७   ८ रा० मंजरी। लंका। ३०६

९ रा० मंजरी लंका ३६०-४०१

'मानस' में न तो 'राम-सन्देश' है और न अंगद के इस पराक्रम का ही कोई संकेत है।

'मेघनाद-नागपाश' के प्रसंग में इस ग्रन्थ में राम और लक्ष्मण दोनों पाशबद्ध होते हैं,[1] किन्तु 'मानस' में केवल राम ही प्रभावित होते हैं।[2] सीता को आतंकित करने के लिए इस काव्य का रावण उन्हें यह दृश्य दिखाने की व्यवस्था भी करता है। यहाँ वानर सेना के निराश होकर भागने पर सुग्रीव उसे रोकता है और पाश बद्ध राम-लक्ष्मण को किष्किन्धा तक सुरक्षित ले जाने के लिए अंगद को आदेश भी देता है। उसी समय सुषेण, राम से उनके ईश्वरत्व का उल्लेख करके उनसे 'गरुड़ स्मरण' की प्रार्थना करता है जिसके पश्चात गरुड़ तुरन्त आकर राम को अपने कर-स्पर्श मात्र में स्वस्थ कर देता है।[3] मानस' में यह विस्तार बिल्कुल नहीं है, वहाँ राम को नागपाशबद्ध देखकर नारद के संकेत से गरुड़ स्वयं आ जाता है और माया-नागों को खाकर राम को पूर्ववत् स्वस्थ कर देता है—

यहाँ देवरिषि गरुड़ पठायो। राम समीप सपदि सो आयो॥

दो० खगपति सब धरि खाये माया नाग बरूथ।

माया बिगत भए सब हरषे बानर जूथ॥ ६।७४ क

'मानस' में मेघनाद के ब्रह्मास्त्र प्रयोग से 'लक्ष्मण मूर्छा' के अवसर पर ही हनुमान के द्वारा 'संजीवनी औषध' लाने का वर्णन है।[4] इस ग्रंथ में उस ब्रह्मास्त्र से हनुमान विभीषण और जाम्बवान् को छोड़कर जब समस्त वानर-सेना और राम लक्ष्मण तक मूर्छित हो जाते हैं तब जाम्बवान् की प्रेरणा से हनुमान, विषल्या जीवनी वर्ण्या और सन्धिनी नाम की चार औषधियों को लाकर सबको स्वस्थ करते हैं।[5] रावण की शक्ति से एक अन्य अवसर पर केवल लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने के समय हनुमान उन्हीं औषधियों को दुबारा लाते हैं और लक्ष्मण को पुन सचेत करते हैं।[6]

इस ग्रंथ में मेघनाद हनुमान् के समक्ष माया-सीता का वध करके, उनको वंचित करना चाहता है।[7] यह प्रसंग 'मानस' में नहीं है।

'मानस' के राम 'रावण-वध' के लिए विभीषण के परामर्श से ३१ बाणों का प्रयोग करते हैं[8] जबकि इस काव्य में वे मातलि की सम्मति से केवल एक ही 'ब्रह्मास्त्र' से रावण को समाप्त कर देते हैं।[9]

सीता शुद्धि के प्रसंग में, इस ग्रंथ के राम सीता को स्वीकार न करते हुए उनको यथेच्छ आचरण की आज्ञा देते हैं और उन्हें अपने देवरों (भरत, लक्ष्मण एवं

१ रा० मंजरी। लंका। ४७३ ४७४

२ मानस। ६।७३

३ रा० मंजरी। लंका। ५११ ५१४

४ मानस ६।५४ ६२

५ रा० मंजरी। लंका। ९७१-१००४

६ रा० मंजरी। लंका। १२२६ १२२७

७ ,, ,, १०२६ ११०२

८ मानस ६।१०२

९ ,, ,, १२८८ १२९९

लक्ष्मण) सुग्रीव तथा विभीषण में से किसी एक के साथ (पत्नीवत्) रहने अथवा देशान्तर में कहीं भी चले जाने की स्वतन्त्रता भी देते हैं।[1] 'मानस' में राम के दुर्वाद[2] का संकेत तो है किन्तु उसका कोई विवरण नहीं दिया गया है। इसी प्रसंग में सीता के अग्नि में प्रवेश करते समय ब्रह्मा, शिव, इन्द्र अनेक लोकपाल और दशरथ आदि प्रगट हो जाते हैं। राम को विष्णु और सीता को लक्ष्मी कहकर ब्रह्मा उनकी स्तुति करते हैं और उन्हीं के संकेत से अग्निदेव सीता को निर्दोष बतला कर राम को समर्पण कर देते हैं।[3] 'मानस' में यह समर्पण पहले है, तत्पश्चात् ब्रह्मा आदि प्रगट होकर राम की केवल स्तुति करते हैं।[4]

इस काव्य में राम लक्ष्मण को 'युवराज' बनाने का असफल प्रयत्न करते हैं और उनकी अस्वीकृति पर ही वे भरत को युवराज-पद दे देते हैं।[5] 'मानस' में इस व्यतिक्रम का कोई संकेत नहीं है।

(७) रामचरित– अभिनन्द के इस महाकाव्य में ३६ अध्याय हैं। अन्त में ४ ४ अध्यायों के दो पूरक परिशिष्ट भी हैं, जिनमें अपूर्ण कथानक को पूर्ण करने का प्रयास किया गया है। मूल ग्रंथ का आरम्भ 'प्रस्रवण' पर्वत पर राम और लक्ष्मण के 'वर्षाप्रवास' से किया गया है और इसका अन्त कुंभ-निकुंभ वध के साथ होता है। 'प्रथम परिशिष्ट' में मेघनाद-वध से 'सीताशुद्धि' तक का कथानक है और द्वितीय परिशिष्ट में यह 'मकराक्ष वध' से लेकर 'रामाभिषेक' तक निबद्ध किया गया है। वर्षा प्रवास से पूर्व की कथा का संकेत राम के उस सन्देश में निहित है, जो सीता को हनुमान से मिलता है।

कथा-वस्तु और कथा के आकार दोनों को साथ-साथ देखकर इस कवि की वर्णन क्षमता का अनुमान बड़ी सरलता से किया जा सकता है।

कथानक की तुलनात्मक दृष्टि से इस काव्य की निम्नलिखित विशेषतायें हैं –

इसमें वर्षा प्रवास के पश्चात् सीता-शोध के लिए वानरों की सेना लेकर सुग्रीव स्वयमेव राम के समीप पहुँच जाता है।[6] 'मानस' में वह लक्ष्मण के बुलाने पर आता है।[7] इस ग्रन्थ में सुग्रीव की सहायता को अस्वीकार करते हुये राम उससे

---

१ अपूर्णा मम वैदेहि स्वाचोनास्ते दिशो दश ॥ ८७ ॥
देवराणां पुरे वा त्वं सुग्रीवस्य गृहेऽथवा ।
पुरे वा राक्षसेन्द्रस्य वस देशान्तरेषु वा ॥ ८८ ॥ रा० मंजरी । संक्षेपोत्तर

२ मानस ६।१०८

३ रा० मंजरी । संक्षेपोत्तर । १ २ १२७   ४ मानस ६।१०९-११२

५ सौमित्रिरस्वीकृतयौवराज्यं प्राप्यं न अग्राह्य मर्यादितोऽपि ॥१८७॥
तदा निपुण प्रयत्नेन राज्ञा निःस्पृहारी भरतः प्रणेरे ॥ १८८ ॥
—रा० मंजरी । संक्षेपोत्तर ।

६ रामचरित ५।१   ७ मानस ४।१८-२०

स्पष्ट कहते हैं कि यदि वह सहायता के लिये मन से इच्छुक नहीं है तो वह किष्किन्धा लौट जावे।[1] 'मानस' में ऐसी कोई बात नहीं है।

इस काव्य के राम सीता के अभिज्ञान के लिए हनुमान् को 'मुद्रिका' के अतिरिक्त 'मणिनूपुर' और 'स्तनोत्तरीय' भी देते हैं।[2] साथ ही वे दिलीप से लेकर रघु अज और दशरथ तक अपना वंश—वर्णन करते हुये श्रवणशाप', 'पुत्रेष्टि यज्ञ' आदि आरम्भ करके 'सीता-हरण' तक की समस्त घटना भी उनको बतलाते हैं।[3] इसके अतिरिक्त हनुमान् की सुविधा के लिये वे सीता के रूप और गुणों का भी विस्तृत वर्णन करते हैं।[4] 'मानस' में केवल मुद्रिका-दान का ही उल्लेख है[5] तथा अन्य बातों का कोई वर्णन नहीं किया गया है।

इस ग्रन्थ के 'स्वयंप्रभा प्रसंग' में पर्वत-गुफा में प्रवेश करते ही अंगद सर्वप्रथम दुर्दम नामक एक दानव का वध करता है।[6] वहीं पर एक वानरी हनुमान् से दो बार प्रेम प्रस्ताव करती है और तिरस्कृत होती है।[7] यहाँ स्वयंप्रभा-वृत्तान्त भी अति विस्तृत और परम्परा से भिन्न है।[8] 'मानस' में 'दुर्दम' और 'वानरी' का कोई उल्लेख नहीं मिलता है तथा 'स्वयंप्रभा-कथा' भी अति संक्षिप्त है।[9]

इस ग्रन्थ का सम्पाति अंगद आदि के समक्ष 'सीता-हरण' का प्रत्यक्ष वर्णन करता हुआ यह बतलाता है कि उसने सीता की रक्षा के लिए रावण पर चोंच से प्रहार किया था किन्तु वह भाग्यवश बच कर भाग गया।[10] इस सम्बन्ध में वह अपने पुत्र सुपार्श्व के उद्योग का भी उल्लेख करता है कि उसने आहार की इच्छा से उस समय रावण को पकड़ भी लिया था परन्तु वह प्राण भिक्षा मांग कर बचा गया।[11] यहाँ वानरों को अपनी सेवायें अर्पित करता हुआ सम्पाति उनसे यह कहता है कि वह उन सबको चोंच में पकड़ कर लंका में सीता से मिला सकता है अथवा सीता को ही इस पार ला सकता है।[12] किन्तु अंगद इन दोनों विकल्पों को अनुचित समझ कर

---

१ रामचरित ५।४२–४४

२ विधत्व विभूषणं च हैमं निजनामाङ्कमनामिकानिविष्टम् ।।१९।।
मणिनूपुरयुग्मपर्वमुक्तास्तबकितमम्भाषितनामकाभुजमम ।।२०।।
अभिकामसुगन्धि सान्द्रसार्द्रस्तनबिम्बप्रतिबिम्बलाञ्छमुत्तरीयम ।।२१।।
—रामचरित । आठ । १९–२१

३ रामचरित ८।४०–९१ ४ रामचरित ८।७–१४

५ मानस ५।२३ ६ रामचरित ११।४–११४

७ रामचरित १२।४२ ८३ ८ रामचरित १३।२५–३५

९ मानस ५।२४–२५ १० रामचरित १४।८३–८४

११ रामचरित १४।९०

१२ आरोहत मामित कुमारास्त्वर्यं च नयामि च क्षणेन ।।१०३।।
आर्य्य सुखमय माऽङ्कमेक पर्यस्य आमयाचरान् क्षणेन ।
आदाय वधूमुपमि युष्मास्वानूर्य्य यदि मे मतस्यमेन ।।१०४।।
—रामचरित १४।१०३–१०४

अस्वीकार कर देते हैं।[१] 'मानस' में सम्पाति या सुपार्श्व के ऐसे उद्योगों का कोई वर्णन नहीं है प्रत्युत वहाँ सम्पाति सीता का पता बताने के अतिरिक्त अन्य सहायता कार्यों में स्वयं को सर्वथा असमर्थ बतलाता है।[२]

'मानस' की नागमाता 'सुरसा'[३] के स्थान पर इस ग्रन्थ में देवमाता 'सरमा'[४] का उल्लेख है। शेष विस्तार समान है।

इस काव्य में सीता के विरह (?) में सन्तप्त रावण के उन्माद, पान केलि, तथा प्रलाप का बड़ा विस्तृत वर्णन किया गया है जो अनेक स्थलों पर अश्लील हो गया है।[५] 'मानस' में रावण के ऐसे क्रियाकलाप का कोई संकेत नहीं है।

रावण के त्रास से दुखी होकर इस काव्य की सीता जब लतापाश से फाँसी लगाना चाहती हैं, तब हनुमान् उस पाश को खोल कर उन्हें अपना परिचय देते हैं।[६] 'मानस' में सीता के द्वारा अशोक वृक्ष से अपने शोक-नाश के लिए अग्निकण की याचना करने पर उस पर स्थित हनुमान् 'राम-मुद्रिका' को नीचे गिरा देते हैं[७] और वे राम का यशोगान करते हुये सीता के समक्ष प्रगट होकर अपना समस्त वृत्तांत बतलाते हैं।[८]

इस ग्रंथ का रावण अशोक-वाटिका में स्थित सीता को अभीष्ट प्रलोभन देता हुआ जब उनके पिता जनक को समस्त भारतवर्ष का राज्य तक दिला देने की प्रतिज्ञा करता है[९] तब सीता उसे फटकारती हुई लंका-दहन और सपरिवार-मरण का शाप उसको देती है।[१०] वहाँ रावण के क्रोधपूर्वक खड्ग लेकर आगे बढ़ने पर हनुमान् भी सीता की रक्षा के लिये छिपे छिपे आगे बढ़ते हैं किन्तु उसके रुक जाने पर वे तुरन्त रुक जाते हैं।[११] 'मानस' में रावण की ऐसी प्रतिज्ञा अथवा सीता के किसी शाप का वर्णन नहीं है और हनुमान् अन्त तक शान्त बने रहते हैं।[१२]

इस ग्रन्थ के 'लंका-दाह' प्रसंग में रावण हनुमान के उपदेश से क्रुद्ध होकर

---

१ रामचरित १७।१०४–११६ २ मानस ४।२८

३ मानस ५।२

४ रामचरित १६।४१ ५ रामचरित १८।६३–९२

६ मतिकामितवर्विटपाभिरन्विकात करयोवरे शिरसि विपपातये ।
घटपोषकार पसपासमारमनस्तरसा पयो हनुमत प्रचुर्वती ॥२॥
सपमसहर्षिर्द्वमनीपमरणपिरमपुपेरव भाषमनुतातिरोह्यि ॥३॥
—रामचरित २०।२–३

७ मानस ५।१२ ८ मानस ५।१३–१६

९ किं तैन मैथिलि करिष्यसि तापसेन मायेकवीरमरविन्दमुखि मयेषा ।
तातमपि वर्षमभिजित्य नृपाननेषाम् पूज्याय भारतमहं जनकेश्वराय ॥
—रामचरित ११।८५

१० रामचरित ११।९१ ११ रामचरित ११।९५–९७

१२ मानस ५।९–१०

उन्हें खा जाने अथवा जला कर मार डालने के लिये जब राक्षसों को आदेश देता है[१], तब कुछ राक्षस उसकी पूंछ में आग लगा देते हैं। 'मानस' का रावण विभीषण के परामर्श से दूत-वध को अनुचित मान कर हनुमान् के केवल अंग भंग के लिये ही उनकी पूंछ में आग लगवाता है।

'कपि के ममता पूंछ पर सबहि कहउं समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥ ५।२४

लंका के भस्म हो जाने के पश्चात् इस काव्य का रावण, मय और विश्वकर्मा की सहायता से अपनी लंका को पुनः अधिक वैभवपूर्ण बना लेता है।[२] 'मानस' में लंका के 'जीर्णोद्धार' की कोई चर्चा नहीं है।

इस ग्रन्थ में रावण की सभा में राम-विरोधी तत्वों की अधिकता देख कर विभीषण के द्वारा सभा-त्याग करने पर रावण उसे 'अपुत्रेषी' कह कर, जब ललकारता है[३], तब वह राम के ईश्वरत्व का वर्णन करके उसे उनके विरोध से बारम्बार रोकता है।[४] 'मानस' का विभीषण स्वयं अपनी इच्छा से ही उपयुक्त अवसर देख कर रावण के पास इसी कार्य के लिये आता है।[५] इसमें रावण से चरणाहत और निष्कासित होकर विभीषण आत्मग्लानि के कारण भीषण तप या आत्महत्या करने का विचार रात भर करता है और प्रातःकाल दृढ़ निश्चय होकर वह राम की शरण में चला जाता है।[६] 'मानस' के विभीषण के मन में ऐसा कोई अन्तर्द्वन्द्व नहीं है।[७] इस ग्रन्थ के हनुमान् विभीषण से सर्वथा अपरिचित होने पर भी उसके राम के पास पहुँचाने पर उसका बड़ा स्वागत करते हैं[८] क्योंकि उन्होंने सीता से, उसकी प्रशंसा सुन रखी थी[९] किन्तु मानस के हनुमान् विभीषण से पूर्व परिचित होने पर भी इस अवसर पर सर्वथा मौन रहते हैं।[१०]

'मानस' में सेतुबन्ध' के पूर्व राम के समुद्र पर कोप और उसकी शरणागति का विस्तृत वर्णन मिलता है फिर समुद्र के संकेत से ही वे नल और नील से सेतुबंध कार्य सम्पन्न कराते हैं[११] किन्तु इस ग्रंथ में इन बातों का कोई संकेत नहीं है, यहां तो समुद्रतट पर पहुँचते ही सुग्रीव की आज्ञा से नल सेतुनिर्माण करने में लग जाता है।[१२]

इस काव्य में राम स्वयं अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजते

---

१ रामचरित २२।१०—११

२ तस्मार पूर्व्यं मयमेति लोकां यस्याद्भुते कर्मणि विश्वकर्मा।
चामातुरिच्छानुप हृद्यासी लंका स पूर्वाभ्यधिकां चकार॥

—रामचरित २१।७

३ रामचरित २१।४६—५४

४ रामचरित २१।६९—७९

५ मानस ५।३८

६ " २१।११३—१४५

७ मानस ५।४२

८ " २१।१८—४०

९ रामचरित २०।२१

१० मानस ५।४५

११ मानस ५।५८—६०

१२ रामचरित २१।१०—११

है।[1] 'मानस' में इसके लिए उन्हें जाम्बवान परामर्श देता है।[2] इस ग्रंथ में 'अंगद-रावण-संवाद' अति विस्तृत दिया गया है,[3] जिसमें अंगद रावण को समझाते हुए जब उससे सीता को वापस करने, विभीषण को राज्य देने, वानरों को प्रणाम करने तथा राम की शरण पाने के लिये आग्रह करता है[4] तब इसके उत्तर में रावण भी राम से सन्धि के लिए अपनी शर्तों में सीता के समर्पण करने, विभीषण एवं सुग्रीव का वध करने, वानर-सेना का विघटन करने और सब राक्षसों को प्रणाम करने के लिए उनकी तत्परता की माँग करता है।[5] इसमें अंगद के द्वारा रावण के मुकुट फेंकने और सभा में 'पदारोपण' करने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु 'मानस' में उसका विस्तृत वर्णन किया गया है।[6]

इस ग्रंथ में भी हनुमान दो बार संजीवनी औषधि लाते हैं पहले मेघनाद की बाण-वर्षा से राम लक्ष्मण और समस्त वानर सेना के मूर्छित होने पर[7] और फिर रावण की शक्ति से केवल लक्ष्मण के ही अचेत हो जाने पर।[8] 'मानस' में मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण के मूर्छित होने पर ही केवल एक बार 'संजीवनी' लाने का वर्णन है।[9]

इस काव्य में भी मेघनाद के द्वारा माया-सीता के वध का उल्लेख है। राम इस माया को न समझ कर बड़ा विलाप करते हैं और लक्ष्मण उन्हें सान्त्वना देते हैं। बाद में विभीषण से वास्तविकता जानकर वे दोनों स्वस्थ हो जाते हैं।[10] 'मानस' में यह घटना नहीं है।

मेघनाद के वध से दुखी होकर इस ग्रंथ का रावण सीता को सब अनर्थों की जड़ मानकर जब उस पर खड्ग से प्रहार करना चाहता है तब मन्दोदरी उसे रोक देती है।[11] 'मानस' में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

इस काव्य के राम-रावण-युद्ध के प्रसंग में राम रावण के 'ओरमास्त्र' को 'गरुड़ास्त्र' से अग्निबाण' को 'वारुण-बाण' से शक्ति' को सुरमुख बाण' से और त्रिशूल' को 'ब्रह्मास्त्र' से काट कर अन्त में उसका वध कर देते हैं।[12] 'मानस' के राम एक बाण से पहले उसके नाभिकुंड का अमृत सोख लेते हैं और फिर इस बाणों से उसके दस सिर तथा बीस बाणों से उसकी बीस भुजायें एक साथ काट डालते हैं[13]—

१ रामचरित २७।६४
२ मानस ६।१७
३ रामचरित २८। १-११२
४ रामचरित २८। ४१-४९
५ रामचरित २८।१०१-१०३
६ मानस ६।३२-३४
७ रामचरित ३३। १०-११२
८ रामचरित ४४। २०-३४
९ मानस ६।६१
१० " ३७। ४१-५८
११ रामचरित ३८। १-६
१२ " ४४। ८६-९७
१३ मानस ६। १०३

'सायक एक नाभि सर सोषा । अपर लगे भुज सिर करि रोषा ॥
लै सिर बाहु चले नाराचा । सिर भुज हीन रुण्ड महि नाचा ॥ ६।१०३

'रावण-वध' के पश्चात् इस ग्रंथ में राम, लक्ष्मण और उनके सभी मित्रगण अशोकवाटिका में सीता के दर्शन के लिए जाते हैं ।[1] वहाँ राम को 'पंडितम्मन्य' कहती हुई सीता उनकी दुःशंका के अनुमान मात्र से लज्जा प्रगट करके स्वतः अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं ।[2] इस घटना पर राम चकित होते हैं, वानरगण विलाप करते हैं, देवता सीता की शुद्धि की घोषणा करते हैं तथा विभीषण आदि पूर्वज, राम को कटु वचन सुनाते हैं । तब वे सबके आग्रह पर सीता को स्वीकार कर लेते हैं ।[3] 'मानस' में केवल हनुमान और विभीषण सीता को लिवाने के लिए अशोक वाटिका जाते हैं फिर राम के 'दुर्वाद' कहने से खिन्न होकर सीता लक्ष्मण से चिता बनवा कर जब उसमें प्रवेश करती हैं तब अग्निदेव उन्हें शुद्ध घोषित करते हुए राम को समर्पित कर देते हैं ।[4] इसके बाद ही दशरथ के साथ सब देव लोग आकर राम की स्तुति करते हैं ।[5]

इस ग्रन्थ के अनुसार राम के साथ समस्त वानर-सेना भी पुष्पक द्वारा अयोध्या आकर उनके अभिषेक में सम्मिलित होती है ।[6] 'मानस' में केवल सुग्रीव विभीषण, अंगद हनुमान, नील नल जाम्बवान, कुछ अन्य सेनापति आदि ही उनके सहगामी होते हैं और शेष वानर-सेना लंका में ही विघटित हो जाती है ।[7]

(३) जानकी हरण—महाकवि कुमारदास के इस महाकाव्य में २५ सर्गों के होने का उल्लेख मिलता है,[8] किन्तु उनमें से केवल १० सर्ग ही उपलब्ध हैं । इस काव्य में अयोध्या-वर्णन' से लेकर 'जानकी-हरण' तक का ही कथानक है जो इसके नाम की सार्थकता को स्पष्ट करता है । काशी संस्कृत-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में प्राप्त एक प्रति में पन्द्रह सर्ग मिलते हैं और उसके इन अतिरिक्त पाँच सर्गों में 'वालिवध' से लेकर रामाभिषेक' तक की कथा भी मिलती है ।[9]

रस की दृष्टि से इस काव्य में शृङ्गार रस को प्रधानता है । कौसल्या-सर्वांग-वर्णन[10] अभिसारिका-वर्णन[11] राम द्वारा सीता रूप-वर्णन,[12] सीता-विरह वर्णन,[13] राम-सीता-संभोग वर्णन[14] अयोध्यापुर स्त्री-वर्णन[15] और रावण-दम्भ

---

१ रामचरित ४०।२६
२ रामचरित ४०।३३ ४२
३ रामचरित ४०।४३ ६६
४ मानस ६।१०७-१०६
५ मानस ६।१११-११५
६ रामचरित ४४।१०२-१०३
७ मानस ६।११८
८ जानकी हरण । भूमिका, पृ० ४
९ सरस्वती भवन, काशी, पुस्तक संख्या १४ बी ।४०
१० जानकीहरण । १।२७-४१
११ जानकीहरण ३।१४-७६
१२ " ७।१-१८
१३ " ७।२३-३६
१४ " ७।६०-६२ ८।१-१०१
१५ " ६।५२-६२

वर्णन[१] आदि में वर्णित शृंगार अनेक स्थलों पर अश्लीलता की सीमा का अतिक्रमण कर गया है।

कथावस्तु की तुलना करने पर इसकी कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

इसमें यवन तुरुष्क आदि देशों पर दशरथ की विजय के उल्लेख के साथ साथ उनके शौर्य का विस्तृत वर्णन मिलता है[२] जो 'मानस' में नहीं है। दशरथ की मृगया और उनके द्वारा 'मुनि-पुत्र-वध' के प्रसंग का इसमें बड़े विस्तार से चित्रण किया गया है।[३] 'मानस' में उसका संकेत दशरथ के मरण-काल में केवल उनके स्मरण में मिलता है।[४]

इसमें रावण से त्रस्त देवगण शेषशायी विष्णु के पास जाते हैं और तब वे प्रत्येक देवता से उसके दुःख का कारण पूछते हैं।[५] तब देवगुरु बृहस्पति रावण के तप, वरदान शक्ति और अत्याचार आदि का विस्तृत वर्णन करते हुए उसके दरबार में सभी देवताओं के द्वारा की जाने वाली विभिन्न सेवाओं (बेगार) का बड़ा करुण निरूपण करते हैं।[६] 'मानस' के देवगण शिव के परामर्श से ब्रह्मलोक में ही विष्णु की स्तुति करने लगते हैं तब वे वहीं पर प्रगट होकर आकाश-वाणी से उन सभी देवताओं को आश्वासन देते हैं।[७] रावण के तप आदि का वर्णन तो वहाँ है किन्तु उसके अतिरिक्त शेष विस्तार बिल्कुल नहीं है।[८]

'मानस' में केवल एक ही और सफल 'पुत्रेष्टि-यज्ञ' का उल्लेख है[९] किन्तु इस ग्रंथ में उसके पूर्व अनेक असफल यज्ञों के भी किये जाने का वर्णन मिलता है।[१०]

इसमें दशरथ विश्वामित्र के साथ जाते हुए राम को नीति का विस्तृत उपदेश देते हैं,[११] जबकि 'मानस' में उनके केवल 'आशीर्वाद' का ही उल्लेख है।[१२] इसमें राम की विदा के समय जनता खिन्न होकर अश्रुवर्षा भी करती है[१३] जिसका वर्णन 'मानस' में नहीं है।

इस ग्रंथ में परशुराम-मिलन अयोध्या के मार्ग में ही होता है और वहाँ राम ही सबसे पहले उन्हें फटकारते हैं।[१४] 'मानस' में यह मिलन मिथिला के स्वयंवर स्थल में होता है और राम वहाँ अन्त तक नम्र बने रहते हैं।[१५]

'मानस' में भरत और शत्रुघ्न के 'मातुलगृह' जाने का वर्णन कहीं भी नहीं किया गया है किन्तु इसमें उनके मामा युधाजित् द्वारा उन्हें अपने साथ 'केकयदेश'

---

१ जानकी हरण १०।८२–८६
२ जानकी हरण १।१२–२५
३ " १।१६–६०
४ मानस २।१५५
५ " २।१–१२
६ जानकी हरण २।३३–७०
७ मानस १।१८४।१८७
८ मानस १।१७७–१८१
९ " १।१८९
१० जानकी हरण ४।२
११ जानकी हरण ४।२६–४८
१२ मानस १।२०८
१३ " ४।५०
१४ जानकी हरण ६।३१

ले जाने का स्पष्ट उल्लेख है ।[1]

इस काव्य में दशरथ अपने 'पलित-दर्शन' से क्षुब्ध होकर राम को बुलाते हैं[2] और 'यौवराज्य' के लिए उन्हें आवश्यक नीति का सविस्तार उपदेश देते भी हैं ।[3] 'मानस' में यह 'पलित-दर्शन' तो है—

> श्रवन समीप भये सित केसा । मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥
> नृप जुबराजु राम कहुँ देहू । — — ॥२।२

किन्तु वहाँ दशरथ राम को न बुलाकर, उनके समीप गुरु वशिष्ठ को ही उपदेश देने के लिये भेज देते हैं ।[4]

इसमें मन्थरा-षड्यन्त्र राम-निर्वासन और दशरथ-मरण के प्रसंग कुल ५ अनुष्टुप् छन्दों में हैं[5], जबकि मानस में उनका अत्यधिक विस्तार है ।[6]

इसमें 'जयन्त प्रसंग' भी अति संक्षिप्त है जिसमें राम जयन्त को सीता के मुख-कमल पर भ्रमरवत् चक्कर लगाने के कारण एकाक्ष कर देते हैं ।[7] 'मानस' में यह प्रसंग अधिक सरस तथा विस्तृत है ।[8]

इस ग्रन्थ में राम और भरत के 'चित्रकूट मिलन' का वर्णन जयन्त प्रसंग के पश्चात् है और वह भी अत्यन्त संक्षेप में किया गया है ।[9] 'मानस' में यह मिलन उसके पूर्व सम्पन्न हो जाता है और बड़े सरस विस्तारों के साथ वहाँ वर्णित हुआ है ।[10]

इसमें विराध के द्वारा सीता का हरण करने पर राम उसका वध करते हैं ।[11] किन्तु 'मानस' में असुरत्व के सिवाय विराध के वध का कोई कारण नहीं ज्ञात होता है फिर भी राम उसे वध के पश्चात् निजधाम भेज देते हैं ।[12]

इस ग्रन्थ का रावण सीता-हरण के लिए 'पुष्पक-विमान'[13] का उपयोग करता है, जबकि मानस में केवल एक रथ का उल्लेख है—

> क्रोधवन्त तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ ।
> चला गगनपथ आतुर भय रथ हाँकि न जाइ ॥३।२८

(४) उदार राघव—साकल्य मल्लाचार्य के इस महाकाव्य के १८ सर्गों में से केवल ६ सर्ग ही प्रकाशित रूप में प्राप्त होते हैं जिनमें 'राम-जन्म' से लेकर 'शूर्पणखा विरूपण' तक की कथा है । कथानक की दृष्टि से अनेक नवीनतायें हैं ।

---

१ जानकी हरण ८।६७—६८
२ अवाप्तवत तद् हे काठिन्यपरहितत्वपि ।
पलितं पिरशाखस्थो पुष्पहास इव क्वचित् ॥ जानकी हरण ।१०।२
३ जानकी हरण १ ।१—४२ ४ मानस २।१
५ ,, १ ।४४—४८ ६ ,, २।१२—८५ १४२—१५५
७ ,, १०।२६ ८ ३।१—२
९ ,, १०।२७—६७ १० २।१८५—३२९
११ ,, १०।६६—७० १२ ३।७
१३ ,, १०।६०

इसमें ब्रह्मा से इक्ष्वाकु, फिर ककुत्स्थ से लेकर दशरथ तक का वंश-वर्णन मिलता है। यहाँ दशरथ के पराक्रम, मृगया तापस-पुत्र-वध एवं शाप प्राप्ति आदि का भी सविस्तार निरूपण किया गया है[1] जो 'मानस' में नहीं मिलता है।

इसमें राम 'विष्णु' के पूर्ण अवतार हैं। उनके अतिरिक्त भरत 'सुदर्शन' के लक्ष्मण 'शेष' के तथा शत्रुघ्न 'शंख' के अवतार हैं।[2] मानस में भरत आदि विष्णु राम के अंश-मात्र बतलाये गये हैं।[3] इसमें राम को इतना 'अध्यात्म-प्रिय' और 'विरागी' बतलाया गया है कि वे अपने लिये राज्य अथवा विवाह आदि कुछ भी नहीं चाहते हैं।[4]

इस ग्रन्थ में विश्वामित्र के द्वारा राम-लक्ष्मण को ले जाते समय जनता के द्वारा उनकी (विश्वामित्र की) और दशरथ की कटु निन्दा किये जाने का वर्णन है[5], जो मानस में नहीं है।

इस काव्य के 'अहल्योद्धार' प्रसंग में राम के चरण-स्पर्श से पत्थर को स्त्री बनते देख कर राम के साथ ही लक्ष्मण और विश्वामित्र को भी जब विस्मय होता है[6] तब अहल्या अपनी पूर्व-कथा सुना कर सबका समाधान करती है[7] और राम के साथ 'सीता के विवाह' की भविष्यवाणी भी करती है।[8] वह विश्वामित्र से राम और लक्ष्मण को मिथिला ले जाने के लिए आग्रह करती है। वहीं उसे शाप-मुक्त देख कर उसके पति गौतम उसे ग्रहण कर लेते हैं। तदुपरान्त वे भी सबके साथ मिथिला चले जाते हैं।[9] 'मानस' के राम विश्वामित्र से 'शिला' की शाप-कथा सुन कर उन्हीं के आदेश से उसका उद्धार करते हैं और वह (अहिल्या) उनकी स्तुति करती हुई बड़े आनन्द के साथ अपने पतिलोक को चली जाती है।[10] यहाँ राम आदि के विस्मय, अहल्या की भविष्यवाणी और आग्रह का कोई उल्लेख नहीं है।

इस काव्य में 'मानस' के समान न तो 'पुष्प-वाटिका मिलन' है और न 'स्वयंवर-घोषणा' ही। इसमें विश्वामित्र के आग्रह पर जनक शिव-धनुष मंगा लेते हैं और राम उसे भंग करके सीता को प्राप्त करते हैं।[11]

इसमें दशरथ द्वारा लाई गई बारात में गुरुपत्नी रानियाँ वेश्याओं और चेटियों के भी सम्मिलित होने का वर्णन है।[12] 'मानस' में केवल पुरुष बरातियों का ही उल्लेख है।[13]

---

१ उदार राघव १।१—२७ २८।१०५ २ उदार राघव २।१० ११
३ मानस १।१८७ ४ ,, २।४१
५ विस्मयोत्पन्न महामुनिवृन्दे नामरैर्नरपतिश्च निनिन्दे ॥ उदार राघव २।७०—७१
ते जनो जनपतिं च जगर्हे कर्मणि प्रथममाममगर्हे ॥ ७ उदार राघव ३।१०—११
६ उदार राघव ३।२८—३०
८ अचिरेण मैथिलसुता परिणेता सुचिरं मुधागणमनुभविष्यति राम ॥३।१४
९ उदार राघव ३।१८—४१ १० मानस १।२१०—२११
११ ,, ३।६०—६७ ११ मानस १।२६८—३०४
१२ उदार राघव ३।१०४—१०७

इस काव्य में 'परशुराम-मिलन' का वर्णन अयोध्या के मार्ग में किया गया है। यहाँ परशुराम को देख कर दशरथ बहुत घबड़ा जाते हैं किन्तु राम निर्भय रह कर सबको आश्वस्त करते हैं।[१] 'मानस' का वर्णन इससे भिन्न है।

इस ग्रन्थ की मन्थरा दशरथ को बुला कर कैकयी के सामने से जाती है और वहीं उनसे स्वयमेव दोनों वर माँग लेती है।[२] 'मानस' की कैकयी इस दिशा में स्वयं सक्रिय है।

इसमें राम-वन-गमन की आशंका से दुखी होकर दशरथ, लक्ष्मण से आग्रह करते हैं कि वे उन्हें निगृहीत करके राम को सिंहासन दे दें।[३] वे इस षड्यन्त्र में भरत की सहमति होने की आशंका में उनसे निवाप न लेने का निश्चय भी व्यक्त करते हैं।[४] 'मानस' के दशरथ अधिक गम्भीर हैं अतः वे इतने उन्माद-ग्रस्त नहीं होते हैं।[५]

इस ग्रन्थ के लक्ष्मण दशरथ से क्रुद्ध होकर उनको 'मूढ़ मूढ़ और स्त्री-विप्रलब्ध' आदि कहते हुये लक्ष्मण राम से बाहुबल के द्वारा राज्य-ग्रहण की प्रार्थना करते हैं।[६] 'मानस' में लक्ष्मण के कोप का कुछ संकेत 'सुमन्त्र-सन्देश' में मिलता है, किन्तु वहाँ उसका कोई विवरण नहीं दिया गया है—

'लखन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा।
बार-बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लखन लरिकाई ॥२।१५२

इस ग्रन्थ के राम जब सीता को अपने साथ वन न ले जाकर उन्हें वहीं अयोध्या में ही रुकने का परामर्श देते हैं तब वे कुपित होकर उनसे कहती हैं कि उन्होंने इतनी रामायणें सुनी हैं किन्तु किसी में भी राम के अकेले वन जाने का उल्लेख नहीं है।[७] इसके अतिरिक्त वे विष, अनशन या रज्जुपाश से आत्महत्या कर लेने की धमकी भी राम को देती है।[८] 'मानस' में सीता के इस 'रामायण-श्रवण' और 'धमकी' का कोई संकेत नहीं है।

इस काव्य की कौसल्या दशरथ को 'कामातुर' कहती हुई अपने भविष्य को असुरक्षित बतलाती है तथा राम के साथ स्वयं वन जाने का विचार भी व्यक्त करती है।[९] *'मानस' की कौसल्या इस सीमा तक उद्विग्न नहीं है प्रत्युत वह अपने 'सहगमन'* में महान् अनर्थ की आशंका भी करती है —

'कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी ॥'२।५५

१ उदार राघव १।११७–१२१
२ उदार राघव ४।४१–४२
३ उदार राघव ४।१०५
४ उदार राघव ४।१०६
५ मानस २।१७ ७६–७८
६ उदार राघव ५।२१–१५
७ रामायणानीह पुरातनानि पुरातनेभ्यो बहुशः श्रुतानि ॥
न क्वापि वैदेहसुतां विहाय रामो वनं यात इति श्रुतं मे ॥उदार० ५।४८
८ मां नानुजानासि वनाय गन्तुं त्वं तापसम्भोक्ष्यति जीव एष ॥
विषेण वाऽनशनेन यद्वा रज्ज्वाथवा राघव वर्त्म महाम् ॥ उदार० ५।२१
९ उदार राघव ५।७२–७४

वन जाते समय इस काव्य के राम और सीता, वसिष्ठ के पुत्र और पुत्रवधू को क्रमशः अपना सर्वस्व दान कर जाते हैं।[१] 'मानस' में वे ब्राह्मणों को बुलाकर 'वर्षासन' (वर्ष भर का भोजन) एवं आवश्यक दान देते हैं तथा अपने दास-दासियों को केवल वसिष्ठ की देखरेख में छोड़ जाते हैं।[२]

इस ग्रंथ में गुह भी दशरथ को वृद्ध एवं कामान्ध कहता है और अपनी विशाल सेना की सहायता से बलपूर्वक अयोध्या का राज्य ग्रहण करने के लिये राम से प्रार्थना करता है।[३] 'मानस' का गुह इतना विज्ञ नहीं है साथ ही वहाँ लक्ष्मण के उपदेश से राम को ईश्वर जानकर उसका रहा सहा खेद भी शान्त हो जाता है।[४]

राम के विरह में मूर्छित होकर इस काव्य के दशरथ रात्रि के किसी अज्ञात क्षण में मर जाते हैं। प्रातःकाल ही उनकी मृत्यु का किसी प्रकार पता चलता है।[५] 'मानस' में ऐसा वर्णन नहीं मिलता है।[६]

इस ग्रंथ में वन-मार्ग की स्त्रियों के द्वारा सीता से राम के परिचय के पूछे जाने का उल्लेख है जिसका संकेत मानस में भी मिलता है[७] किन्तु 'मानस' की सीता जहाँ अत्यधिक सलज्जा है[८] वहाँ इस काव्य की सीता अपनी मुखर हँसी के द्वारा उस प्रश्न का उत्तर देती है।

इस काव्य की सूर्पणखा राम से पूर्व परिचित है इसीलिए वह उनसे मिलते ही उनके नाम और वंश का उल्लेख करके 'ताटका-वध', अहल्योद्धार' 'धनुर्भंग' और सीता-विवाह' आदि में उनके पराक्रम का विस्तृत वर्णन करती है और तदुपरान्त वह अपना भी सच्चा परिचय देकर उनसे 'गान्धर्व-विवाह की प्रार्थना करती है,[९] जो 'मानस' में वर्णित नहीं है। इसमें लक्ष्मण उसे राम के समीप पहले जाने के कारण 'पूज्य' बतलाकर अस्वीकार कर देते हैं और अधिक आग्रह करने पर वे वनवास की अवधि के पश्चात् उर्मिला की सहमति की भी अपेक्षा बतलाते हैं।[१०] मानस' में इस प्रकार का निरूपण नहीं है।[११]

---

१ उदार राघव ३।८३–८५ २ मानस २।८०
३ " ६।२१–१२ ४ " २।८८–९४
५ " ७।४४ ६ " २।१५५
७ नीलमेघ इव भाति पुरस्तादेष कस्तव मनस्तनि धन्वी।
पृच्छतीषु नगरीष्विति तन्वी स्मरमुत्तरमदात् हसन्ती॥ —उदार राघव ८।२६
८ मानस २।११७ ९ उदार राघव ६।७६-९१
१० प्रथमं मदनुज विलसामा परिणयामि तथा यथेयमार्या। १८।
अथवा यदि सर्वथा मनस्ते विगमे त्व वरदा चतुर्दशानाम्।
उपयास्यसि मैथुरीमयाभ्यामनुयोज्य स्वमनं तदा विवस्वे।११। उदार० नवम् सर्ग
११ मानस ३।१७

(५) रघुवीर चरित—इस महाकाव्य[1] में १७ सर्ग हैं जिनमें 'राम-वनवास' से लेकर 'रामाभिषेक' तक का कथानक है। 'राम-वनवास' से पूर्व की कथा-वस्तु का वर्णन तीन स्थानों पर किया गया है (१) दण्डकारण्य में ऋषियों के परस्पर संवाद में, (२) 'सुग्रीव प्रमाद' के अवसर पर लक्ष्मण प्रबोध में और (३) सीता को विश्वस्त करने के लिये हनुमान् द्वारा उन्हें दिये गये उनके 'सान्त्वनोपदेश' में।

कथा-वस्तु के विचार से इस काव्य में अनेक विशेषताएँ प्राप्त होती हैं—

इसमें 'वसन्त-प्रसंग' का उल्लेख करते हुए ऋषि लोग राम से उसे एक अपशकुन और भावी विपत्ति का सूचक भी बतलाते हैं,[2] जिसका संकेत मानस में नहीं है।

इस काव्य के राम मुनियों के सामने समस्त राक्षसों को मारने की प्रतिज्ञा करते हैं[3] जिसका उल्लेख 'मानस' में भी मिलता है—

'निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥३।९

इसमें अगस्त्य मुनि राम से मिलते समय उन्हें एक 'वैष्णव धनुष' और कवच देते हैं[4] जिसका उल्लेख 'मानस' में नहीं है।[5]

इसमें जटायु के प्रथम दर्शन पर ही राम जब उसे राक्षस समझ कर मार डालना चाहते हैं तब वह उनको अपना पूर्व परिचय देकर अपनी दशरथ मित्रता का भी उनसे उल्लेख करता है तथा उनकी वन में सहायता करने के लिये स्वयं को अपने बड़े भाई सम्पाति के द्वारा नियुक्त बतलाता है।[6] 'मानस' में राम और जटायु के पूर्व परिचय का विस्तृत वर्णन मिलता है।[7]

इसमें शूर्पणखा विराध होकर लक्ष्मण को पकड़ कर के आकाश में उड़ जाती है, तब वे वहीं उसका विरूपण करते हैं।[8] 'मानस' में उसके भयंकर रूप के दर्शन मात्र से सीता के भयभीत हो जाने पर राम के संकेत से लक्ष्मण उसे विरूपित करते हैं।[9]

'स्वर्णमृग' को माया बतला कर लक्ष्मण के द्वारा रोके जाने पर भी इस काव्य के राम, सीता के आग्रह से उस मृग के पीछे चले जाते हैं।[10] 'मानस' के राम सर्वज्ञ ईश्वर हैं और वे सुर-कार्य-सिद्धि के लिए ही ऐसा करते हैं।

---

१ इस महाकाव्य का लेखक अज्ञात है डा० आप्टे के अनुसार प्रसिद्ध टीकाकार 'मल्लिनाथ' ही इसके लेखक हैं। देखिये उनकी भूमिका, पृ० १

२ रघुवीर चरित १।४४ ३ रघुवीर चरित १।५९

४ " १।६३ ५ मानस ३।१२-१३

६ रघुवीर चरित ३।६६-७० ७ मानस ३।१३

८ " ४।६० ९ " ३।१७

१० " ६।५०

तब रघुपति जानत सब कारन । उठे हरषि सुर काजु सँवारन ॥
मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा । करतल चाप रुचिर सर साँधा ॥ ३।२७

मारीच-वध के पश्चात् लौटते समय इस काव्य के राम को कुछ अपशकुन होते हैं जिनके फलस्वरूप वे अयोध्या में माताओं की दुर्दशा या भरत के कष्ट या अयोध्या पर राक्षसों के आक्रमण या वहाँ प्राकृतिक उपद्रव या फिर आश्रम में सीता की उत्पत्ति की आशंका करते हैं ।[1] 'मानस' में इसका संकेत नहीं मिलता है। वहाँ तो राम लक्ष्मण को भी पीछे वन में आते देखकर आश्रम में सीता के अकेलेपन से और वन में राक्षसों के अति प्रचार से उनके हरण की संभावना व्यक्त करते हैं।[2]

इस काव्य के राम रावण को सीता का हरण-कर्ता जानकर उस पर कुपित होकर कहते हैं कि वह ब्रह्मा अथवा शिव की शरण जाने पर या ब्रह्माण्ड से बाहर चले जाने पर भी सुरक्षित नहीं रह सकता है क्योंकि उनके बाण उसे सभी स्थानों पर खोज लेने में समर्थ हैं, किन्तु उन्हें यह भी भय है कि इस प्रकार उनके बाणों के प्रयोग से त्रिलोक में असमय ही प्रलय हो जायगा ।[3] 'मानस' में राम के इस कोप अथवा दर्प का वर्णन नहीं है।

राम के साथ वन में सीता की खोज करते हुए इस काव्य के लक्ष्मण को एक राक्षसी पकड़कर ले जाती है, तब वे उसे शूर्पणखा की तरह विरूपित कर देते हैं।[4] 'मानस' में यह घटना नहीं है।

इसमें राम सुग्रीव से कहते हैं कि सीता-हरण की घटना से उनकी शक्ति में जनसाधारण का विश्वास चाहे ही कम हो गया है फिर भी वे उस निष्कण्टक राज्य दिलाने में समर्थ हैं। उन्हें आशा है कि इन दोनों समदुःखी मित्रों की मित्रता से दोनों का ही कार्य शीघ्र सिद्ध होगा ।[5] 'मानस' के राम सुग्रीव से न तो अपनी दुर्बलता ही व्यक्त करते हैं और न उससे किसी सहायता की अपेक्षा ही रखते हैं।[6]

सुग्रीव के प्रमाद से खिन्न होकर इस काव्य के राम उसकी सहायता की अपेक्षा इसलिये करते हैं कि कहीं वह अनभूति न अभिज्ञ हो जाये कि रावण को जीतने के लिये उसकी सहायता अनिवार्य थी और इसीलिये वे अनिश्चित काल तक उसकी प्रतीक्षा करते रहे।[7] 'मानस' में राम की किसी ऐसी आशंका का उल्लेख नहीं है।

लंका-दहन में भी अशोक-वाटिका के सुरक्षित रह जाने का कारण इस ग्रंथ

---

१ रघुवीर चरित ७।१-७
२ मानस ३।३० ३ रघुवीर चरित ७।६४-६७
४ यद्यपि निशाचरीत्वं परिगृहीतवतीयम् लक्ष्मण ।
अविनाशिनि रणदुर्मदे तव तां शूर्पणखा निपातयेत् ।७।६२
५ रघुवीर चरित ८।१०७-१०८ ६ मानस ४।५-७
७ रघुवीर चरित १०-२१

में हनुमान् का प्रभाव बतलाया गया है जिसका संकेत 'मानस' में नहीं है।

इस काव्य के 'राम-रावण-युद्ध' के प्रसंग में जब रावण राम पर अपने भीषण मारक-मन्त्र का प्रयोग करता है, तब अगस्त्य मुनि तुरन्त आकर के अपने 'सात्विक' प्रभाव से राम की रक्षा करते हैं।[१] 'मानस' में इस घटना का वर्णन नहीं है।

इस काव्य के अनुसार लंका से पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या के लिए प्रस्थान करते समय वहीं पर ही सब लोग राम के राज्य-चिन्हों को धारण कर लेते हैं यथा लक्ष्मण छत्र, सुग्रीव तालवृन्त हनुमान्, स्वर्ण-दण्ड अंगद चामर विभीषण खड्गराज, जाम्बवान् मणिपादुकायें नील तूणीर, नल शंख और सुषेण वर्म ग्रहण करते हैं।[२] 'मानस' में राम के विधिवत् अभिषेक के पश्चात ही इस 'चिन्ह-धारण' का वर्णन मिलता है, किन्तु वहाँ 'किसने क्या लिया' इसका विश्लेषण नहीं है।[३]

इसमें पुष्पक विमान राम से विदा लेते समय उनके चरणों में प्रणाम करता है।[४] 'मानस' में अयोध्या पहुँच कर राम जब उसे कुबेर के पास जाने की आज्ञा देते हैं तब वहाँ उसके हर्ष और विरह दोनों से अनुभव करने का उल्लेख मिलता है।[५]

(६) श्री राम विजय—श्री 'रूपनाथ उपाध्याय' द्वारा लिखित और श्री जयपतिलाल झा द्वारा संपादित इस महाकाव्य के ६ सर्गों में 'दशरथ राज्य-वर्णन' से लेकर 'रामाभिषेक' तक का कथानक है। इसके संपादक इसे मैथिली की किसी मूल पाण्डुलिपि पर आधारित मानते हैं जिसके हिन्दी रूपान्तर से इसे संशोधित किया गया है।[७]

यह एक आधुनिक महाकाव्य है। इसकी कथावस्तु 'मानस' से भिन्न है, किन्तु कई स्थलों पर बहुत साम्य है।

इसमें भी दशरथ-मृगया वर्णन और श्रवण प्रसंग[८] का बड़े विस्तार से वर्णन है जो 'मानस' में नहीं मिलता है।

'वाटिका-मिलन' और 'स्वयंबर-योजना' के प्रसंग इसमें नहीं हैं किन्तु 'मानस' के समान ही 'परशुराम विवाद' मिथिला में ही ठीक धनुर्भंग के पश्चात् दिखलाया गया है, जिसमें लक्ष्मण भी भाग लेते हैं। उनके व्यंग वचन[९] 'मानस' की उक्तियों से कहीं कहीं अपूर्व साम्य रखते हैं—

---

१ रघुवीर चरित १३।८६ — २ रघुवीर चरित १६।२६
३ " १६।८७–९१ — ४ मानस ७।१२
५ " १७।७७ — ६ " ७।४
७ यह संस्करण देवनागरी लिपि के एक अकेले हस्तलेख पर आधारित है। मैथिलि लिपि में इसका मूल-लेख सम्पादक के पास अब प्राप्य नहीं है। देखिये इसी ग्रंथ की भूमिका पृष्ठ १—नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय काशी ग्रंथ संख्या २७२।
८ राम विजय ११।-१० — ९ राम विजय ३।१६

बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुं न असि रिस कीन्हि गोसाईं।
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। — — ॥१।२७१

इसमें दशरथ की बारात में वेश्याओं के भी सम्मिलित होने का सरस और विस्तृत वर्णन किया गया[1] है जो 'मानस' में नहीं मिलता है।

इसमें पंचवटी में सीता के आग्रह से राम की सहायता के लिए जाते हुए लक्ष्मण 'कुटी' के चारों ओर अपने धनुष से एक रेखा खींच जाते हैं।[2] 'मानस' में इसका संकेत 'रावण-मन्दोदरी-संवाद' में मिलता है।[3]

वानर-सेना प्रस्थान के समय इसमें राम हनुमान् पर और लक्ष्मण अंगद पर आरूढ़ होकर चलते हैं[4], जिसका उल्लेख 'मानस' में नहीं है।

रावण की सभा में अंगद के 'पदारोपण'[5] की घटना इसमें 'मानस' के समान ही वर्णित है।[6]

(७) राघवीयम्—महाकवि पानिवाद ने २० सर्गों के इस महाकाव्य का निर्माण 'बाल व्युत्पत्ति'[7] के लिए किया था। इसमें दशरथ राज्य-वर्णन से लेकर 'रामाभिषेक' तक का सम्पूर्ण कथानक है जिसकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं —

इसमें दशरथ की 'शान्ता', नाम की एक पुत्री का उल्लेख है जिसे वे एक वर्ष के पश्चात राजा रोमपाद को गोद लेने के लिये दे देते हैं। वहाँ रोमपाद के देश में अनावृष्टि से अकाल पड़ने ऋष्यशृङ्ग मुनि के वहाँ जाते ही सुवृष्टि से सुकाल होने और उनके साथ शान्ता के विवाह का भी विस्तृत वर्णन मिलता है।[8] 'मानस' में शान्ता का कोई संकेत नहीं है।

'पुत्र-काम-यज्ञ' के पूर्व इस ग्रन्थ में दशरथ 'अश्वमेध-यज्ञ' का भी सविस्तार उल्लेख है।[9] 'मानस' में केवल पूर्वोत्तर यज्ञ का ही वर्णन है।[10]

इसमें रावण से त्रस्त देवताओं के क्षीर सागर पहुँचने पर विष्णु उनसे स्वयं कहते हैं कि उन्हें सब ज्ञात है और वे दशरथ-पुत्र राम बन कर रावण-वध करेंगे।[11] 'मानस' में वे देवताओं की स्तुति पर आकाशवाणी से ही उनको सान्त्वना देते हैं।[12]

इस ग्रन्थ के विश्वामित्र दशरथ से रावण के अत्याचारों का विस्तृत वर्णन करते हैं और अपने आश्रम में विघ्न करने वाले मारीच आदि को उसी के द्वारा

---

१ राम विजय ३।११
२ राम विजय ७।१४
३ मानस ६।३६
४ „ ९।८
५ ततोऽसहो भूमितले निजपदं निधाय लंकेश्वरमित्थोऽब्रवीत्।
यदि समुत्थापय येद्यसौ भवेत् प्रयत्न रामाय मैथिल जानकीम् ॥६।१८
६ मानस ६।३४
७ राघवीय अन्तिम श्लोक।
८ राघवीय, १।७–२१
९ „ १।३९–४०
१० मानस १।१८९
११ „ १।४१–४२
१२ „ १।१८६–१८७

नियुक्त बतला कर सुरक्षा के लिये जब राम-लक्ष्मण की याचना करते हैं तब दशरथ वात्सल्य-वश स्वयं जाने को प्रस्तुत हो जाते हैं।[२] उस समय विश्वामित्र के कुपित होने पर वशिष्ठ उन्हें शान्त करते हैं और राम-लक्ष्मण को उन्हें सौंप दे देने के लिए वे दशरथ को आदेश भी देते हैं।[३] 'मानस' के इस प्रसंग में रावण के अत्याचार मारीच की नियुक्ति और विश्वामित्र के कोप आदि का वर्णन नहीं है।[४]

मिथिला के दो आश्चर्यों[५] (शिव धनुष और यज्ञोत्पन्न सीता) का उल्लेख करके इस काव्य के विश्वामित्र राम और लक्ष्मण से पूछते हैं कि वे मिथिला जाने के लिए उत्सुक हैं अथवा अपने पिता के पास अयोध्या लौट जाना चाहते हैं।[६] उत्तर में मिथिला के प्रति राम की प्राथमिकता[७] जान कर विश्वामित्र अपनी पत्नी, शिष्यों तथा अन्य तापस-तापसियों के साथ वहाँ के लिये प्रस्थान करते हैं।[८] 'मानस' में यह विस्तार नहीं है। वहाँ विश्वामित्र से धनुष-यज्ञ' का नाम सुन कर उनके कहने पर ही राम और लक्ष्मण उनके साथ मिथिला चल देते हैं —

धनुषजग्य सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिवर के साथा ॥१।२१०

इसमें 'वाटिका-मिलन' अथवा 'स्वयंवर-योजना का कोई वर्णन नहीं है। वहाँ राम को देख कर और उनको सीता के योग्य वर जान कर जनक को अपने 'प्रण' पर पश्चात्ताप होता है। उसी समय विश्वामित्र उन्हें सान्त्वना देते हुये शिव धनुष मँगाने का आग्रह करते हैं। जिसे तुरन्त भग करके राम सीता को प्राप्त कर लेते हैं।[१]

इस ग्रन्थ में भी परशुराम मिलन' अयोध्या के मार्ग में होता है। वहाँ दशरथ के प्रणाम की उपेक्षा करके परशुराम सीधे राम से वाक्कलह करने लगते हैं किन्तु अन्त में उनके द्वारा दिए गए वैष्णव धनुष को चढ़ा कर राम उनकी ऊर्ध्व गति रोक देते हैं।[१०] 'मानस में परशुराम का यह विवाद मिथिला में ही होता है[११] वहाँ भी राम उनका वह धनुष चढ़ा देते हैं किन्तु उनकी 'गति' नहीं रोकते।[१२]

७ ,, २।२२-३९

८ किन्तु प्रतिज्ञाविधिमिवर्हणार्थं सस्तद्ध एवोऽस्मि मुने न राम ॥४६
पुरारिनिर्मुक्तमृष्टधार्यं धनुर्ममेदं पुरपिच्छनीकम्।
निधीयिवाश्मैस्त्वय यैरिवृन्दं ता मिसमुल रिव मानुबिम्बम् ॥४७॥
—रामचरित द्वितीय सर्ग—

१ रामचरित २।१३ ४ मानस १।२०६-२०८

२ अभयं किल यस्य बन्धिरे महदाश्चर्यमिदं प्रचक्षते।
महितं धनुरैश्वरोत्तरं मयनमेरुशिखा च कन्यका ॥१४॥ रघुवीर चरित तृतीय सर्ग

६ रामचरित ३।११-२६ ७ रामचरित ३।२७

८ ,, ३।६२ ९ ,, ४।१६, १७, १२-१८

१० ,, ४।६४,६७ ७७-८९ ११ मानस १।२७१-२८०

१२ मानस १।२८४-२८५

मन्थरा की युक्तियों से प्रभावित होकर इस काव्य की कैकयी दशरथ को तुरन्त बुला लाने के लिए उसे ही भेजती है।[१] उनके आने पर वह उनसे वर याचना करती है। उसी समय दशरथ पद-वन्दनार्थ राम भी वहीं आजाते हैं।[२] 'मानस' की कैकयी को वर-याचना के लिये 'कोप भवन' की शरण लेनी पड़ती है।[३] और सुमंत्र के द्वारा बुलाये जाने पर ही राम वहाँ पहुँचते हैं।[४]

इसमें भी 'राम-निर्वासन' से कुपित होकर लक्ष्मण धनुष-बाण लेकर विघ्नकारियों के 'कण्ठच्छेद' का निश्चय व्यक्त करते हैं। दशरथ को 'स्त्रीजित' 'मूढ़' आदि कहकर वे उनकी कटु उपेक्षा करते हुए उनको 'पिता' तक नहीं मानना चाहते हैं।[५] 'मानस' में लक्ष्मण के इस कोप का वर्णन नहीं है।

इस ग्रंथ में भरत को चित्रकूट जाने से रोकती हुई मन्थरा उनसे वहीं पर 'अक्षपात्र' राज्य करने की प्रार्थना करती है।[६] जिसका उल्लेख 'मानस' में नहीं है।

'मानस' के भरत-चित्रकूट-गमन प्रसंग में गुह[७] एवं लक्ष्मण[८] की शंका और उसके निवारण तथा भरद्वाज के सत्कार[९] का बड़ा ही रोचक और विस्तृत वर्णन किया गया है जो इस ग्रंथ में नहीं है।

इस काव्य मे सीता की गोद में राम के सो जाने पर जयन्त कौतुकवश सीता के स्तनों मे नखक्षत करता है तब उनके द्वारा जगाए जाने पर राम इषीका से उसे 'एकाक्ष' कर देते हैं।[१०] 'मानस' में राम के द्वारा सीता का पुष्प-शृं करने के पश्चात् जब जयन्त उनकी बल-परीक्षा के लिए सीता के चरणों में 'च प्रहार' करता है तब राम उस पर सींकबाण से प्रहार करते हैं—

'सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा ॥
सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा ॥
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना ॥ ३।१

जब उसको त्रिलोक में भी कोई रक्षक नहीं मिलता है तब वह नारद के उपदेश से

---

१ राघवीय ५।२७-३७
२ राघवीय ५।४७
३ मानस २।२५
४ मानस २।३९
५ राघवीय ५।७१-७५
६ राघवीय ६।३६-४०
७ मानस २।१८९-१९२
८ मानस २।२२७-२३०
९ मानस २।२१३-२१५
१० सुप्ते वनस्थले विजने सीताङ्के जातु राघवे ॥७॥
ततो वायसरूपेण जयन्तः प्राप्य कौतुकात् ।
विददार नखैः किञ्चिज्जानक्याः स्तनमण्डलम् ॥८॥
निद्रायितस्ततो रामस्तया प्रतिबोधितः ।
इषीकास्त्रेण दुर्दान्तमस्य काणीचकार तम् ॥९॥ राघवीय सप्तम सर्ग

राम की ही शरण में आ जाता है और राम उसे 'एकनयन' करके छोड़ देते हैं।[1]

इस ग्रंथ का विराध राम-लक्ष्मण के बीच से सीता को जब अकस्मात् छीन लेता है और उन दोनों पर आक्रमण करता है तब राम उसका वध करते हैं। मुक्त होने पर वह नव शरीर धारण करके 'तुम्बुरु गन्धर्व' के नाम से अपना परिचय देता है तथा राम से शरभंग-मिलन की याचना भी करता है।[2] 'मानस' के राम विराध को देखते ही मार डालते हैं और फिर उसे दुखी जानकर 'निज धाम' भेज देते हैं।[3] यहाँ उसके द्वारा 'सीता-हरण' अथवा 'शरभंग-मिलन' की प्रार्थना का कोई वर्णन नहीं है।

इस ग्रंथ के अगस्त्य मुनि राम से मिलने पर उनको धनुष, बाण, तुणीर और कवच प्रदान करते हैं[4] जिसका वर्णन मानस में नहीं है।

इस काव्य के राम शूर्पणखा को देखकर उसके सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन करते हुए उसका परिचय पूछते हैं[5] और फिर अपना परिचय देकर 'योग्य सेवा' का प्रश्न भी करते हैं।[6] वे उसकी काम प्रार्थना[7] को अस्वीकार करके लक्ष्मण का बड़ा सरस और शृंगारिक वर्णन करते हैं और उसे उनके पास भेज देते हैं।[8] इसमें शूर्पणखा के प्रलोभन भी बड़े मोहक और कामोद्दीपक हो गये हैं।[9] 'मानस' में यह प्रसंग बड़ा संयत और मर्यादित है।[10]

इसमें शूर्पणखा रावण से सीता के सर्वांग सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन करती हुई उसके काम को उद्दीप्त करती है और यह कहती है कि उसी के लिये 'सीता हरण' करने के प्रयत्न में उसका विरूपण हुआ है। इस प्रकार वह रावण पर अपना अहसान भी थोपना चाहती है।[11] 'मानस' की शूर्पणखा इस अवसर पर शृंगार के स्थान पर राजनैतिक कारणों को ही प्रमुखता देती है—

बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी॥
करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥
राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा। — ॥
संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा॥

---

१ मानस ३।१-२ २ राघवीय ७।४२–४७
३ ३।७ ४ " ७।६६
५ राघवीय, ८।१० १४
६ अहमस्मि राम इति दाशरथिर्वनकारणमेममपि मे गृहिणी।
किमितोऽभिवाञ्छसि विलासिनि मम तपोविरोधि यदि तत् क्रियते॥
राघवीय ८।१५
७ राघवीय ८।१६ २१ ८ राघवीय ८।२६–२८
९ " ८।३२–३८ १० मानस ३।१७
११ त्वदर्थमेनामपहर्तुं कामा रामानुजेनाहं विरूपिताहम्। राघवीय ९।२६

प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥ ४।२१

इस काव्य में हनुमान् राम को भगवान् पहिचान कर उनके चरणों में गिर पड़ते हैं और भक्ति का वरदान माँग लेते हैं ।[1] यह वर्णन 'मानस' के वर्णन से बहुत साम्य रखता है—

प्रभु पहिचान परेउ गहि चरना । ~ ~ ॥ ४।२

इसमें राम सुग्रीव को सूर्यपुत्र जानकर अपने सूर्यवंशी होने के नाते उसे भाई के समान ही मान लेते हैं ।[2] 'मानस' में इस भ्रातृता के स्थान पर मित्रता के ही सम्बन्ध का वर्णन है ।[3]

इस ग्रंथ के 'बालिवध' प्रसंग में बालि अपने हृदय में लगे हुए बाण में राम का नाम पढ़कर उन्हें पहचान लेता है और जब वह उनसे इस क्रूरता का कारण पूछता है [4] तब राम अनुज-वधू-हरण को उसका अपराध कहकर अन्याय को दण्ड देना भी अपना धर्म बतलाते हैं ।[4] 'मानस' के राम-बाण में कोई ऐसा नामांकन नहीं है और वहाँ राम उसके अभिमान को भी उसकी मृत्यु का एक अन्य कारण बतलाते हैं ।[6]

लंका में सीता की खोज करते हुए इस काव्य के हनुमान् रावण, कुंभकर्ण आदि के भवनों की तरह विभीषण के भवन की भी तलाशी लेते हैं ।[7] फिर निराश होकर वे यों ही 'अशोकवाटिका' में प्रवेश करते हैं, जहाँ उन्हें सीता के दर्शन सहसा हो जाते हैं ।[8] 'मानस' में वे विभीषण के संकेत से सीता-दर्शन के लिये ही अशोक-वाटिका पहुँचते हैं—

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई । चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ । बन असोक सीता रह जहवाँ ॥ ५।८

इस ग्रंथ की 'सीता रावण से वार्तालाप करते समय 'मानस' की सीता के समान[9] ही अपने मुख में तृण का प्रयोग करती हैं ।[10] इसमें रावण के दुर्वचनों से क्रुद्ध होकर हनुमान् उसे बराबर सतर्कता से देखते रहते हैं ।[11] 'मानस' में हनुमान् की

---

१ राघवीय १०।४८-४९
२ " १०।५५
३ मानस ४।४-७
४ " १०।७३-८४
५ राघवीय १०।८५
६ मानस ४।९
७ " १२।४९
८ यदृच्छयाप्य विपदशोककाननं सपल्लवस्तबक विकाशपाटलम् ॥६१॥
ततः स निकटे शिंशपायास्तरोरध निवसन्त्योऽवसर्पित तिम् ॥
विरहदग्धतनुं जानकीं दृष्ट्वाविमलनभसिमिता चन्द्रलेखामिव ॥राघवीय १३।६१
९ मानस ५।९
१० दशानने सा तृणमभिधायया अगाद इत्या तृणमन्तराये ॥ राघवीय १३।१५
११ राघवीय १३।१६

इस प्रतिक्रिया का कोई संकेत नहीं है ।

इस काव्य में हनुमान् को अपना 'रत्न' देती हुई सीता स्पष्ट कहती है कि यह केवल सुरक्षा के लिए नहीं है[1], जब कि 'मानस' में वह केवल प्रत्यभिज्ञान के लिए ही दिया जाता है—

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा । जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा ॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ । हरष समेत पवनसुत लयऊ ॥५।२७

'मानस' की तरह[2] इसमें भी सीता की प्रार्थना पर हनुमान् अपने विराट् रूप का प्रदर्शन करते हैं ।[3]

इसमें रावण की मन्त्रणा-परिषद् में कुम्भकर्ण सीताहरण को अनुचित बतला कर राम के साथ सन्धि करने का उससे आग्रह करता है और फिर सो जाता है ।[4] 'मानस' का कुम्भकर्ण जागने के बाद रावण से सीता-हरण' को अहितकर बतलाता है और उसको अभिमान त्याग करके 'राम भजन' करने का उपदेश भी देता है । फिर वह राम के दर्शनार्थ अकेला ही रणभूमि की ओर चल देता है ।[5]

इस ग्रन्थ में राम के प्रति पक्षपात दिखलाने के कारण विभीषण से अप्रसन्न होकर रावण उससे मुँह फेर लेता है ।[6] 'मानस' में इस अवसर पर उसके द्वारा विभीषण पर चरण प्रहार करने का उल्लेख है ।[7]

'सेतुबन्ध' प्रसंग में राम के बाण से आहत होकर इस काव्य का समुद्र उनके ईश्वरत्व का संकेत करके उनसे पूछता है कि यदि वे उसे अपने बाणों से जला देंगे तो फिर प्रलय काल में उनके लिये सोने की व्यवस्था कैसे हो सकेगी ।[8] मानस में भी इस अवसर पर राम के ईश्वरत्व का वर्णन है जहाँ समुद्र पंच तत्वों को ईश्वर द्वारा निर्मित और मर्यादित बतला कर अपनी मर्यादा की सुरक्षा भी चाहता है ।[9]

इस काव्य का सुग्रीव रावण के प्रथम दर्शन पर ही उछल कर मुष्टि प्रहार करता है और उसके मुकुट छीन कर राम को भेंट करता है ।[10] 'मानस' में सुग्रीव के इस साहस का वर्णन नहीं है ।

इसमें भी मेघनाद की बाण-वर्षा से राम आदि सबके निश्चेष्ट हो जाने

---

१ सत्यं च । न प्रत्ययबोधयेदं परम ममानुप्रहितं हनूमन् ।
मायासु तद्रूपककल्पनान्तरेण मा स्म प्रमाद्यत् स कदाचनेति ॥ राघवीय १३।६८
२ मानस ५।२७ ३ राघवीय १३।७१
४ राघवीय १५।२१-२६ ५ मानस ६।६२-६३
६ कपटस्मितकरमहो मुखं ते न खलु प्रस्यति राक्षसाभवीय ॥ राघवीय १५।७१
७ मानस ५।४१
८ यदि सर्वे भवनुभवता स्मरिष्यते पुष्पकादिवरमपि विस्मृतं कथम् ॥१३॥
राघवीय षोडश सर्ग ।
९ मानस ५।५६ १० राघवीय १७।२४-२६

पर[1] और दुबारा रावण की शक्ति से केवल लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर[2] हनुमान् 'ओषध-पर्वत' लाकर उनको स्वस्थ कर देते हैं। 'मानस' में केवल लक्ष्मण-मूर्च्छा के प्रसंग पर ही हिमाचल जाने का वर्णन है।[3]

'रावण-वध' के पूर्व इस ग्रन्थ में अगस्त्य मुनि के चुपचाप आने और राम को कुछ मन्त्र देकर चले जाने का उल्लेख है[4], जिसका 'मानस' में संकेत भी नहीं है।

'सीता-शुद्धि प्रसंग' में इसमें ब्रह्मा, इन्द्र, शिव सूर्य यम दशरथ आदि सभी प्रगट हो जाते हैं[5] फिर राम के ईश्वरत्व का वर्णन करते हुए ब्रह्मा उनसे 'सीता-ग्रहण' की सफल प्रार्थना करते हैं।[6] दशरथ उस समय राम, लक्ष्मण और सीता आलिंगन करते हैं और उन्हें आशीर्वाद भी देते हैं।[7] 'मानस' में 'अग्नि' की प्रार्थना पर ही सीता-ग्रहण' हो जाने के पश्चात् ब्रह्मादि देवता प्रगट होकर राम की स्तुति करते हैं। वहाँ दशरथ केवल आशीर्वाद देते हैं और राम को प्रणाम भी करते हैं —

अनुज सहित प्रभु बन्दन कीन्हा। आसिरबाद पिता तब दीन्हा ॥
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरषि गए सुरधामा ॥६।११२

'मानस' के समान ही[8] इसमें भी इन्द्र के प्रभाव से सब मृत वानरों के पुनरुज्जीवित हो जाने[9] विभीषण द्वारा पुष्पक से रत्न लुटाने[10] और सुग्रीवादि के अयोध्या में मनुष्य रूप धारण करने[11] का वर्णन किया गया है।

(८) रघुवंश—महाकवि कालिदास के इस विशाल महाकाव्य में 'दिलीप' से लेकर 'अग्निवर्ण' तक २९ रघुवंशी राजाओं का वर्णन है। १९ सर्गों के इसके विस्तार में १०वें सर्ग से लेकर १५वें सर्ग तक 'दशरथ-पुत्रेष्टि-यज्ञ' से लेकर 'राम

---

१ राघवीय १८।६४–६७ २ राघवीय १६।२२–३०

३ मानस ६।६१

४ तदनु गुहमगस्त्यमहामुनि कमपि मन्त्रमुपादिशदुत्तमम्।
यमभिगम्य विभु मुवरां बली विमविराममिवामृतदीधिति

राघवीय १६।४५

५ राघवीय २०।१–११ ६ राघवीय २०।१२–२१

७ तथास्तु वत्सेति स तत्क्षणं तं ससारमाश्लिष्य समं पितापी।
विश्लेषमात्मानमुचिरो नरेन्द्र समं विमानेन तिरोबभूव ॥२०।४९

८ मानस ६।११४ ९ राघवीय २०।५०

१० मानस ६।११७ मिलाइए राघवीय २०।५४

११ „ ७।८ „ „ २०।७१
ससमित्राऽतिरमणीयममुष्यवेश्मऽपास्तमापतुरगे कपिराजसौधे।
दिव्यमनुष्यमभिहृद्यरसामिरामा रामानुगी सरसमेत्य राघवानी ॥२०।७१

स्वर्गारोहण तक का समस्त कथानक है। इसके पूर्व ९वें सर्ग में दशरथ के पराक्रम, मृगया, मुनि पुत्र-वध और शाप प्राप्ति आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

कथानक की तुलनात्मक दृष्टि से इस काव्य में अनेक विशेषताएँ हैं—

इसमें रावण से त्रस्त देवगण क्षीर-सागर में विष्णु के समीप जाकर जब उनकी बड़ी स्तुति करते हैं तब वे उन सबके कष्टों से अपना परिचय बतला कर उनकी शान्ति के लिए 'रावण-वध' करने का निश्चय व्यक्त करते हैं।[1] 'मानस' में देवताओं को 'क्षीर-सागर' नहीं जाना पड़ता है, वे वहीं स्तुति करते हैं वहीं पर सर्वव्यापी भगवान् आकाश-वाणी से उन्हें सान्त्वना देते हैं।[2]

इसके 'चरु-वितरण' प्रसंग में कौसल्या और कैकयी को आधा-आधा मिल जाता है, फिर वे दोनों अपने-अपने भाग का आधा-आधा सुमित्रा को दे देती हैं।[3] इस प्रकार कौसल्या को १।४ भाग कैकयी को १।४ भाग और सुमित्रा को १।२ भाग मिल जाता है।[4] 'मानस' का वर्णन इससे भिन्न है।[5]

इसमें राम और लक्ष्मण तथा भरत और शत्रुघ्न के बचपन में ही दो 'युग्म' बन जाने का वर्णन है[6], जिसका उल्लेख 'मानस' में भी मिलता है—

बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी।
भरत सत्रुहन दूनउ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई ॥१।१९८

विश्वामित्र के द्वारा राम-लक्ष्मण के लिए याचना किए जाने पर इस काव्य के दशरथ अपने कुल-धर्म के कारण उनकी इच्छा-पूर्ति तुरन्त करते हैं।[7] 'मानस' में ऐसा वर्णन नहीं मिलता है।[8]

'मानस' के राम के समान ही[9] इस काव्य के राम 'ताटका-वध' में उसके स्त्रीत्व से हिचकिचाते नहीं हैं प्रत्युत एक बाण से उसको समाप्त कर देते हैं।[10] सुबाहु और मारीच के लिये 'मानस' के राम क्रमश: अग्निबाण और फलहीन बाण का प्रयोग करते हैं[11], जबकि 'रघुवंश' में क्षुरप्र और 'वायव्यास्त्र' से काम लेते हैं।[12]

इसमें 'मानस' की तरह सीता के 'पूर्व मिलन' और स्वयंवर' आदि का उल्लेख नहीं है, किन्तु विश्वामित्र के आग्रह पर जनक वह शिव-धनुष मंगाते हैं जो

१ रघुवंश १०।५-४८ २ मानस १।१८६-१८७
३-४ ,, १०।५४-५९ ५ ,, १।१९०
६ समानेऽपि हि सौभ्रात्रे यथोभौ रामलक्ष्मणौ।
तथा भरतशत्रुघ्नौ प्रीत्या द्वन्द्वं बभूवतुः ॥रघुवंश १०।८१
७ कृच्छ्रलब्धमपि लब्धवर्णभाक्तं दिदेश मुनये सलक्ष्मणम् ॥
अप्यसुप्रणयिनां रघोः कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता ॥११।२
८ मानस १।२०८ ९ मानस १।२०९ १० रघुवंश ११।१७
११ ,, १।२१० १२ ,, ११।२८-२९

राम के द्वारा अधिक खींचे जाने पर टूट जाता है।[१] राम के इस भक्ति-प्रदर्शन से प्रसन्न होकर ही जनक उन्हें सीता का समर्पण कर देते हैं।[२]

इस ग्रंथ में 'परशुराम-मिलन' अयोध्या के मार्ग में वर्णित हुआ है। यहाँ राम के द्वारा वैष्णव धनुष चढ़ा देने पर परशुराम उनके ईश्वरत्व के सम्बन्ध में अपना पूर्व ज्ञान व्यक्त करते हैं एवं अपने इस विवाद का कारण उनके दर्शन की इच्छा मात्र बतलाते हैं।[३] 'मानस' में यह विस्तार नहीं मिलता है।

'जयन्त प्रसंग' में इसमें सीता के अंक में राम के सोते समय जयन्त के द्वारा उन (सीता) के स्तनों में नखक्षत करने का वर्णन किया गया है[४] जो 'मानस' से भिन्न है।[५]

इसमें भी विराध के द्वारा 'सीता-हरण'[६] का उल्लेख है जो 'मानस' में नहीं है।[७]

इस काव्य के अनुसार 'खर-युद्ध' के समय खर की सेना में जितने राक्षस सम्मिलित होते हैं, राम भी संख्या में उतने ही रूप धारण कर लेते हैं।[८] किन्तु 'मानस' के अनुसार सभी राक्षस एक दूसरे को राम समझकर आपस में ही लड़कर मर जाते हैं—

सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्यो।
देखहिं परस्पर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मर्यो।। ३।२०

'मानस' के जटायु मरते समय 'हरि रूप' धारण करके राम की स्तुति करता है। राम उसे 'निजधाम' भेज देते हैं और उसकी यथोचित 'क्रिया' भी अपने हाथों से ही करते हैं।[९] किन्तु इस ग्रंथ में जटायु को आहत देखकर राम का 'पितृ शोक' नया हो जाता है और वे उसे पिता के तुल्य मानकर ही उसकी 'अग्नि क्रिया' करते हैं।[१०]

इसमें कबन्ध के उपदेश से राम सुग्रीव-मित्रता सम्पन्न होती है।[११] 'मानस'

---

१ भज्यमानमतिमात्रकर्षणात्तेन वज्रपरुषस्वनं धनुः ॥ ४६

२ दृष्टसारमथ रुद्रकार्मुके वीर्यशुल्कमभिनन्द्य मैथिलः ॥
राघवाय तनयामयोनिजां रूपिणीं श्रियमिव न्यवेदयत् ॥ ११।४७

३ रघुवंश ११।६४–८५

४ कदाचिदङ्के सीतायाः शिश्ये किंचिदिव श्रमात् ॥ १२।२१
ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः ॥ १२।२२

५ मानस। ३।१–२ ७ मानस ३।७

६ रघुवंश १२।२८–३०

८ एको दाशरथिः कामं यातुधानाः सहस्रशः ॥
ते तु यावन्त एवाजौ तावांश्च ददृशे स तैः ॥ १२।४५ १० रघुवंश १२।५६

९ मानस ३।३२

[illegible] ॥

में इसके लिए शबरी की प्रेरणा का उल्लेख है ।[1]

'मानस' के समान ही[2] इस काव्य के राम की शरण की कृपा से ही माप पाप से मुक्ति प्राप्त होती है, किन्तु इसमें लक्ष्मण के भी पार्षद होने का उल्लेख है,[3] जो 'मानस' में नहीं है ।

इस ग्रंथ में 'रावण-वध' के लिये राम 'ब्रह्मास्त्र' का ही संधान करते हैं[4] जबकि 'मानस' में वे इस अवसर पर इकतीस बाणों का प्रयोग करके उसके नाभि कुंड, सिरों और भुजाओं को लक्ष्य बनाते हैं । कार्यसिद्धि के बाद वे सभी बाण उनके तूणीर में वापस भी आते हैं ।[5]

लंका से अयोध्या तक 'राम-यात्रा' का वर्णन 'मानस' में अति संक्षिप्त है[6] किन्तु इसमें उसे बहुत विस्तार दिया गया है ।[7]

इसमें अयोध्या पहुँचने पर सभी वानर-सेनापतियों के द्वारा मनुष्य-रूप धारण करके हाथियों पर सवार होकर घूमने का वर्णन किया गया है ।[8] 'मानस' में विभीषण और जाम्बवान् के भी 'रूप-परिवर्तन' का उल्लेख मिलता है ।

लंकापति कपीस नल नीला । जामवंत अंगद सुभसीला ॥
हनुमदादि सब बानर बीरा । धरे मनोहर मनुज सरीरा ॥ ७।८

इस काव्य के राम अपने अभिषेक के १५ दिन के पश्चात् ही सीता के द्वारा स्वयं लाई हुई 'पूजा-सामग्री से विभीषण और सुग्रीव का सत्कार करके उनको विदा कर देते हैं ।[9] 'मानस' में १५ दिन के स्थान पर ६ मास का उल्लेख है और वहाँ राम भरत के द्वारा स्वयं बनाए गए वस्त्रों को सर्वप्रथम सुग्रीव को पहनाते हैं फिर उनकी आज्ञा से लक्ष्मण विभीषण को वैसे ही वस्त्र पहनाते हैं । तत्पश्चात् राम अन्य साथियों को भी इसी तरह वस्त्र पहनवा कर ही विदा करते हैं ।[10]

इस ग्रंथ में १४वें सर्ग के २५वें श्लोक से लेकर १५वें सर्ग के अन्तिम श्लोक तक 'सीतापवाद' से लेकर 'राम-स्वर्गारोहण' तक की कथा का विस्तृत वर्णन किया गया है, जो मानस में नहीं है ।

मुमूर्च्छ सख्यं रामस्य समानव्यसने हरौ ॥ १२।५७

१ मानस ३।३६ २ मानस ६।७४

३ रघुवंश १२।७६ ४ रघुवंश १२।९७

५ मानस ६।१०३ ६ मानस ६।११९–१२१

७ रघुवंश १३।१–७०

८ रापाश्रया हरिचमूपतयस्तदानीं कृत्वा मनुष्यवपुरारुरुहुर्गजेन्द्रान् ॥१३।७४

९ प्रतिप्रयातेषु तपोधनेषु सुखादविज्ञातगतार्धमासान् ॥
सीतास्वहस्तोपहृताग्र्यपूजान् रक्षःकपीन्द्रान्विससर्ज रामः ॥१४।१९

१० मानस ७।१५–१७

(६) दशावतार चरित—क्षेमेन्द्र के इस महाकाव्य में विष्णु के दस अवतारों का बड़ा सरल और रोचक वर्णन मिलता है। इस ग्रंथ के 'रामावतार' नामक सप्तम सर्ग में लगभग १०० श्लोकों में 'रावण-जन्म' से लेकर 'राम-स्वर्गारोहण' तक समस्त राम-कथा को समाहित करने का प्रयत्न किया गया है। रावण के जन्म और पराक्रम के वर्णन के ठीक पश्चात् ही सूर्पणखा रावण संवाद है, जिसमें राम आदि के पंचवटी प्रवास, सूर्पणखा के विरूपण और 'खर-दूषण-वध' आदि का संकेत है। यहां 'राम-जन्म' से लेकर सूर्पणखा-मिलन' तक की कथा का उल्लेख 'रावण-मारीच संवाद' के अन्तर्गत किया गया है।

इस ग्रन्थ में कथानक की दृष्टि से निम्नलिखित विशेषतायें मिलती हैं—

इसमें पुष्पोत्कटा राक्षसी और विश्रवा मुनि के संयोग से रावण के जन्म का उल्लेख है,[1] जो 'मानस' नहीं है।

इस काव्य का नलकूबर अपनी पत्नी रम्भा पर किये गये रावण के बलात्कार से क्षुब्ध होकर उसे शाप देता है कि भविष्य में यदि वह 'अकामा' स्त्री से कभी संभोग करेगा तो उसकी तुरन्त मृत्यु हो जायेगी।[2] 'मानस' में नलकूबर शाप का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। इसी ग्रंथ में रावण के द्वारा कुश की पुत्री वेदवती पर भी बलात्कार करने का वर्णन किया गया है जिससे क्रुद्ध होकर वह राक्षसों के नाश का निश्चय व्यक्त करती है[3] और वही अगले जन्म में एक दिव्य पद्म कन्या के रूप में एक सरोवर के पास प्रकट होती है। रावण उसे अनाथ समझ कर मन्दोदरी को दे देता है जो उसे पुत्रीवत पालती है किन्तु नारद के वचन से उसे भविष्य में रावण की 'काम्या' जानकर मन्दोदरी उसे एक स्वर्ण-मंजूषा में रख कर समुद्र में बहा देती है। अन्त में जनक उसे प्राप्त करते हैं और वह सीता के नाम से प्रसिद्ध होती है।[4] मानस में न तो सीता के जन्म का ही वर्णन है और न उसके किसी पूर्व जन्म का ही संकेत है।

इस ग्रंथ का मारीच रावण के समक्ष राम के पराक्रमों का वर्णन करता हुआ उनके जन्म से लेकर वन प्रवास तक की कथा कहता है। वह राम नाम से स्वयं को इतना भयभीत बतलाता है कि समान ध्वनि वाले 'रत्न' 'रथ' आदि शब्दों से भी उसे कोई सुख नहीं मिलता है।[5] वह रावण से स्पष्ट कह देता है कि उसकी बात मानने या न मानने की दोनों अवस्थाओं में उसकी (मारीच की) मृत्यु निश्चित है।[6] 'मानस' में इस स्पष्टोक्ति के स्थान पर वह केवल अनुमान करता है कि दोनों प्रकार के मरणों में राम के हाथों से 'मरण' अच्छा है।[7]

१ दशावतार चरित ७।१–२ २ दशावतार चरित ७।२१–११
३ " ७।४६–६७ ४ " ७।६६–१०४
५ वृक्षेष्वपि बाणाहतमथ क्रियमिषा राघवनामाङ्कितेषु
रकारादि शब्देष्वपि भयसम्भ्रमाय मयाधिमिषु स्थितेषु ॥ ७।१२४
६ दशावतार चरित ७।१३० ७ मानस ३।२५

इस काव्य में रावण का एक दूत 'सुकेतु' उसको 'सीता-हरण' के पश्चात् जटायु-मरण से लेकर 'लंकादाह' तक का समस्त वृत्तान्त संक्षेप में सुनाता है।[1] 'मानस' में यह सुकेतु-वर्णन' नहीं है, यद्यपि सारी घटनाएं समान घटती हैं।

इसमें 'हनुमान् समुद्र-लंघन' प्रसंग में पहले 'सिंहिका-वध' है फिर 'मैनाक-मिलन' है[2] और 'सुरसा-वृत्त' बिल्कुल नहीं है। 'मानस' के इस प्रसंग में मैनाक, सुरसा और 'सिंहिका' का क्रम है।[3]

'हनुमान्-सीता-मिलन' में इस ग्रंथ में न तो राम की 'मुद्रिका' का उल्लेख है और न सीता के चूड़ामणि का ही संकेत है।[4]

'विभीषण-निष्कासन-प्रसंग' में इस ग्रंथ के विभीषण के सदुपदेश से क्रुद्ध होकर रावण उसे खड्ग से धमकाता है चरण से प्रहार करता है और मंत्रियों से बाहर निकलवा देता है।[5] 'मानस' में केवल चरण प्रहार का ही वर्णन है।[6]

इसमें रावण का एक अन्य दूत उसको विभीषण-शरणागति से लेकर 'लंका-युद्ध' के आरम्भ होने तक का वृत्तान्त बतलाता है और फिर 'विद्युन्मुख' नाम का एक प्रतीहारपति उससे 'मेघनाद नाग-पाश' एवं 'प्रहस्त-धूम्राक्ष-महोदरादि-वध' की कथा का वर्णन करता है।[7] 'मानस' में इन दूतों की योजना का कोई संकेत नहीं है।

इस काव्य का कुम्भकर्ण रावण को समझाता हुआ राम की अपारशक्ति का वर्णन करता है और 'विभीषण निष्कासन' को सर्वथा अनुचित बतलाता है।[8] 'मानस' में वह राम के ईश्वरत्व और नारद के उपदेश का भी संकेत करता है—

कीन्हेहु प्रभु बिरोध तेहि देवक। सिव बिरंचि सुर जाके सेवक॥
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरबहा॥ ६।६३

यहाँ रावण उसके उपदेश के लिये उसको फटकारता है तब वह 'भक्तिम्यतावश' युद्ध के लिये प्रस्थान करता है।[9] 'मानस' में वह स्वेच्छा से ही राम के दर्शनार्थ युद्ध भूमि में जाता है और फिर कालवश होकर युद्ध करने लगता है।[10]

मेघनाद की बाण-वर्षा से इसमें जाम्बवान् और हनुमान् को छोड़कर सब लोग आहत एवं अचेत हो जाते हैं। फिर जाम्बवान् के आदेश से हनुमान १००

---

१ दशावतार चरित ७।१८२-१८३ २ दशावतार चरित ७।१८९ १९०
३ मानस ५।१-३ ४ ,, ७।१९१
५ आहत्य खड्ग चरणोऽथमेन स्वपादयमभिविकृति दशास्य ॥ २०४
स वैविभीषणा सितसर्वलोकैर्निष्कासित सज्जनसंमयार्थी ॥ ७।२०५
६ मानस ५।४१ ७ दशावतार चरित ७।२०६-२२२
८ स दीर्घदर्शी हितकृन्मनीषी विभीषण कि मवता निरस्त
मन्त्रायमर्ह प्रथमं निहत्य पश्चादिदं भक्षितमप्रमेयम् ॥ ७।२२७
९ दशावतार चरित ७।२१०-२११ १० मानस ६।६३-६४

योजन से 'औषध-पर्वत' लाते हैं जिसकी सुगन्धि-मात्र से सब लोग स्वस्थ हो जाते हैं।[1] 'मानस' में केवल लक्ष्मण-मूर्च्छा के प्रसंग में औषध-पर्वत' लाने का वर्णन है।[2]

इसमें मेघनाद-वध से क्षुब्ध रावण आत्महत्या का विचार करता है।[3] किन्तु 'मानस' में वह अपने ज्ञानोपदेश से दूसरों को भी स्वस्थ करता है।

दो०—तब दसकण्ठ बिबिध बिधि समुझाईं सब नारि।
नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयं बिचारि ॥६।७७

इसमें 'सीता शुद्धि' से लेकर राम के अयोध्या-आगमन और अभिषेक तक का केवल दो श्लोकों में ही बड़ा संक्षिप्त वर्णन है।[4] 'मानस' में इस प्रसंग को पर्याप्त विस्तार और रोचकता मिली है।[5]

इस ग्रंथ में 'रामाभिषेक' के पश्चात् 'सीतापवाद' से लेकर 'राम-स्वर्गारोहण' तक का भी विस्तृत वर्णन किया गया है[6] जो मानस' में नहीं मिलता है।

(१०) नारायणीय—इस काव्य के लेखक नारायण भट्ट हैं। इसके प्रथम स्कन्ध के *द्वितीय और तृतीय* दशक में कुल २० श्लोकों में *'राम-जन्म'* से लेकर *'राम* स्वर्गारोहण' तक की समस्त कथा का अति संक्षेप में वर्णन मिलता है।[7] प्रथम दशक में 'राम-जन्म' से लेकर 'सीता-हरण' तक का वृत्तान्त है और दूसरे में सुग्रीव-मैत्री से लेकर राम मृत्यु तक का वर्णन है। कथावस्तु की दृष्टि से इसमें कोई विशेषता नहीं है।

२—नाटक

यह तो अन्यत्र कहा ही जा चुका है कि राम-कथा ने साहित्य की अनेक विधाओं को आकृष्ट किया। वह जिस प्रकार 'श्रव्य काव्य' का आधार बनी उसी प्रकार 'दृश्य काव्य' में भी सादर गृहीत हुई। भारतीय नाटक-कारों ने इस कथा का उपयोग अपने-अपने ढंग और लक्ष्य के अनुरूप किया। तत्कालीन युग चेतना और नाटकीयता के समावेश के आग्रह के कारण इसमें अनेक परिवर्तन और परिवर्धन भी हुए।

राम-कथा से सम्बद्ध संस्कृत के नाटकों की एक सुदीर्घ परम्परा है, जिसमें प्रतिमा, अभिषेक महावीर चरित उत्तर-राम चरित, कुन्दमाला, अनर्घ राघव,

---

१ दशावतार चरित ७।२१८–२१९ २ मानस ६।५४–५५ ५८–६२

३ ७।२४७

४ पतिव्रतां तां स्वयमेव शोध्यामारोप्य रामाय ददौ हुताशः।
स लोकपालस्तुतपौरुषस्तां प्राप्य लक्ष्मीं प्रययावयोध्याम् ॥
तत्र प्रयातैर्भरतेन पूर्णाम्भःसिक्ताभिषेकाधिकपादपद्मः।
सुग्रीवलङ्काधिपतिश्रियामान्तः स प्राप राज्यं चिरकाङ्क्षितः ॥७॥२५९–२६०।

५ मानस ६।१०८–१२१ ७।१–११ ६ दशावतार चरित ७।२६१–२९३

७ नारायणीय ६।११–३०

प्रसन्न-राघव, बाल रामायण, हनुमन्नाटक महानाटक, आश्चर्य चूड़ामणि अद्भुत-दर्पण, मैथिली-कल्याण, उन्मत्त राघव, दूतांगद आदि नाटक विशेष उल्लेखनीय हैं।

(१) प्रतिमा—महाकवि भास के दो नाटक 'प्रतिमा' और 'अभिषेक' राम कथा पर आधारित हैं। सात अंकों के 'प्रतिमा' नाटक में 'राम-वनवास' से लेकर 'रावण-वध', जनस्थान में ही 'रामाभिषेक', फिर पुष्पक द्वारा राम आदि सब लोगों के 'अयोध्या-आगमन' तक की घटनाओं का वर्णन है। इसके नामकरण का आधार एक 'प्रतिमागृह' है जिसमें अयोध्या के मृत राजाओं की प्रतिमायें स्थापित की जाती हैं। मातुल-गृह से लौटते समय भरत इसी 'प्रतिमागृह' में दशरथ की भी प्रतिमा देख कर उसके 'देवकुलिक' (पुजारी) से 'दशरथ-मरण' का सारा विवरण जान लेते हैं।

कथा-वस्तु की दृष्टि से इस नाटक में अनेक विशेषतायें हैं—

इसमें राम के 'यौवराज्याभिषेक' के अवसर पर ही कैकयी से प्रेरित होकर मन्थरा दशरथ के कान में कुछ कह देती है जिससे उसमें विघ्न पड़ जाता है।[1] 'मानस' में मन्थरा से प्रेरित कैकयी दशरथ से विधिवत् वरयाचना करती है।[2]

इसमें 'रामाभिषेक' के स्थगित हो जाने के कारण लक्ष्मण कैकयी से इतने क्रुद्ध हो जाते हैं कि वे समस्त संसार को 'स्त्री-रहित' कर देने के निश्चय से धनुष बाण ग्रहण कर लेते हैं।[3] 'मानस' में यह वर्णन नहीं है।

इस नाटक के 'वन-गमन' प्रसंग में साथ जाने के लिये सीता के आग्रह करने पर राम जब लक्ष्मण से अनुरोध करते हैं कि वे उन्हें रोक दें तब वे सीता का ही पक्ष ग्रहण करते हैं।[4] किन्तु वहीं पर लक्ष्मण के आग्रह करने पर जब राम सीता से उन्हें रोकने के लिए कहते हैं, तब वे उनका पक्ष नहीं लेती हैं।[5] 'मानस' में इस प्रकार का सम्वाद नहीं है।

इसमें दशरथ के उन्माद और प्रलाप का बड़ा करुण और विस्तृत वर्णन है।[6] वहाँ मृत्यु के समय दशरथ को दिलीप आदि पितरों के दर्शन भी होते हैं।[7] जिसका वर्णन मानस में नहीं है।

इसमें केवल भरत ही 'मातुलगृह' जाते हैं और शत्रुघ्न अयोध्या में ही रहते हैं[8] जबकि मानस में दोनों ही वहाँ जाते हैं।[9] इसमें मातुलगृह से लौटते

---

१ प्रतिमा १।७, १३ के बाद   २ मानस २।२६

३ अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ॥१॥१८

४ प्रतिमा १।२५   ५ प्रतिमा १।२७

६ „ २।१, ३ १२ १४ १६ १८ २०

७ अयममरपते सखा दिलीपो रघुरयमत्रभवानज पिता मे।
किमभिगमनकारणं भवद्भिर्म सह वसने समयो ममापि तत्र ॥२।२१

८ प्रतिमा ३।४ के बाद   ९ मानस २।१५७

समय पूर्वोक्त 'प्रतिमागृह' में दशरथ की प्रतिमा देख कर और देवकुलिक से सारा वृत्तान्त जानकर जब भरत मूर्च्छित हो जाते हैं[1] तब सुमन्त्र के साथ कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा भी अकस्मात् वहीं पहुँच जाती हैं। वहाँ सचेत होने पर भरत कैकेयी को बहुत धिक्कारते हैं।[2] 'मानस' में यह योजना नहीं है।

इस नाटक में चित्रकूट में राम से मिलने के लिए भरत के साथ केवल सुमन्त्र और सूत जाते हैं[3] किन्तु मानस में पूरा परिवार और अधिकांश प्रजा भी उनके साथ जाती है।

इसमें भरत लक्ष्मण से छोटे हैं इसलिए वे उनका यथोचित अभिवादन करते हैं और लक्ष्मण उन्हें आशीर्वाद भी देते हैं[4] जो 'मानस' तथा 'राम-कथा' की समस्त परम्परा से भिन्न है।

इसमें राम और भरत में इतना रूप-सादृश्य वर्णित किया गया है कि स्वयं लक्ष्मण भरत को पहचानने में भ्रम कर जाते हैं और सुमन्त्र से उनका परिचय पूछते हैं।[5] वहाँ सीता भी राम के साथ भरत के स्वर-सादृश्य का उल्लेख करती हैं।[6]

इस नाटक में दशरथ के वार्षिक-श्राद्ध के एक दिन पूर्व राम और सीता जब उसी के सम्बन्ध में विचार करते हैं, तब रावण परिव्राजक के भेष में आकर राम से भिन्न-भिन्न शास्त्रों का उल्लेख करता है और 'प्राचेतस श्राद्ध-कल्प' के आधार पर वह हिमालय के 'कांचनपार्श्व मृग' से श्राद्ध करने के लिए उनको परामर्श देता है।[7] उसी समय मारीच वैसा ही मृग बन कर राम के सामने आ जाता है और रावण उसकी ओर संकेत करता है। वहाँ राम उस मृग के वध के लिये लक्ष्मण को भेजना चाहते हैं[8] किन्तु कुलपति के दर्शन के लिए उनके पहले ही चले जाने के कारण वे स्वयं जाते हैं और सीता को रावण के सत्कार के लिए नियुक्त कर जाते हैं।[9] 'मानस' में न तो यह श्राद्ध-चर्चा है और न रावण को ही ऐसा शास्त्रज्ञ बतलाया गया है।

इस नाटक के सुमन्त्र 'जनस्थान' से लौटकर 'सीता-हरण' का वृत्तान्त जब भरत को बतलाते हैं[10] तब वे क्षुब्ध होकर कैकेयी को यह समाचार देते हैं और

---

१ प्रतिमा ३।८—११   २ प्रतिमा ३।१६—२२

३ ,, ४।१   ४ ,, ४।७ के बाद, ४।१०

५ लक्ष्मण—(विलोक्य) अये अयमार्यो रामः । न न । रूपसादृश्यम् ।
(सुमन्त्रं वीक्ष्य ।) तात । कोऽयमत्रभवान् । (प्रतिमा ४।८ के बाद)

६ सीता—(ससम्भ्रमम् ।) णहि अय्य एव्व । सरजोओ वि सो एव्व ।४।१४ के बाद

७ प्रतिमा ५।१०   ८ प्रतिमा ५।११

९ राम—तेन हि अहमेव यास्यामि ।
सीता—अय्यउत्त । अहं कि करिस्सं ।
राम—शुश्रूषयस्व भगवन्तम् । (प्रतिमा ५।११ के बाद)

१० प्रतिमा ६।११

उसे धिक्कारते हैं।[1] इस पर कैकयी 'वनवास'[2] का उल्लेख करके अपने को निर्दोष बतलाती हुई जब उनसे कहती है कि उसने वसिष्ठ आदि की अनुमति से 'शाप' के परिहार के लिए राम का केवल १४ दिन का वनवास चाहा था, किन्तु भूल से मुँह से १४ वर्ष निकल गया[3], तब भरत उसे सर्वथा निर्दोष कह कर क्षमा माँग लेते हैं।[4] 'मानस' में भरत और कैकयी का ऐसा सम्वाद नहीं प्राप्त होता है।

इस नाटक के अनुसार सीता-हरण का समाचार सुनकर भरत राम की सहायता के लिए अपनी विशाल सेना को साथ लेकर जब तक 'जनस्थान' तक पहुँचते हैं[5], तब तक रावण को मार कर और सीता को साथ लेकर राम भी वहीं आ जाते हैं।[6] उसी समय वहीं पर वसिष्ठ और वामदेव अभिषेक-सामग्री लेकर राम का अभिषेक कर देते हैं।[7] तत्पश्चात् पुष्पक विमान द्वारा सब लोग अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं।[8] । मानस' में यह विस्तार नहीं मिलता है।

(२) अभिषेक—भास के इस नाटक में 'बालिवध' से लेकर 'रामाभिषेक' तक का कथानक छः अंकों में नियोजित किया गया है। इसकी कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं—

इसमें सुग्रीव की ललकार से क्रुद्ध बालि जब उससे द्वन्द्वयुद्ध करने के लिये प्रस्थान करता है तब उसकी पत्नी तारा उसे मन्त्रियों से परामर्श कर लेने की प्रार्थना करती है[9] किन्तु 'मानस' की तारा 'राम-सुग्रीव-मित्रता' का स्पष्ट उल्लेख करके उसे रोकती है।[10]

इसमें 'बालिवध' प्रसंग में अपने हृदय में लगे हुए बाण में राम का नाम पढ़ कर बालि उनसे अपने निरपराध वध का कारण पूछता है।[11] राम के द्वारा 'भ्रातृवधू-गमन'[12] कहे जाने पर वह उसे अपना कुल धर्म बतलाता है तथा उसके अधर्म होने पर वह सुग्रीव को भी समान अपराधी कहता है।[13] उस समय राम केवल 'अनुजवधू-गमन' को ही अधर्म बतलाते हैं।[14] 'मानस' के राम भगिनि, पुत्र वधू और कन्या को भी इसी कोटि में रखते हैं—

---

१ प्रतिमा ६।११ २ प्रतिमा ६।१५

३ कैकेयी—जाद। पुत्तअ विसह त्ति भणुकामाए पय्याउलहिअआए चउद्दह वरिसाणि त्ति उत्तं। (प्रतिमा ६।१५ के बाद)

४ प्रतिमा ६।१५ के बाद ५ प्रतिमा ७।५–६

६ „ ७।२ ७ „ ७।१०

८ „ ७।१४ ९ अभिषेक १।९ के बाद

१० मानस ४।७ ११ अभिषेक १।१७–१८

१२ अभिषेक १।२० १३ „ १।२१

१४ राम न खैव हि कदाचिदगम्येष्वस्य भवीयसो दाराभिमर्शनम्।(१।२१ के बाद)

अनुज बधू भगिनी सुत नारी । सुनु सठ कन्या सम ए चारी ॥४।९॥

इसमें बालि, को मरते समय गंगा आदि महानदियों, उर्वशी आदि अप्सराओं और काल के हंसयुक्त विमान के दर्शन प्राप्त होने का भी वर्णन किया गया है[1], जो 'मानस' में नहीं है ।[2]

इस नाटक के हनुमान् सीता के प्रति रावण के त्रास को देखकर क्रुद्ध होते हैं और राम की कार्य-सिद्धि के लिए उस पर आक्रमण भी करना चाहते हैं, किन्तु अपनी मृत्यु की आशंका करके वे रुक जाते हैं ।[3] 'मानस' में यह विस्तार नहीं मिलता है ।

इस नाटक में 'हनुमान-निग्रह' के अवसर पर जब विभीषण हनुमान् के सामने ही रावण को समझाते हुए, सीता को वापस करने का आग्रह करता है[4] तब रावण उसे सान्त्वना देता है[5] और 'दूत-वध' को स्वयमेव अनुचित बतला कर हनुमान् की पूंछ में आग लगाने की आज्ञा देता है ।[6] मानस' में स्वयं विभीषण दूतवध को अनुचित बतलाता है और अन्य दण्ड की व्यवस्था की प्रार्थना करता है ।[7]

इस नाटक में विभीषण के उपदेश से क्रुद्ध होकर रावण उस पर चरण प्रहार नहीं करता है, किन्तु उसे दरबार से निकाल देने की आज्ञा देता है । तब विभीषण स्वयं ही बाहर चला जाता है ।[8]

इसमें विभीषण-शरणागति प्रसंग' में सुग्रीव के विरोध करने पर भी राम हनुमान् के आग्रह से विभीषण को स्वीकार कर लेते हैं ।[9] 'मानस' के हनुमान् इस अवसर पर मौन रहते हैं । वहाँ राम अपनी 'शरणागत-वत्सलता' के कारण ही उसे ग्रहण करते हैं—

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी । मम पन सरनागत भयहारी ॥५।४३॥

इस नाटक का विभीषण समुद्र के मार्ग न देने की अवस्था में समुद्र पर बाण प्रयोग के लिये राम को परामर्श देता है ।[10] मानस का विभीषण समुद्र को राम का कुलगुरु बतलाकर उसकी उपासना की प्रार्थना करता है ।[11]

इसमें समुद्र पर 'सेतु-बन्ध' की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है, क्योंकि वह बीच से ही दो भाग में विभक्त हो जाता है[12] और स्थल मार्ग निकल आता है ।

इस नाटक में रावण सीता को राम-लक्ष्मण के नकली कटे हुए सिरों को

---

१ अभिषेक १।२६ के बाद
२ मानस ४।१०
३ अभिषेक २।१६
४ अभिषेक ३।१६
५ ,, ३।२०
६ ,, ३।२१ के बाद
७ मानस ५।२४
८ अभिषेक ३।२२-२६
९ हनुमान्—देवे यथा वयं भक्तास्तथा मन्ये विभीषणम् ।
भ्राता विवदमानोऽपि दृष्टः पूर्वं पुरे मया ॥ ४।१०
१० अभिषेक ४।११ के बाद
११ मानस ५।५०
१२ विभीषण—देव । साम्प्रतं द्विधाभूत इव दृश्यते जलनिधिः ॥ (४।१६ के बाद)

छिपाकर जब उनको आलंकित करना चाहता है तब उसी समय लक्ष्मण द्वारा मेघनाद-वध किये जाने की घोषणा से उसका यह षड्यंत्र स्वयं समाप्त हो जाता है।[1] 'मानस' में इस प्रसंग का उल्लेख नहीं मिलता है। यहाँ मेघनाद-वध के इस समाचार से क्षुब्ध होकर रावण उन्मत्त हो जाता है और वह कभी आत्महत्या का विचार करता है[2] और कभी सीता की हत्या का निश्चय करता है,[3] किन्तु उसका एक मन्त्री 'स्त्री-वध' को अनुचित बतला कर उसे रोक लेता है। 'मानस' का रावण इस अवसर पर अपना संतुलन नहीं खोता है। प्रत्युत जगत की नश्वरता का उपदेश देकर दूसरों को भी स्वस्थ करता है।[4]

इसमें राम जिस ब्रह्मास्त्र से रावण का वध करते हैं वह पुन उन्हीं के समीप आ जाता है।[5] 'मानस' में भी इस कार्य के लिये प्रयुक्त राम के इकतीसों बाण उनके तूणीर में लौट जाते हैं—

मंदोदरि आगें भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा।
प्रविसे सब निषंग महुँ जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई॥ ६।१०२

इस नाटक में 'सीता-शुद्धि' के तुरन्त पश्चात् ही अग्निदेव राम का वहीं लंका में स्वयं अभिषेक भी कर देते हैं[6] और वहीं पर 'महेन्द्र के नियोग' से भरत तथा शत्रुघ्न के साथ अयोध्या की प्रजा भी उपस्थित हो जाती है।[7] 'मानस' का वर्णन इससे सर्वथा भिन्न है। यहाँ राम के अयोध्या लौटने पर गुरु वशिष्ठ के हाथों से उनका अभिषेक सम्पन्न होता है।[8]

(२) महावीर चरित—राम-कथा से सम्बन्ध रखने वाले भवभूति के दो नाटक हैं—'महावीर-चरित' और 'उत्तर राम चरित'। 'महावीर चरित' के सात अंकों में राम के 'विश्वामित्र-आश्रम-गमन' से लेकर 'अभिषेक' तक का कथानक है। इस नाटक के वस्तु-विन्यास में अनेक नवीनतायें दृष्टिगोचर होती हैं।

इसमें विश्वामित्र के आश्रम में ही सीता और उर्मिला के साथ जनक के भाई राजा कुशध्वज पहुँच जाते हैं। वहीं उनके साथ राम-लक्ष्मण का परिचय होता है।[9] वहीं पर उनके सामने राम-ताटका-वध[10] करते हैं। उनके द्वारा 'अहल्योद्धार' की सूचना यहाँ 'नेपथ्य' से मिलती है।[11] वहीं विश्वामित्र के ध्यान-मात्र से वहीं दिव

१ अभिषेक ५।८-११
२ अभिषेक ५।१३-१४
३ अभिषेक ५।१९ के बाद
४ मानस ६।७७-७९
५ रघुवरभुज वेगविप्रमुक्तं ज्वलन दिवाकरतुल्यदीप्यमानम्।
रजनिचरवरं निहत्य संख्ये पुनरभिगच्छति राघवेण धीमम्॥ ६।१७
६ अभिषेक ६।११ के बाद
७ अभिषेक ६।१४ के बाद
८ मानस ७।१२
९ महावीर चरित १।१९-२१
१० महावीर चरित १।३९
११ महावीर चरित १।३५ के बाद

इसमें कबन्ध के आक्रमण से शबरी की रक्षा करते हुये[1] लक्ष्मण उससे विभीषण का एक पत्र प्राप्त करते हैं[2] जिससे ज्ञात होता है कि वह रावण को त्याग कर ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव और हनुमान के साथ ठहरा हुआ राम की प्रतीक्षा कर रहा है। यहाँ कबन्ध भी दिव्य देह धारण करके राम से अपने शाप और उसकी मुक्ति[3] का वर्णन करता है जो 'मानस' के वर्णन के समान है।[4] यहीं वह रावण और बालि की मित्रता का संकेत करके उनसे सावधान रहने की प्रार्थना भी राम से करता है।[5] 'मानस' में यह घटना नहीं मिलती है।

इसमें राम से बालि का सीधा युद्ध होता है[6] जिसमें उनका बाण बालि के शरीर दुन्दुभि-कंकाल सप्त ताल तथा अन्य पर्वत आदि को एक साथ भेद करके फिर उन्हीं की तूणीर में प्रविष्ट हो जाता है।[7] 'मानस' में बालि से सुग्रीव के ही युद्ध का वर्णन है, और वहाँ राम 'बालि-वध' के पूर्व सुग्रीव की प्रार्थना पर दुन्दुभि-कंकाल तथा सप्त ताल आदि का विनाश करके उसे अपने बल का विश्वास दिलाते हैं—

दुन्दुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती॥४।७

इस नाटक में बालि अपने मरण के समय राम और सुग्रीव की 'अभिलाषी' मित्रता सम्पन्न करता है[8] और विभीषण को लंका का राज्य देने के लिए राम से प्रार्थना करता है[9] जिसका वर्णन 'मानस' में नहीं है।

इसमें इन्द्र और गंधर्वराज चित्ररथ अपने-अपने रथों पर बैठे हुये आकाश से 'राम रावण-युद्ध' देख कर उसका वर्णन करते हैं। वहाँ राम को रथहीन देख कर इन्द्र चित्ररथ के रथ पर बैठ जाते हैं और अपना रथ राम के समीप भेज देते हैं।[10] 'मानस' के वर्णन में चित्ररथ का उल्लेख नहीं है।[11]

इस नाटक का रावण कुम्भकर्ण और मेघनाद के साथ ही युद्ध में प्रवेश करता है।[12] कुम्भकर्ण के वध[13] के पश्चात् वहाँ राम के ब्रह्मास्त्र से रावण

---

१ महावीर चरित ५।२७ २ महावीर चरित ५।३०

३ ५।३४ ४ मानस ३।३३

५ दनु—प्रार्थ्य मारुतवता धामी मुष्यवाते नियुज्यते।
तेनापि राक्षसे वैभीमनुकम्प्यास्युपेयते ॥५।३२

६ महावीर चरित ५।४९-५३

७ यथा—एष बालिकायदुन्दुभिकरंकसप्ततालगिरिगहीतसाम्यबाणं
रामतूणीरमधिवसति शरः। (५।५४ के बाद)

८ महावीर चरित ५।६० ९ महावीर चरित ५।६० के बाद

१० ६।३ के बाद ११ मानस ६।८९

१२ महावीर चरित ६।३५ १३ महावीर चरित ६।४९ के बाद

के और लक्ष्मण के अभ्युदास्त्र से मेघनाद के भी वध का एक साथ ही वर्णन है।[1] यहाँ रावण-वध के बाद उसके कारागार से मुक्त होने वाली देवताओं की स्त्रियों का इसमें बड़ा करुण वर्णन किया गया है।[2] 'मानस' में यह विस्तार से नहीं मिलता है।

इसमें सुग्रीव राम को परामर्श देते हैं कि वे भरत सांत्वना के लिए हनुमान् को पहले ही लंका से अयोध्या भेज दें क्योंकि द्रोणाद्रि लाते समय लक्ष्मण-मूर्च्छा के समाचार पाकर वे (भरत) बहुत दुःखी होंगे।[3] 'मानस' के राम प्रयाग पहुँच कर कुशल समाचार के आदान प्रदान के लिए ही हनुमान् को वहीं से अयोध्या भेजते हैं।[4]

इस नाटक में अयोध्या लौटते समय राम पुष्पक द्वारा सूर्यलोक उदयाचल अस्ताचल, कैलास पर्वत, अंजन पर्वत गंधर्व-लोक और हिमालय पर्वत आदि का भी भ्रमण करते हैं[5] जो 'मानस' में नहीं है।

इसमें राम के अभिषेक के समय विश्वामित्र पुन पधारते हैं और यह शुभकार्य उन्हीं के हाथों सम्पन्न होता है।[6] 'मानस' में यह सौभाग्य गुरु वशिष्ठ को प्राप्त हुआ है—

प्रथम तिलक वसिष्ठ मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा॥७।१२

(४) उत्तर राम चरित—जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है कि भवभूति इस नाटक में राम के अभिषेकोत्तर चरित का वर्णन किया गया है। तुलसी ने कथानायक राम के इस प्रसग का 'मानस' में जान-बूझ कर वर्णित नहीं किया क्योंकि 'रामाभिषेक' के द्वारा राम के चरित का पूर्ण उत्कर्ष स्थापित करने के पश्चात् वे सीता के 'परित्याग का कलंक' उसके मार्ग के साथ जोड़ना सम्भवत अशोभन समझते होंगे। इसके अतिरिक्त यह उनकी भक्ति-भावना और विचारधारा के अनुकूल भी नहीं पड़ता है।

'महावीर चरित' में रामाभिषेक तक की कथा का उपयोग करने के बा' भवभूति ने भी इस सामग्री को एक नए नाटक में पृथक रूप से ही प्रस्तुत करना श्रेयस्कर समझा। इससे स्पष्ट है कि राम-कथा के इन दो भागों से वे पूर्णतया परिचित थे।

इस नाटक में नाटकीय-व्यापार कम और भावुकता की मात्रा अधिक है इसलिये यह 'गीति-नाट्य' के रूप में अधिक सफल माना जा सकता है। 'एको रस करुण एव' के गायक[7] भवभूति ने इसमें उस करुण भावना को बड़ी तत्परता के

१ महावीर चरित ६।६३ २ महावीर चरित ७।१
३ " ७।८ के बाद ४ मानस ६।१२१
५ " ७।२१–२७ ६ महावीर चरित ७।३७ के बाद
७ उत्तर राम चरित ३।४७

साथ प्रस्तुत किया है जो वस्तुतः उनकी प्रकृति थी और सम्भवतः उनके समस्त जीवन में व्याप्त एवं ओतप्रोत थी।

इसी भावना के वश में होकर उन्होंने इस नाटक में 'सीता परित्याग'[1] और 'जनस्थान' में सीता-मिलन'[2] के अवसरों पर राम के विरही हृदय की तड़पन और वेदना का बड़ा भावुक और प्रावक चित्रण प्रस्तुत किया है।

'मानस' का कथानक जहाँ समाप्त होता है, वहीं से इसका आरम्भ है इसलिये कथा वस्तु की दृष्टि से दोनों की कोई तुलना नहीं हो सकती है। 'मानस' विरह-वर्णन में और इसके विरह-वर्णन में एक साम्य देखना भी निर्दोष नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उन दोनों विरहों में इस नाटक के राम के अनुसार ही एक बड़ा मौलिक अन्तर है।[3]

(५) कुन्दमाला—राम के अभिषेकोत्तर चरित से सम्बन्ध रखने वाला यह दूसरा नाटक है। इसके लेखक आचार्य दिङ्नाग हैं। ६ अंकों के इस नाटक में सीता के वन में परित्याग से लेकर राम के द्वारा उनके पुनर्ग्रहण तक का कथानक प्रस्तुत किया गया है। 'मानस' की कथावस्तु इससे भी भिन्न है, अतः उसकी इससे तुलना करना सम्भव नहीं है।

'उत्तर राम चरित' और 'कुन्दमाला' दोनों सुखान्त नाटक हैं। इनमें नाटककारों ने परम्परा से भिन्न राम और सीता के 'पुनर्मिलन' की योजना करके संस्कृत के नाटक शास्त्रों के आदेश का सम्यक पालन किया है। इन नाटकों में राम और सीता के विरह का बड़ा स्वाभाविक वर्णन मिलता है। इनमें राम और सीता के मिलन की एक ऐसी योजना है जिसमें सीता को अदृश्य रखा गया है। राम तो उन्हें देख नहीं पाते हैं, किन्तु वे उन्हें बराबर देखती रहती हैं। 'उत्तर राम चरित' में भागीरथी के प्रभाव से[4] और 'कुन्दमाला' में वाल्मीकि के प्रभाव से[5] सम्पन्न इस 'अदृश्य सीता मिलन' की एकमात्र उपयोगिता यह है कि राम को विरह-प्रलाप करते देख कर सीता को पूर्ण विश्वास हो जाय कि राम के हृदय में उनके लिये पूर्ववत् प्रेम है और उन्होंने केवल परिस्थितियों के वशीभूत होकर ही उनका परित्याग किया है, न कि प्रेम में किसी न्यूनता के कारण।

'मानस' और इन ग्रन्थों के विरह-वर्णन में प्राप्त मौलिक अन्तर का अभी संकेत किया जा चुका है फिर भी इन ग्रंथों के उन वर्णनों में राम और सीता के

१　उत्तर राम चरित १।४०–४९

२　उत्तर राम चरित ३।२८, ३१–३३ ३५–३६ ३८–४१, ४४–४५

३　वियोगो मुग्धाक्ष्या स च रिपुघातावधिरभू—
　　त्कटुस्तूष्णीं सह्यो निरवधिरयं तु प्रविलयः ॥३।४४

४　उत्तर राम चरित ३।१ के बाद　　५　कुन्दमाला ४। प्रथम पृष्ठ

हार्दिक उद्गारों एवं आन्तरिक मनोभावों का जो स्पष्ट मार्मिक परिचय मिलता है, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(६) अनर्घ राघव—मुरारि कवि के इस नाटक के सात अंकों में 'विश्वामित्र-आगमन' से लेकर 'रामाभिषेक' तक की समस्त कथा का वर्णन किया गया है। जिसमें कुछ अपनी मौलिकतायें हैं। उनका निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है—

इसमें वशिष्ठ के आश्रम से आये हुए वामदेव जिस समय दशरथ को उनका 'संदेश' देते हैं कि उन्हें सभी याचकों को पूर्ण सन्तुष्ट करने वाले अपने रघु-कुल के धर्म का सदैव पालन करना चाहिए,[1] उसी समय विश्वामित्र आते हैं और राम लक्ष्मण की याचना करते हैं। इस पर वशिष्ठ के आज्ञाकारी दशरथ शीघ्र ही स्वीकृति दे देते हैं।[2] 'मानस' में इस संदेश का और उसके वाहक वामदेव का कोई उल्लेख नहीं है।

इस नाटक का जाम्बवान बालि को रावण से मित्रता करने से रोकता है, किन्तु उसके न मानने पर वह सुग्रीव और हनुमान् को लेकर उससे अलग हो जाता है।[3] 'मानस' में बालि और सुग्रीव के विच्छेद का कारण दूसरा ही है।[4]

इसके हनुमान् सूर्य से व्याकरण पढ़ने के कारण उनके शिष्य हैं और गुरु-दक्षिणा के रूप में उनके पुत्र सुग्रीव के सेवक हैं।[5] 'मानस' में इसका कहीं संकेत भी नहीं है।

इसमें सीता को हल की सहायता से पृथ्वी से उत्पन्न बतला कर उन्हें 'अयोनिसंभवा'[6] कहा गया है। 'मानस में सीता के जन्म का विवरण नहीं है।

इस नाटक के विश्वामित्र जनक के यज्ञ की सुरक्षा के लिये ही राम और लक्ष्मण को वहाँ ले जाते हैं।[7] 'मानस' में केवल धनुष-यज्ञ का उल्लेख है किन्तु वहाँ उसकी सुरक्षा की कोई समस्या नहीं है।

इसमें रावण का पुरोहित शौष्कल उसके लिये जनक से सीता की याचना करता है।[8] राम के द्वारा धनुर्भंग देखकर वह विश्वामित्र से आग्रह करता है कि वे उनको ताटका-वध के अपने अपराध के क्षमापन के लिये सीता विवाह से रोक लें।[9] इसके पश्चात् वह सीता के रावण-हस्तगत होने की भविष्यवाणी करता

१ अनर्घ राघव १।१७ २ अनर्घ राघव १।४३
३ " २।७ के बाद ४ मानस ४।६
५ शुन.शेप—(विहस्य) पुरैव किमायमांजनेयो भगवत: सहस्र किरणाद्व्याकरण विद्यामधीयानस्तदाराधनमनो वानरयोने: सुग्रीवस्य साहायक-मभिमायसो पुत्रमिवोपचकार। (२।७ के बाद)
६ अनर्घ राघव २।८६ के बाद ७ अनर्घ राघव २।८७ के बाद
८ अनर्घ राघव ३।८२, ४४ ९ अनर्घ राघव ३।५७ के बाद-६०

है और राम को उससे विवाह के लिये मना भी करता है।[1] 'मानस' में इस पुरोहित का नाम तक नहीं है।

इस नाटक में वाटिका मिलन अथवा 'स्वयंवर-योजना' नहीं है। यहाँ विश्वामित्र की आज्ञा से राम धनुर्भंग के लिये 'नैपथ्य' में चले जाते हैं जिसके पश्चात् पण पूर्ण हो जाने के कारण जनक राम को सीता का समर्पण कर देते हैं और ऊर्मिला के लिये वर-रूप में लक्ष्मण को निश्चित करते हैं,[2] उसी समय शतानन्द मांडवी और श्रुतिकीर्ति के साथ भरत और शत्रुघ्न का विवाह करने के लिये विश्वामित्र से प्रार्थना करते हैं।[3] 'मानस' का विस्तार इससे भिन्न है।

माल्यवान् की आज्ञा से इस नाटक की शबरी 'परपुर-प्रवेश विद्या' के द्वारा मन्थरा के शरीर में प्रविष्ट होकर 'राम-निर्वासन' का षड्यंत्र रचती है।[4] वह कैकयी का जाली पत्र लेकर मिथिला में ही पहुँच जाती है और 'परशुराम-विजयोत्सव' पर जब दशरथ स्वयं 'रामाभिषेक' का निश्चय करते हैं उसी समय वह लक्ष्मण को पत्र सौंप देती है।[5] इसमें 'राम-वन-गमन' के प्रस्ताव में ही सीता और लक्ष्मण के भी सहगमन की याचना है।[6] 'मानस' की शबरी ऐसी 'मायाविनी' नहीं है।[7] यहाँ 'वर-याचना-काण्ड' अयोध्या में ही घटित होता है और उसमें केवल राम के वनगमन की ही प्रार्थना है—

मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥
तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी॥ २।२९

इस नाटक में 'परशुराम विवाद' मिथिला में ही सम्पन्न होता है और इसमें जनक[8] दशरथ[9] शतानन्द[10] और लक्ष्मण[11] सभी भाग लेते हैं तथा परशुराम को फटकारते हैं। यहाँ राम भी परशुराम के मुख से गुरुजनों का अपवाद सुनकर युद्ध के लिये लक्ष्मण से धनुष मंगा लेते हैं।[12] उसी समय परशुराम उनको बल

---

१ स्वयं पौलस्त्येन त्रिभुवनमुखा नेतुमि इष्टा—
मरे राम त्वं मा जनकपतिपुत्रीमुपयथा ॥१।६१

२ अनर्घ राघव ३।२६ — ३ अनर्घ राघव ३।२६ के बाद

४ " ४।१४ के बाद — ५ अनर्घ राघव ४।१२ के बाद

६ वर्षाणि तिष्ठतु चतुर्दश दण्डकायां
सौमित्रिमैथिलसुतासहितस्तु रामः ॥४।६६

७ मानस ३।१४-१६

८ अनर्घ राघव ४।१८ ४१ के बाद — ९ अनर्घ राघव ४।४० ४२

१० " ४।४२ के बाद ४१ के बाद — ११ " ४।४१ ४० के बाद

१२ राम — अये जामदग्न्य पटच्चरीभूता शास्त्रिणं पुरातनी कीर्तिपताका।
नचिरादामीमेव द्रष्टव्यम्। (नेपथ्याभिमुखम्।) वत्स लक्ष्मण,
धनुर्धनुः। (अनर्घ राघव ४।२४ के बाद)

परीक्षा के लिए उन्हें अपना वैष्णव धनुष दे देते हैं।[1] फिर वे दोनों वास्तविक युद्ध के लिये नेपथ्य में चले जाते हैं और वहीं से राम के विजय की घोषणा होती है।[2] 'मानस' में परशुराम के द्वारा लक्ष्मण से विवाद करने[3] और राम को धनुष[4] देने के अतिरिक्त और कोई वर्णन इस नाटक से नहीं मिलता है।

इसमें जाम्बवान्-शबरी-संवाद में राम-निर्वासन से लेकर खरदूषण-वध तक की सूचना मिलती है।[5] मानस में ये सभी वर्ण्य विषय हैं केवल 'सूच्य' नहीं।

इस नाटक में सीता-हरण के पूर्व लक्ष्मण रावण-संवाद भी है जिसमें रावण अपने को 'वैशेषिक-कटन्दी-मंडित' बतला कर राम से शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट करता है। वह 'सर्वविद्रावण' कह कर अपना विशिष्ट परिचय देता है और लक्ष्मण उसे 'सर्वविद् रावण' समझ भी लेते हैं किन्तु वह स्वयं को 'सर्वविद्रावण' कहकर अपना सत्य परिचय दिये बिना ही वहाँ से शीघ्र चला जाता है।[6] 'मानस' में ऐसा कोई संवाद नहीं है।

इस नाटक का गुह अधिक सक्रिय है। वह लक्ष्मण को प्रसिद्ध दुन्दुभि-कंकाल दिखलाता है जिसे वे बिखेर देते हैं।[7] वह राम की सेवा में सीता का वह उत्तरीय प्रस्तुत करता है जिसे सुग्रीव ने उसे राम को भेंट करने के लिये दिया था। (इस उत्तरीय को सीता ने अपने हरण के समय वानरों को देखकर परिचय देने के लिये वहाँ फेंक दिया था और हनुमान ने उसे लपक कर सुग्रीव को दे दिया था।[8]) वह राम को बालि का परिचय भी दूर से कराता है।[9] यहाँ रावण के षड्यन्त्र से प्रभावित बालि के साथ जब राम का सीधा द्वन्द्व-युद्ध होता है[10] तब सुग्रीव और हनुमान् को पीछे आते देखकर लक्ष्मण के शंकित होने पर गुह ही उन्हें उनका परिचय देकर शान्त करता है।[11] अन्त में सप्त ताल और बालि को भेदकर रामबाण के पुनः तूणीर में प्रवेश करने की घोषणा भी वही करता है।[12] मानस में इस अवसर पर गुह की उपस्थिति का कोई संकेत नहीं है और न कोई षड्यन्त्र अथवा द्वन्द्व युद्ध ही है।[13]

---

१ अनर्घराघव ४।४५ २ अनर्घराघव ४।४६ के बाद

३ मानस १।२७१-२८० ४ मानस १।२८४

५ अनर्घराघव ५।१ से ५।५ के बाद

६ (नेपथ्ये) भो भो लक्ष्मण वैशेषिककटन्दीपण्डितो जगद्विजयमानः पर्यटामि। क्वासौ रामः। तेन सह विवदिष्ये। सर्वविद्रावणः खल्वहम्।
लक्ष्मण —किं महाराघव (५।५ के बाद)
रावण—सर्वेषां विद्रावणः खल्वहमिति। तन्मुख मा मिलायें।

७ अनर्घराघव ५।२५ ८ अनर्घराघव ५।२५ के बाद

९ " ५।३३ १० " ५।३७-५२

११ " ५।५० के बाद १२ " ५।५२

१३ मानस ४।७-८

इस नाटक में 'माल्यवान्-सारण-संवाद' में विभीषण-शरणागति सेतुबन्ध रावण के वियोग-शृंगार कुम्भकर्ण-वध मेघनाद-वध आदि की सूचना-मात्र दी जाती है। मानस' में यह संवाद नहीं है और वहाँ रावण के वियोग वर्णन के अतिरिक्त अन्य सभी प्रसंगों का विस्तृत वर्णन किया गया है।[२]

इसमें 'रत्नचूड़-हेमांगद-संवाद' में राम-रावण-युद्ध रावण-वध, मन्दोदरी-विलाप आदि का उल्लेख मिलता है।[३] मानस' में यह संवाद नहीं है।

इस नाटक के 'सीता-शुद्धि' प्रसंग में साक्षी रूप में स्थित सूर्य और दिक्-पालों के सामने सीता के अग्नि में प्रवेश करने और 'अक्षत' निकलने का वर्णन किया गया है।[४] 'मानस में सीता शुद्धि के पश्चात् इन्द्र ब्रह्मा और शिव आदि देवता उपस्थित होते हैं किन्तु वे साक्षी के लिए नहीं आते हैं प्रत्युत वे राम के ईश्वरत्व का उल्लेख करके उनकी स्तुति करते हैं।[५]

इस नाटक में राम 'रावण-वध' के अवसर पर सूर्यमंडल में दशरथ के दर्शन करते हैं, जो उन्हें भरत को सूचना देने के लिए हनुमान् को भेजने की आज्ञा देते हैं।[६] मानस' के दशरथ राम को केवल आशीर्वाद देते हैं।[७]

इसमें लंका से अयोध्या लौटते समय पुष्पक विमान द्वारा राम प्रालेय पर्वत औषधिप्रस्थ नगर मन्दराचल, कैलाश सुमेरु नागलोक आदि की यात्रा करने के पश्चात् क्रमशः रोहणगिरि, ताम्रपर्णी नदी मलयाचल अगस्त्याश्रम प्रस्रवणपर्वत महाराष्ट्र के कुंडिन नगर सोम के भीमेश्वर मंदिर द्रविड़ की कांची नगरी उज्जयिनी माहिष्मती, यमुना गंगा वाराणसी मिथिला चम्पा प्रयाग सरयू आदि के भी दर्शन करते हैं।[८] 'मानस' के राम भरत की चिन्ता से इतने व्यग्र हैं कि वे शीघ्रातिशीघ्र अयोध्या पहुँचना चाहते हैं।[९]

'मानस' में राम अयोध्या पहुँचते ही भरत आदि से मिलने के पहले पुष्पक विमान को विदा कर देते हैं[१०] —

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु॥ ७।४

इसमें रामाभिषेक के बहुत बाद विभीषण पुष्पक को मुक्त करने के लिए राम से प्रार्थना करते हैं।[११]

---

१ अनर्घराघव ६।२ २१
२ मानस ५।४५ ६।७७
३ " ६।२१-८४
४ अनर्घराघव ७।१
५ मानस ६।१०९ १११
६ " ७।११
७ " ६।११२
८ " ७।२८ १११
९ " ६।११६
१० मानस ७।४
११ अनर्घराघव ७।१४१

(७) प्रसन्न-राघव—महाकवि जयदेव के इस नाटक के सात अंकों में 'सीता-स्वयंवर-वर्णन' से लेकर 'अयोध्या-प्रत्यावर्तन' तक की समस्त कथा बड़े ही सरस और आकर्षक रूप से प्रस्तुत की गयी है। इस नाटक की प्रसाद-गुण सम्पन्नता को देख कर इसका 'प्रसन्न राघव' नाम यथार्थ सिद्ध होता है।

इस नाटक ने तुलसीदास को 'मानस' के निर्माण में सबसे अधिक सहायता दी है। 'पुष्पवाटिका प्रसंग' 'राम-सीता-पूर्व-मिलन' 'लक्ष्मण-परशुराम संवाद' 'राम-विरह', 'रावण-सीता-संवाद' 'लक्ष्मण-मूर्च्छा प्रसंग' आदि के वर्णनों में इस नाटक और 'मानस' में बहुत साम्य है। इस नाटक के श्लोकों के छायानुवाद और भावानुवाद के अतिरिक्त उनके भाव अर्थ और छन्द आदि का ग्रहण भी 'मानस' में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। जहाँ तक इस नाटक की कथावस्तु का सम्बन्ध है, उसमें अनेक उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

इस नाटक में जनक के दो बन्दी सीता-स्वयंवर' में भाग लेने के लिये आये हुये निमन्त्रित राजाओं का पृथक-पृथक विस्तृत परिचय देते हैं[1], जो 'मानस' में नहीं है।

इसमें रावण[2] और बाण[3] भी स्वयंवर में उपस्थित हैं। वे दोनों 'धनुष' उठाने में असमर्थ होकर[4] परस्पर वाक्कलह करते हैं और बहाना बनाते हुए चले जाते हैं।[5] 'मानस' में इसका संकेत-मात्र बन्दियों की घोषणा में मिलता है—

रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गवँहि सिधारे॥१।२५०

इस नाटक का 'पुष्पवाटिका-वर्णन' 'मानस' के वर्णन के बहुत कुछ समान है, किन्तु समय का अन्तर है। इसमें सायंकाल है[6] जबकि मानस में प्रातःकाल है।[7] इसमें राम-सीता को देख कर उनके रूप-सौन्दर्य का बड़ा विस्तृत वर्णन करते हैं।[8] 'मानस' में यह वर्णन संक्षिप्त और मर्यादित है।[9] इसमें सीता को देखकर लक्ष्मण को अपनी माता 'सुमित्रा' का स्मरण हो आता है और लक्ष्मण को देख कर सीता भी अपनी बहिन उर्मिला का ध्यान करती है।[10] 'मानस' में इन दोनों के

---

१ मञ्जीरक स एष—मल्लिकापीडो नाम। सोऽयं काश्मीरतिलकः।
स एष कांचीमण्डनो वीरमाणिक्यनामा नृपतिः।
शोभम्—मत्स्यराज। स एष—सिन्धुराजः।
(प्रसन्न राघव १।२८ के बाद)

२ प्रसन्न राघव १।३२ के बाद
३ प्रसन्न राघव १।४७
४ „ १।४९ के बाद ५१ तक
५ „ १।५१, ६० के बाद
६ „ २।५ के बाद
७ मानस १।२२६
८ „ २।७-९, ११-१७ १९-२०, २६
९ मानस १।२३१
१० प्रसन्न राघव २।१४ के बाद

आंतरिक भावों का कोई संकेत नहीं है। इसमें 'पुष्प-वाटिका' में राम को देख कर सीता अत्यन्त ध्यानमग्न हो जाती हैं और सखियों के पूछने पर वे बड़ी कुशलता से 'आ राम' में (राम या बाग में) 'दत्तचित्त हूँ' कह कर श्लेष के द्वारा सत्य भी कहती हैं और अपनी दुर्बलता को छिपाना भी चाहती हैं[1] किन्तु 'मानस' में सीता की सखियाँ ही उन्हें राम-दर्शन के लिये प्रेरित करती हैं।[2]

इस नाटक में राम जिस समय 'शिवधनुष' भंग करना चाहते हैं[3] उसी समय परशुराम का एक दूत आकर जनक को इस कार्य से रोकना चाहता है किन्तु वे उसकी पूर्ण उपेक्षा कर देते हैं।[4] 'मानस' में यह दूत चर्चा नहीं है।

इस नाटक में मिथिला में ही 'परशुराम विवाद' की योजना है। वहाँ परशुराम धनुष-भंग-कर्त्ता का आधा विवरण सुनते ही उसे 'रावण' समझकर उसके प्रति कोप प्रगट करने लगते हैं किन्तु भूल-सुधार होने पर वे बड़ी द्विविधा में पड़ जाते हैं। एक ओर तो राम के शील और सौन्दर्य से आकृष्ट होकर वे उन्हें 'समर विजयी होने का आशीर्वाद भी दे देते हैं और दूसरी ओर तुरन्त ही उन पर प्रहार करने का विचार भी व्यक्त करते हैं।[5] 'मानस' में उनकी इस द्विविधा का संकेत नहीं है। इस प्रसंग में राम और लक्ष्मण का परशुराम से संवाद भी 'मानस'[6] के संवाद से बहुत मिलता जुलता है।[7] इसमें परशुराम की शांति के लिए जनक तथा शतानन्द भी प्रयत्न करते हैं[8] जिसका वर्णन 'मानस' में नहीं है। वहाँ परशुराम जब विश्वामित्र के लिये भी कटु वचनों का प्रयोग करने लगते हैं तब राम क्रुद्ध होकर उनसे युद्ध के लिए उन्हें 'नेपथ्य' में ले जाते हैं।[9] 'मानस' के राम अन्त तक नम्र बने रहते हैं वहाँ युद्ध की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। वहाँ राम की परीक्षा के लिए परशुराम उन्हें अपना वैष्णव धनुष दे देते हैं जिससे राम उनकी 'देवलोक-गति' को रोक देते हैं[10] किन्तु 'मानस' के राम ऐसा नहीं करते।[11]

इसमें गंगा यमुना सरयू, गोदावरी तुंगभद्रा और सागर का मानवीकरण किया गया है। इन सबके सम्वाद से कैकयी-वर-याचना से लेकर सीता-शोध तक की सूचना मिलती है।[12] 'मानस' में ये सभी प्रसंग अति विस्तृत हैं।

---

१ सखी—अत्र तहि दत्तचित्तासि।
सीता—आरामम्मि। २ मानस १।२३४

३ प्रसन्न राघव ३।१६ के बाद ४ प्रसन्न राघव ३।१८–१९

५ भार्गव—(स्वगतम्) रामे चंद्राभिरामे विजयवति चिरो कि प्रकुप्यातिमात्रं हुं वार्त्तं चंद्रमौलेश्चापसमतिरथाविमुदग्रं अभंग ।४।१८

६ मानस १।२७१–२८४ ७ प्रसन्न राघव ४।२०–२१

८ प्रसन्न राघव ४।२१ के बाद-३० के बाद

९ ,, ४।३७–४१ १० प्रसन्न राघव ४।४१–४३

११ मानस १।२८४–२८५ १२ ,, ५।१–५३

इसके सीता हरण प्रसंग में अनसूया प्रभाव से सीता के चारों ओर अग्नि के निरन्तर बसते रहने का उल्लेख है जिसे वरुण मंत्र से बुझाने के बाद ही रावण सीता हरण में समर्थ हो पाता है।[1] 'मानस' में अग्नि वर्णन नहीं है।

इस नाटक में एक 'छद्मनाम' (माया-नाटक) में राम और लक्ष्मण दोनों ही सीता-त्रिजटा संवाद रावण त्रास, सीता-विरह हनुमान-सीता-संवाद और लंका दाह आदि के रोचक और मर्मस्पर्शी दृश्यों का वर्णन करते हैं।[2] इन सभी प्रसंगों के वर्णन 'मानस' के वर्णनों से अद्भुत साम्य रखते हैं[3] किन्तु इसमें जहाँ 'सीता स्वप्न'[4] के वर्णन हैं वहाँ 'मानस' में त्रिजटा-स्वप्न'[5] का कथन है। इसमें सीता की अस्वीकृति से क्रुद्ध रावण जब उनका रक्तपान करने के लिये 'कपाल' माँगता है, है तब हनुमान वृक्ष से छिपे-छिपे, उसके पुत्र 'अक्ष' का कटा हुआ सिर उसकी अञ्जलि में डाल देते हैं जिसके दर्शन से क्षुब्ध और क्रुद्ध होकर वह वहाँ से तुरन्त चला जाता है।[6] मानस' में यह घटना नहीं है। इस नाटक में सीता के द्वारा अशोक वृक्ष से अग्निकण माँगने और हनुमान् के द्वारा 'राम-मुद्रिका' डाल देने का वर्णन है।[7] मानस का वर्णन भी ऐसा ही है—

सो० कपि करि हृदयं बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥५।१२

मानस के हनुमान् लंका से लौटते समय सीता से 'प्रत्यभिज्ञान' लेते हैं [8], किन्तु यहाँ उसका वर्णन उनके प्रथम मिलन में ही किया गया है।[9]

इस नाटक में सीता के प्रति आकर्षण से खिन्न रावण के विरहोपचार का भी रोचक वर्णन किया गया है[10] जो 'मानस' में नहीं प्राप्त होता है।

इस नाटक में एक ही श्लोक में कुम्भकर्ण और मेघनाद के साथ ही वध होने का संक्षिप्त उल्लेख है।[11] मानस में इसके वर्णन को अत्यधिक विस्तार मिला है।[12]

इसमें लक्ष्मण-मूर्च्छा पर विलाप करते हुये राम को उर्मिला के सौभाग्य का

१ ततो वरुणमन्त्रविस्तनाहूतमूवनबमाहत्त्वासनिचुनितपाणिरस्पृशदेव ५।४४ के बाद
२ प्रसन्न राघव ६।० के बाद–५०   ३ मानस ५।११–२७
४ „ ६।१६ के बाद   ५ ५।११
६ „ ६।२३ के बाद
७ सीता–(विलोक्य । सहर्षम् ।) हला पेक्ख पेक्ख । निवडिदं दाव इमस्स सिहरादो अंगारखण्डअम् ।६।३५ के बाद ।
८ मानस ५।२७   ९ प्रसन्न राघव ६।४६
१० प्रसन्न राघव ७।६–७   ११ „ ७।१४
१२ मानस ६।६२–७७

भी ध्यान आ जाता है[1], जिसका संकेत 'मानस' में नहीं है।[2]

इस नाटक के राम हनुमान् को लंका से ही भरत के पास अयोध्या भेज देते हैं[3]। 'मानस' में वे उन्हें प्रयाग से भेजते हैं।[4] इसमें अयोध्या के मार्ग का बड़ा ही संक्षिप्त वर्णन है। समुद्र तट से दण्डकवन गोदावरी और यमुना आदि के पश्चात् चित्रकूट पहुँचने का उल्लेख केवल एक ही श्लोक में किया गया है।[5] 'मानस' में मार्ग में पड़ने वाले स्थलों का विस्तृत और साभिप्राय वर्णन मिलता है।[6]

(८) बाल रामायण—राम कथा से सम्बन्धित यह सबसे बड़ा नाटक है। इसके लेखक महाकवि राजशेखर स्वयं को वाल्मीकि भर्तृहरि और भवभूति का अवतार मानते हैं। इस नाटक के १० अंकों में 'रावण के मिथिला आगमन से लेकर राम के अभिषेक' तक का समस्त कथानक बड़े ही रोचक और आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटककार ने अनेक प्रसंगों में मौलिकता का समावेश करके इसमें अपनी विशेष प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। उसकी इन नाटकीय विशेषताओं का निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है—

इस नाटक में प्रहस्त के साथ रावण स्वयं मिथिला में उपस्थित होकर जनक से सीता की याचना करता है[7]। जनक की प्रणपूर्ति के लिए 'शिवधनुष' को वह पहले उठा लेता है[8] किन्तु उसे भंग करने के पूर्व वह इस 'पणपूर्ति' को अपना अपमान समझ कर उस धनुष को दूर फेंक देता है।[9] 'धनुष' के इस अपमान से क्षुब्ध होकर जनक रावण को मारने के लिए जब अपना धनुष उठा लेते हैं, तब ऋषि शुनःशेफ उन्हें रोकते हैं। जब वे उसे शाप देना चाहते हैं तब शतानन्द उन्हें समझाते हैं।[10] उसी समय रावण सीता के भावी पति को अपना शत्रु और वध्य मानने की प्रतिज्ञा करके वहाँ से चला जाता है।[11] अभिमानी रावण के द्वारा यहाँ इससे परशुराम से अपना परशु माँगने और न देने पर कलह करने का भी वर्णन है।[12] 'मानस' में ये वर्णन नहीं हैं।

---

१ हा वत्स लक्ष्मण विलासवत्र भैव्रपङ्क्ते भावाविदं युगपदेव समस्तमस्तम्।
मार्गं दिवाकरकुलस्य च जीवितं च रामस्य किं च नयनांजनमूर्मिलायाः ॥७।३०॥

२ मानस ६।६१ ३ प्रसन्न राघव ७।७२ के बाद
४ „ ६।१२१ ५ „ ७।७८
६ „ ६।११६-१२१ ७ बाल रामायण १।३४
८ बाल रामायण १।४९
९ रावण-सोऽहं दुर्मदबाहुदण्डलब्धिवो लंकेश्वरस्तस्य मे—।
का श्लाघा पुन जर्जरेण धनुषा कृष्टेन भग्नेन वा ॥१।३१॥
१० बाल रामायण १।२४-२७ के बाद ११ बाल रामायण १।६१
१२ „ २।१६-६१

इस नाटक में सीता के विरह से व्याकुल रावण के उपचार के लिए अनेक प्रयत्न किए जाते हैं जिनमें भरतमुनि द्वारा एक सीता-स्वयंवर नामक गर्भांक (नाटक में नाटक) के प्रयोग की भी योजना है,[१] जिसमें स्वयंवर के लिए निमन्त्रित अनेक राजाओं के समक्ष धनुर्भंग करके राम सीता को विधिवत प्राप्त करते हैं।[२] रावण इस दृश्य को देखकर उद्विग्न होता है किन्तु उसे नाटक मात्र समझकर शान्त हो जाता है।[३] 'मानस' में रावण के विरहोपचार और इस गर्भांक-योजना का कोई संकेत नहीं है।

इसमें राम से क्रुद्ध होकर परशुराम उनसे युद्ध करने के लिए इतना शस्त्रास्त्र संग्रह करते हैं कि उसे ढोने के भय से उनके शिष्य रातों-रात भाग जाते हैं[४] कलहप्रिय नारद इस युद्ध-दर्शन के लिए सब देवताओं का आवाहन करते फिरते हैं।[५] उस समय दशरथ इन्द्र के अतिथि हैं, अत इन्द्र उन्हें राम की रक्षा के लिये अपने सारथि मातलि के साथ शीघ्र ही मिथिला भेज देते हैं।[६] 'मानस' में इन घटनाओं का कोई संकेत नहीं है।

इसमें परशुराम–विवाद का बड़ा विस्तृत वर्णन किया गया है। राम के बराबर नम्र रहने पर भी जब परशुराम अपना उग्र क्रोध प्रगट ही करते चले जाते हैं,[७] तब उनका दमन करने के लिये जनक अपना धनुष उठाते हैं।[८] उस समय दशरथ राम को ही समर्थ बतलाकर उन्हें रोक लेते हैं।[९] वहाँ राम की परीक्षा के लिए परशुराम के द्वारा दिए गए वैष्णव धनुष को लक्ष्मण बीच में ही लेकर सज्य कर देते हैं[१०] जिस पर प्रसन्न होकर जनक उनके साथ ऊर्मिला के विवाह की घोषणा कर देते हैं।[११] इस बल-परीक्षा के पश्चात् भी परशुराम शान्त नहीं होते हैं और युद्ध के लिए राम को लेकर नेपथ्य में चले जाते हैं।[१२] 'मानस' के परशुराम केद्वारा वैष्णव धनुष सज्य करने पर उनकी स्तुति करते हुए विदा हो जाते हैं।[१३]

इस नाटक में रावण की विरह-शान्ति के लिए एक 'यन्त्र-जानकी' का विचित्र प्रयोग किया गया है जिसमें सीता और उसकी दासी की कठपुतलियाँ बना कर

---

१ बाल रामायण ३।१० के बाद २ बाल रामायण ३।१६-८९

३ रावण —(सस्मरणकम्पम् । आत्मगतम्) कथं प्रेक्षणकमेतत् ।
मुधा संरम्भ अस्माभिः । ३।८९ के बाद

४ बाल रामायण ४।१ से पूर्व ५ बाल रामायण ४।४-५

६ बाल रामायण ४।१० के बाद ७ बाल रामायण ४।२८ १०,६२,६३ ६६

८ " ४।६७-६८ ९ " ४।६९

१० " ४।७५

११ जनक—हरधनुषि हठाधिरोपणेन विधिवनमापरितापित पणो मृत ।
विहितमपरिभावितं पणरत्नं पुनरिदमूर्मिलया मुरारिचापे ।।४।८१

१२ बाल रामायण ४।८२-८४ १३ मानस १।२८४-२८५

उनके मुख में 'सारिकाएं' स्थापित की जाती हैं जो रावण से प्रेमालाप करती हैं, किन्तु उसके स्पर्श से अन्त में रहस्योद्घाटन हो जाता है और वह अत्यन्त निराश होता है।[१] यहां रावण के विरह-प्रलाप और उन्माद का अति विस्तृत वर्णन किया गया है जिसमें उसके उपचार के लिए षट् ऋतुओं के आयोजन के व्याज में नाटककार ने अत्यन्त सरस ऋतु-वर्णन भी प्रस्तुत कर दिया है।[२] 'मानस' में यह सब नहीं है।

इस नाटक में राम-निर्वासन के कलंक से कैकयी को मुक्त करने के लिए एक 'राक्षस-षड्यंत्र' की योजना की गई है। यहां दशरथ और कैकयी की अनुपस्थिति में मायामय और शूर्पणखा अयोध्या आकर और उनका छद्म रूप धारण करके परस्पर 'वरदान-याचना' का नाटक करते हैं तथा राम आदि को वहां से निर्वासित करके भाग जाते हैं।[३] 'मानस' में ऐसा कुछ नहीं है।

इसमें सुमंत्र राम आदि के साथ नर्मदा तक जाते हैं इसीलिए वे वहां से लौट कर 'विराध-वध' तथा 'पंचवटी-वास' आदि की घटनाएं भी दशरथ को सुनाते हैं।[४] 'मानस' में वे केवल गंगातट तक ही उनके साथ रहते हैं।[५] इसमें सुमंत्र के आगमन के पश्चात जटायु का एक दूत आकर दशरथ को 'सीता-हरण' और 'जटायुवध' का समाचार देता है जिसका उन पर घातक प्रभाव पड़ता है।[६] 'मानस' में 'सुमंत्र मिलन' के बाद ही 'दशरथ-मरण' का वर्णन किया गया है।

इस नाटक में राम के बाण से आहत समुद्र औषधि लगाए और पट्टी बांधे हुए तथा साथ में गंगा-यमुना को लेकर राम की शरण में उपस्थित हो जाता है। वह राम से उन नदियों का परिचय भी कराता है और सेतुबन्ध के लिए उपयुक्त स्थान बतला कर नल की शक्ति का संकेत करता है।[७] 'मानस में समुद्र का यह अतिशयित वर्णन नहीं मिलता है और यहां वह नल के साथ नील को भी सेतुबन्ध में समर्थ बतलाता है।[८]

इसमें युद्धभूमि में रावण उस पूर्वोक्त 'यन्त्र-जानकी' का सिर काट कर राम के समक्ष फेंक देता है। जब राम उसे सत्य समझकर खिन्न होते हैं तब उसके यन्त्र कण्ठ में स्थित सारिका रहस्योद्घाटन कर देती है जिससे वे शान्त हो जाते हैं।[९] 'मानस में इसका वर्णन नहीं है।

इसमें रावण के एक विचित्र पुत्र सिंहनाद का उल्लेख है, जिसके

---

१ रावण—कण्ठमवलोक्य संस्पृश्य। (पुनर्निरूप्य) अये। सारिकाधिष्ठितकण्ठं सीताप्रतिकृतिविग्रहम् ॥ ५-२२ के बाद

२ बाल रामायण ५।२२ के बाद-७६

३ बाल रामायण ६ ४ के बाद

४ " ६।४२-५५

५ मानस २।१००

६ " ६।५६-७१

७ बाल रामायण ७।१४-४१

८ मानस ५।५९-६०

९ बाल रामायण ७।७१-७६

१ मुँह और १० भुजायें हैं।[1] 'मानस' में इसका संकेत नहीं है।

इस नाटक में रावण युद्ध के पूर्व राम के पास एक सन्देश भेजता है कि भीषण रक्तपात के स्थान पर केवल एक निर्णायक द्वन्द्व युद्ध हो जाये जिसमें यदि उनका पक्ष जीते तो लंका और सीता उनकी, और यदि उसका पक्ष जीते तो अयोध्या और सीता उसकी हो जायें।[2] राम इस चुनौती को स्वीकार करके अपने पक्ष से अंगद को नियुक्त करते हैं और रावण अपने पुत्र नरान्तक को भेजता है। इस द्वन्द्व युद्ध में अंगद के द्वारा नरान्तक का वध कर दिए जाने पर भी रावण शर्त से विमुख होकर युद्ध की घोषणा कर देता है।[3] 'मानस' में इस द्वन्द्व-युद्ध का कोई संकेत नहीं मिलता है।

कुंभकर्ण को जगाने के लिए इस नाटक में अनेक प्रयत्न किए जाते हैं। तक्षकादि सर्पों के दंश उसके लिए मृणाल-वत् सिद्ध होते हैं। हिमालयादि पर्वतों का भार उसको वक्ष पर कन्दुक के समान लगता है। दिग्गजों की शक्ति भी वहाँ व्यर्थ हो जाती है और सपरिवार शक्र भी हार मान जाते हैं।[4] अन्त में वह कामिनियों के स्तन-स्पर्श से ही स्वतः जागता है।[5] 'मानस' में इसका कोई विवरण नहीं दिया गया है।[6] इसमें राम के साथ कुंभकर्ण और मेघनाद दोनों का समान युद्ध चलता है और अन्त में दोनों के वध की घोषणा भी साथ ही होती है।[7] 'मानस' में पहले कुंभकर्ण का वध होता है फिर मेघनाद का।[8]

इसमें इन्द्र के साथ विमान पर बैठे हुए दशरथ भी 'राम रावण-युद्ध' का वर्णन कर रहे हैं और बीच-बीच में उसकी टीका टिप्पणी भी करते हैं।[9] इन दोनों के संवाद में ही समस्त युद्ध और 'रावण-वध' का वर्णन पूरा कर दिया जाता है।[10] 'मानस' में इस संवाद की योजना नहीं है।

इस नाटक में भी लंका से अयोध्या के लिए यात्रा करते समय राम का पुष्पक विमान हिमालय कैलाश मानसरोवर, मन्दराचल क्षीर सागर, सुमेरु इन्द्रलोक और ब्रह्मलोक[11] तक जाकर फिर सेतुबन्ध अगस्त्याश्रम केरल, आन्ध्र, कर्णाट महाराष्ट्र विदर्भ लाट, मालव कान्यकुब्ज, प्रयाग, वाराणसी मिथिला[12] आदि होता

---

१ बाल रामायण ७।८०–९०

२ रावण–किमविरलबाणरराक्षसक्षयकरेण संयमेन तदेकं तुमुलं त्वं प्रवर्तयाव तव च।
स्वस्कांधकारविजये तव राम। लंका सीता च ते पुनरपि भवतो स्तु दारान्
मत्कांधकार विजये तु ममापि परं तस्यां च ते पुरि कमलनयने च तत्र ॥८।२

३ बाल रामायण ८।९–१०
४ बाल रामायण ८।२१ ३१
५ " ८।१४
६ मानस ६।६२
७ बाल रामायण ८।८१,८५
८ मानस ६।६४ ६७
९ बाल रामायण ८।१२ से ९।२९
१० बाल रामायण ९।१७–२९
११ " १०।२७–४१
१२ " १०।४३–५९

हुआ अन्त में अयोध्या पहुँचता है। 'मानस' का मार्ग-वर्णन बहुत सरस और संक्षिप्त है।[1]

अयोध्या पहुँचकर इस नाटक के राम भरत से सुग्रीव और विभीषण का परिचय कराते हुए उन्हें 'सीता-देवर' कहते हैं।[2] 'मानस' के राम उन्हें सखा और भरत से भी अधिक प्रिय बतलाते हैं।[3] 'मानस' में राम भरत-मिलन के पूर्व ही पुष्पक को कुबेर के समीप जाने की आज्ञा दे देते हैं[4] जबकि इसमें 'रामाभिषेक' के उपरान्त कुबेर स्वयं आकर उनसे अपना विमान माँग ले जाते हैं।[5]

(६) हनुमन्नाटक—इस नाटक को हनुमान के द्वारा लिखित तथा भोज के द्वारा उद्धृत और दामोदर मिश्र के द्वारा संपादित कहा जाता है। इसको 'महानाटक' के नाम से भी उल्लिखित किया जाता है[6] जो सम्भवतः इसके १४ अंकों के विस्तार पर आधारित है। इस नाटक में नाटकीयता कम है किन्तु वर्णन की मात्रा अत्यधिक है। इसके अतिरिक्त इसमें अन्य प्राचीन कवियों भवभूति मुरारी और जयदेव आदि के प्रसिद्ध श्लोकों को भी ज्यों का त्यों संगृहीत कर लिया गया है।

कथावस्तु के दृष्टिकोण से इस नाटक का भी 'मानस' पर बहुत प्रभाव है। इसके अनेक श्लोकों का शब्दानुवाद और भावानुवाद 'मानस' में बड़ी सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। तुलसी ने इस नाटक के कई संकेतों से उत्साहित होकर 'मानस' में बड़ी-बड़ी उद्भावनायें की हैं। इस नाटक की कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं —

इसमें विष्णु के चतुर्धा विभक्त होकर, दशरथ के पुत्र बनने का वर्णन किया गया है।[7] 'मानस' के विष्णु राम अपने भाइयों को अपना अंशावतार कहते हैं—

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥ १।१८७

इस नाटक में 'धनुर्भंग' में आमंत्रित सभी राजाओं को उसमें असमर्थ देखकर राम को जो क्षोभ होता है[8] 'मानस' में उसी को जनक के द्वारा व्यक्त कराया गया है।[9] वहीं पर लक्ष्मण अपना जो 'शक्ति-वर्णन' राम से करते हैं[10] उसी को 'मानस' में वे जनक से करते हैं।[11]

इसमें भी रावण का एक पुरोहित उसके लिए जनक से सीता की याचना

---

१ मानस ६।१११।१२१
२ ,, ७।८
३ बाल रामायण १०।१०१ के बाद
४ मानस ७।४
५ राम—विमानराज ! भवता भवतेन माध्यंसि समर्प्यसे च। १०।१०१ के बाद
६ हनुमन्नाटक १४। १४–१६
७ उर्वीसर्वरभूरिभारहरणे भूरिभवा भूमतौ
अस्यार स्वमपो विभाग सहित पूर्णश्चतुर्धा विभु ॥१।२
८ हनुमन्नाटक १।१०
९ मानस १।२५१।२५२
१० ,, १।११
११ ,, १।२५३

करता है और राम को 'सेतु-बन्धन' से रोकता भी है।[1] 'मानस' में इसका संकेत नहीं है।

'राम-परशुराम-विवाद' इसमें 'मानस' की तरह मिथिला में ही ठीक धनुर्भंग के पश्चात् सम्पन्न होता है किन्तु यहाँ राम अन्त तक शान्त नहीं रहते हैं। वे परशुराम को 'दुर्विदग्ध' कह कर उनके दमन के लिए 'बद्धपरिकर' भी हो जाते हैं।[2] 'मानस' के राम अधिक गम्भीर हैं।[3]

इसके 'जानकी-विलास' नामक द्वितीय अंक में राम और सीता के सम्भोग शृंगार का विस्तृत वर्णन किया गया है जो अनेक स्थलों पर अश्लील भी हो गया है।[4] 'मानस' में यह वर्णन नहीं है।

इसमें राम निर्वासन के लिए 'मानस' से भिन्न एक अन्य योजना है जिसमें अयोध्या में किसी समय महान् उत्पातों एवं अपशकुनों को देखकर कैकयी सीता को अमंगली वधू और राम को 'कुलांगार-मूर्ति' कहती हुई उन दोनों के निर्वासन और भरत के यौवराज्य की प्रार्थना दशरथ से करती है।[5] इसमें 'राम-वन-गमन' के समय भरत अयोध्या में उपस्थित हैं और 'राम-निर्वासन' के कारण 'मानस' के भरत के समान ही क्षुब्ध हैं।[6] इसमें 'चित्रकूट मिलन' नहीं है किन्तु भरत का नन्दिग्राम प्रवास[7] 'मानस' के समान ही वर्णित हुआ है।[8]

वन-मार्ग में स्त्रियों के द्वारा राम का परिचय पूछे जाने पर, इस नाटक की सीता कुछ मुस्करा कर, लज्जापूर्ण कटाक्ष करती हुई और मुँह को कुछ झुकाती हुई अपने मौन से ही सब स्पष्ट कर देती है।[9] 'मानस' में वे पहिले लक्ष्मण का परिचय 'देवर' कहकर देती है, फिर वह इन्हीं चेष्टाओं के द्वारा वे अपना आशय व्यक्त करती है—

> सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे ॥
> बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥
> खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि ॥

इसमें राम के 'अहिल्योद्धार' पर व्यंग करती हुई सीता उनसे कहती कि उनके चरणस्पर्श से सभी शिलाओं के स्त्री बन जाने पर अनेक मुनि और तपस्वी 'सपत्नीक' हो जायेंगे।[10] तुलसी ने सीता के इस व्यंग का उपयोग 'मानस' के २।११७

---

१ हनुमन्नाटक १।१२-१३
२ हनुमन्नाटक १।४९
३ मानस १।२८३-८४
४ " २।१-१०
५ हनुमन्नाटक ३।३
६ " ३।५८
७ " ३।११
८ मानस २।१२४
९ " ३।१५
१० पदकमलरजोभिर्मुक्तपाषाणदेहामलभत पदप्रसूतां गौतमो धर्मपत्नीम् ।

अतिरिक्त अन्य ग्रंथ में किया है।[१]

इस नाटक में सीता के हरण के अवसर पर उनकी करुण दशा और जटायु युद्ध का वर्णन[२] 'मानस' से बहुत साम्य रखता है।[३] 'मानस' के राम की ही तरह[४] इस ग्रंथ के राम भी जटायु से यह प्रार्थना करते हैं कि वह स्वर्ग जाकर दशरथ से सीताहरण' की चर्चा न करे।[५]

इस नाटक का बालि राम के ऊपर आक्रमण करने के लिए जब कुटिल सप्ततालों को भेजता है तब सप्तमय अपने चरण के भार से उनको सीधा कर देते हैं और फिर राम एक ही बाण से उन्हें समाप्त कर देते हैं[६]। 'मानस' के राम सुग्रीव के निवेदन पर उन तालों का उन्मूलन कर के उसे अपनी शक्ति का परिचय देते हैं।[७] तारा का उल्लेख बालि द्वारा अपहृत सुग्रीव-पत्नी के रूप में किया गया है, जो सुग्रीव से 'पुनर्मिलन' के लिए बालि के वध की कामना भी करती है।[८] 'मानस' की तारा बालि की पतिव्रता पत्नी है और वह उसे राम-विरोध करने से रोकती है।[९] इसमें राम बालि-वध के प्रायश्चित स्वरूप अपने अगले जन्म (कृष्ण-जन्म) में बदला लेने के लिए बालि को वरदान भी देते हैं।[१०] 'मानस' में इसका उल्लेख नहीं है।

इसमें जाम्बवान् हनुमान् के रुद्रावतार होने का उल्लेख राम से करता हुआ उनसे सीता-शोध के लिए उनकी स्तुति करने की प्रार्थना भी करता है[११] जिसके बाद हनुमान् राम से अपने पराक्रम का विस्तृत वर्णन करते हैं।[१२]'मानस' में इसका संकेत नहीं है।

इसमें हनुमान् को प्रत्यभिज्ञान देती हुई सीता मनःशिला-तिलक[१३] का भी वर्णन करती है, जो 'मानस' में नहीं है।

विभीषण के समझाने पर इस नाटक का रावण स्पष्ट कहता है कि वह राम के हाथों से अपनी मृत्यु को निश्चित जानकर भी सीता को वापस करने में असमर्थ है।[१४]

त्वयि चरति विशीर्णग्रावविन्ध्याद्रिपादे कति कति भवितारस्तापसा दारवंत ।
१।१९

१ कवितावली। अयोध्या।२८ २ हनुमन्नाटक ४।७।१४
३ मानस ३।२९ ४ मानस ३।३१
५ हनुमन्नाटक ४।१९ ६ हनुमन्नाटक ५।४४ ४१
७ मानस ४।७
८ हनुमन्नाटक ५।२१ ९ मानस ४।७
१० रामः—शुद्धिर्मेविष्यति पुरन्दरनन्दन त्वं मामेव वेदह पातकिनं यथावम् ।
सोऽस्मार्जितं निरपराधिनमाहनिष्यस्यस्मात्पुनर्जनकजा विरहोऽस्तु मा मे ॥ ५।२७
११ हनुमन्नाटक ६।२ के बाद १२ हनुमन्नाटक ६।१६
१३ ,, ६।३३
१४ जानामि सीतां जनकप्रसूतां जानामि रामं मधुसूदनं च ।
वधं च जानामि निजं दशास्यस्तथापि सीतां न समर्पयामि ॥ ७।११

तुलसी ने रावण की इस गर्वोक्ति को उसकी 'हठबैर' से पूर्ण भक्तिभावना में परिणत कर दिया है—

सुर रंजन भंजन महि भारा । जो भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊं । प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊं ॥ ३।२३

इस नाटक का अंगद राम से बालि-वध का बदला लेने के लिये ही रावण को युद्ध के लिए भड़काता है। वह बालि के सम्बन्ध से रावण को भी बन्धु भाव से देखता है।[1] इसका 'रावण-अंगद-संवाद'[2] 'मानस' के संवाद से बहुत मिलता जुलता है।[3]

इसमें रावण कुम्भकर्ण को युद्ध में इसलिए पहले भेजता है कि कहीं वह उसे ही न समाप्त करदे।[4] 'मानस' में इसका संकेत नहीं है।

इसमें सीता को भ्रमित करने के लिए रावण बहुत प्रयत्न करता है। पहले वह राम-लक्ष्मण के कटे हुए नकली सिरों को उसके सामने प्रस्तुत करता है जो थोड़ी देर में आकाश में उड़ जाते हैं।[5] फिर वह अपने नकली कटे हुए १० सिरों को लेकर राम के भेष में सीता के सामने आता है। जब वे उसे राम समझ कर स्वागत के लिये दौड़ती हैं, तब वह नलकूबर के शाप के प्रभाव से अशक्त हो जाता है और वहाँ से भाग जाता है।[6] 'मानस' में रावण के इन प्रपंचों का वर्णन नहीं है।

इसमें रावण के द्वारा प्रेषित प्रभञ्जनी नाम की एक राक्षसी राम-लक्ष्मण का वध करने के लिए रात्रि में चुपचाप उनके शिविर में प्रवेश करती है। अंगद उसे देखते ही मार डालते हैं।[7] 'मानस' में इसका भी उल्लेख नहीं है।

इस नाटक में एक राक्षसी सरमा सीता को 'पुष्पक-विमान' पर बिठा कर राम-रावण-युद्ध के पूर्व ही उन्हें राम के दर्शन करा देती है।[8] एक अन्य अवसर पर वह रावण की आज्ञा से मेघनाद के नागपाश में आबद्ध राम और लक्ष्मण के दर्शन भी सीता को कराती है। उसी समय उनके सामने गरुड़ आकर उन दोनों को (राम लक्ष्मण को) स्वस्थ करते हैं।[9] मानस में केवल राम के ही नागपाश बद्ध होने का वर्णन है और वहाँ उन्हें देखने के लिए सीता को नहीं भेजा जाता है।[10]

इसमें हनुमान् के रणकौशल से दुःखी होकर रावण जब ब्रह्मा पर आक्रमण करता है तब वे नारद को आज्ञा देते हैं कि वे हनुमान् को कहीं अन्यत्र ले जायें

१ हनुमन्नाटक ८।३ २ हनुमन्नाटक ८।४ ३८
३ मानस ६।२० ३२
४ रावण—भीतिप्रारब्धमिदं भुक्त्वा कुंभकर्णं अनर्थविदुषी।
हन्ति चेन्मामतो युद्धे प्रथमं प्रेष्यतामयम् ॥१।१०
५ हनुमन्नाटक १०।१ २ के बाद ६ हनुमन्नाटक १०।१८ २१
७ ,, ११।२ ३ ८ ,, ११।११ के बाद
९ ,, १२।९ १२ १० मानस ६।७३-७४

ताकि रावण सफल हो सके।[1] 'मानस' में ब्रह्मा की इस विवशता का कहीं संकेत नहीं है।[2]

इस नाटक में 'लक्ष्मण-मूर्च्छा' के अवसर पर सुमित्रा को अयोध्या में 'कुस्वप्न' होता है और वह उसकी शान्ति भी करवाती है।[3] 'मानस' में इसका वर्णन नहीं है। 'मानस' के वर्णन के समान[4] इसमें भी 'संजीवनी पर्वत' लिये हुए हनुमान् अयोध्या के ऊपर से जाते हैं और भरत उन्हें बाण से मार कर नीचे गिरा देते हैं।[5] शेष आख्यान में भी दोनों ग्रंथों में बहुत साम्य है किन्तु यहाँ अयोध्या से लौटते समय हनुमान् कालनेमि आदि का वध करते हैं,[6] जब कि 'मानस' में उसका वर्णन उनके प्रस्थान-काल में ही किया गया है।[7]

इसमें सीता की वापसी के बदले में रावण राम से परशुराम का धनुष मांगता है, जिसे देने में राम असमर्थता व्यक्त करते हैं।[8] फिर वह संधि के लिए जब मन्दोदरी से परामर्श करता है तब वह संधि-वार्ता को व्यर्थ बतला कर स्वयं युद्ध में जाने की आज्ञा मांगती है।[9] 'मानस' में यह वर्णन नहीं है। यहाँ राम रावण वध के पश्चात् मन्दोदरी को विभीषण से विवाह करने के लिए परामर्श भी देते हैं,[10] जिसका उल्लेख 'मानस' में नहीं है।

इस नाटक में राम के अयोध्या पहुँचने पर अंगद बालि-वध का बदला लेने के लिए जब राम पर एकदम आक्रमण करना चाहता है[11] तब एक आकाशवाणी से यह सुनकर कि बालि अगले जन्म में राम से अवश्य बदला ले लेगा वह शान्त हो जाता है और राम की स्तुति करने लगता है।[12] 'मानस' का अंगद ऐसा विकार ग्रस्त नहीं है।

इसमें 'सीतापवाद' से लेकर 'राम-स्वर्गारोहण' तक का भी अति संक्षिप्त वर्णन केवल दो श्लोकों में ही किया गया है,[13] जो 'मानस' में नहीं है।

(१०) महानाटक—'हनुमन्नाटक' और 'महानाटक' दोनों में बड़ी समानता है। इन दोनों ग्रंथों को अधिकतर विद्वान् एक ही ग्रंथ मानते हैं क्योंकि दोनों के आधे से अधिक श्लोक समान हैं। 'महानाटक' के भी रचयिता स्वयं हनुमान् माने जाते

---

१ हनुमन्नाटक १३।१२
२ मानस ६।७८।१०१
३ " १३।२१-२४
४ " ६।५८
५ " १३-२४
६ हनुमन्नाटक १३।२५ १२
७ मानस ६।२६।५७
८ " १४।२
९ हनुमन्नाटक १४।४-७
१० " १४।९६ के बाद
११ " १४।७२
१२ आकाशवाण्यमवदेवमहो स बाली बालो हनिष्यति पुनर्भवपुरावतारे।
श्रुत्वा विलोक्य रघुनन्दनमाननाब्जं काव्यमंजलिपुटं स रघामिपूष्ण। १४।७५
१३ हनुमन्नाटक १४।९६-९७

है किन्तु उसके सम्पादक मधुसूदन मिश्र हैं। इस महानाटक में ६ अंक हैं जिनमें 'राम-जन्म' से लेकर 'राम-स्वर्गारोहण' तक का समस्त कथानक प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों के अनेक श्लोक संगृहीत हैं, जिनसे इसकी परवर्तिता स्पष्ट हो जाती है। 'हनुमन्नाटक' से बहुत समानता रखते हुए भी इस नाटक की कुछ अपनी विशेषतायें हैं।

इसमें भरत को उपदेश देते हुये राम उनसे 'शिव भक्ति' करने के लिये विशेष आग्रह करते हैं[1], जिसका 'मानस' में उल्लेख नहीं है यद्यपि वहाँ अन्य प्रसंगों में शिव को पूज्य बतलाते हुए राम उनकी भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ ठहराते हैं।[2]

इसमें 'अहल्योद्धार' का संकेत करता हुआ गुह राम के चरणों में 'मानुषीकरण रेणु' की उपस्थिति की आशंका करता है और इसीलिये नौकारोहण के पूर्व उनके चरणों को धोने का आग्रह करता है।[3] 'मानस' में तुलसी ने इस प्रसंग को इसी आधार पर भक्ति-संवलित कर दिया है—

> मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
> चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
> जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥२।१००

इसमें 'कपट भिक्षु' के वेश में उपस्थित होने पर भी रावण को सीता पहिचान जाती है और भिक्षा के लिए उससे हाथ जोड़ कर क्षमा माँग लेती है।[4] 'मानस' में इस घटना का वर्णन नहीं मिलता है।[5]

इसमें 'सुग्रीव-प्रमाद' के वर्णन में लक्ष्मण के समझाने पर भी सुग्रीव यह कहता है कि वह राम को बिल्कुल नहीं जानता है, किन्तु जब वे उसे धनुष-बाण से धमकाते हैं तब वह अपने प्रमाद के लिए क्षमा माँग लेता है।[6] 'मानस' का वर्णन इससे विभिन्न है।[7]

लंका में सीता-शोध-कार्य करते हुए इस नाटक के हनुमान् रावण के सभी भाइयों स्त्रियों मन्त्रियों, सचिवों और पुत्रों के भवनों की चुपचाप तलाशी लेते हैं, फिर निराश होने पर उन्हें यह आशंका होती है कि रावण के साथ समुद्र पार करते समय, सीता दुःख के कारण कहीं समुद्र में तो नहीं गिर गई।[8] 'मानस' में भी हनुमान् के द्वारा प्रतिभवन-शोध करने का उल्लेख है जिसके मध्य में वे विभीषण

---

१ महानाटक १।१४ २ मानस ६।२-१

३ गुह—मानुषीकरणं रेणुरस्ति ते पादयोरितिकथा प्रथीयसी।
क्षालयामि तव पादपंकजे नाथ दारु दृषदोस्तु का भिदा ॥३।४५

४ महानाटक ३।६४ ५ मानस ३।२८

६ „ ५।१४-१५ ७ „ ४।२०

८ „ ५।१६-१७

के संकेत से सीधे अशोक-वाटिका जाकर सीता के दर्शन करते हैं।[1] वहाँ उनके किसी आशंका का वर्णन नहीं है।

इस नाटक का रावण सीता को प्रलोभन देता हुआ केवल एक कृपादृष्टि के लिए मन्दोदरी आदि १०० रानियों को उसकी सेवा में नियुक्त कर देने की प्रतिज्ञा करता है। वहाँ वह सीता के चरणों पर गिरकर जब हाथों से उन्हें पकड़ भी लेता तब वे उसे बहुत फटकारती हैं।[2] 'मानस' में रावण के प्रलोभन का ही इस प्रकार वर्णन है—

कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मन्दोदरी आदि सब रानी।
तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा ॥५।९

इसमें हनुमान् को विदा करती हुई सीता उन्हें ६ फल देती हैं जिनमें से एक राम के लिए, एक लक्ष्मण के लिए, एक सुग्रीव के लिए एक स्वयं हनुमान् के लिये और शेष दो फल वानर सेना के लिए हैं।[3] मानस में यह फल-वितरण नहीं है।

इस नाटक में 'लंका-दाह' के अवसर पर पानी की पुकार करता हुआ रावण अपने दसों मुखों से समुद्र के दस नाम लेकर चिल्लाता है।[4] सेतुबन्ध के अवसर पर समुद्र को धिक्कारता हुआ[5] और साथ ही आश्चर्य भी प्रकट करता हुआ[6] वह फिर समुद्र के दस नामों का उल्लेख करता है। 'मानस' में वह सेतुबन्ध पर चकित होकर अपने दस मुखों का एक साथ प्रयोग केवल एक बार ही करता है[7]—

बांध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस ॥६।५

इसमें विभीषण अपनी माता निकषा से प्रेरित होकर ही रावण को सीता त्याग के लिए समझाता है।[8] 'मानस' में वह स्वयं राम-भक्त है और अपने हृदय की प्रेरणा से यह कार्य करता है।[9]

इस नाटक में 'रावण-अंगद-संवाद' का वर्णन अत्यन्त विस्तृत है[10] और

---

१ मानस ५।६–८
२ एकोनास्त्र शतीकरावमहिषीरत्नवत्या समन्दोदरी।
सेवार्थं विनियुज्यते च सकलं लंकाधिपत्यम् ते ॥५।४२
३ महानाटक ५।५८ ४ महानाटक ५।६६
५ धिक् त्वां नाम तवाम्बुधि सरिसमपि पानीयमिस्तोयमपि
पाथोनिर्जलमपि पयोविरसमिर्वारीतिभिवारिधि ॥ ६।६२
६ महानाटक ६।६५ ७ मानस ६।५
८ ,, ६।११–४५ ९ ,, ५।३८–४१
१० रे रे रावण हीन दीन कुमते रामोऽपि किं मानुष,

अनेक स्थलों में यह 'मानस' के संवाद से बहुत साम्य रखता है।[१]

इस नाटक की सीता नागपाश में राम को मृतप्राय देख कर अत्यन्त विलाप करती है और वसिष्ठ विश्वामित्र, गौतम च्यवन आदि उन ऋषियों को झूठा कहती है जिन्होंने उनके कभी भी विधवा न होने की भविष्यवाणी की थी।[२] 'मानस' में यह वर्णन नहीं है।

इस नाटक में भी 'सीतापवाद' से लेकर राम-देह-त्याग का भी संक्षिप्त वर्णन किया गया है[३] जिसका 'मानस' में सर्वथा अभाव है।

(११) आश्चर्य चूड़ामणि—इस नाटक के लेखक महाकवि शक्तिभद्र हैं। इसके ७ अंकों में 'शूर्पणखा-आगमन' से लेकर सीता-शुद्धि तक की कथा का वर्णन किया गया है। इसके नाम से ही स्पष्ट है कि यह एक अद्भुत-रस-प्रधान नाटक है। इसमें राम के पास एक अद्भुत मुद्रिका है और सीता के पास भी वैसी ही एक चूड़ामणि है जिसके स्पर्श-मात्र से मायावियों की माया नष्ट हो जाती है और वे अपने असली रूप को ग्रहण कर लेते हैं। इस नाटक की कथावस्तु में नाटककार ने अनेक नवीन योजनायें भी की हैं।

इसमें 'शूर्पणखा-विरूपण' प्रसंग में शूर्पणखा के प्रथम दर्शन से लक्ष्मण पहले कुछ विकारग्रस्त होते हैं फिर अपनी स्थिति सोचकर वे शीघ्र ही सावधान हो जाते हैं।[४] जब शूर्पणखा अनेक तर्क प्रस्तुत करती हुई उनसे प्रणय भिक्षा माँगती है तब वे अपने तपस्वि-व्रत और दासत्व का उल्लेख करके उसे समझाने का प्रयत्न करते हैं।[५] 'मानस' के लक्ष्मण इस अवसर पर केवल अपने दासत्व का ही संकेत करते हैं।[६] इसमें 'राम-शूर्पणखा संवाद' में सीता भी भाग लेती है और वे उसकी उपेक्षा न करने के लिए राम से आग्रह भी करती हैं।[७] 'मानस' की सीता इस अवसर पर मौन है। इसमें शूर्पणखा जब क्रुद्ध होकर लक्ष्मण को पकड़ कर आकाश में उड़ जाती है तब राम उनकी सहायता करना चाहते हैं किन्तु सीता भय के कारण उन्हें रोक लेती हैं। इस पर राम स्वयं को बहुत धिक्कारते हैं। उसी समय लक्ष्मण शूर्पणखा का विरूपण करके सकुशल आ जाते हैं।[८] 'मानस' में शूर्पणखा

किं गंगापि नदी गता सुरगजोऽप्युच्चैःश्रवा किं हयः ।
किं रम्भाप्यबला हृतं किमु पुरी कामोऽपि धन्वी नु किं
भीमोऽयमस्त्रप्रतापविभव किं रे हनूमान्कपि ॥७।११

१ मानस ६।२६
२ महानाटक ६।३१
३ महानाटक ९।१२५-१४८
४ आश्चर्य चूड़ामणि १।६-७
५ आश्चर्य चूड़ामणि १।८-१०
६ मानस ३।१७
७ आश्चर्य चूड़ामणि २।१ के बाद
८ आश्चर्य चूड़ामणि २।९-११

के भयकर रूप के दर्शन-मात्र से सीता के भयभीत होने पर राम की आज्ञा से लक्ष्मण के द्वारा उसके विरूपित किये जाने का उल्लेख है।[१]

इस नाटक में सीता-हरण' के पूर्व राम को कुछ असगुन होते हैं जिनके फलस्वरूप वे अयोध्या पर शत्रुओं के आक्रमण एवं माताओं के स्वर्गवास आदि की आशंका करते हैं।[२] 'मानस' में इसका उल्लेख नहीं है।

इसमें लक्ष्मण राम और सीता को क्रमशः अङ्गुलीयक' और 'आश्चर्य चूड़ामणि' भेंट करते हैं जो उन्हें खरदूषणादि राक्षसों के वध से प्रसन्न ऋषियों से प्राप्त हुई थी। इन उपहारों के स्पर्श-मात्र से मायारूप-धारी राक्षस अपने असली रूप प्राप्त कर लेते हैं।[३] मानस में इन उपहारों का वर्णन नहीं है।

इस नाटक में 'मृग-वध के लिए राम के चले जाने पर 'हा! लक्ष्मण' की ध्वनि सुनकर सीता उन पर किसी विपत्ति की आशंका करती हैं और उनकी सहायता के लिये लक्ष्मण को शीघ्र भेजना चाहती हैं, किन्तु राम की शक्ति में पूर्ण विश्वास होने के कारण जब लक्ष्मण कोई ध्यान नहीं देते हैं तब वह उनकी कुबुद्धि की आशंका करके उन्हें आशिष, गुमार एवं कामुक आदि कह कर फटकारती हैं और वहाँ से चले जाने के लिये विवश कर देती हैं।[४] 'मानस में सीता के ऐसे मर्म-वचनों का संकेत है किन्तु उनका कोई विवरण नहीं दिया गया है।[५]

इसमें सीता-हरण' के लिये एक विचित्र षडयन्त्र है। यहाँ रावण राम का, उसका सारथि लक्ष्मण का और शूर्पणखा सीता का रूप धारण करती है। इसके पश्चात् रावण और सारथि दो रथ लेकर इधर सीता के समक्ष प्रगट होते हैं और उधर शूर्पणखा राम को वंचित करने के लिये उनको मार्ग में रोक लेती है। फिर राम-रूप रावण सीता से कहता है कि इस ऋषि प्रदत्त रथ द्वारा वे लोग शीघ्र अयोध्या पहुँच कर भरत की रक्षा करें क्योंकि वहाँ शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया है। तब सीता निःशंक होकर उसके आकाशगामी रथ में तुरन्त बैठ जाती हैं।[६] मार्ग में इधर जब पृथ्वी पर राम और शूर्पणखा-रूपिणी सीता को देखकर वे उन्हें 'माया' समझती हैं क्योंकि वे सोचती हैं कि जैसे वे असली हैं उसी प्रकार उनके साथ के राम भी (जो वास्तव में रावण हैं) असली हैं, उधर राम भी ऊपर

१ मानस ३।१७
२ राम—आक्रान्ता किंनु वामो भरत इति परैश्चतुरः कोसला मे।
स्वर्गं लोकातिमाराधम जननमुत्रे किंनु माता ममाऽ ॥३।१२
३ मणिर्मपुङ्केसरितमङ्गुलीयकं कसपोतसितमपि धारयन्ति ये।
समवाप्य तानवयमाशु मायिनः प्रकृतिं व्रजन्ति सहसा दयाधरा ॥३।१०
४ आश्चर्य चूड़ामणि ३।२८–३१ के बाद ५ मानस ३।२८
६ ,, ३।११–१२ के बाद

आकाश में सीता और रावण-रूप राम को देखकर उन्हें 'माया' ही समझते हैं क्योंकि वे भी सोचते हैं कि जैसे वे असली हैं उसी तरह से उनके साथ की सीता (जो वास्तव में शूर्पणखा है) असली हैं। इस प्रकार रावण वहाँ राम के समक्ष ही 'सीता-हरण' करने में सफल हो जाता है।[1]

इधर जिस समय लक्ष्मण राम-बाण से आहत मारीच को जो राम-रूप धारण कर लेता है, राम समझ कर अत्यन्त विलाप करते हैं[2] उसी समय राम आकर उन्हें सांत्वना देते हैं किन्तु वे उन्हें राक्षस समझ कर खड्ग निकाल लेते हैं।[3] फिर राम अपनी मुद्रिका दिखला कर उन्हें आश्वस्त करते हैं और जब वे मारीच का स्पर्श करते हैं तब वह अपने असली राक्षस-रूप को प्राप्त कर लेता है।[4] इस दृश्य को देख कर सीता रूपिणी शूर्पणखा घबड़ाकर रोने का बहाना करती हुई जब भागना चाहती है तब राम उसके आँसू पोंछने के लिये उसे पकड़ लेते हैं, उसी समय मुद्रिका के प्रभाव से वह भी अपने असली रूप में प्रगट हो जाती है, फिर राम के अभयदान देने पर वह सारा षड्यन्त्र स्पष्ट कर देती है।[5] उधर सीता हरण' के पश्चात् आकाश मार्ग में ही सीता के स्पर्श का आनन्द प्राप्त करने की कामना से रावण जब उसकी वेणी को ग्रहण करता है, तब वहाँ सभी 'आश्चर्य चूड़ामणि' के प्रभाव से वह अपने वास्तविक रूप को प्राप्त कर लेता है फिर तो सारथी भी स्वयं अपने असली रूप में आ जाता है।[6] उस समय सीता अपने हरण की सत्यता को जान कर करुण विलाप करती हैं। मानस' में यह घटना-वैचित्र्य नहीं है।

सीता-रावण-संवाद' में इस नाटक का रावण सीता को अनेक प्रलोभन देता हुआ जब उनके चरणों पर अपना सिर रख देता है जिसे वे ठुकरा देती हैं तब रावण क्रुद्ध होकर उन पर खड्ग से प्रहार करना चाहता है किन्तु मन्दोदरी उसे रोक लेती है।[7] मानस' में इस घटना का भी उल्लेख नहीं है।

इस नाटक में राम के विरह में सीता के विलाप और प्रलाप का बड़ा करुण वर्णन है। वे चन्द्रमा सप्तर्षि और अरुन्धती नक्षत्र आदि को उपालम्भ देती हुई राम का समाचार पूछती हैं फिर वे अत्यन्त दुःखी होकर आत्महत्या का निश्चय करती हैं उसी समय हनुमान् उन्हें रोक लेते हैं।[8] 'मानस' में उनके ऐसे उन्मार

---

१ आश्चर्य चूडामणि ३।३१ के बाद २ आश्चर्य चूडामणि ३।३५-३६
३ ' ३।३७ ४ " ३।३८
५ ' ३।३९ के बाद ६ ४।४-६ के बाद
७ ' ५।१०-१२ के बाद
८ सीता—एदे एदे दसमो सत्तदि, अमं णु ममअं अदिट्ठो एसा णु भअवदी अरुन्धई देवी। ममअदि कोमाम अमं ववसाओ सम्पहा तव दंसणपज्जं अण्णहा करिस्सम्।
हनुमान्—स्वामिनि अहं तावत्प्रतिबध्नामि। (६।१५ के बाद)

का वर्णन नहीं है।

इसमें 'सीता-हनुमान-संवाद' में 'राम-विरह' का भी बड़ा मार्मिक और विस्तृत वर्णन किया गया है।[1] जो 'मानस' में अत्यन्त संक्षिप्त किन्तु प्रभावशाली है।[2] यहाँ हनुमान् सीता को मुद्रिका के अतिरिक्त 'मल्लिका-वाक्य' का एक अन्य 'अभिज्ञानवचन' भी देते हैं और सीता प्रत्यभिज्ञान के रूप में केवल चूड़ामणि देती है।[3] 'मानस' में मल्लिकावाक्य का उल्लेख नहीं है और सीता के प्रत्यभिज्ञानों में 'जयन्त-कथा' का वर्णन अधिक है।[4]

इस नाटक में रावण वध के पश्चात् जब सीता राम के दर्शन करती है तब अनसूया के वरदान से वे पूर्ण स्वस्थ और अलंकृत हो जाती हैं[5] जिसे उनके विरहावस्था के प्रतिकूल समझ कर राम उनसे मुँह फेर लेते हैं। लक्ष्मण हनुमान् और सुग्रीव आदि भी जिन्होंने उन्हें राम-दर्शन के पूर्व विरहिणी-रूप में देखा था इस अवस्था में उन्हें पहचान नहीं पाते हैं और तब वे उन्हें मायावी समझकर उचित दण्ड देने के लिये राम से प्रार्थना करते हैं[6] तब सीता क्षुब्ध होकर अग्नि में प्रवेश करती है। थोड़ी देर बाद अग्निदेव उनको सुरक्षित लेकर प्रकट होते हैं।[7] उसी समय नारद मुनि आकर राम को इन्द्रादि देवताओं एवं मनु आदि पितरों के दर्शन कराते हैं और सीता के पातिव्रत्य प्रताप का वर्णन भी करते हैं।[8] अनसूया के वरदान का उल्लेख करके वे राम की शंका भी दूर करते हैं। फिर राम सबके आग्रह से सीता को ग्रहण कर लेते हैं।[9] 'मानस' में न तो अनसूया के वरदान का उल्लेख है और न नारद मुनि ही इस अवसर पर दिखाई पड़ते हैं।[10]

(१२) अद्भुत-दर्पण—इस नाटक के लेखक महादेव कवि हैं। इसके १० अंकों में 'अंगद-दौत्य' से लेकर 'रामाभिषेक' तक की कथा का वर्णन है। इसके भी नाम से स्पष्ट है कि यह एक अद्भुत रस प्रधान नाटक है। इसके नामकरण का आधार एक ऐसा विचित्र दर्पण है जिसमें 'टेलीविजन' की तरह तीन योजन (२४

१ आश्चर्य चूड़ामणि ६।८-११ २ मानस ५।१५
३ " ६।१८ ४ " ५।२७
५ राम—सुग्रीव पश्यैतामी त्वयादृष्टपूर्वं विरहकार्शिताम् ।
हरिचन्दनमनुलिप्तौ पयोधरौ कुसुमाचितं मूर्धजं वेषवासनम् ।
वहन प्रसाधितेव घोरसमरे विरहक्षाम वहते पतिव्रता ॥७।२९
सीता—(आत्मगतं) इदि अणसूआए अणुग्गहो वि मे दाणिं बाधो संवुत्तो ।
६ आश्चर्य चूड़ामणि ७।१८ ७ आश्चर्य चूड़ामणि ७।१८-१९
८ " ७।२१-२७ ९ " ७।३०
१० मानस ६।१०९

भीत) के भीतर की सारी वस्तु और क्रियायें दिखलाई पड़ जाती हैं।[1] यह दर्पण रावण के एक मुकुट में जड़ा हुआ था जो सुग्रीव के चरम प्रहार से कभी पृथ्वी पर गिर पड़ा था और सम्पाति ने उसमें से इस मणि को निकाल कर विभीषण को दे दिया था जिसने उसे राम को समर्पित कर दिया था।[2] राम और लक्ष्मण इसी दर्पण की सहायता से लंका की सारी योजनाओं को घटित होने से पूर्व ही जान लेते हैं।

कथा-वस्तु की दृष्टि से इसमें कुछ विशेषतायें हैं—

इसके प्रथम चार अंकों के विस्तार में शम्बर नामक एक राक्षस की माया की विचित्र योजनायें हैं। वह रूप-परिवर्तन में विशेष रूप से दक्ष है और कभी 'दधिमुख' वानर बन कर या कभी अंगद बन कर राम-दल में बड़ी अव्यवस्था फैलाता है। 'दधिमुख-रूप' में वह लक्ष्मण के कान में कहता है कि 'दूत-कर्म' के लिये गया हुआ अंगद वहीं रावण से मिल गया है और राम से बालि वध का बदला लेने तथा स्वयं कपिराज्य प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील है।[3] उसकी चेष्टाओं से उस पर सन्देह करके जाम्बवान् उसे बन्दी बना लेता है किन्तु वह (शम्बर) असली दधिमुख को देख कर अवसर पाकर भाग जाता है।[4] वह पुनः 'दधिमुख' बन कर सुग्रीव का कटा हुआ नकली सिर लेकर राम-लक्ष्मण को दिखलाता है और उसे अंगद का कुकृत्य कहकर उनका क्रोध उद्दीप्त करता है।[5] इसके पश्चात् वह स्वयं अंगद बन कर और दधिमुख का कटा हुआ नकली सिर लेकर जब राम लक्ष्मण के समक्ष उपस्थित होता है[6], तब प्रहस्त राक्षस उसे सचमुच अंगद समझ कर पकड़ ले जाता है।[7] इसके पश्चात् असली सुग्रीव के आने पर लक्ष्मण उसे मायावी समझ कर जब उस पर प्रहार करना चाहते हैं तब राम उन्हें रोक कर सुग्रीव की रक्षा करते हैं।[8] फिर सुग्रीव की आज्ञा से जाम्बवान् प्रहस्त और शम्बर दोनों को तुरन्त बन्दी बना लेते हैं किन्तु राम के कहने पर प्रहस्त को तो मुक्त कर देते हैं और शम्बर को युद्ध की समाप्ति तक किष्किन्धा की एक गुहा में बन्द करा देते हैं।[9] मानस में इस शम्बरी माया का कहीं भी संकेत नहीं है।

इसमें मेघनाद के नागपाश से राम और लक्ष्मण को छोड़कर सभी लोग मूर्च्छित हो जाते हैं फिर राम 'महा गरुड़ास्त्र' के प्रयोग से सबको स्वस्थ करते

---

१ प्रतिफलति यत्र सर्वं वस्तु यथा योजनान्तरितात् ।
तदतिरिक्तमात्र सर्वां क्रिया पुरुषमणिरपि पूरितम् ॥१।२१

२ अद्भुत दर्पण १।२३–२४ ३ अद्भुत दर्पण १।२६ के बाद
४ " १।२८ २।१ ५ " २।७ के बाद
६ " ३।८–१० ७ " ३।१४ के बाद
८ " ३।१५–१८ ९ " ४।४–७ के

है[१], जबकि 'मानस' में स्वयं राम ही 'नागपाशबद्ध' होते हैं और गरुड़ की सेवा से स्वस्थ होते हैं।[२]

इस नाटक में मास्यवान् राम आदि चारों भाइयों और सीता को 'विष्णु के पाँच अंश' कहता है।[३] 'मानस' के अनुसार राम विष्णु हैं, भरतादि उनके अंश हैं और सीता उनकी 'परमशक्ति' हैं।[४]

'अद्भुत-दर्पण' की सहायता से इस नाटक में राम और लक्ष्मण रावण मन्दोदरी-संवाद' सुन कर उनके कई गुप्त भेद जान लेते हैं कि रावण मन्दोदरी के उस प्रस्ताव को ठुकरा देता है जिसमें वह राम को 'माया-सीता' देकर उनसे सन्धि कर लेने का आग्रह करता है कि वह सीता प्रेम के कारण ही अब तक राम की उपेक्षा करता रहा है, कि वह 'रम्भाबलात्कार' के फलस्वरूप प्राप्त नलकूबर के शाप के कारण 'अकामा' सीता पर बल प्रयोग नहीं कर सकता है अन्यथा उसका सिर सहस्रधा फट जायगा, कि वह राम-रूप धारण करके सीता को वंचित करने में असमर्थ हो चुका है और मन्दोदरी आदि उसकी रानियाँ भी उसे रिझाने के लिये सीता रूप धारण करने में असफल हो चुकी हैं।[५] 'मानस' में यह चर्चा नहीं है। इसी दर्पण की सहायता से राम और लक्ष्मण सरमा के द्वारा सीता के मनोरंजनार्थ आयोजित एक 'माया-नाटक' भी देखते हैं जिसमें उनका और रावण का अभिनय किया जा रहा है। रावण और मन्दोदरी भी छिपे हुये इस नाटक को देख रहे हैं[६] और वे चारों लोग बीच-बीच में यथा स्थान टीका टिप्पणी भी करते जाते हैं। 'मानस' में इसका संकेत नहीं है।

'राम रावण-युद्ध' में 'मानस' के रावण की तरह[७] इस नाटक का रावण भी अपनी माया से असंख्य-रूप होकर राम-दल पर आक्रमण करता है।[८] यहाँ राम के भी असंख्य रूप होकर उस पर आक्रमण करने का उल्लेख किया गया है, जो 'मानस' में नहीं है।

इस नाटक का मय राक्षस राम की लंका विजय को निष्फल बनाने के विचार से उनकी अनुपस्थिति में उनका रूप धारण करके सीता को 'परगृहवास' के कारण कटुवचन कहता है[९] जिससे क्षुब्ध होकर वे अग्नि में प्रविष्ट हो

---

१ अद्भुत दर्पण ४।१६ २ मानस ६।७४

३ एकस्त्वतुर्धा जातो भरतस्तांश पंचमो ह्ययम्।
सर्वनाशाय सीतेति सम्मोहयति रावणम्॥१।११

४ मानस १।१८७ ५ अद्भुत दर्पण ६।११ ४२२,२६,७।४

६ अद्भुत दर्पण ७।१ के बाद ७ मानस ६।६६

८ " ८।३-४ ९ अद्भुत दर्पण १०।८

जाती है[1] किन्तु उनको जलते न देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग आश्चर्य प्रकट करते हैं। उसी समय नेपथ्य से 'सीता शुद्धि' की घोषणा होती है जिसमें ऋषि देवगण और दशरथ भी भाग लेते हैं।[2] मानस' में यह प्रसंग नहीं है किन्तु शेष विवरण समान है।[3]

इसमें इन्द्रादि के वरदान से युद्ध में मृत सभी वानर पुनर्जीवित हो जाते हैं और उनके लुप्त एवं अपहृत समस्त अंग भी यथास्थान स्वयं जुड़ जाते हैं।[4] 'मानस' में इस अवसर पर इन्द्र की केवल सुधावृष्टि का उल्लेख है—

सुधा बरषि कपि भालु जियाए। हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए॥ ६।११४

इस नाटक के 'रामाभिषेक' में विभीषण सुग्रीव और गुह अपनी-अपनी पत्नियों और बान्धवों के साथ सम्मिलित होते हैं।[5] मानस' के 'अभिषेक' में केवल विभीषण, सुग्रीव और कुछ चुने हुए वानर सेनापति ही भाग लेते हैं। वहाँ उनके साथ न तो उनकी पत्नियाँ हैं और न अन्य बांधव ही।[6]

(११) मैथिली कल्याण—इस नाटक के रचयिता कवि हस्तिमल्ल हैं। इसके ५ अंकों में राम और सीता के 'पुष्प-वाटिका-मिलन' और विवाह का ही वर्णन किया गया है। पहले चार अंकों में केवल 'पूर्व-मिलन' का विस्तृत शृंगारिक वर्णन है, जिसमें राम और सीता को परस्पर मिलन और संवाद के तीन अवसर मिलते हैं किन्तु नाटकीय कारणों से उनको शीघ्र ही पृथक हो जाना पड़ता है। नाटककार ने उनके ऐसे वियोग और उसके उपचार का बड़ा सरस, रोचक एवं अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण किया है। अन्तिम अंक में सीता-स्वयंवर धनुर्भंग और राम-सीता विवाह के कुछ प्रसंग प्रस्तुत किए गए हैं। कथानक की विशेषता के दृष्टिकोण से इसमें अनेक उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं।

इस नाटक के 'पुष्प-वाटिका' प्रसंग में सीता के 'सूना सूसने' की घोषणा सुनकर उन्हें छिपे-छिपे देखने के लिए राम वहीं पर स्थित 'कामदेव भवन' में पहुँच जाते हैं।[7] संयोग से सीता और उनकी सखी भी वहीं आ जाती हैं। सीता राम को 'कामदेव की ही मूर्ति' समझकर प्रणाम करती हैं और उनकी सखी उनके निमित्त 'अनुरूप वर' की प्रार्थना भी करती है, किन्तु उनकी मुद्रिका में राम-नाम पढ़कर

---

१ मयाग्यरयोपूहनासवोपत्तांजामुपस्तेन रघूहेन।
त्यक्ता समर्प महतो जनस्य त्वमरयहो देहमिव हुताशे॥१०।६

२ अद्भुत दर्पण १०।१० १२ १५ १७-२१ ३ मानस ६-१०८-१०९

४ तद्‌यामापि हृताग्यपि छिन्नचर्मस्तान्यपि यथापदे
स्थासु स्वास्थमितोऽपि मूर्तिषु यथास्थानं मिलन्ति स्वयम्॥ १०।२४

५ अद्भुत दर्पण १०।२९ ६ मानस ७।१०—१२

७ मैथिली कल्याण १।११ के बाद

वह उन्हें पहिचान लेती है और सीता से उनका परिचय भी कराती है। इससे दोनों परस्पर आकृष्ट होते हैं। उसी समय नेपथ्य से अन्य सखियों का कोलाहल सुनकर सीता विवश होकर चली जाती हैं।[1]

सीता के इस वियोग से क्षुब्ध होकर[2] दूसरे दिन जब राम वहीं पास के 'माधवी-कुंज' में अपने विरहोपचार की अनेक योजनायें करते हैं,[3] तब संयोग से सीता वहीं आ जाती है और राम प्रेमवश उसका हाथ भी पकड़ लेते हैं। उसी समय नेपथ्य से प्रदोष' की सूचना पाकर सीता वहाँ से चली जाती है और दोनों का फिर वियोग हो जाता है।[4]

तीसरे दिन सीता की एक 'काम-दूती' राम के समीप आकर सीता की विरह-दुर्दशा का करुण वर्णन करती है[5] और उनसे 'संकेतस्थल' पर मिलने के लिए राम से प्रार्थना भी करती है।[6] जब राम वहाँ पहुँचकर सीता के मनोरंजन का कुछ प्रयत्न करते हैं तब एक चेटी आकर सीता को उनकी माता का आमंत्रण बतला कर ले जाती है। इस प्रकार सीता के चले जाने से उनका यह मिलन फिर अपूर्ण रह जाता है।[7] 'मानस' का यह प्रसंग बड़ा मर्यादित है जहाँ राम और सीता के परस्पर दर्शन और आकर्षण को छोड़कर संवाद, मिलन एवं विरहोपचार आदि का कोई वर्णन नहीं है।[8]

इस नाटक के धनुर्भंग प्रसंग में राम के द्वारा धनुर्भंग करने पर असफल राजाओं के द्वारा विद्रोह की कुछ चेष्टा करने और उसी समय 'आकाशवाणी' से राम के ईश्वरावतार होने की घोषणा सुनकर शान्त हो जाने का वर्णन है।[9] यहाँ जनक और लक्ष्मण भी इस घोषणा पर चकित होते हैं।[10] मानस में राज-विद्रोह का वर्णन तो है[11] किन्तु 'आकाशवाणी' का कोई संकेत नहीं है। वहाँ उस अवसर पर परशुराम के आगमन से ही वे विद्रोही राजा लोग स्वयमेव संकुचित हो जाते हैं।[12]

(१४) उन्मत्त राघव—इस एकांकी नाटक के रचयिता भास्कर कवि हैं।

---

१ मैथिलीकल्याण १।२६ के बाद

२ राम —तन्मया मम संकल्पास्तन्मयं मम चिन्तितम्।
तन्मयानि ममाक्षीणि तन्मयं ममजीवितम् ॥ २।७

३ मैथिलीकल्याण २।२१ २८ ४ मैथिलीकल्याण २।२८ ३६

५ यद्यपि नमिष्यति भवान् भवदागमनोत्सव प्रयोजाय।
स्पर्शितुमपि न क्षमते वामाक्ष्या वाममप्यक्षि ॥ ३।४२

६ मैथिलीकल्याण ३।४२ के बाद

७ मैथिलीकल्याण ४।८ के बाद १४ ८ मानस १।२२७-२३७

९ मैथिलीकल्याण ५।१७ के बाद, ४४ ४५

१० सकलमपो मनकरच —(श्रुत्वा) कथमसौ चरमदेहधारी पुरुषोत्तम. ॥ ५।५४ के बाद

११ मानस १।२६६

१२ मानस १।२६८

इसमें सीता से सम्बन्धित राम के प्रेम का चित्रण करने के लिए एक नवीन प्रसंग की उद्भावना की गई है जो इसकी मौलिकता है। इसमें स्वर्णमृग के वध के लिए राम और लक्ष्मण दोनों ही साथ चले जाते हैं फिर सीता समीप के कुंजों में फूल तोड़ती हुई एक ऐसे स्थल पर पहुँच जाती है जहां दुर्वासा के शाप से वह 'मृगी' हो जाती है।[1] 'मृगवध' के पश्चात् लौट कर राम आश्रम में सीता को न पाकर अनेक मार्मिक कार्य करते हैं और विरह-कातर होकर विविध विलाप और प्रलाप करते हैं।[2] उसी समय अगस्त्य मुनि अपनी समाधि से सीता के रूप परिवर्तन को जानकर उनको शाप-मुक्त करते हुए राम के समीप आ जाते हैं और सारा विवरण बतलाते हैं।[3] 'मानस' में 'मृगवध' के लिए केवल राम जाते हैं और वहां ऐसे 'दुर्वासा शाप एवं 'अगस्त्य प्रलाप' का कोई संकेत नहीं है।

(१५) दूतांगद—सुभट कवि द्वारा निर्मित इस एकांकी नाटक में भवभूति और राजशेखर आदि अनेक कवियों के चुने हुए बहुत से श्लोक संग्रहीत कर लिए गए हैं। इसमें रावण की सभा में अंगद के दूत कर्म से लेकर राम के 'लंका-त्याग' तक का कथानक मिलता है जिसमें कुछ अपनी विशेषतायें हैं।

इसमें मन्दोदरी से संवाद करता हुआ रावण 'सीताहरण' को अपनी पहली भूल, उनको पहले ही प्रत्यर्पण न करने को दूसरी भूल और अब युद्धारम्भ के समय उनके प्रत्यर्पण के विचार को तीसरी भूल कह कर युद्ध को अनिवार्य बतलाता है।[4] 'मानस' में उसकी यह अपराध स्वीकृति नहीं है।

इसमें 'अंगद-रावण-संवाद' के समय एक माया मैथिली (नकली सीता) कहीं से आकर रावण की गोद में बैठ जाती है और उससे प्रेमालाप करती है, जिसे देखकर अंगद को बड़ा विस्मय और क्षोभ भी होता है[5] किन्तु उसी समय एक राक्षसी आकर सीता के द्वारा आत्महत्या के प्रयत्न की सूचना देती है जिससे सारा रहस्य खुल जाता है।[6] 'मानस' में माया मैथिली की कोई ऐसी योजना नहीं है।

(१६) कुशलवोदय—यह नाटक दलविलास सूरी के द्वारा विरचित संयोजित और संपादित है। इसके ६ अंकों में राम के अभिषेकोत्तर चरित का वर्णन किया गया है जो 'मानस' का विषय नहीं है।

---

१ उन्मत्तराघव १।६ के बाद २ उन्मत्तराघव १।१ ११

३ अगस्त्य—अयमेव शापो जानकीमस्पृशत्। अहं समाधिना तां जानकी
निरीक्ष्य तत्क्षणमेव शापान्मोचयित्वा भवदन्तिकमनयम्।
(उन्मत्तराघव। ४ के बाद)

४ दूतांगद।१८ ५ दूतांगद। २७ के बाद १०

६ राक्षसी —मुक्त्वा रघुपतिं किंचिदनिष्टं देव मैथिली।
विधातुं सर्वदु. नगाशापान बोधति॥ ११॥

(१७) अन्य नाटक—डा० कामिल बुल्के ने अपने ग्रंथ में व्यास मिश्र के 'रामाभ्युदय' और रामभद्र दीक्षित के जानकी-परिणय, दो नाटकों की कथावस्तु का अति संक्षिप्त संकेत किया है।[1] इनके अतिरिक्त उन्होंने उदार राघव, छलित रामायण, कृत्यारावण, मायापुष्पक, स्वप्न-दशानन, अभिनव राघव रघुविलास राघवाभ्युदय एवं रामाभ्युदय आदि प्राचीन किन्तु अप्राप्य नाटकों का नामोल्लेख भी किया है[2] जिनके सम्बन्ध में अधिक विवरण प्राप्य नहीं है।

३ श्लेष काव्य

राम-कथा के साथ साथ अन्य कथा या कथाओं को भी एक ही काव्य में निबद्ध करने की चेष्टा ने अनेक श्लेष-काव्यों को जन्म दिया जिनमें राघव-पाण्डवीय (प्रथम) राघव-पाण्डवीय (द्वितीय) राघव नैषधीय, राम-चरित, राघव-पांडव यादवीय आदि उल्लेखनीय हैं।

(१) राघव पाण्डवीय (प्रथम)—इस महाकाव्य के लेखक 'धनंजय' ने इसके १८ सर्गों में रामायण और महाभारत' दोनों की कथाओं का श्लेष के द्वारा समन्वय किया है। एक ओर 'अयोध्या-वैभव' से लेकर 'राम राज्य' तक रामायण का कथानक है, तो दूसरी ओर उन्हीं श्लोकों में हस्तिनापुर-वैभव' से लेकर 'युधिष्ठिर राज्य' तक महाभारत की कथा है। कथावस्तु की दृष्टि से इसमें अनेक विशेषतायें मिलती हैं जो या तो कवि-प्रकृति की स्वतन्त्रता के कारण हैं अथवा श्लेष-काव्य द्वारा आरोपित परतन्त्रता के कारण।

इसमें 'मानस' की तरह[3] 'पुत्रयज्ञ' का वर्णन नहीं है किन्तु सभी रानियां स्वाभाविक ढंग से गर्भ धारण करती हैं।[4]

इसमें कैकेयी के एक ही वर का उल्लेख है और उसका भी विवरण नहीं दिया गया है।[5] 'मानस' में यह प्रसंग अति विस्तृत है।[6] इसमें शूर्पणखा-विरूपण के प्रसंग में शूर्पणखा के द्वारा लक्ष्मण पर आक्रमण करने का उल्लेख है[7] किन्तु उसके नाक-कान काटे जाने का यहां कोई वर्णन नहीं है। मानस का वर्णन इससे भिन्न है।[8] इसमें बालि-वध से प्रसन्न होकर सुग्रीव राम को अपनी कल्याणी कन्या समर्पित कर देता है[9] जिसका 'मानस' में संकेत भी नहीं है। वहां लक्ष्मण से

---

१ रामकथा (उत्पत्ति और विकास), पृ० १९८
२ " " पृ० १९९
३ मानस १।१८९ ४ राघवपाण्डवीय ३।३
५ राघवपाण्डवीय ४।१४ ६ मानस २।२१।१७
७ " ५।१० ८ " ३।१७
९ सुग्रीव ददाति पराक्रमेण कन्यां वैकुण्ठ परिक्षुपित-पुमां सुमद्राम्।
कल्याणीमबहुमतो विवाहवेऽस्मै दिशमकमत तथा धर्मपाय ॥ ६।५२

'कोटिशिला' उठवा कर सुग्रीव उनकी परीक्षा लेते हैं और उससे राम की शक्ति का अनुमान करते हैं।[1] 'मानस' में यह बल-परीक्षा भी नहीं है।

इसमें समुद्र-तट पर पहुँचते ही वानर सेना के शृंगार विहार और जल क्रीड़ा आदि का अतिविस्तृत वर्णन है,[2] जो मानस' में नहीं है।

'मानस' के समान ही[3] इसमें भी लक्ष्मण-मूर्छा के प्रसंग में हनुमान् के द्वारा 'द्रोणाचल' लाने और अयोध्या में भरत से मिलने का वर्णन है।[4]

(२) राघव-पाण्डवीय (द्वितीय)—इस काव्य के लेखक कविराज माधव भट्ट हैं जो सुबन्धु बाणभट्ट और स्वयं के अतिरिक्त किसी को भी वक्रोक्तिनिपुण नहीं मानते हैं।[5] इन्होंने भी रामायण-कथा और महाभारत-कथा को इस काव्य में बड़ी दक्षता के साथ श्लिष्ट रूप में निरूपित किया है। प्रथम काव्य से इस काव्य का आकार लघु होने पर भी यह अधिक प्रसिद्ध है। इसके १३ सर्गों में 'दशरथ-मृगया वर्णन' से लेकर 'रामाभिषेक' तक की कथा है जिसकी कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं—

इसमें 'दशरथ-मृगया' और श्रवण-कथा का अति विस्तृत वर्णन किया गया है,[6] जो मानस' में नहीं है। इसमें 'रामाभिषेक से पूर्व दशरथ के द्वारा एक अश्व मेध-यज्ञ की घोषणा का भी उल्लेख है[7] जिसका भी कोई संकेत 'मानस' में नहीं है। इस काव्य में राम के वनवास-काल में अनरण्य मुनि के द्वारा उन्हें धनुर्विद्या की शिक्षा देने का उल्लेख है।[8] मानस' का कथन इससे भिन्न है। इसमें मेघनाद के नागपाश से राम और लक्ष्मण दोनों आबद्ध हो जाते हैं जब कि 'मानस' में उससे केवल राम ही प्रभावित होते हैं।[9] इसमें इसी प्रसंग में राम के ईश्वरत्व का उल्लेख करते हुए उन्हें 'मनुष्य-मूर्ति' और 'पुराण-पुरुष' कहा गया है।[10]

(३) राघव-नैषधीय—राम और नल के चरित्र को श्लेष द्वारा वर्णित करने वाला यह एक-मात्र काव्य है। इसके लेखक हरदत्त सूरि हैं। इसके प्रथम सर्ग में राम-जन्म से लेकर राम-स्वर्गारोहण तक की कथा है और अन्तिम द्वितीय सर्ग में केवल 'षड्ऋतु वर्णन' है। यह सर्ग अपूर्ण है और इसमें श्लेष निर्वाह भी नहीं है।

कथावस्तु की दृष्टि से इसकी कुछ विशेषतायें हैं।

---

१ राघव-पाण्डवीय १२।४४ २ राघव-पाण्डवीय १३।१२ १२
३ मानस ६।५५ ६१ ४ " १०।७२
५ राघव-पाण्डवीय ३।४१ ६ राघव-पाण्डवीय ३।१ ४६
७ " ३।१० ८ " ४।२४
९ " ८।११ मिलाइये 'मानस ६।७१
१० जिघांसया यस्य शरासितानि वलानि भग्नानि निरीक्षमाण ।
मनुष्य-मूर्ति पुरुष पुराणो महीतलं मग्नुबलात्मगाम ॥ ८।१२

'राम यौवराज्य' के पूर्व इसमें नारद के आने और राम से मिलने का वर्णन है,[१] जो 'मानस' में नहीं है।

इस काव्य में राम के द्वारा किसी तालाब में 'नलिनी' के दर्शन का और उसके रूप-सौंदर्य का विस्तृत वर्णन किया गया है, जो राम-कथा की दृष्टि से अनावश्यक है किन्तु नल-कथा की दृष्टि से अनिवार्य है क्योंकि इसी व्याज से वहाँ दमयन्ती के सौन्दर्य का विस्तृत निरूपण किया गया है।[२]

इसमें एक ही श्लोक में रावण कुम्भकर्ण मेघनाद, अतिकाय अकम्पन देवान्तक नरान्तक आदि सभी राक्षसों के सपरिवार वध का वर्णन किया गया है।[३] इससे स्पष्ट है कि यह इसका मुख्य प्रतिपाद्य नहीं है, जबकि 'मानस' की मूलकथा में इसका प्रमुख स्थान है। इसमें अन्तिम सात श्लोकों में 'सीतापवाद' से लेकर 'राम स्वर्गारोहण' का भी संक्षिप्त वर्णन है[४] जो 'मानस' में नहीं मिलता है।

(४) रामचरित—इस काव्य के लेखक सन्ध्याकरनन्दी हैं। इसके चार सर्गों में कवि ने राम-कथा के साथ-साथ अपने समसामयिक राजा रामपाल का भी वर्णन किया है, जिसने अपने बड़े भाई राजा महीपाल के द्वारा खोये हुए 'वारेन्द्रीनगरी' के राज्य को पुनः प्राप्त किया था। इसमें 'वारेन्द्री' और वैदेही के हरण एवं पुनर्ग्रहण की समान कल्पना से प्रभावित होकर कवि ने अपने श्लेष के चमत्कार को प्रदर्शित किया है।

इसमें राम-जन्म' से लेकर 'राम महाप्रयाण' और लवकुश चरित्र का भी वर्णन किया गया है। कथा की दृष्टि से इसमें कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है।

(५) राघव पाण्डव-यादवीय—रामायण महाभारत और भागवत तीनों ग्रंथों की कथाओं का एक साथ श्लेष द्वारा वर्णन करने वाला तीन सर्गों का यह काव्य, श्लेष-पद्धति का चरम अध्यवसाय है। इसके लेखक चिदम्बर कवि हैं। यह काव्य अभी तक अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिपि मद्रास एवं तंजोर के पुस्तकालयों में है।[५]

४ विलोम काव्य

विलोम पद्धति के काव्यों में अक्षरों को साधारण क्रम (बाईं ओर) से पढ़ने पर एक अर्थ निकलता है तथा उलटे क्रम (दाईं ओर) से पढ़ने पर दूसरा अर्थ निकलता है। ऐसे काव्यों में कवि के काव्य कौशल की पराकाष्ठा के दर्शन होते हैं, जो उसे अमरत्व प्रदान करने में पूर्ण समर्थ हैं। 'रामकृष्ण विलोम काव्य' 'यादव राघवीय' और 'राघव-यादवीय' इसी प्रकार के विलोम काव्य हैं।

---

१ राघव नैषधीय १।११ १७　　　　२ राघव नैषधीय १।९२-९८
३ 　　„　　 १।१०८　　　　　　४ 　　„　　 १।१२०-१२६
५ श्री बलदेव उपाध्यायकृत 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' के आधार पर पृ० २९८

(१) रामकृष्ण विलोम काव्य—श्री सूर्यक कवि द्वारा विरचित इस काव्य में कुल ३६ श्लोक हैं। इसकी टीका भी स्वयं लेखक के द्वारा ही लिखी हुई है। इस काव्य में प्रत्येक श्लोक का पूर्वार्ध ही विलोम पद्धति से लिखे जाने पर उसका उत्तरार्ध बन जाता है। इस प्रकार पूर्वार्ध में जहाँ 'रामचरित' का वर्णन किया गया है, वहीं उत्तरार्ध में 'कृष्ण चरित' का वर्णन मिलता है। इसमें 'विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण याचना' से लेकर 'रावण-वध' तक का कथानक वर्णित किया गया है। कथा की दृष्टि से इसमें निम्नलिखित विशेषतायें हैं—

'मानस' के समान ही इसमें भी राम के ईश्वरत्व का उल्लेख करते हुए उन्हें 'तारक परब्रह्म' कहा गया है।[1] वहीं सीता को 'साक्षात् लक्ष्मी' का रूप बतलाया गया है।[2]

इसमें विश्वामित्र के आश्रम में ताटका के साथ शूर्पणखा के भी आने का उल्लेख है।[3] वहाँ ताटका का फिर आगे कोई विवरण नहीं दिया गया है, किन्तु शूर्पणखा के विरूपण का प्रसंग पंचवटी में यथास्थान निरूपित है।[4]

इस काव्य में रावण के द्वारा अपने सपरिवार वध के पश्चात् राम (तारक ब्रह्म) में लीन हो जाने का वर्णन किया गया है,[5] किन्तु 'मानस' में केवल रावण और कुम्भकर्ण की ही वैसी मुक्ति का उल्लेख है।

(२) यादव राघवीय—इसके लेखक वेंकटाध्वरि हैं। ३०० श्लोकों के इस लघु काव्य में राम और कृष्ण के चरित्र का पूर्ववत् विलोम-पद्धति से एक साथ वर्णन किया है। यह काव्य भी अभी तक अप्रकाशित है और इसकी हस्तलिपि मद्रास एवं तंजौर के पुस्तकालयों में है।[6]

(३) राघव-यादवीय—केवल ६४ पद्यों के इस लघुकाव्य की कथावस्तु 'यादव-राघवीय' के समान ही है। इसका लेखक और उसका समय अज्ञात है। यह 'विलोम काव्य' भी अभी तक अप्रकाशित है और इसकी भी हस्तलिपि 'मद्रास' तथा 'इण्डिया आफिस' के पुस्तकालयों में है।[7]

५ चित्र-काव्य

चित्र-काव्यों में वर्णविन्यास इस प्रकार किया जाता है जिससे किसी वस्तु का चित्र प्रस्तुत हो सके। डा० कामिल बुल्के ने अपने ग्रन्थ में 'राम लीलामृत और चित्रबन्ध रामायण' इन दो चित्र-काव्यों का उल्लेख किया है। 'रामलीलामृत' के लेखक 'कृष्णमोहन' हैं, जिनका समय और स्थान अज्ञात है। १२० पद्यों के इस

१ राम कृष्ण विलोम काव्य ५,१५ २ राम कृष्ण विलोम काव्य ।१४
३ " ८ ४ " १९
५ तारके रिपुराज श्रीदया वाहसुतान्वित ॥ ९५ ॥
६ संस्कृत साहित्य का इतिहास (श्री बलदेव उपाध्याय), पृ० २९८
७ रामकथा (डा० कामिल बुल्के), पृ० २००

लघु काव्य में विश्वामित्र के आगमन से लेकर रावण-वध तक की समस्त 'राम-कथा' संक्षेप में वर्णित है। इसमें पद्मबन्ध, छत्रबन्ध, चक्रबन्ध, गोमूत्र-बन्ध, धनुर्बन्ध, सोपान-बन्ध, आदि चित्रालंकारों का प्रदर्शन किया गया है। 'चित्रबन्ध रामायण' के लेखक 'वेंकटेश' हैं। उनका भी समय और स्थान अज्ञात है। ६ सर्गों और १२० पद्यों के इस चित्र-काव्य में भी अनेक काव्य-बन्धों का व्यापक प्रयोग किया गया है। ये दोनों ग्रन्थ अप्राप्य हैं।[1]

६ खण्ड काव्य

समग्र 'रामचरित' का वर्णन करने की अपेक्षा उसके केवल कुछ महत्वपूर्ण अंशों को ही प्रस्तुत करने के विचार से संस्कृत में अनेक खण्ड काव्य भी लिखे गए। इस प्रकार के काव्यों में श्री रामाभ्युदय, जानकी-परिणय, श्री रामचरित, सीता-स्वयंवर, उत्तर रामचरित आदि उल्लेखनीय हैं।

(१) श्री रामाभ्युदय—इसके लेखक अभयाचरण तर्क चूडामणि हैं। इसके १६ सर्गों में 'अयोध्या-वर्णन से लेकर केवल 'राम-विवाह' तक का ही कथानक है। कथावस्तु के दृष्टिकोण से इसमें कोई नवीनता नहीं है किन्तु इतना अवश्य है कि कई मनाकर्षक वर्णनों को अपेक्षाकृत अधिक विस्तार मिल गया है।

इसमें दशरथ-वशिष्ठ-संवाद, पुत्र-काम-यज्ञ, शरद्-वर्णन, ताड़कावध, सुबाहु वध, आदि प्रसंगों को भी स्वतन्त्र अध्यायों में वर्णित किया गया है।[2] 'मानस' में इन सबको केवल १८ पंक्तियों में ही सीमित कर दिया गया है। इसी प्रकार राम और सीता के 'आनन्द-सम्मोह' का वर्णन भी इसमें एक पूरे सर्ग में है।[3] 'मानस' में उसका संकेत भी नहीं है।

(२) जानकी परिणय—चक्र-कवि द्वारा लिखित ८ सर्गों के इस काव्य में 'अयोध्या-वर्णन' से लेकर 'परशुराम-पराजय' तक का कथानक समाहित किया गया है। इसकी कथा में अनेक स्थलों पर नवीनताओं की विशेष योजना की गई है।

मानस' के वर्णन के समान ही[4] इसमें भी 'मंगलाचरण' के पश्चात् 'दुर्जन निन्दा' का विस्तृत वर्णन किया गया है।[5] इस ग्रंथ के 'पायसवितरण' प्रसंग में कौशल्या को १/२, कैकयी को १/८ और सुमित्रा को १/४ और १/८ भाग प्राप्त होता है[6], जो 'मानस' से विभिन्न है।[7]

इसमें राम-लक्ष्मण को देने के लिये दशरथ की अस्वीकृति पर विश्वामित्र

---

१ राम कथा (डा॰ कामिल बुल्के) पृ॰ २००
२ श्री रामाभ्युदय सर्ग ।१ ६,१२ १४   ३ श्री रामाभ्युदय सर्ग ।१८
४ मानस १।४–२   ५ जानकी परिणय १।१७–२२
६ जानकी परिणय २।७२   ७ मानस १।१९०

के कोप से भूकम्प, जलधि-क्षोभ और अग्नि-वायु-स्तम्भ' आदि हो जाने का वर्णन है।[1] 'मानस' में यह स्थिति नहीं आती है।[2]

इसके 'अहल्योद्धार' प्रसंग में अपनी आलंकारिक रुचि का परिचय देता हुआ कवि कहता है कि राम के चरण-स्पर्श से अहल्या के अन्य अंगों ने तो पत्थर-रूप का परित्याग कर दिया किन्तु उसके स्तन ज्यों के त्यों ही पत्थर के बने रहे।[3] 'मानस' का यह वर्णन बड़ा संयत है।[4]

इसमें अयोध्या के नागरिकों के विलास का अति विस्तृत वर्णन किया गया है जो अनेक स्थलों पर अश्लील हो गया है।[5] मानस में ऐसा शृङ्गार-वर्णन कहीं नहीं मिलता है।

मानस' के वर्णन के समान ही[6] इस ग्रंथ में भी मिथिला में ही परशुराम के आगमन का वर्णन है किन्तु वे यहाँ राम के समक्ष तीन विकल्प रखते हैं कि वे (राम) या तो युद्ध करें या उनके वैष्णव-धनुष को चढ़ायें या फिर उन्हें अपना सिर झुकायें।[7] मानस' में इन विकल्पों का संकेत नहीं है।

इसमें विवाह के पश्चात् सीता और राम के विलास का भी विस्तृत वर्णन किया गया है[8], जो मानस में नहीं मिलता है।

(३) श्री राम चरित—इस खण्डकाव्य के लेखक कोटिलिंग राजवंश के 'युवराज कवि' हैं। दो सर्गों के इस काव्य में देवताओं की 'विष्णु-स्तुति' से लेकर 'परशुराम-पराजय' तक का ही कथानक है। इस काव्य में रावण से त्रस्त देव-गण ब्रह्मा के नेतृत्व में 'विष्णु-लोक' पहुँचते हैं। वहाँ विष्णु उन्हें आश्वस्त करते और 'वानरी-योनि' में जन्म लेने का आदेश भी देते हैं।[9] 'मानस' का वर्णन इससे विभिन्न है। इसमें ताटका के स्त्रीत्व के कारण राम उसके वध में हिचकिचाते हैं फिर विश्वामित्र उनको स्त्रीवध के लिये अनेक उपदेश देते हैं।[10] 'मानस' में इस अवसर पर राम की किसी हिचक का उल्लेख नहीं मिलता है। इसमें ठीक धनुर्भंग के पश्चात् मिथिला में ही परशुराम के आगमन और विवाद का वर्णन[11] 'मानस' के वर्णन के समान ही मिलता है।[12]

(४) सीता-स्वयंवर—हरिकृष्ण भट्ट के इस काव्य में केवल १२७ श्लोक

---

१ जानकी परिणय ३।२८ २ मानस १।२०८
३ जानकी हरण ५।६७ ४ मानस १।२११
५ ,, ५।२०-७६ ६ १।२६८
७ ,, ८।३४ ८ जानकी हरण ८।५६-६१
९ श्री राम चरित १।१७-४० १० श्री राम चरित २।१९
११ ,, २।८९ १२ मानस १।२६८

है। इसमें 'सीता-सौन्दर्य-वर्णन से लेकर राम-विवाह' तक का ही कथानक है। कथावस्तु के दृष्टिकोण से इसमें कुछ विशेषतायें हैं। इस ग्रन्थ के 'स्वयंवर-वर्णन' में रावण के आने, 'धनुर्भंग' की चेष्टा करने और अन्त में हताश होकर भाग जाने का वर्णन है।[1] 'मानस' में इसका केवल संकेत-मात्र है।[2] यहाँ 'धनुर्भंग' में राजाओं की असफलता देखकर जनक के जिस क्षोभ[3] का वर्णन किया गया है, वह 'मानस' के इस वर्णन से बहुत मिलता है—

> तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू ॥
> अब जनि कोउ माखै भटमानी। बीर बिहीन मही मैं जानी ॥१।२५२

(५) उत्तर राम चरित—इस काव्य के लेखक 'राम पाणिवाद' हैं। इसमें केवल 'रामाभिषेक' और 'रामराज्य' का ही बड़ा सरस वर्णन किया गया है, जिसमें कथा की दृष्टि से कोई नवीनता नहीं है।

७. सन्देश-काव्य

'मेघदूत' के अनुकरण पर राम-कथा से सम्बन्धित अनेक सन्देश-काव्य भी लिखे गये, जिनमें हंसदूत भ्रमरदूत, वातदूत आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(१) हंसदूत—इसके लेखक वेदान्त देशिक हैं। इस काव्य में राम एक हंस के द्वारा अपना सन्देश सीता के समीप भेजते हैं। अपनी विरह-व्यथा का मार्मिक निरूपण करते हुये वे उस हंस से सहानुभूति की याचना करते हैं, उसे लंका तक पहुँचने का मार्ग-निर्देश करते हैं और सीता के विरहिणी-रूप-सौन्दर्य का ऐसा चित्रण भी उससे करते हैं जिससे वह उन्हें सुविधानुसार पहिचान सके और फिर उनका करुण-सन्देश उनको विस्तारपूर्वक सुना सके।

(२) भ्रमरदूत—रुद्र न्याय-पंचानन द्वारा लिखित इस 'दूत-काव्य' में एक भ्रमर का दूत के रूप में प्रयोग किया गया है। इसके हनुमान जब लंका से लौटकर सीता का सन्देश और चूड़ामणि लाकर राम को देते हैं, तब राम विरह से अत्यन्त व्यथित होकर उसी समय एक भ्रमर के द्वारा अपना सन्देश सीता के समीप भेजने का प्रयत्न करते हैं।

इसमें वे भ्रमर की सरसता के लिए शोक-निमग्न सीता का यथार्थ वर्णन करते हुए उनकी करुण-मूर्ति का एक सजीव चित्र सा प्रस्तुत करते हैं।[4] वे कहते हैं कि संसार का प्रत्येक पुरुष अपनी प्रियतमा की कामना-पूर्ति सब प्रकार से करता है किन्तु उसी प्रयास में उन्हें अपनी प्रिया से भी वंचित होना पड़ा है।[5] अपने सन्देश में वे सीता को यह आश्वासन भी देते हैं कि वे शीघ्र ही रावण को मार कर

---

१ सीता स्वयंवर १।६६ २ मानस १।२५०

३ जनक—वापी न हुम्स: किम राजकरणं वर्षस्य वर्षस्य च वर्षहरो।
केनापि नार्टकि न चाप्यचापि निर्वीरमुर्वीतलमभ्यजायत् ॥६६॥

४ भ्रमर दूत । ८६, ११२ ५ भ्रमर दूत ११५

उसे प्राप्त करेंगे और फिर अयोध्या में संयोग के विलासों में वे दोनों पूर्ववत् व्यस्त हो जायेंगे।[1]

(३) वातदूत—इस सरस 'दूतकाव्य' के रचयिता श्री कृष्णनाथ भट्टाचार्य न्याय-पंचानन हैं। इसमें सीता वायु को अपना दूत बनाकर राम के समीप भेजती है। वायु को सखि-भाव से सम्बोधित करती हुई सीता उसकी सर्वव्यापकता के कारण ही उसे इस दूत-कर्म में समर्थ बतलाती हैं। अपनी विरह दशा का करुण-वर्णन करती हुई सीता वायु से आग्रह करती है कि वह राम के चरणों में आत्म निवेदन करके उनसे पूछे कि उन्होंने किस अपराध के कारण उनको भुला दिया है। वैसे तो उनको विश्वास है कि प्राणों के रहते हुए उन दोनों का प्रेम-भंग कभी नहीं हो सकता है। वे स्पष्ट कहती हैं कि राम ने धनुर्भंग किया, भार्गव-गर्व भंग किया और अपना अभिषेकोत्सव भंग किया किन्तु उसके स्नेह को उन्होंने कभी भंग नहीं किया[2] अतः उन्हें भरोसा है कि रावण के अत्याचारों से उनकी दशा कितनी ही शोचनीय क्यों न हो जाये किन्तु राम का प्रथम प्रेम-स्पर्श पाते ही वे पूर्ण स्वस्थ और शोभा-सम्पन्न हो जायेंगी।[3]

इन काव्यों के अतिरिक्त अन्य दूत-काव्यों में भी अनेक स्थलों पर राम-कथा से यत्र-तत्र प्रेरणा प्राप्त की गई है। श्रीमद्रूप-गोस्वामी के हंस-दूत में भगवान् के सभी अवतारों का वर्णन करते हुए एक ही श्लोक में[4] श्लेष से राम और कृष्ण दोनों की स्तुति की गई है। 'हंस-सन्देश' में एक शिव-भक्त' का वर्णन करते हुए उसकी तुलना विरही राम के साथ की गई है।[5] लक्ष्मीदास के शुक-संदेश' का संदेशवाही शुक हनुमान् के दूत-कर्म से प्रेरणा प्राप्त करता है।[6] विष्णुत्रात के कोक-सन्देश में भी दूतत्व के आधार पर कोक और हनुमान् की तुलना की गई है तथा उससे प्रार्थना की गई है कि वह मार्ग में अनेक निर्दिष्ट स्थलों पर राम और सीता की स्तुति भी सैकड़ों पद्यों में करता हुआ चले। उसकी सुविधा के लिए कुछ पद्य भी वहाँ प्रस्तुत कर दिये गए हैं।[7] धोयी के 'पवनदूत' में 'रामसेतु' का विशेष आलंकारिक वर्णन किया गया है।[8]

---

१ भ्रमरदूत। १२२

२ धनुर्भङ्गादस्मिन्पुरजयिनो भार्गवस्यापि गर्वो
भग्नो लोकोत्सवविधिवशादपि स्वीयराज्याभिषेकः ॥
एवं भग्नास्तदपि न क्व चित्किन्तु स्नेहभङ्ग
स्तेनात्मानं कलयति भवत्सङ्गमं भाग्यमात्मन् ॥ उत्तर ७१

३ वातदूत उत्तर ७१ ४ हंसदूत। १३४

५ हंस संदेश। पूर्व। १,२२ ६ शुक सन्देश उत्तर। ११
उत्तर। १८ ४१

७ कोक संदेश पूर्व। १०६ १०७ ८ पवनदूत। १०

८ ऐतिहासिक-काव्य

'राम कथा के साथ-साथ अपने समकालीन या आश्रयदाता राजाओं की प्रशस्ति को भी जोड़ते हुए अनेक कवियों ने ऐतिहासिक काव्य लिखे हैं, जिनमें निम्नलिखित काव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(१) रघुनाथाभ्युदय—इसकी लेखिका प्रसिद्ध स्त्री कवि रामभद्राम्बा' हैं, जिन्होंने इसमें तंजोर-नरेश रघुनाथ नायक के ऐश्वर्य और साम्राज्य का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। यों तो पूरे काव्य में ही राम और राजा रघुनाथ की तुलना करते हुए 'राम-चरित' का अनेक बार उल्लेख हुआ है किन्तु उसके चतुर्थ सर्ग में ४१ में से ६१वें श्लोक तक 'राम-जन्म' से लेकर 'रामाभिषेक तक समस्त कथा संक्षेप में दी गई है।

इस संक्षिप्त 'राम-चरित' में राम के ईश्वरत्व-वर्णन के साथ-साथ उनकी अद्वितीय प्रतिभा और शक्ति का बड़ा ही सरस वर्णन किया गया है।[1] कथा की दृष्टि से इसमें कोई नवीनता नहीं है। यह संक्षेप का ही प्रमाण है कि एक ही श्लोक में कुम्भकर्ण, मेघनाद और रावण के वध का उल्लेख कर दिया गया है।[2]

(२) पृथ्वीराज-विजय—सम्राट पृथ्वीराज के आश्रित कवि जोनराज ने इस महाकाव्य का निर्माण किया था। इसमें उसने पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर को 'दशरथ' का अवतार[3] बतला कर प्रकारान्तर से पृथ्वीराज को 'राम' का अवतार सिद्ध करने का प्रयास किया है इसीलिए उसने पृथ्वीराज की चित्रशाला में पूरी रामायण को चित्रित करवाया है और उसके दर्शन से पृथ्वीराज को पूर्वजन्म के स्मरण होने का भी उल्लेख किया है।[4] इसका कथानक यद्यपि पर्याप्त संक्षिप्त है, फिर भी उसमें कुछ विशेषतायें हैं।

इसमें रावण से त्रस्त देवताओं की विष्णु से स्तुति, पुत्रेष्टि में प्राप्त चरु से रानियों के गर्भ-धारण ताटकावध, अहल्योद्धार और धनुर्भंग के पश्चात् मिथिला में ही परशुराम विवाद[5] का वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान ही किया गया है।[6] इसके 'शूर्पणखा-विरूपण प्रसंग में उसके ओठों[7] के भी काटे जाने का उल्लेख है और लंकायुद्ध' में कुम्भकर्ण से पहले मेघनाद के वध[8] का वर्णन है, जो 'मानस' से भिन्न है।

९ व्याकरण-काव्य

कथा-वस्तु की सुष्ठु रचना के साथ-साथ व्याकरण-शास्त्र की भी समुचित

---

१ रघुनाथाभ्युदय ४।४७-५०
२ रघुनाथाभ्युदय ४।६१
३ पृथ्वीराज विजय ६।१५,४१
४ पृथ्वीराज विजय ११।२४-१०४
५ पृथ्वीराज विजय ११।११-५१
६ मानस १।१८४-१८६,२०६-२१०-२१८
७ ,, ११।६४
८ पृथ्वीराज विजय ११।८०-८२

शिक्षा देने के उद्देश्य से लिखे गये अनेक 'शास्त्रकाव्य' भी संस्कृत-साहित्य में प्राप्त होते हैं। ऐसे काव्यों में कवि का ध्यान मुख्यतया व्याकरण के विवरण पर ही रहता है वहाँ कथानक गौण रूप से ही प्रस्तुत किया जाता है। 'राम-कथा' से सम्बन्ध रखने वाले इस प्रकार के ये दो काव्य प्राप्त होते हैं।

(१) भट्टिकाव्य अथवा रावणवध—महाकवि भट्टि के द्वारा लिखित यह सर्वप्रथम मौलिक शास्त्रकाव्य है। उसके २२ सर्गों में 'राम-जन्म' से लेकर 'रामाभिषेक' तक का बड़ा ही रोचक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। कथा की दृष्टि से इसमें अनेक नवीनताएँ हैं।

इसमें दशरथ मग्न होने का वर्णन मिलता है,[1] जो 'मानस' में नहीं है। वहीं राम और मारीच के विस्तृत संवाद[2] का भी उल्लेख है, जो 'मानस' में प्राप्त नहीं होता है।

इसमें राम के बाहुबल की परीक्षा के लिए जनक-द्वारा उन्हें धनुष दिए जाने और उसके भंग होने का वर्णन एक ही श्लोक में किया गया है। वहाँ केवल राम के ही विवाह का उल्लेख मिलता है।[3] 'मानस' के वर्णन इनसे भिन्न और विस्तृत हैं।

इस काव्य में मन्थरा-षड्यन्त्र नहीं है। वहाँ कैकेयी दशरथ से पहले केवल 'राम-निर्वासन' की याचना करती है फिर उनके अधिक गिड़गिड़ाने पर वह उनका तिरस्कार करके 'भरताभिषेक' की भी कामना व्यक्त करती है।[4]

'मानस' के भरद्वाज के समान ही[5] इस काव्य के भरद्वाज चित्रकूट जाते हुए भरत का दिव्य स्वागत करते हैं,[6] किन्तु 'मानस' के भरत उसमें सर्वथा अलिप्त रहते हैं जबकि इसमें उनकी व्यक्तिगत प्रतिक्रिया का कोई पृथक संकेत नहीं मिलता है। इसके काव्य के लक्ष्मण भरत को विशाल जन समुदाय के साथ चित्रकूट आते देखकर उन पर शंका करते हैं और जब वे युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं तब राम उन सब आगन्तुकों को श्वेत वस्त्र धारी और शस्त्रहीन, अतः शोकमग्न बतला कर उनको शान्त करते हैं।[7] 'मानस' का वर्णन इससे भिन्न है।[8]

इसमें शूर्पणखा राम को सपत्नीक देखकर उनकी उपेक्षा करती है और सीधे लक्ष्मण से ही पहले काम प्रार्थना करती है। वहाँ उसकी केवल नाक काटे जाने का ही संकेत है[9] किन्तु 'मानस' की शूर्पणखा पहले राम से ही प्रार्थना करती है और वहाँ उसके नाक-कान दोनों ही काटे जाते हैं।[10]

---

१ भट्टिकाव्य १।१ | २ भट्टिकाव्य ६।१२ १६
३ भट्टिकाव्य २।४२ ४८ | ४ भट्टिकाव्य ३।११
५ मानस २।२१२ २१४ | ६ ,, ३।४२ ४५
७ भट्टिकाव्य ३।४७-४८ | ८ मानस २।२११-२१२
९ ,, ४।१५ ११ | १० ,, ३।१७

इसमें राम आहत जटायु को सीता का घातक समझ कर जब उसे मारने के लिए दौड़ते हैं, तब वह उनको अपना परिचय देता हुआ अपनी दशरथ-मित्रता का भी उल्लेख करता है और सीता-हरण को रावण का कुकृत्य बतलाकर मर जाता है।[1] 'मानस' का जटायु राम का पूर्व परिचित है और मरते समय वह 'गृध्र-वपु' छोड़ कर 'हरि-रूप' में उनकी स्तुति करता है और उनसे अविरल भक्ति का वरदान पाकर 'हरिधाम' चला जाता है।[2]

इसमें शबरी के तपस्विनी वेष का विस्तृत वर्णन किया गया है और राम उससे तपश्चर्या-सम्बन्धी कुशल भी सविस्तार पूछते हैं जिसका उत्तर देकर वह उनसे 'सुग्रीव-मित्रता' की भविष्यवाणी करती हुई तिरोहित हो जाती है।[3] 'मानस' के राम उसे 'नवधाभक्ति' का उपदेश देते हैं और फिर उनके द्वारा पूछे जाने पर वह उन्हें सुग्रीव-मित्रता का परामर्श देकर 'योगाग्नि' से 'हरिपद' में लीन हो जाती है।[4]

इस काव्य में बालि का निरपराध वध करने के कारण राम को मुनिगण धिक्कारते हैं।[5] स्वयं बालि भी राम को उनके इस पक्षपात के लिए बुरा-भला कहता है किन्तु 'मानस' के राम के समान ही[6] इस काव्य के राम जब उसे 'अनुज वधू-हरण' का दोषी ठहराते हैं तब सब लोग निरुत्तर हो जाते हैं।[7]

'मानस' के वर्णन के समान ही[8] इसमें भी 'स्वयं-प्रभा प्रसंग' में स्वयंप्रभा के आग्रह पर वानरों के द्वारा आँखें बन्द करके गुफा से सकुशल बाहर आ जाने का वर्णन किया गया है।[9]

इसमें 'सम्पाति-प्रसंग' में सम्पाति अंगदादि वानरों के पास स्वयं आकर उन्हें राम-कार्य के लिए प्रोत्साहित करता है और लंका में सीता की स्थिति का पूरा-पूरा पता भी बतलाता है।[10] 'मानस' में वह पहले उन वानरों के आहार की इच्छा व्यक्त करता है फिर जटायु-कथा से प्रभावित होकर वह उनको अपने 'सुत-अभिमान' की गाथा सुनाता है। वहीं वानरों के दर्शन से उसको पुनः पक्षप्राप्ति भी होती है।[11]

'प्रभात-वर्णन' के बहाने से इस काव्य में लंका के राक्षसों के रति-विलास का बड़ा विस्तृत और अश्लील वर्णन किया गया है[12] जो 'मानस' में नहीं है।

इसमें भी विभीषण अपनी माता 'कैकसी' के आग्रह पर ही सीता के

---

१ भट्टिकाव्य ६।४१-४२
२ मानस ३।३१।१०-१२
३ „ ६।६०-७२
४ „ ३।३४।११
५ „ ६।१२७
६ „ ४-९
७ „ ६।१२८-१३१
८ „ ४।२५
९ „ ७।६६-७०
१० भट्टिकाव्य ७।८५-१०१
११ मानस ४।२७।२९
१२ भट्टिकाव्य ११।१-१७

प्रदर्शन के लिए रावण को समझाता है।[1] 'मानस' का विभीषण स्वयं रामभक्त है और वह उधर स्वयं प्रेरित होता है।[2]

इस काव्य का मेघनाद अपने 'नागपाश' से राम और लक्ष्मण तथा समस्त वानर-सेना को आबद्ध कर लेता है[3] जिससे दुखी होकर राम जब सुग्रीव को किष्किन्धा लौट जाने का परामर्श देते हैं और स्वयं आत्महत्या करने का विचार व्यक्त करते हैं[4] तब विभीषण उनसे गरुड़ के स्मरण का आग्रह करता है, जिसके फलस्वरूप सारे नाग उनको त्याग कर समुद्र में प्रविष्ट हो जाते हैं। तदुपरान्त गरुड़ स्वयं आकर अपने स्पर्श से राम को स्वस्थ करते हैं और उन्हें अपना परिचय देकर चले जाते हैं।[5]

इसमें युद्ध में जाने से पूर्व मेघनाद के द्वारा एक यज्ञ में ब्रह्मा से विजयप्रद रथ और अस्त्र भी प्राप्त करने का वर्णन किया गया है।[6] 'मानस' में उसके यज्ञ का वानरों के द्वारा भंग करवा देने का उल्लेख है।[7] इस काव्य का मेघनाद अपने बाणों से सरसठ करोड़ वानरों को मार कर जब राम और लक्ष्मण को अचेत कर देता है, तब विभीषण के आदेश से हनुमान् हिमालय से 'मृतजीवनी' 'सन्धानकरणी' और विशल्यकरणी' औषधियों को सपर्वत ले आते हैं जिनकी सुगन्धि-मात्र से सब लोग स्वस्थ हो जाते हैं।[8] 'मानस में केवल लक्ष्मण-मूर्च्छा के प्रसंग पर हनुमान् के द्वारा दिव्यौषधि लाए जाने का उल्लेख है।[9] इसमें मेघनाद के द्वारा युद्ध भूमि में माया-सीता का वध कर देने का वर्णन मिलता है, जिससे क्षुब्ध होकर राम और लक्ष्मण बड़ा विलाप करते हैं, किन्तु अन्त में विभीषण से उस माया का रहस्य जान कर वे दोनों शान्त हो जाते हैं।[10] 'मानस' में यह वर्णन नहीं है।

इसमें सीता को 'लंका प्रवास' के कारण कलंकित बतलाते हुए राम जब उनको यह परामर्श देते हैं कि वे सुग्रीव विभीषण, भरत लक्ष्मण या किसी अन्य वांछित व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित करलें[11] तब सीता पंचतत्त्व को आमन्त्रित करती हुई उन्हें अपनी निर्दोषता का साक्षी बतलाती हैं और लक्ष्मण से चिता बनवा कर

---

१ भट्टिकाव्य १२।१६   २ मानस ५।३८ ४१

३ ,, १४।४४ ४७

४ समीहे मर्तुमात्मघ्ने तेन पाशाचितं यतम्।
आपपृच्छे च सुग्रीवं स्वं देशं विससर्ज च ॥ १४।६३

५ भट्टिकाव्य १४।६६ ६०   ६ भट्टिकाव्य १५।९१

७ मानस ६।७५-७६   ८ ,, १७।६८ १०९

९ ,, ६।६१   १० ,, १७।२० २५

११ रावणाङ्कपरिक्लिष्टा त्वं हृत्स्वेच्छावती मम।
मतिं बधान सुग्रीवे राक्षसेन्द्र गृहाण वा ॥२२॥
अथान भरताद्भोगान् लक्ष्मणं प्रणयस्व वा ।२०।२१

उसमें प्रवेश कर जाती है।[१] 'मानस' में राम के केवल दुर्वाद का संकेत है। इस काव्य के अग्निदेव सीता को शुद्ध बतला कर उन्हें राम को समर्पित कर देते हैं, फिर ब्रह्मा तथा शिव राम के ईश्वरत्व का उल्लेख करते हैं दशरथ उनको दर्शन देते हैं और इन्द्र मृत वानरों को पुनरुज्जीवित करते हैं।[२] मानस' में न सभी देवता राम की स्तुति भी करते हैं, और इन्द्र अमृत-वर्षा से सभी मृत वानरों और भालुओं को पुनरुज्जीवित करते हैं।[३]

इस काव्य में राम लंका से ही हनुमान् को अयोध्या भेज देते हैं। उस समय वे उनसे 'मार्ग' का बड़ा सरस वर्णन भी करते हैं जिसकी कभी मेघदूत का स्मरण दिलाती है।[४] मानस' के राम हनुमान् को प्रयाग से विदा करते हैं।[५] वहां मार्ग-वर्णन नहीं है।

इसमें भरत-मिलन रामाभिषेक, अश्वमेध-यज्ञ भरत-यौवराज्य आदि का अति संक्षिप्त वर्णन किया गया है।[६] मानस' में प्रथम दो प्रसंग बड़े विस्तार से वर्णित हैं तृतीय का केवल संकेत-मात्र है[७] और चतुर्थ तो बिल्कुल नहीं है।

(२) रावणार्जुनीय—इस काव्य के रचयिता भट्टभीम हैं। इसकी प्रेरणा का स्रोत यह 'भट्टिकाव्य' ही जान पड़ता है। इस ग्रन्थ के २७ सर्गों में रावण और कार्तवीर्य अर्जुन के युद्ध का वर्णन है और साथ में अष्टाध्यायी' के क्रम से पदों का भी सुन्दर निदर्शन किया गया है। रावण के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इसका यहां कुछ महत्त्व है किन्तु आलोच्य राम-कथा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

१० चम्पू काव्य

संस्कृत साहित्य में अनेक गद्य-पद्य-मय काव्य मिलते हैं जिन्हें 'चम्पू' के नाम से अभिहित किया जाता है। राम-कथा के आधार पर ऐसे बहुत से काव्यों का निर्माण हुआ है, जिनमें 'चम्पू रामायण' प्रमुख है।

(१) चम्पू-रामायण—इसके लेखक प्रसिद्ध कवि भोजराज हैं जिन्होंने 'बालकाण्ड' से लेकर 'सुन्दर काण्ड' तक इस काव्य का निर्माण किया है। इसके पश्चात लक्ष्मणसूरि ने 'युद्धकाण्ड' लिखकर इसमें जोड़ दिया। 'उत्तर काण्ड' की रचना किसी वेंकट कवि ने की। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण के सातों काण्डों की कथा इसमें समाहित की गई जिसकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

इस काव्य का आरम्भ 'वाल्मीकि-नारद-संवाद' से होता है। वहां ब्रह्मा रामचरित्र के प्रचार के लिए वाल्मीकि से प्रार्थना करते हैं जिसके फलस्वरूप वे 'रामायण' की रचना करके सीता के दोनों पुत्रों कुश और लव' को सिखा देते हैं,

---

१ भट्टिकाव्य २०।१४।१७   २ भट्टिकाव्य २१।११ २०
३ मानस ६।११०-११६   ४ „ २२।१ १७
५ मानस ६।१२१
६ „ २३।२८ ११   ७ „ ७।१ १२,२४

जो इधर-उधर जाते हुए राम के प्रासाद में भी पहुँच जाते हैं एवं उन्हें इस मधुर काव्य का रस-पान कराते हैं।[1] 'मानस' की कथा 'भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवाद' से आरम्भ होती है, जिसका आधार राम के ईश्वरत्व पर सन्देह और उसका निवारण करना है।[2]

इसमें ब्रह्मा के नेतृत्व में देवगण क्षीरसागर जाकर विष्णु की स्तुति करते हैं और रावण के अत्याचारों का विस्तृत वर्णन करते हुए जब उनसे सुरक्षा की याचना करते हैं, तब वे उन्हें अवतार लेने का आश्वासन देते हैं।[3] 'मानस' के देवगण शिव के परामर्श से जब ब्रह्मलोक में ही भगवान् की स्तुति करने लगते हैं तब वे उन्हें 'आकाशवाणी' से वहीं सन्तुष्ट करते हैं।[4]

इसमें गौतम के शाप से अहल्या के केवल 'अदृश्य' होने का उल्लेख है, फिर उसके उद्धार का वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान ही है।[5]

इस काव्य में राम के निर्वासन की आज्ञा से क्षुब्ध लक्ष्मण उसके प्रतिकार के लिए उनसे शस्त्र प्रयोग की आज्ञा माँगते हैं, तब राम अपनी वंश-मर्यादा का ध्यान दिला कर उन्हें रोकते हैं।[7] वहीं सुमन्त्र कैकयी की माता के भी कुटिल स्वभाव की कथा सुनाते हुए कैकयी को धिक्कारते हैं और वे उसे 'वर-याचना' से रोकते भी हैं किन्तु वह तभी अनेक राजाओं के पुत्र-त्याग का दृष्टान्त देती हुई राम सीता और लक्ष्मण तीनों के लिए 'वल्कल आदि' भी प्रस्तुत कर देती है।[8] 'मानस' में सुमंत्र 'कोप' का संकेत तो नहीं है, किन्तु कैकयी के द्वारा वहाँ भी राम आदि के लिए 'मुनिपट' आदि के लाने का उल्लेख है।[9]

इस काव्य का गुह राम से प्रार्थना करता है कि वे उसका राज्य-ग्रहण करके वहीं १४ वर्ष का वनवास बितायें।[10] 'मानस' का गुह उनसे अपने नगर में प्रवेश करने की प्रार्थना करता है।[11] दोनों ही ग्रंथों के राम वहाँ अपने विशेष व्रत के कारण नगर प्रवेश को अनुचित बतलाते हैं। इसमें राम के गंगा पार करते समय गुह के द्वारा उनके चरणों को धोने के आग्रह का उल्लेख इसमें नहीं है, किन्तु 'मानस' में है।[12]

इस काव्य के अगस्त्य मुनि वन में राम से मिलने के समय उनको वैष्णव धनुष ब्रह्मास्त्र, इन्द्र के दो तूणीर और रत्नजटित खड्ग-कोष के साथ-साथ अपना

---

१ चम्पू रामायण १।५।१० | २ मानस १।४२-४९
३ " १।११।२२ | ४ " १।८४-१८७
५ " १।६० | ६ " १।२१०-२११
७ " २।२५ | ८ चम्पू रामायण २।१४ के बाद
९ मानस २।७९ | १० " २।४८ के बाद-४९
११ " २।८८ | १२ मानस २।१००

उसमें प्रवेश कर जाती हैं।[1] 'मानस' में राम के केवल युद्ध का संकेत है। इस काव्य के अग्निदेव सीता को शुद्ध बतला कर उन्हें राम को समर्पित कर देते हैं फिर ब्रह्मा तथा शिव राम के ईश्वरत्व का उल्लेख करते हैं दशरथ उनको दर्शन देते हैं और इन्द्र मृत वानरों को पुनरुज्जीवित करते हैं।[2] 'मानस' में ये सभी देवता राम की स्तुति भी करते हैं और इन्द्र अमृत-वर्षा से सभी मृत वानरों और भालुओं को पुनरुज्जीवित करते हैं।[3]

इस काव्य में राम लंका से ही हनुमान् को अयोध्या भेज देते हैं। उस समय वे उनसे मार्ग का बड़ा सरस वर्णन भी करते हैं जिसकी शैली मेघदूत का स्मरण दिलाती है।[4] 'मानस' के राम हनुमान् को प्रयाग से विदा करते हैं।[5] वहाँ मार्ग-वर्णन नहीं है।

इसमें भरत-मिलन, रामाभिषेक अश्वमेध-यज्ञ भरत-यौवराज्य आदि का अति संक्षिप्त वर्णन किया गया है।[6] 'मानस' में प्रथम दो प्रसंग बड़े विस्तार से वर्णित हैं, तृतीय का केवल संकेत-मात्र है[7] और चतुर्थ तो बिल्कुल नहीं है।

(२) रावणार्जुनीय—इस काव्य के रचयिता भट्टभीम हैं। इसकी प्रेरणा का स्रोत यह 'भट्टिकाव्य' ही जान पड़ता है। इस ग्रंथ के २७ सर्गों में रावण और कार्तवीर्य अर्जुन के युद्ध का वर्णन है और साथ में 'अष्टाध्यायी' के क्रम से पदों का भी सुन्दर निदर्शन किया गया है। रावण के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इसका यद्यपि कुछ महत्व है किन्तु आलोच्य राम-कथा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

१० चम्पू काव्य

संस्कृत साहित्य में अनेक गद्य-पद्य-मय काव्य मिलते हैं जिन्हें 'चम्पू' के नाम से अभिहित किया जाता है। राम-कथा के आधार पर ऐसे बहुत से काव्यों का निर्माण हुआ है, जिनमें 'चम्पू रामायण' प्रमुख है।

(१) चम्पू-रामायण—इसके लेखक प्रसिद्ध कवि भोजराज हैं जिन्होंने 'बालकाण्ड' से लेकर 'सुन्दर काण्ड' तक इस काव्य का निर्माण किया है। इसके पश्चात् लक्ष्मणसूरि ने 'युद्धकाण्ड' लिखकर इसमें जोड़ दिया। 'उत्तर काण्ड' की रचना किसी वेंकट कवि ने की। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण के सातों काण्डों की कथा इसमें समाहित की गई, जिसकी विशेषतायें इस प्रकार हैं—

इस काव्य का आरम्भ 'वाल्मीकि-नारद-संवाद' से होता है। वहाँ ब्रह्मा रामचरित के प्रचार के लिए वाल्मीकि से प्रार्थना करते हैं जिसके फलस्वरूप वे 'रामायण' की रचना करके सीता के दोनों पुत्रों 'कुश और लव' को सिखा देते हैं,

१ भट्टिकाव्य २०।१४।१७ २ भट्टिकाव्य २१।११ २०
३ मानस ६।११०-११२ ४ " २२।१ १७
५ मानस ६।१२१

जो इधर-उधर जाते हुए राम के प्रासाद में भी पहुँच जाते हैं एवं उन्हें इस मधुर काव्य का रस-पान कराते हैं।[1] 'मानस' की कथा भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवाद से आरम्भ होती है जिसका आधार राम के ईश्वरत्व पर सन्देह और उसका निवारण करना है।[2]

इसमें ब्रह्मा के नेतृत्व में देवगण क्षीरसागर जाकर विष्णु की स्तुति करते हैं और रावण के अत्याचारों का विस्तृत वर्णन करते हुए जब उनसे सुरक्षा की याचना करते हैं तब वे उन्हें अवतार लेने का आश्वासन देते हैं।[3] 'मानस' के देवगण शिव के परामर्श से जब ब्रह्मलोक में ही भगवान् की स्तुति करने लगते हैं तब वे उन्हें 'आकाशवाणी' से वहीं सन्तुष्ट करते हैं।[4]

इसमें गौतम के शाप से अहल्या के केवल 'अदृश्य'[5] होने का उल्लेख है, फिर उसके उद्धार का वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान ही है।[6]

इस काव्य में राम के निर्वासन की आज्ञा से क्षुब्ध लक्ष्मण उसके प्रतिकार के लिए उनसे बल प्रयोग की आज्ञा माँगते हैं, तब राम अपनी वंश-मर्यादा का ध्यान दिला कर उन्हें रोकते हैं।[7] यहाँ सुमन्त्र कैकयी की माता के भी कुटिल स्वभाव की कथा सुनाते हुए कैकयी को धिक्कारते हैं और वे उसे 'वर-याचना' से रोकते भी हैं किन्तु वह तभी अनेक राजाओं के पुत्र-त्याग का दृष्टान्त देती हुई राम, सीता और लक्ष्मण तीनों के लिए 'वल्कल आदि' भी प्रस्तुत कर देती है।[8] 'मानस' में सुमंत्र 'कोप' का संकेत तो नहीं है किन्तु कैकयी के द्वारा वहाँ भी राम आदि के लिए 'मुनिपट' आदि ले आने का उल्लेख है।[9]

इस काव्य का गुह राम से प्रार्थना करता है कि वे उसका राज्य-ग्रहण करके वहीं १४ वर्ष का वनवास बितावें।[10] 'मानस' का गुह उनसे अपने नगर में प्रवेश करने की प्रार्थना करता है।[11] दोनों ही ग्रंथों के राम वहाँ अपने विशेष व्रत के कारण नगर-प्रवेश को अनुचित बतलाते हैं। इसमें राम के गंगा पार करते समय गुह के द्वारा उनके चरणों को धोने के आग्रह का उल्लेख इसमें नहीं है, किन्तु 'मानस' में है।[12]

इस काव्य के अगस्त्य मुनि वन में राम से मिलने के समय उनको वैष्णव धनुष, ब्रह्मास्त्र, इन्द्र के दो तूणीर और खड्ग पद्म-कोश के साथ-साथ अपना

१ चम्पू रामायण १।२।१०
२ मानस १।४२।४६
३ " १।१३।२२
४ " १।८४।१८७
५ " १।६०
६ " १।२१०।२११
७ " २।२९
८ चम्पू रामायण २।३४ के बाद
९ मानस २।७९
१० " २।४८ के बाद ४९
११ " २।८८
१२ मानस २।१००

धनुष भी उन्हें दे देते हैं[1] जिसका वर्णन 'मानस' में नहीं है।[2]

इस काव्य के अनुसार सीता के हरण के पश्चात् वन में उन्हें खोजते हुए राम और लक्ष्मण एक ऐसे स्थान पर पहुँच जाते हैं जहाँ उनकी भेंट अयोमुखी नाम की एक ऐसी राक्षसी से हो जाती है जिसके कुत्सित प्रस्ताव पर लक्ष्मण उसे शूर्पणखा की तरह विरूपित कर देते हैं।[3] 'मानस' में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

'बालिवध' के पश्चात इस काव्य के सुग्रीव राम से प्रार्थना करते हैं कि वे किष्किन्धापुरी में ही वर्षा-प्रवास करें, किन्तु राम अपने नगर-प्रवेश को अनुचित बतलाकर उसकी बात नहीं मानते हैं।[4] 'मानस' में सुग्रीव के इस आग्रह का वर्णन नहीं है।

इसके 'सम्पाति-मिलन प्रसंग' में सम्पाति अपने पुत्र सुपार्श्व के द्वारा जाते देखा सीता-हरण का वृत्तान्त अंगद आदि को सुनवाता है[5] जो 'मानस' में वर्णित नहीं है।

'मानस' के वर्णन के समान ही[6] इसमें भी हनुमान् के द्वारा समुद्र-लंघन करते समय मैनाक सुरसा और सिंहिका के पश्चात् उस लंकिनी से भी उनकी भेंट होने का वर्णन है, जो अपने पराजय के कारण राक्षसों के भावी विनाश की सूचना भी उन्हें देती है।[7]

इस काव्य का रावण अशोक-वाटिका में स्थित सीता के समक्ष पहुँच कर उनसे कुछ नहीं कहता है, किन्तु वे ही मुख में तृण रखकर जब उसे फटकारती और समझाती हैं तब वह केवल एक रात्रि की अवधि देकर चला जाता है।[8] 'मानस' का रावण ऐसे अवसर पर सीता को अनेक प्रलोभन देता है और अन्त में निराश होकर उन्हें एक मास की अवधि देता है।[9]

इसके 'हनुमान सीता-संवाद' में सीता के द्वारा हनुमान् से विभीषण की पत्नी 'सरमा' और उसकी पुत्री 'अनला' के सद्व्यवहार की प्रशंसा करने का वर्णन है।[10] 'मानस' में उनका नामोल्लेख तक नहीं है। इस काव्य के हनुमान् अपना विराट् रूप सीता को स्वयं दिखलाते हैं।[11] 'मानस' में वे सीता के संकेत पर ही ऐसा करते हैं।[12] इसमें हनुमान् को प्रथम दर्शन में ही प्रत्यभिज्ञान देती हुई सीता उनसे 'जयन्त-प्रसंग' का उल्लेख करती है,[13] यद्यपि उस घटना का यहाँ पहले कहीं

---

१ चम्पूरामायण ३।१२ के बाद

२ मानस ३।१२ १३

३ ,, ३।४२ के बाद

४ चम्पू रामायण ४।२१ २२

५ ,, ४।४० के बाद

६ मानस ५।१–४

७ ,, ५।१–१२ ,,

८ चम्पूरामायण ५।२०–२१ के बाद

९ मानस ५।१०

१० ,, ५।३० ,,

११ चम्पूरामायण ५।३१

१२ मानस ५।१६

१३ ,, ५।३४ के बाद

भी वर्णन नहीं किया गया है। 'लंका-दाह' के पश्चात् इस काव्य के हनुमान् सीता से दुबारा मिलकर के इस पार आ जाते हैं।[1] 'मानस' के हनुमान् भी सीता से दो बार मिलते हैं किन्तु वे द्वितीय मिलन में ही प्रत्यभिज्ञान ग्रहण करते हैं।[2]

'लंका-युद्ध' के पूर्व राक्षसों की सभा में विमर्श करता हुआ इस काव्य का रावण अपने नल-कूबर-शाप' 'नन्दी-शाप' और 'ब्रह्मा-शाप' आदि का वर्णन करता है[3], जिसका मानस' में संकेत भी नहीं है। यहाँ रावण की आज्ञा से प्रेरित होकर विद्युज्जिह्व राक्षस राम के कटे हुए नकली सिर और धनुष बाण को सीता के समक्ष प्रस्तुत करता है, जिससे क्षुब्ध होकर वे अत्यन्त विलाप करती हैं किन्तु सरमा के द्वारा उसका भेद जान कर वे शीघ्र ही शान्त हो जाती हैं।[4] 'मानस' में यह घटना नहीं है।

इसमें रावण का प्रथम दर्शन करते ही सुग्रीव उछल कर उसका मुकुट उतार कर पृथ्वी पर फेंक देता है और राम के समीप भाग आता है।[5] 'मानस' में ऐसी भी कोई घटना नहीं है।

इस काव्य का मेघनाद युद्धभूमि में सीता का नकली कटा हुआ सिर फेंक देता है जिसे देखकर हनुमान् जब राम और लक्ष्मण को उसकी सूचना देते हैं तब वे अत्यंत विलाप करते हैं उसी समय विभीषण उसका रहस्य स्पष्ट करके उनको निश्चिन्त करता है।[6] 'मानस' में यह घटना भी नहीं है।

इस काव्य के सीता-शुद्धि प्रसंग' में राम सीता से कुछ भी नहीं कहते हैं किन्तु सीता ही अपनी पवित्रता का स्वयं परिचय देने के लिये ब्रह्मा आदि देवताओं के समक्ष अग्नि में प्रवेश करती हैं। उनके अक्षत निकल आने पर राम उन्हें ग्रहण कर लेते हैं।[7] 'मानस में राम के 'दुर्वाद' से क्षुब्ध सीता चिता में प्रविष्ट होती हैं और अग्निदेव उन्हें शुद्ध बतला कर राम को समर्पित कर देते हैं—

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो ॥६।१०९

इसमें एक ही वाक्य में 'ब्रह्मादि की स्तुति 'दशरथ के दर्शन', वानरों के पुनर्जीवन' और राम के पुष्पकारोहण' का संक्षिप्त वर्णन है।[8] 'मानस' में इसको आवश्यक विस्तार दिया गया है।[9] इस काव्य के रामाभिषेक' प्रसंग में

१ चम्पू रामायण ५।९७   २ मानस ५।१६
३ चंपू रामायण ६।१२ के बाद   ४ चंपू रामायण ५।१९ के बाद
५ ,, ६।११   ६ ,, ६।६८–७० के बाद
७ विशुद्धशीलामनलेन मंगाद्विदित्वा तम विलोक्य सीताम्।
प्रभो पुन प्रत्युपनीय पूता प्रत्यग्रहीत्सोऽवसरो रघूणाम् ॥६।९८
८ चंपू रामायण ६।९८ के बाद   ९ मानस ६।११०–११९

सुग्रीव और विभीषण आदि के सपत्नीक सम्मिलित होने का उल्लेख है[1], जो 'मानस' में नहीं मिलता है।[2]

(२) उत्तर-रामचरित चम्पू—वेंकट कवि द्वारा निर्मित ३०० श्लोकों के इस चंपू के अनुसार ऋषिगण राम से रावण और हनुमान् की जन्म-कथाओं का विस्तार से वर्णन करते हैं[3] जिसके पश्चात् इसमें 'रामचरित' का वह उत्तर भाग वर्णित हुआ है जो 'मानस' में नहीं है। इसमें अनेक स्थलों पर भगवान् राम की विस्तृत स्तुति की गई है।[4]

(३) अन्य चम्पू-काव्य—इनके अतिरिक्त अन्य चंपू ग्रन्थों में भी प्रासंगिक रूप से 'मानस' की इस कथा का यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। 'चित्रचम्पू' में वर्दवान के महाराजा चित्रसेन के सभा कवि बाणेश्वर विद्यालंकार के द्वारा राजा चित्रसेन के स्वप्न में साकेत के लिए जाने और अन्त में अयोध्या पहुँचकर राम की स्तुति करने का बड़ा सरस वर्णन किया गया है।[5] 'रघुनाथ विजय-चम्पू' में कृष्ण कवि ने ५ विलासों (अध्यायों) में राजा रघुनाथ और उनकी रानी जानकी देवी के नाम-साम्य से प्रभावित होकर श्लेष से राम-कथा का भी यत्र-तत्र उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त वहाँ राजा रघुनाथ के द्वारा 'चक्रतीर्थ' में जाकर विस्तार से 'रामस्तुति' करने का भी वर्णन है।[6] अनन्त भट्ट' भारत चम्पू[7] और 'तिरुमलाम्बा' के 'वरदाम्बिकापरिणय चम्पू'[8] काव्यों में 'राम-सेतु' का बड़ा रोचक वर्णन मिलता है।

११ धार्मिक-काव्य

इसके अन्तर्गत 'महाभारत' और पुराणों का ग्रहण किया गया है, जिनमें 'राम-चरित' का बड़े विस्तार के साथ काव्य-मय वर्णन मिलता है। राम-कथा के पात्रों और उनके चरित्रों को तो उदाहरण के लिये इन ग्रन्थों के अनेक स्थलों में प्रचुरता के साथ स्मरण किया गया है।

(१) महाभारत—इस विशाल-काव्य ग्रन्थ के वनपर्व में तीन प्रसंगों में और द्रोण पर्व में तथा शान्ति पर्व में भी 'राम चरित' का बड़ा सरस निरूपण प्राप्त होता है।

वन पर्व (प्रथम प्रसङ्ग)—इसके तीर्थ-यात्रा-वर्णन में 'भृगु-तीर्थ' का उल्लेख करते हुए वहाँ परशुराम की तपस्या और उसके मूल कारण उनके राम से

१ चम्पू रामायण ६।१०६ के बाद   २ मानस ७।१२
३ उत्तर रामचरित चम्पू। ६-१०   ४ उत्तर रामचरित चंपू। ३, २४१ २६७
५ चित्र चम्पू। २११-२१८   ६ रघुनाथ विजय चम्पू ३।१७, २० ४।२६-२७
७ भारत चम्पू। ३।५४-५५   ८ वरदाम्बिका परिणय चम्पू पृ० ६

प्रसाद' पर प्रकाश डाला गया है। इसके अनुसार परशुराम अयोध्या आकर राम की बल-परीक्षा के लिए उन्हें अपना धनुष देते हैं जिसके सज्ज करने पर वे उन्हें अपना बाण भी सन्धान के लिये देते हैं। इस पर राम उनके दर्प के लिये उन्हें फटकारते हैं और उन्हें अपना विराट रूप दिखला कर उसी बाण से उनका तेज समाप्त कर देते हैं। इससे खिन्न होकर परशुराम उनकी आज्ञा से महेन्द्र पर्वत पर चले जाते हैं फिर वहां से 'भृगु-तीर्थ' पहुँच कर वे कठिन तपस्या करके अपने तेज को पुनः प्राप्त करते हैं।[1] 'मानस' में राम-परशुराम-मिलन मिथिला में और ठीक धनुर्भंग के पश्चात् वर्णित हुआ है। वहां भी राम की बल परीक्षा के लिए परशुराम के द्वारा उनको अपना धनुष देने का उल्लेख है जिसके सज्ज हो जाने पर वे उनकी स्तुति करते हुए किसी अज्ञात वन में तपस्या के लिए चले जाते हैं। वहां इस अवसर पर राम के विराट-रूप प्रदर्शन का कोई संकेत नहीं मिलता है।[2]

वन पर्व (द्वितीय प्रसङ्ग)—इसी 'तीर्थयात्रा पर्व' में 'हनुमान् भीम संवाद' में हनुमान् भीम को अपना संक्षिप्त परिचय देते हुये 'राम-सुग्रीव मिलन' से लेकर 'रामाभिषेक' तक का संक्षिप्त कथानक भी प्रस्तुत करते हैं जिसके अन्त में वे उनके आग्रह पर 'सागर-लंघन' वाला अपना विराट रूप भी उनको दिखलाते हैं। उनकी अद्भुत सामर्थ्य देख कर जब भीम उनसे प्रश्न करते हैं कि उन्होंने रावण का वध स्वयं क्यों नहीं किया और उसे राम के लिए क्यों रहने दिया तब वे उनको स्पष्ट उत्तर देते हैं कि रावण-वध का यश राम को दिलाने के लिए ही उन्होंने वैसा नहीं किया।[3] 'मानस' में हनुमान के ऐसे रूप का कोई उल्लेख नहीं है।

वन पर्व (तृतीय प्रसङ्ग)—इसी पर्व के 'रामोपाख्यान' में 'रामजन्म' से लेकर 'रामाभिषेक' तक का समस्त कथानक १८ अध्यायों में बड़े विस्तार से वर्णित किया गया है। कथा-वस्तु के विचार से इसकी उल्लेखनीय विशेषतायें इस प्रकार हैं—

इसमें राम और सीता के साधारण जन्मों[4] का वर्णन मिलता है जबकि 'मानस' में 'राम-जन्म प्रसंग' में 'पुत्र काम-यज्ञ' आदि का विस्तार है और 'सीता जन्म प्रसंग' का वहां कोई संकेत भी नहीं है। इसी प्रकार 'मानस' में रावण आदि के जन्म और उनके माता-पिता का भी कोई वर्णन नहीं है किन्तु यहां उन सबके पिता विश्रवा हैं और उनकी तीन पत्नियों में से 'पुष्पोत्कटा' से रावण और कुम्भकर्ण, 'मालिनी' से विभीषण तथा 'राका' से खर और शूर्पणखा का जन्म होता है।[5]

इसमें रावण कुबेर से उसका पुष्पक विमान बलपूर्वक प्राप्त कर लेता है।

---

१ महाभारत। वन।९९।४०—७१ २ मानस १।२६८, २८४—२८५

३ महाभारत। वन।१४७।२६—१४८।१६ १५०।१—१९

४ महाभारत। वन।२७४।७, ९ ५ महाभारत। वन। २७५।१—८

यहाँ कुबेर के शाप का भी उल्लेख है कि रावण पुष्पक का उपयोग न कर सकेगा, प्रत्युत उसका विजेता ही उसका उपयोग करेगा।[1] 'मानस' में कुबेर के शाप का उल्लेख नहीं है।[2]

इसमें रावण से त्रस्त देवगण अग्नि के नेतृत्व में जब ब्रह्मा से सुरक्षा की प्रार्थना करते हैं तब वे उन्हें आश्वासन देते हैं कि विष्णु अवतार लेकर सब कुछ व्यवस्थित कर देंगे। तत्पश्चात् वे इंद्रादि देवताओं को वानरियों और ऋक्षियों की सहायता से ऐसे पुत्रों को उत्पन्न करने की आज्ञा देते हैं जो विष्णु को सहयोग दें। फिर वे दुन्दुभी नामक गंधर्वी को सब योजनायें समझा-बुझा कर मन्थरा बनने के लिए प्रेरित करते हैं।[3] 'मानस' में देवगण के साथ ब्रह्मा के द्वारा भी भगवान की स्तुति करने का उल्लेख है। यहाँ भगवान उन्हें आकाशवाणी से सान्त्वना देते हैं। फिर ब्रह्मा उन देवताओं को स्वयं वानर-रूप में जन्म ले कर भगवान की सेवा करने की आज्ञा देते हैं। यहाँ मन्थरा' के पूर्वजन्म का भी कोई संकेत नहीं है।

इसमें 'मानस' के वर्णन की तरह दशरथ के 'श्वेत-केश' की कोई चर्चा नहीं है।[4] यहाँ दशरथ स्वयं अपने को वृद्ध मान कर जब 'रामाभिषेक' का विचार करते हैं तब मन्थरा की प्रेरणा से कैकयी सारे शृङ्गार करके हँसती हुई दशरथ से एकान्त में एक ही वर माँगती है जिसमें भरत का अभिषेक और राम के निर्वासन की प्रार्थना की जाती है।[5] 'मानस' की कैकयी कुवेष बनाकर कोप भवन' में पहले मान करती है और फिर दशरथ के मनाने पर वह उनसे उक्त प्रार्थना दो वरों में करती है।[6]

'मानस' के 'स्वर्ण-मृग-वध' प्रसंग में सीता के 'मर्म-वचनों' का कोई विवरण नहीं दिया गया है[7] किन्तु इसमें उनके द्वारा लक्ष्मण को कामी और मूढ़ आदि कहने तथा उनके साथ पत्नीवत् रहने की अपेक्षा शस्त्र प्रहार पर्वत-पतन अग्नि प्रवेश आदि से आत्महत्या कर लेने के निश्चय का वर्णन किया गया है।[8]

इसमें तारा 'सर्व भूत-रुता' है इसीलिए सुग्रीव की ललकार को सुन कर वह उसकी 'राम-मित्रता' की सारी घटना जान लेती है और तदनुसार बालि को रोकने की चेष्टा करती है।[9] 'मानस' की तारा बालि को रोकती अवश्य है किन्तु उसके इस विशेष ज्ञान का यहाँ कोई संकेत नहीं है।[10]

---

१ महाभारत । वन । २७५।१४-१५ २ मानस १।१७९
३ " २७६।१-१५ ४ " २।२
५ महाभारत । वन । २७७।७-१५ १७-२१
६ मानस २।२४-२९
७ मानस ३।२८
८ महाभारत । वन । २७८।२६-२९ ९ महाभारत । वन । २८०।११-२४
१० मानस ४।७

इसके अनुसार समुद्र में राम को स्वप्न में दर्शन देकर नल की सहायता से 'सेतुबन्ध' का उपाय बतलाता है।[1] 'मानस' में वह राम के कोप से क्षुब्ध होकर उनकी स्तुति करता है और नल तथा नील दोनों को उस महान कार्य में समर्थ बतलाता है।[2]

इसमें लक्ष्मण ही कुम्भकर्ण का वध करते हैं[3], जब कि 'मानस' में इसका श्रेय राम को मिलता है।[4]

मेघनाद की बाण-वर्षा से अचेत राम-लक्ष्मण को इस ग्रन्थ में विभीषण 'प्रज्ञास्त्र' से स्वस्थ करते हैं और सुग्रीव 'विशल्य' औषध से उन्हें पूर्ववत् कर देते हैं।[5] इसमें विभीषण कुबेर के द्वारा प्रेषित 'दिव्यजल' भी उनको देते हैं जिसके प्रयोग से उन्हें अदृश्य के भी दर्शन की शक्ति प्राप्त हो जाती है।[6] 'मानस' में इसका कहीं संकेत नहीं है।

'मानस' का रावण 'माया-युद्ध' करते समय कभी अनेक 'रावणों' को प्रकट करता है तो कभी अनेक हनुमानों को।[7] किन्तु इसमें वह अनेक रामों और लक्ष्मणों' का निर्माण कर देता है।[8]

महाभारत' के राम इन्द्र-रथ को राक्षस-माया समझ कर पहले अस्वीकार कर देते हैं फिर विभीषण के परामर्श से ही उन्हें उसकी असली रूप मौलिकता का विश्वास होता है।[9] मानस में इस अवसर पर राम की किसी शंका का उल्लेख नहीं है।[10]

इस ग्रन्थ के 'सीता-शुद्धि प्रसंग' में सीता के अग्नि प्रवेश का उल्लेख नहीं है, प्रत्युत वायु, अग्नि, वरुण, ब्रह्मा आदि देवता और दशरथ के द्वारा उनकी शुद्धता की घोषणा करने तथा राम से उन्हें ग्रहण कर लेने के आग्रह का वर्णन है।[11] मानस' में स्वयं अग्निदेव सीता को शुद्ध बतला कर उन्हें राम को अर्पित करते हैं, फिर उपर्युक्त देवगण उनकी स्तुति करते हैं।[12]

लंका से अयोध्या लौटते समय इस ग्रन्थ के राम मार्ग में किष्किन्धा में रुक कर अंगद को वहाँ का युवराज बना देते हैं फिर अयोध्या के पास पहुँच कर

---

१ महाभारत । वन । २८३।३३–४२   २ मानस ५।५८–६०
३ महाभारत । वन । २८७।१२–१६   ४ मानस ६।७१
५ ,, , २८९।३–७   ६ महाभारत । वन । २८९।८–१४
७ मानस ६।९६, १०१
८ दृष्ट्वा रामस्य रूपाणि लक्ष्मणस्य च भारत ।
अभिदुद्राव रामं च लक्ष्मणं च दशानन ॥२९०।८
९ महाभारत । वन । २९०।१५–१७   १० मानस ६।८९
११ ,, , २९१।६–३६   १२ ,, ६।१०८–११५

वे हनुमान् को दूत बनाकर भरत के समीप भेजते हैं।[1] 'मानस' में राम किष्किन्धा में नहीं रुकते हैं और वे प्रयाग से ही हनुमान को भेज देते हैं।[2]

द्रोणपर्व—इस पर्व में काल के माहात्म्य का वर्णन करते हुए उसके सामने राम को भी असमर्थ बतला कर उनके जन्म से लेकर स्वर्गारोहण तक का समस्त कथानक अतिसंक्षिप्त रूप में वर्णित किया गया है।[3] कथा की दृष्टि से इसमें कोई विशेषता नहीं है। वैसे भी कवि का ध्यान कथावर्णन की ओर न होकर मृत्यु के समक्ष राम की विवशता के निरूपण में एकाग्र है। 'मानस' में ऐसा वर्णन नहीं है।

शान्तिपर्व—इस पर्व में भी युद्ध के महाविनाश से संतप्त युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हुए श्रीकृष्ण १६ महान राजाओं के चरित और शक्ति का वर्णन करते हैं जिनको अन्त में काल का ग्रास बनना पड़ा। इसी प्रसंग में रामराज्य का सविस्तार वर्णन करके अन्त में वे राम की मृत्यु का भी उल्लेख करते हैं।[4] 'मानस' की कथा रामराज्य-वर्णन पर समाप्त हो जाती है।[5]

(२) पुराण-साहित्य—प्रसिद्ध १८ पुराणों के अन्तर्गत 'मार्कण्डेय' 'भविष्य' 'लिंग' 'वराह' 'वामन' 'मत्स्य' और 'ब्रह्माण्ड' पुराणों में राम-कथा का कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता है। यों तो अवतार चर्चा के साथ-साथ 'रामचरित' का थोड़ा बहुत प्रासंगिक वर्णन तो यत्र-तत्र प्राप्त हो ही जाता है। गरुड़ कूर्म और नारद पुराण में एक तो प्रक्षिप्त अंशों की प्रचुरता है और दूसरे वहाँ भी राम-कथा का अति संक्षिप्त वर्णन है जो किसी उल्लेखनीय विशेषता का प्रतिपादन नहीं करता।

'मानस' में वर्णित राम-जन्म की हेतु-कथाओं और 'शिव चरित' पर 'शिव पुराण' का बहुत आभार है किन्तु उसका मूल-कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है। 'स्कंद पुराण' में 'रामचरित' का अपेक्षाकृत अति विस्तृत वर्णन मिलता है यद्यपि यहाँ भी अनेक अंशों को प्रक्षिप्त माना जाता है। इस पुराण के लगभग सभी खण्डों में राम कथा का कुछ न कुछ भाग प्राप्त हो जाता है।

इसके 'माहेश्वर-खंड' में रावण के जन्म और वध का वर्णन है। 'वैष्णव खंड' में राम की निर्वाण प्राप्ति की कथा है। 'ब्राह्म-खण्ड' में सेतुबन्ध और वहाँ 'शिवलिंग' की स्थापना का वर्णन है। 'धर्मारण्य-खण्ड' में राम-कथा की समस्त घटनाओं की क्रमिक तिथियों का विवरण दिया गया है। 'अवन्तीखण्ड' में हनुमान् के 'रुद्रावतार' का संकेत है। 'रेवाखण्ड' में 'सहस्त्रोद्धार' की घटना वर्णित की गई

---

१ पुष्पकेण विमानेन वैदेह्या दर्शयन् वनम् ।
किष्किन्धां तु समासाद्य रामः प्रहरतां वरः ॥२८॥
अंगदं कृतकर्माणं यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥ २८१।२८

२ मानस ६।११६–१२१ ३ महाभारत। द्रोण।५९।१–७

४ महाभारत। शान्ति। २९।५१–६२ ५ मानस ७।२१।६१

है। नागर खण्ड में पुत्र प्राप्ति के लिए दशरथ की तपस्या एवं उनके फलस्वरूप उनके द्वारा रामादि पुत्रों के साथ-साथ शान्ता को भी पुत्री रूप में पाने का उल्लेख है। इसी खण्ड में सीता-त्याग, लक्ष्मण-मृत्यु आदि के वर्णन के पश्चात् राम के द्वारा विभीषण को उपदेश देने और उसकी प्रार्थना पर 'सेतु' को भंग कर देने का भी वर्णन मिलता है। प्रभास-खण्ड में राम, लक्ष्मण, दशरथ तथा रावण के द्वारा अनेक पुण्य क्षेत्रों में शिवलिंगों की स्थापना करते फिरने का विस्तृत वर्णन किया गया है।

पुराणों के अतिरिक्त शेष भागवत, विष्णु, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, अग्नि तथा पद्म आदि पुराणों में प्राप्त राम-कथा का विवरण इस प्रकार है—

(१) भागवत—इसके नवम स्कन्ध में 'सूर्यवंश' के इतिहास के क्रम से 'रामचरित' का भी संक्षिप्त वर्णन मिलता है। यहाँ 'रामजन्म' से लेकर 'राम-निर्वाण' तक का कथानक गृहीत हुआ है। इसकी कुछ विशेषतायें उल्लेखनीय हैं—

'मानस' में राम के पूर्वजों का कोई वर्णन नहीं मिलता है, किन्तु इसमें 'खट्वांग' से लेकर दीर्घबाहु, उनसे रघु, उनसे 'अज' फिर उनसे 'दशरथ' के जन्म लेने का विस्तृत उल्लेख है।[१] इसमें राम आदि चारों भाई ब्रह्ममय भगवान् के 'चतुर्धा' 'अंशांश' हैं।[२] 'मानस' का कथन इससे भिन्न है। इसमें 'राम निर्वासन प्रसंग' में दशरथ को स्मरण तक नहीं किया गया है।[३] 'मानस' में दशरथ का यह रूप मान्य नहीं है।[४] 'मानस' के वर्णन के समान ही[५] इसमें भी समुद्र के द्वारा राम के ईश्वरत्व का वर्णन करने और उन्हें 'अकल्पकाधिप', 'कूटस्थ' आदि पुरुष और 'जगदाधीश' आदि कहने का उल्लेख है।[६] इसमें सेतुबन्ध के पश्चात् विभीषण मिलन का वर्णन है[७] जो 'मानस' के क्रम के विपरीत है। इस पुराण के राम-रावण के लिए 'पुण्यापुरीष' स्थान और निर्लज्ज आदि अपशब्दों का प्रयोग करते हैं।[८] 'मानस' के राम इस दिशा में बड़े संयत और आदर्श हैं। इसमें राम अशोक-वाटिका में स्वयं जाकर सीता से मिलते हैं और उन्हें पुष्पक पर बैठाकर अयोध्या ले आते हैं। यहाँ सीता शुद्धि का भी कोई उल्लेख नहीं है।[९] 'मानस' का वर्णन इससे भिन्न है।

(४) *विष्णु पुराण*—इसमें इक्ष्वाकुवंश का इतिहास-वर्णन करते हुए राम के जन्म से लेकर उनकी मृत्यु तक का समस्त चरित्र केवल १८ वाक्यों में प्रस्तुत

---

१ खट्वांगाद् दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात् पृथुश्रवाः।
अजस्ततो महाराजस्तस्माद् दशरथोऽभवत्॥ ९।१०।१॥

२ भागवत ९।१०।२

३ भागवत ९।१०।८

४ मानस २।३८-४२

५ मानस ५।५९।६०

६ भागवत ९।१०।१२-१४

७ भागवत ९।१०।१६

८ " ९।१०।२२

९ " ९।१०।३०-३२

किया गया है।[1] इसकी विशेष प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं—

इसमें राम के पूर्वजों का वर्णन 'भागवत' के ही अनुसार है जो मानस में प्राप्त नहीं होता है। इसमें सीता के 'अयोनिजा' होने का उल्लेख है,[2] जो 'मानस' में नहीं है। यहाँ राम केवल अपने दर्शनमात्र से ही अहल्या को 'अपाप' करते हैं।[3] यहाँ ऐसे शिला होने और राम के चरणस्पर्श से उसके उद्धार होने का कोई वर्णन नहीं है किन्तु 'मानस' में यह अति विस्तृत है।[4] इस पुराण में मन्थरा-प्रवर्तन, कैकयी-वर याचना भरद्वाजादि मिलन, चित्रकूट में भरत मिलन अन्य प्रसंग शूर्पणखा-विरूपण सीता-हरण सुग्रीव-मिलन विभीषण-मिलन तथा रावण के अतिरिक्त अन्य राक्षसों के वध का कोई वर्णन नहीं है।[5] इसके अनुसार सभी अयोध्या वासी 'सालोक्य-मुक्ति' प्राप्त करते हैं[6] जबकि 'मानस' में अयोध्या को 'शिव-धामदा-पुरी' तो कहा गया है किन्तु नगरवासियों की मुक्ति का उल्लेख नहीं है।[7] इसमें राम के अभिषेक के पश्चात् उनके राज्य और मृत्यु का भी वर्णन किया गया है किन्तु 'सीतापवाद' का कोई उल्लेख नहीं है[8] जबकि 'मानस' की कथा 'राम राज्य' पर ही समाप्त हो जाती है।

(५) ब्रह्म-पुराण—इस पुराण में अनेक स्थलों पर राम कथा के विभिन्न प्रसंगों का वर्णन किया गया है और एक स्थान पर सभी अवतारों का विवरण देते हुए 'रामचरित' को भी अति संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। कथानक की दृष्टि से इसकी कुछ विशेषतायें उल्लेखनीय हैं—

इसके अनुसार दशरथ ने कैकयी को ३ वरदान[9] देने का वचन दिया था। 'मानस' में केवल २ वरदानों का ही वर्णन है। इसमें सीता-शुद्धि के पश्चात् राम सीता को अपने अंक में बैठने के लिये आमन्त्रित करते हैं जिसका विरोध करते हुए अंगद और हनुमान् उनसे अयोध्या में सीता की पुनः शुद्धि करवाने की प्रार्थना करते हैं किन्तु राम उनकी उपेक्षा करके लक्ष्मण विभीषण और जाम्बवान् आदि के परामर्श से सीता को वहीं 'अंकस्थ' कर लेते हैं।[11] 'मानस' में यह प्रसंग नहीं है। इसमें 'रामराज्य' का समय ११ सहस्र वर्ष बतलाया गया है, जो 'मानस' में नहीं मिलता है।[12]

१　विष्णु पुराण ४।४।८७-१०४
२　विष्णुपुराण ४।४।८९　　　३　विष्णुपुराण ४।४।९१
४　मानस १।२१०-२११　　　५　४।४।९५-९७
६　येऽपि तेषु भगवतोऽप्यनुरागिणः कोसलनगरजानपदास्तेऽपि
　　तन्मनसस्तत्सालोक्यतामवापुः ॥ ४।४।१०३
७　मानस ७।४　　　८　विष्णुपुराण ४।१८ १०२
९　ब्रह्मपुराण १२३।१०-११　　　१०　मानस २।२७
११　ब्रह्मपुराण १५४।३-६　　　१२　ब्रह्मपुराण १७६।४६-५०

(६) ब्रह्मवैवर्त पुराण—इस पुराण के 'प्रकृति खण्ड' में 'वेदवती-चरित्र' के प्रसंग में सीता जन्म से लेकर 'राम-स्वर्गारोहण' तक का कथानक प्रस्तुत किया गया है। इसकी कुछ नवीन योजनायें इस प्रकार हैं—

इसमें सीता के पूर्वजन्म का वर्णन है, जिसमें वह कुशध्वज की पुत्री बतलाई गई हैं जिन्होंने कठोर तपस्या के पश्चात् अपने अगले जन्म में विष्णु को पति रूप में वरण करने का वरदान प्राप्त किया था किन्तु रावण के द्वारा कामवासना से ग्रहण किये जाने पर उन्होंने उसे सपरिवार नष्ट होने का शाप दे दिया था।[1] 'मानस' में सीता के पूर्व जन्म तथा वर्तमान जन्म का भी कोई विवरण नहीं है।

इसी पुराण में 'छाया सीता' का भी प्रसंग मिलता है जिसके अनुसार राम अपने वनवास-काल में जब समुद्र-तट पर पहुँच जाते हैं तब अग्निदेव विप्र वेष में आकर उनसे 'सीता-हरण' की भविष्यवाणी करते हैं और सीता की सुरक्षा के लिए उन्हें छाया-सीता' देकर वे वास्तविक सीता को अपने साथ ले जाते हैं तथा 'शुद्धि' के अवसर पर उनको वापस करने का वचन भी उन्हें देते हैं। इस गोप्य परिवर्तन को वहां लक्ष्मण भी नहीं जान पाते हैं।[2] मानस' में 'अग्नि-मिलन' का कोई संकेत नहीं है। वहां स्वयं राम ही 'नर'लीला करने की इच्छा से सीता से अग्नि निवास' करने का आग्रह करते हैं। वहां भी लक्ष्मण इस 'मर्म' से अनभिज्ञ रहते हैं—

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥
३।२४

'सीता-शुद्धि के पश्चात् इस पुराण की छाया-सीता के अगले जन्म में 'द्रौपदी' हो जाने का उल्लेख है।[3] मानस में यह छाया सदा के लिए आग में जल जाती है।[4]

इसी पुराण के श्रीकृष्ण-जन्म-खण्ड' में 'मत्स्योद्धार' का वर्णन करते हुए वहीं के साथ 'राम चरित्र को भी संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है जिसमें राम

---

१ ब्रह्मवैवर्त पुराण। प्रकृति। १४।१-२२
२ वह्नियोगेन सीताया मायासीताकारि ह।
तत्तुल्यगुणरूपां तां ददौ रामाय नारद॥
सीतां गृहीत्वा स ययौ गोप्यं वक्तुं निषेध्य च।
लक्ष्मणो नैव बुबुधे गोप्यमन्यस्य का कथा॥ प्रकृति। १४।३४-३५
३ ब्रह्मवैवर्त पुराण। प्रकृति। १४।४८-५०
४ मानस ६।१०९

जन्म' से लेकर 'राम राज्य' तक का कथानक समाहित किया गया है। इसकी विशेषतायें इस प्रकार हैं—

इसमें 'मानस' के वर्णन के समान ही राम के चरण स्पर्श से अहल्या का उद्धार वर्णित है। इसके पश्चात् वह और गौतम दोनों राम को इसके लिए आशीर्वाद भी देते हैं[1] जबकि 'मानस' में अहल्या पहले राम की स्तुति करती है फिर स्वयं पतिलोक चली जाती है।[2] वहाँ गौतम का कोई वर्णन नहीं है।

इस पुराण में राम के मिथिला-गमन से लेकर 'धनुर्भंग', 'सीता विवाह', 'परशुराम-पराजय' तथा 'कैकयी-वर-याचना' आदि प्रसंगों का केवल पाँच श्लोकों में वर्णन है जबकि वहीं पर पुत्र-धर्म का वर्णन ग्यारह श्लोकों में किया गया है।[3] 'मानस' में यह असन्तुलन नहीं है।

इसमें राम-वन-गमन के पश्चात् एकदम शूर्पणखा प्रसंग आ जाता है जिसमें राम शूर्पणखा को अम्ब और माता आदि कह कर सम्बोधित करते हैं और लक्ष्मण भी उससे सीता की सपत्नी बनने का आग्रह करते हुए, स्वयं उसके पुत्रवत् बने रहने की कामना प्रकट करते हैं। इस पर शूर्पणखा मोहिनी रम्भा उर्वशी आदि अनेक कामिनियों के त्याग के कारण [illegible] ब्रह्मा तथा अश्विनी कुमार आदि की दुर्दशा का वर्णन करती हुई राम को सीताहरण का शाप देती है। फिर अगले जन्म में उनको पतिरूप में पाने के लिये वह पुष्कर में कठिन तप करती है और ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर 'कृष्णावतार' के समय कुब्जा के रूप में जन्म लेती है।[4] 'मानस' में यह विस्तार नहीं है।

इसमें हनुमान् के 'रुद्रकलोद्भव' होने का वर्णन है[5] 'मानस' में नहीं है। सीता संवाद करते हुये हनुमान् इसमें 'रावणवध' का अपना निश्चय उनसे व्यक्त करते हुये कहते हैं कि उनके लिए लंका मर्कटीडिम्भ है समुद्र मूत्र है भूतल 'शराव' (सकोरा) है ससैन्य रावण पिपीलिका-संघ है तथा वे आधे क्षण में ही सबको समाप्त कर सकते हैं किन्तु रावणवध से सम्बन्धित राम की प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए ही वे वैसा करना नहीं चाहते हैं।[6] 'मानस' में हनुमान् का यह

---

१ ब्रह्मवैवर्त पुराण। श्रीकृष्ण जन्म।६२।६–८ २ मानस १।२११

३ ब्रह्मवैवर्त पुराण। श्रीकृष्ण जन्म।६२।१०–२६

४ ब्रह्मवैवर्त। श्रीकृष्ण जन्म। ६२।२९–३१

५ ,, ,, ।६२।६२

६ मर्कटीडिम्भतुल्यां च लंकां पश्यामि सुव्रते।
मूत्रतुल्यं समुद्रं च शरावमिव भूतलम्॥
पिपीलिका संघमिव ससैन्यं रावणं तथा।
संहर्तुं समर्थोऽहं मुहूर्तार्धेन लीलया॥
रामप्रतिज्ञारक्षार्थं न हनिष्यामि साम्प्रतम्॥ श्रीकृष्ण जन्म।६२।७२–७७

दर्प-वर्णन नहीं है।[१]

इस पुराण में सीता के 'विरह-विलाप' का वर्णन तो ११ श्लोकों में है, किन्तु 'सेतुबन्ध' से लेकर 'रामराज्य-वर्णन' तक की कथा केवल ४ ही श्लोकों में है।[२] 'मानस' में इस प्रकार का असन्तुलन नहीं है।

(७) अग्नि-पुराण—इस पुराण में सभी अवतारों का वर्णन करते हुए 'रामावतार' के प्रसंग में 'रामजन्म' से लेकर 'रामराज्य' तक का कथानक सात अध्यायों में प्रस्तुत किया गया है और प्रत्येक अध्याय के अन्त में तत्सम्बन्धी काण्ड का नाम भी जोड़ दिया गया है। अन्त में रामादि के जन्म का वर्णन भी है। इसके विस्तारों में अनेक उल्लेखनीय विशेषतायें हैं।

इस पुराण में भी रामादि के रूप में विष्णु के 'चतुर्धा' होने का उल्लेख है।[३] यहाँ 'मानस' के वर्णन के समान 'पुत्र-काम-यज्ञ' का यद्यपि वर्णन नहीं है, तो भी 'ऋष्यशृङ्ग' और 'पायस' का संकेत है।[४]

इसके 'मन्थरा-षड्यन्त्र' प्रसंग में मन्थरा को राम के किसी पूर्व पदाघात से क्षुब्ध बतलाया गया है इसीलिए वह उनके निर्वासन का षड्यन्त्र रचती है।[५] 'मानस' में यह बैर-शोधन नहीं है। 'मानस' के वर्णन के समान ही किन्तु संक्षेप में इसमें भी 'मन्थरा-कैकयी-संवाद', 'कैकयी कोपागार प्रवेश' और 'वर-याचना' आदि का वर्णन किया गया है। इसमें कैकयी विष खाकर दशरथ को आत्महत्या की धमकी भी देती है[६] जो 'मानस' में वर्णित नहीं है।

इस पुराण के 'अगस्त्य-प्रसंग' में अगस्त्य के द्वारा सीता के शरीर में केवल 'नख विदारण' करने का उल्लेख है। यहाँ अंग-विशेष का कोई संकेत नहीं मिलता है[७] जबकि 'मानस' में अगस्त्य के द्वारा सीता के चरणों में 'चंचु प्रहार' करने का वर्णन किया गया है।[८]

इसमें राम विरह से दुखी दशरथ के रात्रि के किसी अज्ञात क्षण में मर जाने का उल्लेख है[९], जिसका पता प्रातःकाल ही चलता है। 'मानस' में उनकी मृत्यु का ऐसा कोई संकेत नहीं है।[१०]

इसके 'शूर्पणखा-विरूपण' प्रसंग में शूर्पणखा राम से स्पष्ट कहती है कि वह लक्ष्मण और सीता को खाने के पश्चात् उनके साथ विवाह करना चाहती

---

१ मानस ३।१८

२ ब्रह्मवैवर्त। श्रीकृष्ण जन्म।६२। ७८–८८, ९१–९७

३ अग्निपुराण ५।४

४ अग्निपुराण ५।५

५ " ६।८

६ " ६।९–२२

७ " ६।१६

८ मानस ३।१

९ " ६।३९–४२

१० " २।११५

है।[१] बाद में अपने विरूपण से क्रुद्ध होकर वह लक्ष्मण और सीता का रक्त पिलाने के लिए खर से प्रार्थना करती है और 'खरवध' के पश्चात् वह रावण को उत्तेजित करती हुई उससे 'सीताहरण' करने तथा उसे राम और लक्ष्मण के रक्त का पान कराने का भी आग्रह करती है।[२] मानस में ये बीभत्स प्रस्ताव नहीं हैं।

इस पुराण के 'लंकायुद्ध' वर्णन के प्रसंग में दोनों पक्षों के वीरों का नामोल्लेख तो बहुत है, किन्तु युद्ध का विवरण नहीं है।[३] 'मानस' में इससे विपरीत है।

'मानस' में रावण के माता-पिता का वर्णन नहीं मिलता है, जबकि इसमें रावण कुम्भकर्ण, विभीषण और शूर्पणखा सब सगे भाई बहिन बतलाए गए हैं, जिनकी माता 'कैकसी' है और पिता विश्रवा है।[४]

(८) पद्म-पुराण—इस पुराण के सृष्टि पाताल और उत्तर खण्डों में राम-कथा का बहुत कुछ परिवर्तन के साथ बड़ा रोचक वर्णन किया गया है।

(९) सृष्टि खण्ड— सृष्टि-खण्ड में राम के 'वन प्रवास' की कुछ घटनायें हैं और अभिषेक के पश्चात् उनकी पुन: 'लंका-यात्रा' के कुछ संस्मरण हैं जिसकी विशेषतायें इस प्रकार उल्लेखनीय हैं—

इसमें राम के द्वारा अग्नि के संकेत से पुष्कर में स्थित 'अवियोगा कूप' के समीप दशरथ का श्राद्ध करने का उल्लेख है जिसमें मृग मांस आदि का भी प्रयोग किया जाता है।[५] 'मानस' में यह श्राद्ध-वर्णन नहीं है।

इसमें राम और लक्ष्मण का एक विचित्र संवाद है जिसमें राम के द्वारा जल मँगाए जाने पर लक्ष्मण अस्वीकार ही नहीं करते हैं अपितु यह भी स्पष्ट कह देते हैं कि वे उनके सर्वत्र दास नहीं हैं। वे सीता के प्रति भी कटु आक्षेप करते हैं। राम के समझाने पर भी वे न तो अयोध्या लौटना चाहते हैं और न उनके साथ आगे ही जाना चाहते हैं। लक्ष्मण के इस अपूर्व व्यवहार से सीता जब चकित एवं खिन्न होती हैं तब राम उसे स्थान-विशेष का प्रभाव बतलाते हैं क्योंकि वहाँ से थोड़ा हटते ही लक्ष्मण उनसे क्षमा माँग लेते हैं और पूर्ववत् स्वस्थ हो जाते हैं।[६]

---

१ अग्निपुराण ७।१-५ २ अग्निपुराण ७।७-१२

३ " १०।१-१८

४ कैकस्यां रावणो जज्ञे विंशद्बाहुर्दशाननः।
कुम्भकर्णः समित्रोऽभूद्धर्मिष्ठोऽभूद्विभीषणः।
स्वसा शूर्पणखा तेषां ... ... ॥११।१-४

५ पद्म। सृष्टि।३३।६६-८५

६ माहं राम सर्वकाले दासभावं करोमि ते।
इयं पुष्टा च सुमुखी पीवरी च ममाप्तुत॥
किं त्वं करिष्यस्यनया भार्यया वद साम्प्रतम्॥सृष्टि।३३-१२४-१२५

इस पुराण के राम भरत के साथ पुष्पक-विमान पर बैठ कर लंका की पुनः यात्रा करते हुए मार्ग में अनेक आश्रमों का उनसे उल्लेख करते हैं। वे किष्किन्धा से सुग्रीव को भी अपने साथ ले लेते हैं और लंका पहुँच कर वे सब लोग वहाँ विभीषण का आतिथ्य स्वीकार करते हैं। वहाँ से लौटते समय राम उसकी प्रार्थना पर 'सेतु' के अनेक खण्ड भी कर देते हैं।[1] 'मानस' में यह यात्रा-वर्णन नहीं है।

इसी खण्ड में 'अहल्योद्धार' के प्रसंग में अहल्या के मांसहीन मज्जाहीन और अस्थि-चर्मावशिष्ट हो जाने के शाप का उल्लेख है।[2] 'मानस' में उसके 'शिला' बन जाने का वर्णन है।[3]

पाताल खण्ड—इस खण्ड में राम की 'पुष्पक-यात्रा' से लेकर 'रामाभिषेक' और उसके बाद सीता-त्याग एवं अश्वमेध-यज्ञ' तक का कथानक है, जिसके विस्तारों में कुछ नए प्रसंग समाविष्ट मिलते हैं।

इस खण्ड में अपनी माता कैकसी द्वारा फटकारे जाने पर ही रावण आदि के घोर तप करने का उल्लेख है। वहाँ रावण से त्रस्त देवगण पहले ब्रह्मा के समीप जाते हैं फिर उनके नेतृत्व में वे सब शिव के समीप जाते पहुँचकर उनकी स्तुति करते हैं। तदुपरान्त वे सभी लोग जब विष्णुलोक जाते हैं तब विष्णु 'आकाश वाणी' के द्वारा उनके कष्टों से अपना परिचय बतला कर उन्हें सान्त्वना देते हैं और अपने अवतार-ग्रहण की घोषणा करते हुए उनको अभय और वानर बनने का आदेश देते हैं।[4] 'मानस', का वर्णन इससे कुछ भिन्न है। इस खण्ड में राम 'रावण-वध' से प्राप्त ब्रह्म-हत्या के महापाप की शान्ति के लिए जब प्रायश्चित करना चाहते हैं तब अगस्त्य मुनि उनके ईश्वरत्व का उल्लेख करके उन्हें निर्दोष बतलाते हैं किन्तु उनके बारम्बार आग्रह पर वे उन्हें 'अश्वमेध-यज्ञ' करने का परामर्श देते हैं।[5] 'मानस' में यह वर्णन नहीं है।

इसी 'पाताल-खण्ड' में एक 'पुराकल्पीय रामायण' का भी वर्णन है जिसमें 'राम-जन्म' से लेकर 'रामराज्य' तक का कथानक है। इसमें भी अनेक नवीनतायें नियोजित की गई हैं।

इसके अनुसार दशरथ के ४ रानियाँ हैं और उनमें से कौशल्या से राम,

---

१ पद्म । सृष्टि । ४०१६–११७

२ परेवाभिमताsसि त्वमपेय्या पापकारिणी ।
अस्थिचर्मकृताविष्टा निर्मांसाऽसवर्जिता ॥
चिरं स्थास्यसि वीतापि त्वां पश्यन् जनाः शिवम् ॥ सृष्टि ।५१।१७

३ मानस १।२११ ४ पद्म । पाताल । १।१०–७०

५ पद्म । पाताल ।४।७–१७

सुमित्रा से लक्ष्मण, सुरूपा से भरत और सुवेषा से शत्रुघ्न आदि पुत्र जन्म लेते हैं।[1] इसमें राम के विवाह की इच्छा से दशरथ चारों ओर दूत भेजते हैं और उनसे जनक की स्वीकृति जानकर वे बारात लेकर मिथिला पहुँचते हैं। वहाँ नारद सीता के स्वयंवर के लिए विशेष आग्रह करते हैं तब जनक शिव की स्तुति करके उनसे वरदान में एक ऐसा धनुष प्राप्त कर लेते हैं जिसे केवल राम ही तोड़ सकें। उस 'सीता स्वयंवर' में वहाँ इन्द्र, सूर्य वायु आदि देवता गण, प्रह्लाद बलि आदि राक्षस स्वयं विश्वामित्र और अनेक राजकुमार प्रतियोगी रूप में सम्मिलित होते हैं और असफल हो जाते हैं। इसके पश्चात् राम धनुर्भंग करते हैं और उन असफल राजकुमारों के विद्रोह करने पर उनको पराजित भी करते हैं।[2] यहाँ 'परशुराम विवाद' का कोई संकेत नहीं है। ऐसा प्रसंग, अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है।

इसमें 'बालि-वध' के प्रसंग में तारा का 'बालि प्रबोध मानस' के समान ही वर्णित है किन्तु बालि की मृत्यु के बाद राम से उसके वध का कारण पूछती हुई तारा अनेक सम्भावनाओं को व्यक्त करती है और उनका समाधान भी स्वयं देती है। वह राम से कहती है कि उन्होंने 'वानर मांस' खाने के लिये बालि का वध किया है तो वह अभोज्य है यदि स्वयं दुःखी होने के कारण दूसरों को भी दुःखी बनाने के लिए उन्होंने ऐसा किया है तो यह उनका 'विमोह' है, यदि स्वयं उसके (तारा के) अपहरण के लिए वह किया गया है तो फिर उनके एक-पत्नी व्रत का निर्वाह नहीं हो सकता है और यदि सीता की प्राप्ति के लिए ही समस्त उद्योग है, तो व्यर्थ है, क्योंकि वह कहती है कि बालि स्वयं इतना समर्थ था कि वह रावण पर दबाव डाल कर यहीं बैठे-बैठे सीता को मँगवा सकता था। जब राम बालि पर भ्रातृवधू-हरण का दोष लगाते हैं तब वह सुग्रीव को भी समान दोषी ठहराती है। इस पर राम अपनी 'मृगया-प्रियता' की ओट लेकर शांत हो जाते हैं।[3] 'मानस' में तारा के ये कुतर्क नहीं मिलते हैं।[4]

इसमें राम अपनी सेना के सहित समुद्रतट पर पहुँचकर, हनुमान् को 'सीता प्रवृत्ति' के लिए लंका में भेजते हैं, वहाँ वे सीता से मिलकर और उन्हें सान्त्वना देकर 'लंकादाह' के बाद वापस लौट आते हैं।[5] 'मानस' में 'सीता-शोध' का विवरण इससे भिन्न है।[6]

---

१ अथ राजमहिष्यस्तस्य कौसल्या सुमित्रा सुरूपा सुवेषा चेति। तत्र कौसल्यायां रामो लक्ष्मण सुमित्रायां सुरूपायां भरतः सुवेषायां शत्रुघ्नो जज्ञे ॥ पद्म। पाताल। ११६। पृष्ठ ५६१–५६२

२ पद्म। पाताल। ११६। पृष्ठ। ५६३–५७०

३ ,, ,, पृष्ठ ५७१–५७४

४ मानस ४।११

५ पद्म। पाताल। ११६। पृ० ५७४–५७५

६ मानस ४।१८–५।१२

इस खण्ड में 'समुद्र-तरण' के लिये राम शिव की स्तुति करके उनसे 'मायामय धनुष' प्राप्त करते हैं, जिस पर अपनी सारी सेना के साथ बैठकर वे लंका में प्रवेश करते हैं।[1] 'मानस' में इसके लिये सेतुबन्ध' की योजना की गई है।[2]

इसमें गुरु राम को एक रहस्य बतलाता है कि लंका के द्वार पर 'षाट्-चक्र यन्त्र' के भेदन करने वाले के ही हाथों से रावण की मृत्यु हो सकती है इसलिए राम पहले वैसा ही करते हैं। यहाँ रावण के वध के पश्चात् कुम्भकर्ण के वध का उल्लेख है,[3] जो 'मानस से भिन्न है।

इस पुराण के राम लंका से लौटते समय समुद्र तट पर शिव प्रतिष्ठा करते हैं।[4] 'मानस' में इसका वर्णन लंका-गमन से पूर्व किया गया है।[5]

उत्तर खण्ड—इसका आरम्भ 'मानस' के आरम्भ के समान ही 'रावण जन्म' के प्रसंग से किया गया है, किन्तु इसका अन्त 'राम-स्वर्गारोहण' से है। कथा की दृष्टि से इसमें अनेक विशेषतायें हैं—

इसमें भी रावण आदि की माता का नाम कैकसी है।[6] इसमें रावण से त्रस्त देवगण सीधे विष्णुलोक जाते हैं यद्यपि उनके साथ ब्रह्मा और शिव भी हैं। यहाँ विष्णु उन्हें सान्त्वना देकर 'नन्दिशाप का भी उल्लेख करते हैं, जिसके फल स्वरूप उन देवताओं को वानर बनना पड़ता है।[7] मानस का वर्णन इससे भिन्न है।

इसमें भगवान् विष्णु 'यज्ञाग्नि' से ही प्रगट होकर दशरथ और कौसल्या को अपने दिव्य-रूप का दर्शन देते हैं और उनकी प्रार्थना पर उनका पुत्र बनना स्वीकार करके उन्हें तुरन्त 'चरु' भी दे देते हैं। इसमें भट्ट के समान वितरण का भी संकेत है।[8] मानस' में न तो यज्ञ से विष्णु प्रगट होते हैं और न दशरथ ही कभी उनके दिव्य-रूप का दर्शन करते हैं। 'चरु' का वितरण भी यहाँ भिन्न है।[9]

'मानस' के वर्णन के समान ही[10] इसमें भी राम के द्वारा कौसल्या को अपने विराट स्वरूप का दर्शन देने और उनकी प्रार्थना पर शिशुवत् लीला करने का उल्लेख है।[11]

इसके 'जयन्त प्रसंग' के अनुसार इसमें सीता के स्तनों में 'नखक्षत' करने वाले जयन्त पर राम कुश के ब्रह्मास्त्र से प्रहार तो करते हैं किन्तु उसके त्रिभुवन

१ पद्म । पाताल । पृ० ४७५-४७६
२ मानस ५।५०-६।५
३ " " " ४७७-४७८
४ पद्म । पाताल । ११६ पृ० ४७९
५ मानस ६।२-३
६ पद्म । उत्तर । २४२। १८-२१
७ पद्म । उत्तर । २४२।२८-३०
८ पद्म । उत्तर । २४२। ४७-६१
९ मानस । १।१९०
१० मानस । १।१९२
११ पद्म । उत्तर । २४३।८२-९०

भ्रमण के पश्चात् उन्हीं की शरण में आ जाने पर वे उसे 'अभय-दान' देकर मुक्त भी कर देते हैं।[१] 'मानस' में सीता के चरणों में जयन्त के 'चंचु प्रहार' का उल्लेख है। यहाँ राम 'सींक बाण' से उसे 'एकाक्ष' कर देते हैं।[२]

इसमें शूर्पणखा राम से कहती है कि वह सीता को खाकर उनके साथ वन में रमण के लिए प्रस्तुत है और राम के कुछ बोलने के पूर्व ही जब वह सीता पर आक्रमण कर देती है, तब राम ही उसके नाक-कान काट डालते हैं।[३] 'मानस' में उसका यह विरूपण लक्ष्मण करते हैं।[४]

'मानस' के वर्णन के समान ही[५] इसमें भी रावण से आहत जटायु के द्वारा राम के समक्ष ही हरि का सामान्य रूप धारण करके और मुक्ति प्राप्त करने का उल्लेख है।[६]

इसमें राम लंका जाने के लिये पहले एक बाण से समुद्र को सुखा देते हैं फिर उसी की प्रार्थना पर वे उसे वरुणास्त्र से पूर्ववत् भर भी देते हैं और 'सेतुबन्ध' के द्वारा इसे पार करते हैं।[७] 'मानस' में केवल 'सेतुबन्ध' का वर्णन है।[८]

इसमें 'सीता-शुद्धि' के अवसर पर ब्रह्मा और शिव आदि सभी देवगण राम और सीता के ईश्वरत्व एवं शक्तित्व का क्रमशः उल्लेख करते हुए राम से सीता के ग्रहण की प्रार्थना करते हैं।[९] 'मानस' में सीता के ग्रहण के बाद ही देवताओं की स्तुतियों का वर्णन है।[१०] इस पुराण के अनुसार लंका-युद्ध में मृत वानर-गण ब्रह्मा के वरदान से पुनरुज्जीवित हो जाते हैं[११] जबकि 'मानस' में इसके लिए इन्द्र के द्वारा अमृत-वर्षा करने का वर्णन है।[१२]

'मानस' के राम के समान[१३] ही इस पुराण के राम भी लंका से अयोध्या लौटते समय 'भरद्वाज-आश्रम' के समीप हनुमान् को भरत की सूचना के लिये वहाँ भेज देते हैं किन्तु इसमें वे गुह से मिलते हुए 'नन्दिग्राम' पहुँचते हैं[१४] जबकि 'मानस' का गुह उनके आगमन की सूचना पाकर उनसे मिलने के लिए स्वयं गंगा-तट पर आ जाता है।

---

१ पद्म । उत्तर । २४२।१९५–२११
२ मानस ३।१।२
३ पद्म । उत्तर । २४२।२४१ २४६
४ „ ३।१७
५ मानस । ३।३२
६ स्वपदं च ददौ तस्मै योगिगम्यं सनातनम् ।
हरेः सामान्यरूपेण मुक्तिं प्राप खगोत्तम ॥ उत्तर । २४२।२५२–२५६
७ पद्म । उत्तर । २४२।२६७–२६९
८ मानस । ५।५७–६।४
९ पद्म । उत्तर । २४२।३२६ ३४१
१० „ । ६।१०८–११५
११ पद्म । उत्तर । २४२।३४३
१२ „ । ६।११४
१३ मानस ६।१२१
१४ पद्म । उत्तर ।२४२।३४८–३५२

इसमें 'रामाभिषेक' के पश्चात् केवल शिव ही राम की विस्तृत स्तुति करते हैं, जिसके पश्चात् राम उन्हें अपने 'दिव्य-दर्शन' भी देते हैं।[1] 'मानस' में इस अवसर पर अनेक देवताओं और वेदों की भी स्तुति का उल्लेख है, किन्तु राम के दिव्य-दर्शन का कहीं संकेत नहीं है।[2]

१२ गद्य साहित्य

पद्य साहित्य के अतिरिक्त गद्य-साहित्य में भी राम-कथा का बड़े सम्मान के साथ ग्रहण हुआ है। कथा सरित्सागर 'बृहत्कथा-मंजरी' तथा 'राम-कथा' आदि गद्य-ग्रंथों में 'राम चरित' का बड़ा आकर्षक वर्णन मिलता है।

(१) कथा सरित्सागर—इस ग्रंथ के 'अलंकारवती' नाम के नवें लम्बक के प्रथम तरंग में कुल ८५ श्लोकों (२८ से ११२ तक) में राम-कथा का संक्षिप्त वर्णन प्राप्त होता है। इसके लेखक सोमदेव ने इसमें 'गुणाढ्य' के प्राकृत-भाषा के ग्रंथ 'बड्डकहा' का संक्षेप और भाषा भेद से 'यथामूल' अनुवाद प्रस्तुत किया है।[3] 'राम-जन्म' से लेकर 'रामाभिषेक' फिर 'सीता-निर्वासन' से सीता-ग्रहण' तक का पुरातन कथानक इसमें समाहित है। कथा की दृष्टि से इसमें कोई विशेषता नहीं है। इसी के 'पंच लम्बक' नामक १४वें लम्बक के तृतीय तरंग में भी केवल १५ श्लोकों (१२ से २६ तक) में 'सुग्रीव-मैत्री' से लेकर रावण वध तक की कथा का अति संक्षिप्त वर्णन मिलता है। इसमें भी कोई नवीनता नहीं है।

(२) बृहत्कथा-मंजरी—क्षेमेन्द्र की इस रचना में कथान्तर कथा के रूप में 'रामचरित' का अति संक्षिप्त वर्णन किया गया है, जिसकी कथावस्तु में कोई नवीनता नहीं मिलती है।

(३) राम-कथा—वासुदेव के इस ग्रन्थ में 'राम-जन्म' से लेकर रामाभिषेक तक का कथानक प्रस्तुत किया गया है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि संक्षिप्त होने पर भी इसमें राम-कथा का कोई प्रसंग नहीं छूटा है।

इसमें रावण के वरदाता देवता के रूप में शंकर का उल्लेख किया गया है जबकि 'मानस' में ब्रह्मा का वर्णन है।[5] इसके अनुसार दशरथ कौसल्या और कैकयी में ही उस पायस को वितरित कर देते हैं, फिर सुमित्रा के आ जाने पर ये दोनों रानियाँ थोड़ा-थोड़ा भाग उसे भी दे देती हैं।[6] 'मानस' का विवरण इससे भिन्न है। इसमें सीता के 'अयोनिजा' और लक्ष्मी के अवतार' होने का वर्णन किया

---

१ पद्म। उत्तर।२४१।२३-४१
२ मानस ७।१२-१४
३ कथा सरित्सागर ९।१।१०
४ राम कथा पृष्ठ १
५ मानस १।१७७-८
६ " " ४

गया है।[१] यहीं मन्थरा के भी दुन्दुभि गन्धर्वी के अवतार होने का उल्लेख है,[२] जो 'मानस' में प्राप्त नहीं होता है। इसमें कैकयी के वरदान में ही राम के साथ सीता और लक्ष्मण के भी सहगमन की प्रार्थना है,[३] जबकि 'मानस' में केवल राम के ही वनगमन का संकेत है।[४] इसके अनुसार अगस्त्य मुनि राम का स्वागत करते हुए उन्हें दिव्यास्त्र भी प्रदान करते हैं[५] जिसका उल्लेख 'मानस' में नहीं मिलता है।[६]

इस ग्रंथ के 'शूर्पणखा-विरूपण' प्रसंग में शूर्पणखा के नाक कान, ओठ और स्तन आदि के भी काट लिये जाने का उल्लेख है[७] जबकि 'मानस' में केवल नाक और कान के ही काटे जाने का वर्णन है।[८]

'मानस' के वर्णन के समान ही इसके अनुसार भी रामदूतों के दर्शन से सम्पाति को पक्षों की पुनः प्राप्ति हो जाती है जिससे वह तुरन्त उड़ कर और लंका में सीता को देखकर उन वानरों से यथार्थ समाचार बतलाता है।[९] 'मानस' में वह अपनी सुदूर दृष्टि से ही सब कुछ देख लेता है और वृद्धावस्था के कारण अन्य सहायता कार्यों में अपने को असमर्थ बतलाता है।[१०]

इस ग्रन्थ का सुग्रीव रावण का प्रथम दर्शन करते ही उछल कर उस पर आक्रमण करता है और उसके मुकुटों को छीन कर राम को उपहार-स्वरूप दे देता है।[११] 'मानस' में इस घटना का वर्णन नहीं है।

'मानस' के वर्णन के समान ही[१२] इसमें भी 'सीता-शुद्धि' के प्रसंग में स्वयं अग्निदेव के द्वारा सीता को पूर्ण शुद्ध बतला कर उन्हें राम को समर्पित करने का उल्लेख है।[१३] यहाँ इस अवसर पर ब्रह्मा शिव और दशरथ आदि के आने का वर्णन नहीं है यद्यपि देवताओं की कृपा से वानरों के पुनर्जीवित हो जाने का संकेत है[१४] जो मानस में भी मिलता है।

इस विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संस्कृत-साहित्य में राम-कथा बहुत अधिक लोकप्रिय रही है इसीलिये महाकाव्यों और नाटकों के अतिरिक्त

---

१ राम कथा पृष्ठ ६ — २ रामकथा पृ० ७
३ राम कथा पृष्ठ ११ — ४ मानस २।२६
५ " १८ — ६ " ३।१२-१३
७ " " १६ — ८ " ३।१७
९ " १० — १० " ४।२८
११ अथ सवितृपुत्र सपदि समुत्पत्य रिपोर्मुकुटं शिरसः समाच्छिद्य प्रभोरुपायनीकृतवान्। रामकथा पृष्ठ ४२
१२ मानस ६।१०८ — १३ राम-कथा पृष्ठ ५०
१४ राम-कथा पृष्ठ ५१

काव्य के अन्यान्य रूपों में भी उसे बड़े सम्मान का स्थान प्राप्त हुआ है। इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा 'मानस' के वस्तु-संगठन में संतुलन औचित्य एवं तारतम्य का जो कुशल निर्वाह मिलता है उपर्युक्त ग्रन्थों में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है। इसके अतिरिक्त जहाँ तक राम के चरित्र-चित्रण का सम्बन्ध है इन ग्रंथों में यद्यपि उनके ईश्वरत्व का उल्लेख अनेकधा किया गया है तथापि उसके लिए अपेक्षित ऐश्वर्य एवं लोकोत्तरत्व के दर्शन वहाँ नहीं होते हैं। जबकि मानस कार राम के प्रत्येक कार्य को अलौकिकता के आलोक से द्योतित करता हुआ 'भगवान' की 'नरलीला' का प्रचार करता हुआ चलता है।

अध्याय २

कथा-विवेचन

संस्कृत राम-कथा की दीर्घ परम्परा की विवेचना से यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि 'वाल्मीकि रामायण' में सन्निविष्ट दृष्टिकोण—जिसमें कवित्व और चरित्र का सुन्दर समन्वय दिखलाई पड़ता है—आगे चल कर कितना फैला-फूला। संस्कृत की प्रत्येक रचना, राम-कथा के सम्बन्ध से एक नया आशय अथवा मन्तव्य लेकर प्रस्तुत हुई। 'राम-चरित-मानस' की कथा उस परम्परा की एक कड़ी होते हुए भी समन्वयात्मक पूर्णता की ओर प्रेरित है। महात्मा तुलसीदास ने अपनी तत्कालीन परिस्थितियों में जाति, धर्म, समाज दर्शन आदि से सम्बन्धित दृष्टिकोणों में जिस संकोच का साक्षात्कार किया था वह क्षोभ्य ही नहीं बाधक भी था, इसीलिए देश-काल की प्रवृत्तियों के अनुरूप उन्होंने इस 'मानस' की सृष्टि की जिसमें अव गाहन करने वाला 'त्रयताप' से मुक्त हो सके।

यद्यपि मुख्यतः तुलसीदास ने वाल्मीकि-रामायण को ही अपने सामने रखा है, तो भी उनकी सुरुचि और सौन्दर्य भावना ने अनेक प्रसंगों को जोड़-तोड़ कर, जिस आदर्श काव्य को जन्म दिया है वह अनेक विशेषताओं से युक्त है। 'वाल्मीकि-रामायण' के मूल कथानक में अनेक विस्तारों का बोझ चाहे वह सौन्दर्य की भावना से हो और चाहे वृत्तगत विशेषता के सम्बन्ध से हो 'मानस' के मूल्य को बढ़ाने में बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। अतएव 'रामचरित-मानस की वस्तु-विवेचना, उन सब राम-कथाओं के परिवेश में अपेक्षित है जिनसे उसको किसी भी प्रकार की प्रेरणा मिली है। इतना ही नहीं जिन राम-कथाओं में तुलसीदास को कुछ दोष या अभाव खटके हैं, 'मानस' में या तो उनका परिमार्जन हो गया है या अन्यथा पूर्ति हो गई है। विस्तारों को घटाने-बढ़ाने में तुलसी के चारित्रिक आदर्शों का भी बड़ा योग रहा है। किसी पात्र की स्थिति लोक-धर्म को आहत न कर दे, इस दृष्टि से कई प्रसंगों में व्यक्ति-धर्म के ऊपर लोक-धर्म की प्रतिष्ठा की गई है। यद्यपि मूल कथानक के प्रवाह में इन प्रसंगों से विशेष अन्तर नहीं आया है, फिर भी इनका नैतिक मूल्य भुलाया नहीं जा सकता है। इन्हीं मूल्यों की भूमिका पर 'मानस' के उत्कर्ष की प्रतिष्ठा है इसी से उसको इतनी लोकमान्यता प्राप्त हुई है और इसीसे वह लोक-गिरा के भूषण के रूप में प्रतिष्ठित है।

इन प्रसंगों को ध्यान में रख कर 'रामायणेतर' संस्कृत काव्यों के कथानक के साथ 'रामचरित-मानस' के कथानक की तुलनात्मक विवेचना स्वतः इस ग्रन्थ की मौलिक दिशा है, अतः 'राम-काव्य' की परम्परा के साथ इसका अध्ययन अत्यावश्यक हो जाता है।

इस अध्ययन में 'मानस' की राम-कथा बाँटों का काम कर रही है। 'मानस' का प्रत्येक काण्ड हमारे सामने कुछ मोटे-मोटे 'बाँट' प्रस्तुत करता दिखाई देता है। यों तो कहीं-कहीं इनके साथ तोला-माशा भी जुड़े हुए हैं और प्रासंगिक रूप से उनका अपना मूल्य है किन्तु संस्कृत की राम-कथाओं को तोलने के लिए मूलतः हमें प्रमुख 'बाँटों' से ही काम लेना पड़ेगा, जिनका उल्लेख काण्डक्रम से नीचे किया जा रहा है—

बाल-काण्ड—इस काण्ड के भूमिका भाग में 'संवाद-चतुष्टय' और 'पुनर्जन्म की अनेक कथायें' हैं और मूल कथा भाग में राम-जन्म, राम-विश्वामित्र मिलन, सीता-स्वयंवर, परशुराम-पराजय और राम-विवाह आदि प्रसंग हैं।

अयोध्या-काण्ड—इसमें राम के यौवराज्याभिषेक के सम्भार, केकयी की वरदान याचना, राम वन-गमन, सीता और लक्ष्मण के अनुगमन, राम-निषाद मिलन, राम-मुनि-मिलन, सुमन्त्र प्रत्यावर्तन, दशरथ-मरण, भरत के अयोध्या-आगमन, चित्रकूट में राम भरत-मिलन और भरत के नन्दिग्राम प्रवास आदि का वर्णन है।

अरण्य काण्ड—इसमें जयन्त-शासन, शूर्पणखा-विरूपण, सीता-हरण, जटायु मरण, शबरी-मिलन, और नारद मिलन आदि की कथायें हैं।

किष्किन्धा-काण्ड—इसमें सुग्रीव-मैत्री, सीता-शोध, स्वयंप्रभा-कथा, और सम्पाति-कथा आदि का विवरण है।

सुन्दर-काण्ड—इस काण्ड में हनुमान्-विभीषण-मिलन, हनुमान्-सीता मिलन, लंका-दहन और विभीषण की शरणागति आदि का वर्णन किया गया है।

लंका-काण्ड—इसमें सेतु निर्माण, अंगद-दौत्य, लक्ष्मण-मूर्च्छा, कुम्भकर्ण-वध, मेघनाद-वध, रावण-वध और सीता शुद्धि आदि के प्रसंग हैं।

उत्तर-काण्ड—इस काण्ड के मूल कथा भाग में राम का अयोध्या-प्रत्यावर्तन, राज्याभिषेक और रामराज्य आदि के प्रसंग हैं तथा उपसंहार भाग में काक भुशुंड-संवाद और कथा-माहात्म्य आदि का वर्णन किया गया है।

१ बाल-काण्ड

(१) भूमिका-भाग—'बाल-काण्ड' के आरम्भ से लेकर राम-कथा के आरम्भ तक का यह भाग 'मूल कथानक' की भूमिका का कार्य करता है अतः इसे भूमिका भाग कहना ही उपयुक्त है। इसके अन्तर्गत 'संवाद चतुष्टय' और पुनर्जन्म की कथाओं का उल्लेख किया जा चुका है।

(२) संवाद-चतुष्ट्य—तुलसी ने 'मानस' के क्लिष्ट रूपक[1] में जिन संवादों का संकेत किया है वे उसकी सीमा-सृष्टि के साथ-साथ उसके सौष्ठव एवं सुगठन के भी नियामक हैं। 'गुरु-तुलसी-संवाद' 'मानस' का आदि संवाद है। इसमें कवि अपनी अपरिपक्व मति और गुरु के बारम्बार 'प्रबोध' का जो संकेत करता है[2], वह रामकथा की गूढ़ता का ही परिचायक है। यद्यपि इस संवाद में किसी शंका का उल्लेख नहीं है तो भी इसके अन्तर्गत वर्णित 'याज्ञवल्क्य' और 'भरद्वाज' के संवाद का आरम्भ भरद्वाज की इस शंका से होता है कि स्त्री विरह में दुख पाने वाले राम और शिव के द्वारा जपे जाने वाले राम एक ही हैं या दो हैं।[3] इस व्यक्तिगत शंका में लोक-शंका का आभास पाकर याज्ञवल्क्य उसका समाधान करते हुए उनको वह 'शिव-पार्वती-संवाद' सुनाते हैं जिसमें पार्वती के पूर्वजन्म 'सती-जन्म' और वर्तमान जन्म की वैसी ही शंका और शिव द्वारा उसके समर्थ समाधान का भी विवरण है।[4] शिव अपने इस संवाद में ही उस 'काक-गरुड़ संवाद' का भी वर्णन करते हैं जिसमें राम को नागपाश में असमर्थ देख कर गरुड़ उनके ईश्वरत्व में शंकालु हो जाता है[5] और भुशुण्डि काग[6] अपने अनुभव सुना कर उसको स्वस्थ करता है।[7] यह 'संवाद-चतुष्टय' मानस की कथा का आद्यन्त है और उसमें कवि का एक मात्र उद्देश्य यही है कि राम की नर-लीला देख कर उनके ईश्वरत्व के विषय में किसी को भी शंका न हो। रामायणेतर संस्कृत काव्यों में इस प्रकार की संवाद-योजना प्राप्त नहीं होती है।

(३) पुनर्जन्म-कथायें—इन संवादों के अतिरिक्त भूमिका भाग में शापों और वरदानों के फलस्वरूप होने वाले अनेक पुनर्जन्मों की कथाओं का वर्णन है जिनका राम और रावण के साथ विशेष सम्बन्ध है क्योंकि वे 'मानस' की कथा के मूल आधार मात्र हैं।

इन शापों और वरदानों के पीछे तुलसी एक नैतिक आदर्श की प्रतिष्ठा भी करना चाहते हैं कि वरदान यदि सत्कर्म का परिणाम है तो शाप असत्कर्म का और एक जन्म के कर्मों का परिणाम कभी-कभी कई जन्मों तक भोगना पड़ता है जैसे जय और विजय तीन जन्मों तक राक्षस बनने को विवश हो जाते हैं। इस प्रकार तुलसी 'कर्म के अनुसार जन्म' का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं और पाठक के मन में यह विश्वास जमा देना चाहते हैं कि उसका वर्तमान जन्म उसके विगत जन्म के अच्छे या बुरे कर्मों का ही परिणाम है और साथ ही उसके वर्तमान जन्म कर्मों के आधार पर ही उसे अच्छा या बुरा भावी जन्म भी प्राप्त हो सकेगा। इसीलिए भावी जीवन

१ मानस १।३६
२ मानस १।३०–३१
३ " १।४६
४ " १।५०
५ " ७।५८
६ " ७।७७–८२
७ " ७।१२५

को पुनः सुखी देखने की महत्वाकांक्षा प्रत्येक व्यक्ति को वर्तमान में भी सत्कर्म के लिए सदैव प्रेरित करती रहती है। एक अज्ञात भय उसे कुकर्मों से इस प्रकार बचाता हुआ चलता है, क्योंकि तुलसी के अनुसार जब स्वयं भगवान् को भी शाप के कारण पुनर्जन्म लेकर अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं[1] तो फिर साधारण मनुष्य की क्या बिसात है। राम और रावण आदि के जन्मों के कारणों में इसी प्रकार शापों एवं वरदानों की महिमा प्रतिष्ठित करके तुलसी न केवल उनकी सक्षमता पर ही बल देते हैं, अपितु पाठकों को एक नैतिक धरातल पर खड़ा करके 'आचरण की मीमांसा' के लिए भी प्रेरित करते हैं।

(४) राम-जन्म के सामान्य कारण—राम के अवतारों को प्रतिकल्प में भिन्न बतला कर[2] तुलसी उनके लिए अनेक कारणों की योजना करते हैं। 'गीता' के आधार पर[3] 'धर्महानि' और 'अधर्मवृद्धि' की चरम स्थिति को वे रामजन्म का सामान्य कारण मानते हैं।[4] उनके अनुसार यह स्थिति रावण के ही अत्याचारों से उत्पन्न होती है, अतः ये दोनों बातें—धर्महानि और रावण के अत्याचार—वस्तुतः एक ही हैं क्योंकि रावण समस्त आसुरी प्रवृत्तियों का प्रतीक है इसीलिए अवसर पाते ही वह इतने अत्याचार करता है कि पृथ्वी तक काँप जाती है और देवता भी निष्प्राण हो जाते हैं उस समय उनकी प्रार्थना पर रावण के विनाश के लिए और धर्म रक्षा के लिए विष्णु को रामावतार ग्रहण करना पड़ता है।[5] अवतार के इसी उद्देश्य को अधिक सुस्पष्ट करने के लिए भट्टिकाव्य में 'भुवनहितच्छल'[6] रघुवंश में लोकानुग्रह'[7], महाभारत में प्रजापाल[8] रामायण-मंजरी में त्रैलोक्य-संकट नाश'[9] हनुमन्नाटक में 'भूमिभारहरण[10] रामचरित में विश्वार्थ'[11], राघवीय में 'रावण-वध'[12] उदारराघव में 'जगदुपप्लव-शान्ति'[13], रामाभ्युदय में 'त्रिभुवन-त्रास विनाश'[14], भागवत में 'धर्मसंस्थापन'[15] ब्रह्म-पुराण में लोक-प्रसादन, 'राक्षस-निग्रह' तथा धर्म-वृद्धि'[16] एवं पद्म पुराण में साधु-परित्राण' 'दुष्कृत विनाश धर्म-संस्थापन'[17] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

---

१ मानस १।१३७ — २ मानस १।३३
३ गीता ४।७–८ — ४ मानस १।१२१
५ मानस १।१८४–१८७ — ६ भट्टिकाव्य १।१
७ रघुवंश १०।३१ — ८ महाभारत। वन।२७२।३
९ रा० मंजरी। बाल। ९९ — १० हनुमन्नाटक १।५
११ रामचरित ३।५ — १२ राघवीय १।४४
१३ उदार राघव १।२० — १४ रामाभ्युदय २।६१
१५ भागवत १०।३३।३७ — १६ ब्रह्म २११।१२६ १८१।१–४
१७ पद्म। उत्तर।२४२।९

(५) विशेष कारण 'शाप और वरदान'—इन सामान्य कारणों के अतिरिक्त 'रामजन्म' के विशेष कारणों में नारद और वृन्दा के द्वारा राम को दिए गये शाप एवं उनके (राम के) द्वारा मनु और शतरूपा तथा कश्यप और अदिति को दिये गये वरदानों का प्रमुख उल्लेख है।

'मानस' के नारद राजा शीलनिधि की पुत्री विश्वमोहिनी के स्वयंवर में विष्णु के कपट से क्षुब्ध होकर उनको 'नरदेह-धारण' का शाप दे देते हैं।[1] 'शिव पुराण' में वर्णित इसी प्रसंग में केवल नामों का अन्तर है, शेष वृत्त समान है। वहाँ शीलनिधि के स्थान पर अम्बरीष और 'विश्वमोहिनी' के स्थान पर 'श्रीमती' का उल्लेख है।[2] 'मानस' की वृन्दा भी विष्णु के कपट से कुपित होकर उनको 'नरदेह धारण' का शाप देती है।[3] 'शिवपुराण'[4] और 'स्कन्द पुराण'[5] में भी यह प्रसंग समान रूप से वर्णित है।

इन शापों के अतिरिक्त मनु और शतरूपा तथा कश्यप और अदिति को दिए गए विष्णु के वरदान भी 'रामजन्म' के कारण सिद्ध होते हैं। 'मानस' के विष्णु मनु और शतरूपा की तपस्या से प्रसन्न होकर उनकी प्रार्थना पर एक बार उनके पुत्र बनना स्वीकार कर लेते हैं[6] किन्तु 'पद्मपुराण' में वे उनके तीन बार पुत्र बनने का वरदान उनको देते हैं इसीलिए उनके 'दशरथ और कौसल्या' होने पर वे 'राम' बनते हैं, उनके वसुदेव और देवकी होने पर वे ही कृष्ण बनते हैं और उनके 'हरिदत्त' और देवप्रभा होने पर वे ही पुन 'कल्कि' बनेंगे।[7] कश्यप और अदिति को दिए गए विष्णु के वरदान के तथ्यों का उल्लेख यद्यपि 'मानस' में नहीं है तो भी उसके प्रभाव से उनके 'दशरथ और कौसल्या बनने का वर्णन मिलता है। 'मानस' की मूल कथा के राम उन्हीं के पुत्र हैं।[8] 'भागवत' के अनुसार कश्यप और अदिति विष्णु के 'वामनावतार' के पिता-माता हैं और वे ही उनके 'कृष्णावतार' में वसुदेव और देवकी हो जाते हैं।[9] सम्भवतः इसी प्रसंग को 'रामावतार' के साथ जोड़कर तुलसी ने उन दोनों को 'दशरथ' और 'कौसल्या' के रूप में अवतरित दिखलाया है। इस प्रकार 'रामजन्म' की एक 'कारणमाला' सी प्रस्तुत करने पर भी तुलसी उसे केवल 'उदाहरणमात्र' ही कहते हैं, क्योंकि उनके अनुसार कल्पभेद से उसके अनेक रूप हो सकते हैं।[10]

(६) रावण-जन्म का कारण—राम और रावण के अविच्छिन्न सम्बन्ध के कारण तुलसी 'रावण-जन्म' के भी विविध रूपों का उल्लेख करते हुए उनके एक

---

१ मानस १।१३७
२ शिव। रु। सृष्टि। ४।१५
३ " १।१२३–१२४
४ " युद्ध। २३
५ स्कन्द। वैष्णव।२०–२१
६ मानस १।१४९–१५२
७ पद्म। उत्तर।२४२।१–१२
८ " १।१८७
९ भागवत १०।३।३२–४४
१० मानस १।१२१–१२२

भाव कारण 'शाप प्रभाव' का निर्देश करते हैं, क्योंकि उनके अनुसार ऐसे कृपाल के जन्म का कोई अन्य कारण हो ही नहीं सकता है।

'मानस' में इस सम्बन्ध में चार शाप-कथायें हैं। 'जय-विजय-शाप' कथा के अनुसार विष्णु के दोनों द्वारपाल जय और विजय 'विप्रशाप' के कारण ३ जन्मों तक राक्षस बनते हैं। प्रथम जन्म में ये हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष होते हैं तथा द्वितीय जन्म में ये ही रावण और कुम्भकर्ण हो जाते हैं।[1] यहाँ तृतीय जन्म का कोई संकेत नहीं है जबकि भागवत[2] और पद्मपुराण[3] में उन दोनों के तृतीय जन्म में क्रमशः शिशुपाल और दन्तवक्त्र बनने का भी उल्लेख है। 'मानस' की दूसरी शाप कथा 'जलंधर-कथा' में जलंधर के परजन्म में रावण होने का वर्णन मिलता है, यद्यपि उसके लिए वहाँ किसी शाप का संकेत नहीं किया गया है,[4] जबकि 'पद्म पुराण'[5] 'स्कन्द पुराण'[6] 'शिव पुराण'[7] आदि की 'जलंधर कथा' में जलंधर के 'परजन्म' का कोई संकेत नहीं है वरन् वहाँ 'जय' के ही रावण बनने का उल्लेख मिलता है। 'मानस' की 'नारद-शाप-कथा' में नारद के द्वारा शिव के दो गणों को 'राक्षस' होने के शाप के दिए जाने का वर्णन प्राप्त होता है,[8] यद्यपि उनके रावण आदि होने का वहाँ स्पष्ट उल्लेख नहीं है फिर भी कथा के विस्तार से उसका अनुमान कर लेना बड़ा सरल है। 'शिव पुराण' की 'श्रीमती-स्वयंवर-कथा' में भी नारद के ऐसे ही शाप का उल्लेख है।[9] 'मानस' की अन्तिम शाप कथा 'प्रतापभानु कथा' में प्रतापभानु के विप्रशापवश सपरिवार राक्षस हो जाने का वर्णन किया गया है, जिसमें वह स्वयं रावण होता है उसका भाई कुम्भकर्ण और उसका सचिव विभीषण हो जाता है तथा उसके अन्य पुत्र और सेवक सभी राक्षस बन जाते हैं।[10] 'मानस' की मूल कथा में इसी राक्षस-परिवार का वर्णन है। समान परिस्थितियों में 'विप्र-शाप' के प्रभाव से राक्षस-मात्र बन जाने का उल्लेख भागवत' की 'सौदास कथा[11], में भी है, *किन्तु प्रतापभानु का नाम और उससे सम्बन्धित कथा का यह* विस्तार अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता है। यह वस्तुतः तुलसी की मौलिक कल्पना है।

अन्य संस्कृत ग्रंथों में रावण के पूर्व या पर जन्मों का वर्णन नहीं मिलता है। वहाँ *उसके वर्तमान जन्म के विस्तारों में उसके पिता का नाम तो सर्वत्र विश्रवा* बतलाया गया है, किन्तु उसकी माता का नाम कहीं पुष्पोत्कटा है,[11] कहीं केकसी[12]

1 मानस १।१२२
2 भागवत ७।१।४२
3 पद्म । उत्तर । २४७।१७
4 मानस १।१२४
5 " १०१।२१-३०
6 स्कन्द । वैष्णव । २०-२१
7 शिव । रुद्र । युद्ध । २३
8 मानस १।१२५-१३९
9 शिव । रुद्र । सृष्टि २।२ से ४।१७
10 " १।१७६
11 भागवत ९।९।२० २२
12 वा० मंजरी । उत्तर । १२१-१२६ महाभारत । वन । २७५।७-८

है और कहीं केकयी है।[१]

(७) भूमिका का उद्देश्य—'मानस' में मूलकथा के पूर्व इतनी विस्तृत भूमिका देने में तुलसी का उद्देश्य अनेक दृष्टिकोणों से संवलित जान पड़ता है। राम के ईश्वरत्व की स्थापना और अवतारवाद की सिद्धि के निमित्त उन्होंने 'विष्णु और राम' की एकरूपता और उनके अनेक पूर्व जन्मों का वर्णन किया है। कथा-नायक की महिमा प्रतिपादित करने के लिए उन्होंने वैसा ही महान् प्रतिनायक भी वहाँ नियोजित किया है और उसके भी अनेक पिछले जन्मों का विवरण दे दिया है। शापों और वरदानों की अद्भुत क्षमता के साथ-साथ अलौकिकता का प्रतिपादन करने के लिए तुलसी ने स्वयं विष्णु तक को उससे प्रभावित निरूपित किया है। इससे अतिरिक्त समस्त ग्रन्थ में भक्ति की महिमा का विस्तार से प्रतिपादन करते हुए उन्होंने 'मानस को एक आदर्श भक्ति ग्रन्थ' सिद्ध करने के लिये भी यथासम्भव सभी प्रयत्न किये हैं।

संस्कृत-ग्रंथों में इस प्रकार की भूमिका कहीं नहीं मिलती है। 'रामायण मञ्जरी'[२] और 'चम्पू रामायण'[३] में मूल कथा के पूर्व 'वाल्मीकि रामायण' के अनुकरण पर 'वाल्मीकि-नारद संवाद' 'क्रौञ्चवध से प्रथम श्लोक के जन्म' 'रामायण की रचना' और राम की राज्य-सभा में 'कुशलव' के द्वारा उसके गायन आदि का वर्णन मिलता है। राघवीय[४] उदार राघव[५] जानकी-हरण[६] आदि ग्रंथों में वर्णित अयोध्या-वैभव 'दशरथ-मृगया' और मुनि पुत्र-वध' आदि के प्रसंगों को भी इसी प्रकार भूमिका के रूप में माना जा सकता है किन्तु उनके अन्तर्गत वह सोद्देश्यता और सारगर्भितता नहीं है जो मानस' में सहज सुलभ है।

(८) मूल कथा-भाग— भूमिका भाग' के विवेचन के पश्चात् इस भाग पर विचार करने से उसमें अलौकिक और लौकिक दो स्वरूपों का विशिष्ट समन्वय दृष्टिगोचर होता है। अलौकिक स्वरूप में विष्णु के 'रामावतार' का निरूपण है जबकि लौकिक स्वरूप में राजकुमार राम की लीलाओं का वर्णन है। 'रामजन्म' के प्रसंग में उनको इस अलौकिकता का ही प्रचुरता से प्रतिपादन किया गया है।

(९) रामजन्म की अलौकिकता—इस प्रसंग में रावण से त्रस्त पृथ्वी के द्वारा गोरूप धारण करके पहले देवताओं और फिर ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के समीप जाने का वर्णन है जहाँ ब्रह्मा भी स्वयं को असमर्थ बतला कर उन सबको विष्णु के समीप जाने का परामर्श देते हैं। तदुपरान्त बैकुण्ठ या क्षीर सागर तक जाने के लिये उत्सुक देवताओं के समक्ष शिव विष्णु या भगवान् की सर्वव्यापकता बतला कर

---

१ मदिर।१२।१
२ रा० मंजरी। बाल १-११
३ चम्पू रामायण १।५-१०
४ राघवीय १।१-१८
५ उदार राघव १।१-१०२
६ जानकी हरण १।१ ६०

उनकी वहीं स्तुति करने के लिये उनसे आग्रह करते हैं । इस प्रस्ताव के क्रियान्वित होने पर विष्णु भगवान वहीं आकाशवाणी से सबको सान्त्वना देते हैं और अपनी शक्ति एवं अंशों के साथ अवतार लेने की घोषणा करते हैं ।[१] इस प्रकार इस प्रसंग में 'पृथ्वी के गोरूप धारण, विष्णु के क्षीर सागर निवास और उनकी भविष्यवाणी का विशेष उल्लेख हुआ है । संस्कृत साहित्य में उसके विभिन्न रूप हैं ।

(१०) पृथ्वी का गोरूप धारण—यह वर्णन 'भागवत'[२], 'पद्म पुराण'[३] तथा 'ब्रह्म पुराण'[४] में भी मिलता है, किन्तु वहां वह 'रामावतार' के स्थान पर 'कृष्णावतार' के प्रसंग में आयोजित किया गया है । अन्य ग्रन्थों में उसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता है । वस्तुतः यह रूपक अत्याचार की पराकाष्ठा का द्योतक है, और इसी अर्थ में तुलसी ने उसे यहां स्वीकृत भी किया है ।

(११) विष्णु का क्षीर सागर निवास—संस्कृत के सभी ग्रंथों में विष्णु को निरपवाद रूप से क्षीरसागर का निवासी बतलाया गया है किन्तु तुलसी ने उनको अथवा भगवान् को प्रेम से सर्वत्र प्रगट होने के योग्य बतलाकर और दिखला कर, इस दिशा में एक बड़ा मौलिक और सराहनीय प्रयास किया है । वास्तव में एक ओर तो भगवान को सर्वव्यापी कहना और दूसरी ओर उन्हें केवल 'क्षीरसागर' की सीमाओं में आबद्ध कर देना 'देवताओं' के लिये भले ही उपयुक्त हो सकता हो, किन्तु उससे मानव-मात्र—विशेषकर भक्तों—की श्रद्धा और आस्था को कोई संबल नहीं मिलता है । इसलिये 'हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना ।' कहकर तुलसी ने उस केवल सिद्धान्त रूप में ही नहीं रहने दिया है, अपितु देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् को ब्रह्मलोक में भी प्रस्तुत दिखला कर उसका व्यावहारिक पक्ष भी निरूपित कर दिया है । उनकी यह उद्भावना सर्वजनोपयोगी होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

(१२) आकाश-वाणी—आकाशवाणी का उल्लेख 'भागवत' और 'पद्म पुराण' दोनों में मिलता है । 'भागवत' में उसे केवल ब्रह्मा ही सुनते हैं और फिर वे उसका तात्पर्य सब देवताओं को समझाते हैं ।[५] 'पद्म पुराण' में उसके माध्यम से विष्णु सब देवताओं को बतलाते हैं कि वे उनकी दुर्दशा से पूर्ण परिचित हैं और स्वयं अवतार-ग्रहण की घोषणा करते हुए वे उन्हें भी यादवों तथा वानरों के रूप में अव-तरित होने की आज्ञा देते हैं ।[६] 'मानस' में ऐसी आज्ञा ब्रह्मा देते हैं ।[७] इन आकाश वाणियों का प्रयोग तुलसी उसी समय करते हैं जब वे किसी उक्ति में प्रमाणिकता के साथ-साथ अलौकिकता का भी समन्वय करना चाहते हैं । 'मानस' में इसीलिये

---

१ मानस १।१८४–१८७
२ भागवत १०।१।१७–१८
३ पद्म । ब्रह्म ।७।१४–२१
४ ब्रह्म । १८।१४–१४
५ भागवत १०।१।२१
६ पद्म । पाताल । ७।७–२१
७ मानस १। ८७

अनेक स्थलों पर आकाशवाणी पद्धति का सस्नेह स्मरण किया गया है।

(१३) रामजन्म की अलौकिकता—रामजन्म की इस अलौकिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ उसकी लौकिक प्रक्रिया का भी 'मानस' में सविस्तार वर्णन है। इसमें 'पुत्राभाव' से क्षुब्ध दशरथ गुरु वशिष्ठ के परामर्श से शृंगी ऋषि के द्वारा एक 'पुत्रकामयज्ञ' की योजना करवाते हैं, जिसमें अग्निदेव स्वयं प्रकट होकर राजा दशरथ को उनकी रानियों में वितरण करने के लिए 'हवि' देकर अलक्ष्य हो जाते हैं।[1] राजा दशरथ उस 'हवि' का आधा भाग कौसल्या को देते हैं और आधे का आधा भाग कैकयी को देते हैं फिर शेष भाग के भी दो भाग करके वे उसे उन दोनों रानियों के हाथों से सुमित्रा को दिलवा देते हैं। इस हवि के प्रयोग से सभी रानियाँ गर्भ धारण कर लेती हैं।[2] यथासमय जन्म लेने के पूर्व राम कौसल्या को अपने 'चतुर्भुज' रूप का दर्शन देते हैं और वह उनकी स्तुति करती हुई उनसे शिशु-लीला करने की प्रार्थना करती है, जिसके फलस्वरूप वे शिशु-रूप में विधिवत् जन्म ग्रहण करते हैं।[3]

इस लौकिक वर्णन में अग्निप्रदत्त पुत्रोत्पादक हवि और राम के चतुर्भुज रूप प्रदर्शन आदि *अलौकिक तत्वों की योजना की गई है* जिसका एकमात्र लक्ष्य 'राम जन्म' को असाधारण और अवतार के रूप में प्रतिष्ठित करना है। संस्कृत-साहित्य में भी थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ यह वर्णन प्राप्त हो जाता है।

(१४) अग्नि प्रदत्त हवि—संस्कृत के लगभग सभी ग्रंथों में दशरथ के 'पुत्रकाम-यज्ञ' और 'हवि प्राप्ति' का समान वर्णन मिलता है किन्तु हवि-वितरण में बड़ी विभिन्नता है। 'रघुवंश'[4], 'उदार राघव'[5] 'रामगीत'[6] 'पृथ्वीराज-विजय'[7] और पद्म-पुराण'[8] आदि में उस 'हवि' के समान चार भाग किये जाते हैं और कौसल्या तथा कैकयी को उसमें एक-एक एवं सुमित्रा को दो भाग दे दिये जाते हैं। 'रामायण-मंजरी' का वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान है किन्तु वहाँ सुमित्रा 'हवि' के स्वयं दो भाग कर लेती है[9] जबकि 'मानस' के वर्णन में अधिक आत्मीयता है। 'रामचरित' में भी दोनों रानियों के द्वारा सुमित्रा को हवि दिए जाने का उल्लेख है *किन्तु वहाँ एक तो उसकी मात्रा निश्चित नहीं है* और दूसरे उसमें आत्मीयता भी नहीं है क्योंकि वहाँ कौसल्या और कैकयी को पहले ही उसका बराबर *आधा-आधा भाग बाँट दिया जाता है, फिर सुमित्रा के अकस्मात्* आ जाने पर वे अपनी इच्छानुसार उसका थोड़ा-थोड़ा भाग उसे भी दे देती है।[10] 'जानकी-परिणय'

१ मानस १।१८९　　२ मानस १।१९०
३ „ १।१९१–१९२　　४ रघुवंश १०।५४–५६
५ उदार राघव २।१०　　६ रामगीत १।६१
७ पृथ्वीराज विजय ११।३७　　८ पद्म। उत्तर २४२।६१
९ रा० मंजरी। बाल। ७०　　१० रामचरित ८।६१ ६२

में कौसल्या को तो ठीक आधा भाग मिल जाता है परन्तु कैकयी केवल १।८ भाग प्राप्त कर पाती है, जबकि सुमित्रा को उसका ३।८ भाग मिलता है जिसमें से २।४ भाग से लक्ष्मण और १।८ भाग से शत्रुघ्न के जन्म का यहाँ वर्णन किया गया है।[1] 'भट्टिकाव्य' में पुत्र-यज्ञ का वर्णन तो है किन्तु वहाँ 'हवि' नहीं है, उसके स्थान पर 'हुतोच्छिष्ट' के ही प्रयोग से रानियाँ गर्भवती होती हैं।[2] 'रामचरित' में यज्ञवर्णन नहीं है किन्तु 'हवि' का उल्लेख है। वहाँ भगवान विष्णु अपने तेज को चतुर्धा विभक्त करके उसका ही 'पायस' बना देते हैं और अपने पार्षद के द्वारा दशरथ के समीप भिजवा देते हैं।[3] भागवत,[4] अग्नि-पुराण[5] तथा हनुमन्नाटक[6] आदि ग्रन्थों में न यज्ञ है और न हवि। इनमें भगवान विष्णु स्वयं चतुर्धा होकर जन्म ग्रहण करते हैं यद्यपि 'भागवत' में ही एक अन्य प्रसंग में पुत्र-यज्ञ से पुत्र प्राप्ति का वर्णन मिलता है।[7]

'मानस' का 'हवि वितरण' सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि उसमें एक अनुपात की व्यवस्था है, जो चारों भाइयों की मर्यादित स्थिति को स्पष्ट करती है जबकि संस्कृत के इन ग्रंथों में जहाँ हवि के समान वितरण का उल्लेख है, राम की विशेष ईश्वरता का कोई आधार नहीं रह जाता है।

(१२) चतुर्भुज रूप—'मानस के वर्णन के समान ही 'पद्मपुराण' में 'रामजन्म' के समय कौसल्या के द्वारा विष्णु के 'चतुर्भुज रूप के दर्शन का उल्लेख मिलता है किन्तु 'मानस में केवल कौसल्या ही यह दर्शन करती है, जबकि वहाँ सर्वप्रथम दशरथ भगवान के सनातन रूप का दर्शन करते हैं फिर वशिष्ठ उनके जातकर्म आदि संस्कार कराते हैं, उसके पश्चात् कौसल्या को उनके दिव्य दर्शन मिलते हैं, जिसमें उनके विराट् रूप का भी वहाँ पर समन्वय कर दिया गया है[8] जबकि मानस' में यह विराट दर्शन पृथक वर्णित है।[9] भागवत' में भी 'कृष्ण जन्म के प्रसंग में वसुदेव और देवकी के द्वारा विष्णु के 'चतुर्भुज रूप के दर्शन का वर्णन मिलता है। वहाँ भी वसुदेव के पश्चात् देवकी उनकी स्तुति करती हुई उनसे शिशुलीला' की प्रार्थना करती है।[10] कारागृह में ही कृष्ण प्रसव हो जाने के कारण वहाँ वसुदेव की उपस्थिति और स्तुति का औचित्य है किन्तु 'पद्मपुराण' में इस अवसर पर दशरथ और वशिष्ठ आदि का उल्लेख अप्रासंगिक जान पड़ता है, इसी लिये तुलसी ने उसमें आवश्यक संशोधन करके दर्शक रूप में केवल कौसल्या का ही संकेत किया है।

---

१ जानकी परिचय २।७२
२ भट्टि । १।११
३ रामचरित १।४१-४२
४ भागवत ९।१०।२
५ अग्निपुराण ५।४
६ हनुमन्नाटक १।५
७ भागवत ७।१३।१२
८ पद्मपुराण २४२ ६६-६०
९ मानस १।२०१-२०२
१० भागवत १०।३।८-४६

(१६) राम-विश्वामित्र-मिलन—'राम-जन्म' के पश्चात् 'बालकाण्ड' का यह दूसरा महत्वपूर्ण प्रसंग है। इसमें 'मानस' के विश्वामित्र राम के ईश्वरत्व से सुपरिचित हैं इसीलिये वे राक्षसों से अपने यज्ञ की सुरक्षा के लिए दशरथ से राम और लक्ष्मण की याचना करते हैं, जिसे सुनकर दशरथ काँप जाते हैं और उनकी माँग को 'अविचारित' कहते हुए वे उनसे भूमि धेनु धन कोष शरीर और प्राण तक सर्वस्व माँग लेने का आग्रह करते हैं किन्तु राम को वे सर्वथा अदेय बतलाते हैं। उन्हें राम की अलौकिक शक्ति में विश्वास भी नहीं है फिर भी वशिष्ठ के बहुत समझाने बुझाने पर वे किसी तरह राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के हाथों में समर्पित कर देते हैं।[1] वन मार्ग में जब उन पर ताटका आक्रमण करती है तब राम एक ही बाण से उसका वध कर देते हैं और उसको दीन जान कर 'निजपद' भी दे देते हैं।[2] फिर विश्वामित्र उन दोनों को ऐसी विद्यायें देते हैं जिससे उन्हें क्षुधा-प्यास न लगे किन्तु उनके शरीर सदैव समर्थ रहें। इसके अतिरिक्त वे उन्हें अन्यान्य शस्त्रास्त्र भी दे देते हैं।[3] इसके बाद यज्ञारम्भ के समय मारीच और सुबाहु आदि के आक्रमण करने पर राम प्रथम को बिना फल के बाण से समुद्र के पार 'शतयोजन' तक फेंक देते हैं और द्वितीय को अग्निबाण से समाप्त ही कर देते हैं। शेष राक्षसों को लक्ष्मण मार डालते हैं।[4] इस 'निश्चरनाश' से आश्रम में शान्ति स्थापित हो जाने के कुछ समय बाद मिथिला से धनुर्यज्ञ का निमन्त्रण पाकर विश्वामित्र राम और लक्ष्मण के साथ वहाँ के लिए प्रस्थान करते हैं। मार्ग में एक निर्जन आश्रम में एक शिला को देखकर राम, जब उसके विषय में विश्वामित्र से पूछते हैं तब वे उनको अहल्या के पाप और शाप की कथा बतला कर उनसे अपने चरणस्पर्श के द्वारा उसका उद्धार करने का आग्रह भी करते हैं। राम के वैसा करते ही उस शिला से अहल्या प्रगट हो जाती है जो उनकी विविध स्तुति करती हुई उनसे अभीष्ट वरदान प्राप्त करती है और अपने 'पतिलोक' चली जाती है।[5]

इस प्रकार इसमें विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण-याचना ताटकावध विद्यादान शस्त्रदान यज्ञ राक्षस-वध अहल्योद्धार आदि प्रसंगों का विशेष वर्णन किया गया है। संस्कृत के ग्रंथों में इनमें कुछ विभिन्नतायें मिलती हैं।

(१७) विश्वामित्र द्वारा राम लक्ष्मण-याचना—इस प्रसंग में 'रामायण-मंजरी और मानस' के वर्णनों में बहुत साम्य है, किन्तु वहाँ दशरथ की अस्वीकृति पर विश्वामित्र के कोप से भूकम्प आदि होने का उल्लेख है,[6] जबकि 'मानस' के विश्वामित्र दशरथ के वात्सल्य पर मन ही मन बड़े प्रसन्न होते हैं—

---

१ मानस १।२०८
२ मानस १।२०९
३ ,, १।२०९
४ ,, १।२१०
५ ,, १।२११
६ रा० मंजरी। बाल। १०४

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदय हरष माना मुनि ग्यानी ॥ १।२०८

'भट्टिकाव्य' के विश्वामित्र दशरथ से राम-लक्ष्मण के लिये बारम्बार आग्रह करते हैं किन्तु वे कुछ नहीं बोलते हैं और अन्त में उनकी क्रोधाग्नि से मन ही मन डर डर के चुपचाप स्वीकृति दे देते हैं।[1] बुधराज कृत रामचरित के दशरथ भी कुछ नहीं बोलते हैं। वे उस समय वाडव-सम्पन्न समुद्र की भाँति अन्तर्ज्वलित और बहिः शान्त रहते हैं फिर भी राक्षसों के दमन यज्ञ की रक्षा विश्वामित्र से याचक राम के महत्व और सूर्यवंश के कुलधर्म आदि का उत्तरोत्तर ध्यान करके वे बड़ी श्रद्धा से राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के हाथों में सौंप देते हैं।[2] राघवीय के दशरथ को भी उपर्युक्त सब बातों का ध्यान है[3] किन्तु वे राम जैसे पुत्र के वियोग की अपेक्षा विष पीना सिंह के मुख में जाना या अग्नि में प्रवेश करना अधिक सरल और सुकर समझते हैं और वे स्वयं जाने को प्रस्तुत भी हो जाते हैं, परन्तु राम लक्ष्मण को 'क्षीर-कण्ठ' समझ कर भेजना नहीं चाहते हैं। अन्त में विश्वामित्र के क्रोध करने पर वशिष्ठ एक ओर उन्हें शान्त करते हैं और दूसरी ओर वे दशरथ को भी समझाते हैं कि ये राम-लक्ष्मण इनसे शस्त्रकला सीख कर मारीच आदि तथा, रावण तक को मार सकेंगे। फिर तो दशरथ उनकी बात मान लेते हैं।[4] 'जानकी परिणय' के दशरथ अस्वीकृति के कुपरिणामों से डरते हुए विश्वामित्र से ही वह उपाय पूछते हैं जिससे पुत्रों को न देना पड़े। इस पर विश्वामित्र के कोप से जब भूकम्प, समुद्रक्षोभ, अग्निप्रसार और वायुस्तम्भ होने लगता है, तब वे विवश हो जाते हैं।[5] ब्रह्मपुराण के दशरथ भी विश्वामित्र को सशरीर राज्य तक देने के लिए प्रस्तुत हैं किन्तु राम-लक्ष्मण के त्याग के लिए वे स्वयं को पूर्ण विवश बतलाते हैं।[6] 'उदार-राघव' के विश्वामित्र दशरथ से राम-लक्ष्मण को माँगते हुए उनके माहात्म्य तथा पूर्व जन्म से अपना परिचय भी बतलाते हैं। इसकी पुष्टि के लिए वशिष्ठ तथा वामदेव का प्रमाण कहते हैं। अन्त में दशरथ उन दोनों ऋषियों के परामर्श से उनकी बात मान लेते हैं।[7] भट्टिकाव्य में राम-लक्ष्मण गमन के इस अवसर पर पुरवासियों के अतिशोकाकुल होने का वर्णन है किन्तु मांगलिक प्रयोजन होने के कारण वे आँसू नहीं बहाती हैं[8] 'जानकी-हरण' की प्रजा तो इस समय बड़ी अश्रुवर्षा भी करती है।[9] तुलसी ने इस विस्तार को अनुपयुक्त समझ इसका वर्णन नहीं किया।[10]

---

१ भट्टि० १।२१
२ बुधराज रामचरित २।२२-२९
३ राघवीय ४।४०-४२
४ राघवीय २।४६-५४
५ जानकी परिणय ३।२६-२८
६ ब्रह्मपुराण १२३।६०
७ उदार राघव २।५४-७२
८ भट्टि० १।२६
९ जानकी हरण ४।६०
१० मानस १।२०८

(१८) ताटका-वध—भट्टिकाव्य[१] तथा उदार राघव[२] का यह प्रसंग 'मानस' के वर्णन से बहुत साम्य रखता है किन्तु रामायण-मंजरी[३] बाल-रामायण[४], महावीर-चरित[५], अनर्घराघव[६] आदि ग्रन्थों में इस अवसर पर ताटका के स्त्रीत्व के कारण उसके वध में राम की हिचकिचाहट का स्पष्ट उल्लेख है। वहाँ विश्वामित्र के आदेश को ही सर्वोपरि मानकर राम 'ताटकावध' करते हैं। 'राघवीय' के विश्वामित्र ताटका के दर्शन के पूर्व ही उसके वध में राम की हिचक का अनुमान करके उसके स्त्रीत्व पर ध्यान न देने के लिए उनसे बहुत आग्रह करते हैं। वे उन्हें समझाते भी हैं कि शासक राजा लोग धर्म के लिए भी चिन्ता नहीं करते हैं। वहीं राम के द्वारा मारे जाने पर ताटका स्वयमेव दिव्य शरीर धारण करके 'निजपद' को प्राप्त कर लेती है।[७] जबकि 'मानस' के राम अपने ईश्वरत्व के प्रभाव से उसे 'निजपद' देते हैं।[८]

(१९) अन्य राक्षस वध—संस्कृत के सभी ग्रन्थों में सुबाहु आदि के वध और मारीच के प्रक्षेप का वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान ही मिलता है। मारीच के वध न करने का कारण केवल 'हनुमन्नाटक' में ही बतलाया गया है कि भविष्य में होने वाले 'सीताहरण' के अवसर पर उसकी उपयोगिता जान कर उसे इस समय जीवित छोड़ देते हैं।[९] भट्टिकाव्य में 'राम-मारीच-संवाद' भी है जिसमें राम मारीच से पूछते हैं कि वह उन अकिंचन, वनस्पति-फलाहारी ऋषियों पर दया क्यों नहीं करता है और वह उत्तर देता है कि उन ऋषियों की हत्या करना उसका जाति धर्म है। फिर राम भी प्रत्युत्तर में ब्रह्म-द्वेषियों की हत्या करना अपना क्षत्रिय-धर्म बतला कर उस पर आक्रमण कर देते हैं।[१०]

(२०) अहल्योद्धार—रघुवंश[११] जानकी-हरण[१२], जानकी-परिणय[१३], पृथ्वीराज-विजय[१४], पद्मपुराण[१५] और ब्रह्मवैवर्त पुराण[१६], आदि ग्रन्थों का

---

१ भट्टि काव्य २।२१   २ उदार राघव २।६२
३ रा० मंजरी। बाल।११६   ४ बाल रामायण ३।५
५ महावीर चरित १।३८   ६ अनर्घ राघव २।६६
७ अथ दिव्यवपाप्य सा वपुः धुतपापा निजमाससाद् परम्॥ राघवीय ३।४
८ मानस १।२०६   ९ हनुमन्नाटक १।७
१० धर्मोऽस्ति सत्यं तव राक्षसाऽयमन्योव्यतिस्ते तु ममाऽपि धर्मः॥
ब्रह्मद्विषस्ते प्रणिहन्मि येन राजन्यवृत्तिर्धृतकार्मुकेषु॥
भट्टि २।३५
११ रघुवंश ११।३४   १२ जानकी हरण ६।१४-१५
१३ जानकी परिणय ४।६७   १४ पृथ्वीराज विजय ११।७६
१५ पद्म। उत्तर।२४२।११६-११७   १६ ब्रह्मवैवर्त। श्रीकृष्ण जन्म।६२।६-९

वर्णन 'मानस' के वर्णन से पूर्ण साम्य रखता है। 'राघवीय' की अहल्या शिला बनने के साथ-साथ यद्यपि अदृश्य भी रहती है फिर भी राम के चरणस्पर्श से वह मुक्त हो जाती है। राम की स्तुति करने की अपेक्षा वह लज्जित होकर उनके समक्ष क्षण भर खड़ी रहती है, फिर विश्वामित्र की आज्ञा से वह अपने पति के समीप चली जाती है।[1] रामायण-मंजरी की अहल्या शिला होने के स्थान पर अदृश्य और भस्मशायिनी हो जाती है और राम के दर्शन-मात्र से उसे मुक्ति मिल जाती है।[2] 'महावीर-चरित' में अहल्या के द्वारा 'अन्ध-तामिस्र नरक' की प्राप्ति का उल्लेख है तथा राम के तेज से ही उसके उद्धार का वर्णन किया गया है।[3] 'अनर्घराघव' की अहल्या 'प्रस्तर पुत्तलिका' के रूप में स्थित रहती है और राम के तेज से वह भी अपने स्त्री-रूप को पुनः प्राप्त करती है।[4] 'जानकी-हरण' की अहल्या राम के चरणस्पर्श से मुक्त होकर उनके सामने 'इन्द्र' का नाम लेकर जब मौन हो जाती है तब वे उतने से ही सब कुछ समझ जाते हैं।[5] 'उदार राघव' में एक नवीनता है, वहाँ राम अपने पदस्पर्श से एक शिला के स्त्री बन जाने पर जब चकित होकर कुछ जिज्ञासा से उसकी ओर देखते हैं तब वह अपनी समस्त शापकथा उन्हें सुनाती है।[6] वहीं विश्वामित्र के आग्रह से ही गौतम उसे ग्रहण करते हैं और फिर प्रसन्न होकर वे उन सबके साथ मिथिला तक जाते भी हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण' की अहल्या शाप-मुक्त होकर राम को आशीर्वाद देती है और फिर गौतम भी अपनी पत्नी को पाकर वहाँ राम को अनेक आशीर्वाद देते हैं।[7] 'पृथ्वीराज-विजय'[8] और 'जानकी-परिणय'[9] में उद्धार के बाद भी अहल्या के केवल स्तन पत्थर के ही बने रहते हैं और शेष अंग नारी-रूप की सुकुमारता को प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ पर स्तनों का यह रूप तात्त्विक नहीं है किन्तु साहित्यिक दृष्टि से केवल कठोरत्व का पर्याय मात्र है। 'पद्मपुराण' के एक प्रसंग के अनुसार अहल्या को अस्थि चर्मावशिष्टा, निर्मांसा, अवर्णिता और एकान्त में चिरवासिनी होने का शाप प्राप्त होता है जहाँ आते जाते स्त्री-पुरुष उसे बराबर देखते रहें। इसके साथ ही वहीं उसके शापमोचन के विधान में यह भी कहा गया है कि जब राम उसके विषय में विश्वामित्र से सब कुछ जान कर उसे निर्दोष कह देंगे तभी उसकी मुक्ति होगी।[10]

अहल्योद्धार' सम्बन्धी राम की दिव्य शक्ति को लेकर हनुमन्नाटक में कुछ व्यंग्यात्मक प्रयोग भी मिलते हैं। वहाँ राम के चरणस्पर्श से आश्रम की

1 राघवीय ११७२–८०
2 रा० मंजरी । बाल ।१०७
3 महावीर चरित्र १।२६ के बाद
4 अनर्घ राघव २।६ के बाद
5 जानकी हरण । ६।१४–१५
6 उदार राघव ३।२८–३३
7 ब्रह्मवैवर्त । श्रीकृष्ण।६२।६–९
8 पृथ्वीराज विजय ११।७६ –
9 जानकी प[illegible]
10 पद्म । सृष्टि । ५१।१७–३९

समस्त विकारों के स्त्री-रूप में परिणत होने की सम्भावना व्यक्त करती हुई सीता सभी आश्रमवासियों के सपत्नीक हो जाने का उल्लेख करके राम पर मृदु व्यंग करती है।[1] तुलसी ने इसका उपयोग 'कवितावली' में किया है।[2] 'हनुमन्नाटक' में ही गंगा पार करते समय सीता नाव के रूप-परिवर्तन की वैसी ही आशंका प्रगट करती है[3] जिसका मधुर संकेत तुलसी ने 'गुह-मिलन' के प्रसंग में किया है।[4] 'अग्नि-परीक्षा के समय भी इसी नाटक की सीता इसी भय से राम के चरणस्पर्श नहीं करती हैं कि कहीं उनके हाथ के कंकणमणि आदि स्त्री न बन जावें।[5] तुलसी ने सीता के इस भय का उल्लेख ठीक 'धनुर्भंग' के पश्चात उनके द्वारा राम के चरणस्पर्श प्रसंग में किया है।[6]

'मानस' के इन प्रसंगों में तुलसी का ध्यान राम के ईश्वरत्व का प्रतिपादन की ओर अधिक रहा है, इसलिये विश्वामित्र जैसे ऋषि भी उन्हें 'हरि भू-भार हर्ता', 'ज्ञान-विराग-अयन' 'शिव-प्राण' 'विद्यानिधि' आदि के रूप में जानते और पहचानते हैं। इसके अतिरिक्त राम भी यहाँ अपने दैवी अनुभाव से ताटका को 'निजपद' देकर तथा अहल्या का उद्धार करके अपने ईश्वरत्व का परिचय देते हैं। संस्कृत के ग्रन्थों में राम के ऐसे ईश्वरीय रूप का विशिष्ट और विस्तृत वर्णन कहीं भी नहीं मिलता है।

(२१) सीता-स्वयंवर—अहल्योद्धार के पश्चात् विश्वामित्र राम और लक्ष्मण के साथ मिथिला पहुँच कर 'मानस' के राम जनक का आतिथ्य ग्रहण करते हैं। वहाँ दूसरे दिन प्रात:काल जब वे लक्ष्मण के साथ अपने गुरु विश्वामित्र के 'देवार्चन' के लिए पुष्प चयन के उद्देश्य से 'जनक वाटिका' में पहुँचते हैं तब गौरी-पूजा के लिये सखियों के साथ मन्दिर जाती हुई सीता भी संयोगवश वहाँ आ जाती है।[7] उनको देख कर इधर राम के मन में शुभ शकुनों के साथ एक 'अनिर्वचनीय क्षोभ' उत्पन्न होता है जिसे वे लक्ष्मण से व्यक्त भी कर देते हैं।[8] उधर सीता भी अपनी सखियों के प्रयत्न से राम के दर्शन करती है और अपने पिता के 'प्रण' का स्मरण करती हुई मन ही मन क्षुब्ध होती है।[9] फिर गौरी की पूजा के पश्चात् वे उनसे राम को 'पतिरूप' में प्राप्त करने का आशीर्वाद ग्रहण करती है और शुभ शकुनों से प्रसन्न होती हुई वे अपने भवन लौट जाती है—

सो० जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे ॥१।२३६

१ हनुमन्नाटक १।१६
२ कवितावली। अयोध्या। २८
३ " १।२०
४ मानस २।१००
५ " १४।१८
६ " १।२६५
७ मानस १।२२८
८ मानस १।२३१
९ " १।२३४

इधर राम भी सीता के सौन्दर्य की मन ही मन प्रशंसा करते हुए लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र के समीप आ जाते हैं और उनसे इस घटना को निश्छल भाव से बतला देते हैं।[1] फिर दूसरे दिन स्वयंवरशाला में राम के पहुँचने पर उनके प्रथम-दर्शन से सभी उपस्थित व्यक्ति प्रभावित होते हैं और अपनी विभिन्न भावनाओं का संकेत भी करते हैं। उन्हें देख कर वीर लोग उनको सदेह वीर-रस, प्रतियोगी नृप-गण 'भयानक-मूर्ति', कपटी असुर लोग 'काल' नगर की स्त्रियाँ 'शृङ्गार-मूर्ति', नगर के पुरुष 'नर भूषण' विद्वान लोग 'विराट्रूप' जनक 'सगे स्वजन', उनकी रानियाँ 'शिशु', योगीजन 'परम-तत्त्वमय' तथा हरिभक्त-गण 'इष्टदेव' के रूप में मानते हैं और इस सम्बन्ध में सीता की भावना कवि के अनुसार स्वयं उनके लिए भी अवर्णनीय है।[2]

इसके पश्चात् जनक के बन्दियों के द्वारा उनके प्रसिद्ध 'पण' की घोषणा होती है जिसको सुन कर आमन्त्रित राजा लोग 'धनुर्भंग' के लिए पहले अकेले, फिर सब मिल कर भी असफल प्रयत्न करते हैं।[3] उनकी असमर्थता से क्षुब्ध होकर जनक 'वीर विहीन मही' कह कर जब सबका तिरस्कार सा करते हैं, तब लक्ष्मण उसका सक्षोभ प्रतिवाद करते हैं।[4] फिर विश्वामित्र की आज्ञा से राम बड़ी सरलता से 'धनुर्भंग' कर डालते हैं[5] जिसके फलस्वरूप उन्हें पतिरूप में वरण करती हुई सीता उनके गले में जयमाला पहना देती हैं।[6]

इस प्रकार इस प्रसंग में पूर्व-मिलन राम-दर्शन प्रभाव जनक-पण, अनेक राजाओं के निमन्त्रण जनक-क्षोभ राम द्वारा धनुर्भंग और सीता की 'जयमाला का वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। संस्कृत साहित्य में इस प्रसंग में अनेक नवीन योजनायें प्राप्त होती हैं।

(२७) पूर्व-मिलन— मानस के इस प्रसंग की योजना पर प्रसन्न राघव' का बड़ा आभार है किन्तु उसमें मिलन का समय प्रातःकाल के स्थान पर सायंकाल है।[7] वहाँ पुष्प-वाटिका में स्थित 'रम्यकानन' को देख कर राम जब देवी को प्रणाम करते हैं तब थोड़ी देर में ही दूर से उन्हें सीता एवं उनकी सखी के दर्शन हो जाते हैं।[8] सीता को देख कर लक्ष्मण के मन में मातृ प्रेम की उत्पत्ति होती है और सीता भी उन्हें देख कर वात्सल्य का अनुभव करती हैं। वहाँ लक्ष्मण और सीता की एक सखी का परिचय एवं संवाद भी होता है।[9] एकान्त में राम को

---

१ मानस १।२१७
२ " १।२४१-२४२
३ मानस १।२५०-२५१
४ " १।२५२-२५३
५ " १।२५४-२५६
६ " १।२६४
७ प्रसन्न राघव २।५ के बाद
८ प्रसन्न राघव २।६ के बाद
९ " २।१४ के बाद

देख कर सीता ध्यान-मग्न हो जाती हैं और जब उनकी सखी उनके भाव को ताड़ कर उनसे उनका 'ध्यान-केन्द्र' पूछती है, तब वे 'वा राम मैं (उपवन में वा राम मैं) कहकर श्लेष से अपनी मनोदशा भी व्यक्त कर देती हैं।[1] यहाँ राम सीता की रूप-सम्पत्ति का विस्तृत वर्णन करते हैं और लक्ष्मण भी उसमें कुछ योग देते हैं।[2]

'मैथिली-कल्याण' नाटक में भी इस 'पूर्वमिलन' का अति विस्तृत वर्णन किया गया है। यहाँ यह मिलन तीन भागों में विभाजित है। पहली बार यहीं वाटिका में स्थित कामदेव भवन में राम और सीता का मिलन तथा परिचय होता है।[3] इसके पश्चात् वे दोनों परस्पर इतने आकृष्ट हो जाते हैं कि बिछुड़ते ही उन्हें विरह-वेदना का अनुभव होने लगता है और यहाँ उसका विस्तृत उपचार भी किया जाता है। दूसरी बार वे दोनों फिर यहीं 'माधवी-कुञ्ज' में मिल जाते हैं, जहाँ उनके प्रेमालाप और विरह-निवेदन का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है।[4] अन्त में तीसरी बार विरह-सन्तप्ता सीता की एक दूती के प्रयत्नों से राम वहीं पर स्थित 'चन्द्रकान्तागार' गृह में पहुँच कर सीता से मिलते हैं और उन्हें विविध सान्त्वनायें भी देते हैं।[5] इस नाटक का यह शृंगार-वर्णन कहीं-कहीं अश्लील भी हो गया है।[6]

इन नाटकों के अतिरिक्त संस्कृत के किसी ग्रंथ में यह प्रसंग नहीं प्राप्त होता है। राम और सीता के प्रति पूज्य भाव होने के कारण तुलसी इस दिशा में बहुत सावधान हैं। पूर्व-मिलन का पर्याप्त विस्तृत वर्णन करते हुए भी वे उसमें कामुकता की गन्ध कहीं भी नहीं आने देते हैं। मानस में नारद के वचनों[7] का उल्लेख करके वे एक ओर तो उसमें अलौकिकता का समावेश करते हैं और दूसरी ओर उनके प्रेम को अन्तरंग लक्ष्मण और गुरुजनों के समक्ष विख्यात करा के वे उसकी गुप्तता के दोष का भी परिमार्जन कर देते हैं[8] तथा अन्त में गौरी के आशीर्वाद[9] के समन्वय से वे उसको आदर्श एवं पवित्र प्रेम के रूप में प्रतिष्ठित भी करते हैं।

(२३) राम-दर्शन-प्रभाव—ऐसा ही समान वर्णन केवल 'भागवत' में प्राप्त होता है और तुलसी उससे बहुत प्रभावित भी जान पड़ते हैं। 'भागवत' के अनुसार कंस की रंगशाला में कृष्ण को देखकर मल्ल लोग उनको 'वज्र' राजा लोग

---

१ प्रसन्न राघव २।२१ के बाद
२ प्रसन्न राघव २।७–९, ११–१७, १९–२० २२ २६ २८ ३० २।३१ के बाद
३ मैथिली कल्याण १।२२ के बाद ४ मैथिली कल्याण २।७–१६
५ " ३।१–१४ ६ " ३।२८ के बाद
७ मानस १।२२९ ८ मानस १।२३१, २३४, २३७
९ " १।२३६

'नरवर' स्त्रियाँ 'मूर्तकाम', गोपगण 'स्वजन' असत् भूपगण 'शासक', पितृवर्ग 'शिशु' कंस 'मृत्यु' अविद्वान लोग 'विराट्', योगीजन 'परमतत्त्व' और यादवगण 'परदेवता' के रूप में समझते हैं।[1]

(२४) धनुष-यज्ञ—'रघुवंश'[2], 'राम चरित'[3], 'उदार राघव'[4], 'राघवीय'[5], 'अनर्घराघव'[6] आदि संस्कृत के लगभग सभी ग्रन्थों में धनुष के ऐसे ही भंग का वर्णन मिलता है। केवल 'भट्टिकाव्य' में उसके स्थान पर राम के ही बाहुबल की परीक्षा के लिए एक 'धनुर्भंग' की योजना है[7] और 'ब्रह्मपुराण' में स्वयं राम के द्वारा स्वयमेव केवल जनक की उपस्थिति में अपनी विशिष्ट 'धनुर्विद्या' का परिचय देने का उल्लेख है।[8]

(२५) अनेक राजाओं को निमन्त्रण—'रामायण-मंजरी', 'प्रसन्न राघव', 'बाल रामायण' और 'पद्म-पुराण' आदि में इसका निरूपण प्राप्त होता है। 'रामायण-मंजरी' में राम के आगमन के पूर्व अनेक राजाओं के स्वयंवर में आने और असफल होकर एक वर्ष तक नगर को घेरे रहने का वर्णन है। फिर देवताओं के प्रभाव से जनक उन्हें पराजित करते हैं। इस घटना के बहुत समय पश्चात् राम मिथिला पहुँचते हैं।[9] 'प्रसन्नराघव' स्वयंवर में मल्लिकापीड़ कश्मीर तिलक वीर-मानिक्य मत्स्यराज और सिन्धुराज आदि अनेक राजा लोग निमन्त्रित किए जाते हैं।[10] उन्हीं के समक्ष 'रावण'[11] और बाण[12] भी वहीं पहुँच जाते हैं और 'धनुर्भंग' में असफल होकर आपस में तुच्छ-कलह करते हुये वहाँ से चले जाते हैं, किन्तु पूर्वोक्त राजा लोग असफल होकर भी बहुत समय तक जनक के अतिथि बने रहते हैं।[13] इसी बीच में राम आदि वहीं पहुँच जाते हैं और उन राजाओं के सामने ही 'धनुर्भंग' करते हैं।[14] 'बाल-रामायण' सीता-विरह से सन्तप्त रावण के मनोरञ्जन के लिए एक विस्तृत प्रमोद (नाटक में नाटक) की योजना की जाती है[15] जिसमें 'सीता-स्वयंवर' का अभिनय प्रस्तुत किया जाता है। इसमें प्राग्ज्योतिष, कामरूप, चम्पावती पाण्ड्य द्रविड़, माहिष्मती, चेदि, दशार्ण, मेकल, सिंहल (लंका), मथुरा (दक्षिण) अवन्ती कर्णाटक, कुन्तल काञ्ची, लाट, मुरल

---

१ भागवत १०।४३।१७ — २ रघुवंश ११।४७

३ रामचरित ८।७४ — ४ उदार राघव ३।६०

५ राघवीय ४।११ — ६ अनर्घ राघव ३।२७

७ भट्टिकाव्य २।४२ — ८ ब्रह्म। १२३।१०२–१०३

९ रा० मञ्जरी। बाल। ४९३–४९६

१० प्रसन्न राघव १।२८ के बाद — ११ प्रसन्न राघव १।३२ के बाद

१२ " १।४७ — १३ " १।४०

१४ " १।४१ — १५ बाल रामायण ४।११ के बाद

अंग, मगध, कम्बोज, सौराष्ट्र, शक, नेपाल और आन्ध्र आदि प्रान्तों के राजाओं के सम्मिलित होने का वर्णन प्राप्त होता है।[1] इन सब राजाओं के बहुत प्रयत्न करने और असफल होने के पश्चात् वहीं (नाटक में) उनके समक्ष राम 'धनुर्भंग' करके सीता को प्राप्त करते हैं।[2] 'पद्मपुराण' की 'पुरातन रामायण' के 'स्वयंवर' में इन्द्र, सूर्य, वायु, बाण, प्रह्लाद, बालि आदि के साथ-साथ विश्वामित्र के भी प्रतियोगी होने का उल्लेख किया गया है।[3]

(२६) जनक क्षोभ—'मानस' में वर्णित जनक के क्षोभ का विवरण[4] 'सीता-स्वयंवर' काव्य के वर्णन से बहुत साम्य रखता है।[5] 'प्रसन्न राघव' में यह क्षोभ जनक के मन्त्री मन्जीरक से सम्बद्ध मिलता है[6] जबकि हनुमन्नाटक में वही राम के द्वारा व्यक्त किया गया है।[7] अन्य ग्रन्थों में यह प्रसंग नहीं है।

(२७) धनुर्भंग—संस्कृत के लगभग सभी ग्रन्थों में यह प्रसंग 'मानस' के समान ही प्राप्त होता है। इस योजना में कुछ परिवर्तन या परिवर्धन करने का साहस किसी कवि ने प्रदर्शित नहीं किया है। केवल 'महावीर चरित' में स्थान परिवर्तन है। वहां 'सीता स्वयंवर' की समस्त घटनायें विश्वामित्र के आश्रम में ही घटित होती हैं और उसमें जनक सम्मिलित भी नहीं होते हैं। वहां सीता और उर्मिला के साथ जनक के छोटे भाई कुशध्वज विश्वामित्र के आश्रम में पहुंच जाते हैं और वहीं विश्वामित्र के ध्यान-मात्र से शिव-धनुष भी उपस्थित हो जाता है।[8]

(२८) सीता की जयमाला—यह योजना भी तुलसी की अपनी और मौलिक है। संस्कृत-साहित्य में इसके स्थान पर केवल बाल-रामायण[9] में 'पाणिग्रहण' का उल्लेख मिलता है।

संस्कृत के ग्रन्थों में निम्नांकित कुछ ऐसे अन्य प्रसंग भी दृष्टिगोचर होते हैं, जो 'मानस' में वर्णित नहीं हैं।

(२९) राम के ईश्वरत्व की सूचक आकाशवाणी—'मैथिली-कल्याण' नाटक में केवल राम और लक्ष्मण ही सीता-स्वयंवर' में सम्मिलित होते हैं। वहां उनके साथ विश्वामित्र का उल्लेख नहीं है। वहीं पर राम के द्वारा 'धनुर्भंग' के पश्चात असफल राजाओं के विद्रोह करने के समय एक आकाशवाणी से राम के 'पुरुषोत्तम' होने की घोषणा की जाती है, जिसे सुनकर वे विद्रोही राजा कोप शान्त हो जाते हैं और लक्ष्मण तथा जनक आदि भी आश्चर्य व्यक्त करते हैं।[10]

---

१ बाल रामायण ३।२८–३१
२ बाल रामायण ३।८४
३ पद्म। पाताल। ११६।१६
४ मानस १।२५१–२५२
५ सीता स्वयंवर ।६६
६ प्रसन्न राघव, ३।१२
७ हनुमन्नाटक १।१०
८ महावीर चरित १।४९–५२
९ बाल रामायण ३।८४
१० मैथिली कल्याण ५।१७ के बाद

(१०) स्वयंवर में रावण की उपस्थिति—'मानस' में सीता-स्वयंवर के पूर्व ही रावण और बाण के आन तथा निराश होकर लौट जाने का संकेत मिलता है, किन्तु 'प्रसन्नराघव' में स्वयंवर के समय ही उनके वहाँ आने तथा धनुर्भंग में असमर्थ होकर लौट जाने का विस्तृत वर्णन किया गया है।[1] 'बाल रामायण' में रावण के साथ उसके मन्त्री प्रहस्त के आने का वर्णन है। वहाँ रावण धनुर्भंग के बिना ही सीता की प्राप्ति के लिए आग्रह करता है।[2] 'महावीरचरित' में रावण के पुरोहित सर्वमाय[3] 'अनर्घराघव' में उसके पुरोहित शौष्कल[4] तथा 'हनुमन्नाटक' में भी उसी पुरोहित[5] के द्वारा जनक की राज्य-सभा में आने और उनसे रावण के लिए सीता की याचना करने का वर्णन मिलता है। वहाँ ये सभी पुरोहित रावण के कुल और बल का ही विस्तृत वर्णन करते हुए किसी भी धनपूर्ति को व्यर्थ बतलाते हैं।

इस प्रसंग के वर्णन में तुलसी को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। संस्कृत ग्रंथों में प्राप्त सामग्री के साथ अपनी मौलिक कल्पना के सरस समन्वय से उन्होंने इसको अधिक चमत्कारपूर्ण बना दिया है। 'स्वयंवर-सभा' में राम के प्रथम-दर्शन के प्रभाव से छाये हुए आतंक का वर्णन करके उन्होंने समस्त प्रतियोगी नृपों की 'हीनत्व भावना' की ओर एक सबल संकेत किया है। फिर धनुर्भंग में उनके सामूहिक प्रयत्न के भी निष्फल हो जाने का उल्लेख करके उन्होंने उन सबको राम की तुलना में अत्यन्त क्षुद्र सिद्ध कर दिया है। 'प्रसन्न राघव' और 'बाल रामायण' की विस्तृत नामावली के स्थान पर उन्होंने उनका नामोल्लेख करना तक उचित नहीं समझा। उन सभी प्रतियोगियों के सर्वथा असफल हो जाने के पश्चात् उन्हीं के समक्ष राम के सहज भाव से सफल होने का उल्लेख करके, उन्होंने राम के गौरव को उपस्थित सब लोगों की दृष्टियों में बहुत ऊँचा स्थापित कर दिया है। 'धनुर्भंग' में रावण की असामर्थ्य का पहले ही उल्लेख करके उन्होंने निकट भविष्य में भी उसकी 'पराजेयता' की सम्भावना व्यक्त करदी है।

इस प्रकार तुलसी ने राम को सर्वशक्तिशाली और सर्वोपरि सिद्ध करने के लिए इस 'स्वयंवर-योजना' को एक सबल और सफल साधन के रूप में प्रयुक्त किया है। पहले के कवि और नाटककार न तो इस योजना का ऐसा महत्व समझ सके और न इसका उचित दिशा में समर्थ प्रयोग ही कर सके।

(११) परशुराम पराजय—सीता-स्वयंवर' में राम को विजयी और सफल देखकर मानस के प्रतियोगी राजा लोग निराश होकर उस समय जब कुछ

---

१ प्रसन्नराघव १।१२–१० क बाद
२ बालरामायण १।३०–३१
३ महावीरचरित १।२८
४ अनर्घराघव ३।१५
५ हनुमन्नाटक १।१९

कोलाहल करते हैं।[1] उसी समय 'धनुर्भंग' के समाचार से क्षुब्ध और क्रुद्ध परशुराम सहसा वहीं आ जाते हैं[2] और 'शिव धनुष' के दो खण्ड प्रस्तुत देखकर वे अपराधी को शीघ्र प्रकट करने के लिये जनक को धमकी देते हैं।[3] उस समय लक्ष्मण उनका कुछ अपमान सा करते हुए जब उनके दर्प पर व्यंग करते हैं तब वे उनकी उक्ति को बाल चापल्य मान कर उसकी अवहेलना कर देते हैं जिसके उत्तर में लक्ष्मण भी उनको ब्राह्मणत्व के नाते क्षमा-योग्य बतला कर उनका पुनः तिरस्कार करते हैं। परशुराम इससे अत्यन्त क्षुब्ध होते हैं और जब तक विश्वामित्र उन्हें किसी प्रकार शान्त करने का प्रयत्न करते हैं तब तक लक्ष्मण 'रेणुका-वध' आदि का उल्लेख करके उन्हें और कुपित कर देते हैं।[4] लक्ष्मण के इस दुर्व्यवहार पर खेद प्रकट करते हुए राम जब परशुराम से ब्राह्मणत्व के नाते क्षमा की प्रार्थना करते हैं तब उनकी वाणी-मात्र से अत्यन्त क्रुद्ध होकर वे उनके सामने अपने असाधारण क्षत्रिय कर्म का वर्णन करने लगते हैं।[5] फिर राम उनके इस क्रोध के प्रति अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए काल तक से अपनी निर्भयता किन्तु ब्राह्मणों के आगे अपनी विवशता का संकेत करते हैं।[6] इससे परशुराम को उनके ईश्वरत्व का सहसा कुछ भान होता है और सन्देह-निवारण के लिए वे राम को अपना 'वैष्णव' धनुष खींचने के लिए दे देते हैं जिसमें राम का सफल देखकर वे उन्हें ईश्वर मान लेते हैं और उनसे अपने कटु व्यवहार के लिए बारम्बार क्षमायाचना करते हैं। इसके पश्चात् वे उनकी स्तुति करते हुए तपस्या के लिए किसी वन की ओर चले जाते हैं।[7]

तुलसी ने इस प्रसंग में 'परशुराम-मिथिला-आगमन', 'परशुराम-लक्ष्मण-संवाद' और 'राम परीक्षा' का विशद रूप से वर्णन किया है। संस्कृत ग्रन्थों में इस प्रसंग के विस्तार में अनेक विभिन्न प्रवृत्तियों का विस्तार मिलता है।

(१२) परशुराम-मिथिला आगमन—संस्कृत के नाटकों को छोड़कर शेष सभी ग्रन्थों में यह 'आगमन' राम-विवाह के पश्चात् बारात के मिथिला से अयोध्या लौटते समय मार्ग में वर्णित किया गया है। रघुवंश, रामायण-मंजरी, भट्टिकाव्य उदार-राघव, जानकी-परिणय, राम-कथा, रामचरित, रामगीत और पद्म-पुराण आदि ग्रन्थों में जब परशुराम बारातियों को मार्ग में ही रोक कर राम के लिए कटु वचनों का प्रयोग करने लगते हैं तब दशरथ तक घबड़ा जाते हैं किन्तु राम उससे पूर्ण अप्रभावित ही रहते हैं। यहाँ दशरथ और वसिष्ठ आदि की उपेक्षा करते हुए परशुराम वहीं दशरथ एवं राम दोनों को शासित करने की इच्छा व्यक्त करते हैं।[8]

---

१ मानस १।२६६
२ मानस १।२६८
३ " १।२७०
४ " १।२७२-२७६
५ मानस १।२८२-२८३
६ मानस १।२८३-२८४
७ " १।२८४-२८५
८ रामचरित ८।८१-८२

कहीं 'इक्ष्वाकु तथा विदेह' दोनों वंशों को समाप्त करने की धमकी देते हैं[१] कहीं राम से इस बात पर भी अपनी अप्रसन्नता दिखलाते हैं कि उन्होंने उनका नाम क्यों अपना लिया है[२] कहीं उनके सामने वे 'द्वन्द्व-युद्ध' या 'धनुष-वमुध-गमन या क्षमा याचना' आदि के तीन विकल्प भी रखते हैं[३] और कहीं वे इक्ष्वाकुवंश को अपना मातामह-वंश बतला कर उसे अवध्य तो मानते हैं किन्तु राम के लिये वे अपने पूर्वोक्त विकल्पों पर पूर्ववत् दृढ़ रहना चाहते हैं।[४]

संस्कृत के नाटकों में यह प्रसंग अति विस्तृत तथा सजीव है। इन्हीं से पर्याप्त प्रभावित होकर तुलसी ने 'मानस' के इस प्रसंग में अद्वितीय नाटकीयता का समावेश किया है। इसके साथ ही सार-ग्रहण की अपनी प्रवृत्ति के द्वारा उन्होंने इसमें सुरुचिपूर्ण नवीनता का सृजन भी सर्वत्र किया है।

प्रसन्न राघव हनुमन्नाटक बाल रामायण, अनर्घ राघव, महावीर चरित आदि सभी नाटकों में यह प्रसंग 'मानस' के समान ही ठीक धनुर्भंग के पश्चात् स्वयंवर-सभा में ही वर्णित हुआ है। प्रसन्न राघव में धनुर्भंगकारी के नाम का प्रथम अक्षर 'रा' सुनते ही परशुराम को 'रावण' का भ्रम हो जाता है और वे बड़ी देर तक उसी पर क्रोध व्यक्त करते रहते हैं, किन्तु बाद में नेपथ्य से 'राम-सीता के विवाह' की घोषणा सुनकर वे अपनी भूल सुधारते हैं।[५] महावीर चरित में वे राम को खोजते हुए सीधे जनक के अन्तःपुर में ही घुसे चले आते हैं।[६] 'अनर्घ राघव'[७] और हनुमन्नाटक[८] में वे राम को 'धनुर्भंगकारी' के रूप में पहले से ही जानते हैं, इसीलिए वे उन्हें कटुवचन कहते हुए वे सहसा वहीं पर प्रकट हो जाते हैं। 'बाल रामायण' में तो वे राम से विधिवत युद्ध करने के लिये पहले से ही इतने धनुर्बाण एकत्र करते हैं कि उनके भार के भय से उनके शिष्यगण रातों रात उनका आश्रम त्याग कर कहीं अन्यत्र चले जाते हैं।[९]

'मानस' में परशुराम के 'रूप वर्णन'[१०] और 'शक्ति दर्शन'[११] के प्रसंगों पर

---

१ राघवीय ४।६७-७१
२ उदार राघव ३।१२३
३ जानकी परिणय ८।१४
४ पद्म। उत्तर।२४२।१२६-१३२
५ प्रसन्न राघव ४।८-११
६ महावीर चरित २।२०
७ अनर्घ राघव ४।२०-२७
८ हनुमन्नाटक १।३२-३७
९ बाल रामायण ४। विष्कंभक
१० मानस १।२६८ से मिलाइये
  हनुमन्नाटक १।३१-३०
  प्रसन्न राघव ४।१५
  अनर्घ राघव ४।२७
  महावीर चरित २।३३,३६
११ मानस १।२७२-२८१ से मिलाइये
  हनुमन्नाटक १।११-१४,१६-१७
  प्रसन्न राघव ४।२४,२८ २९,३३,३४
  अनर्घ राघव ४।१८ २०,२५ ३२,३६
  ३७,३९ ४७ ५२

भी इन नाटकों का बहुत प्रभाव है। अतः आक्रमण के साथ-साथ यहाँ कहीं-कहीं शब्द-साम्य भी निस्संकोच रूप से कर लिया गया है।

(११) परशुराम लक्ष्मण संवाद— मानस के इस प्रसंग पर भी संस्कृत के उपर्युक्त नाटकों का बहुत बड़ा आभार है।[1] राम की शालीनता की रक्षा के निमित्त, तुलसी ने उनके स्थान पर लक्ष्मण को ही परशुराम से अशिष्टतर कटु संवाद करते हुए दिखलाया है। इसलिए इन नाटकों के राम की अनेक उक्तियों को उन्होंने लक्ष्मण के माध्यम से ही प्रस्तुत किया है।[2] 'प्रसन्नराघव'[3] और 'अनर्घराघव'[4] में जनक और शतानन्द दोनों परशुराम के लिए कटु शब्दों का प्रयोग करते हैं। 'अनर्घ राघव' में दशरथ और लक्ष्मण भी उनमें अपना सहयोग देते हैं।[5] 'महावीरचरित' में परशुराम को प्रसन्न करने के लिए वशिष्ठ और विश्वामित्र पहले उन्हें 'पसंठते'

महावीर चरित २।१६ १७ १६,४८
३।११ १४ २४ ३२ ४८
बाल रामायण ४।२१ ११ १७ ४१

१ (क) मानस १।२७७ से मिलाइये
हनुमन्नाटक १।३८
प्रसन्न राघव ४।२६ के बाद
बाल रामायण ४।६१

१ (ख) मानस १।२७९ से मिलाइये
हनुमन्नाटक १।३६
बाल रामायण ४।६१

१ (ग) मानस १।२८१–२८२ से मिलाइये
हनुमन्नाटक १।३९–४०
प्रसन्न राघव ४।२५
अनर्घ राघव ४।३२

१ (घ) मानस १।२८३ २८४ से मिलाइए
हनुमन्नाटक १।४१ ४४
प्रसन्न राघव ४।२१ २३
अनर्घ राघव ४।३१,४६
बाल रामायण ४।६४

२ (क) मानस १।२७१ २७२ से मिलाइये
अनर्घराघव ४।११
प्रसन्न राघव ४।२१

२ (ख) मानस १।२७३ से मिलाइये
अनर्घराघव ४।१५,४६
प्रसन्नराघव ४।२१
हनुमन्नाटक १।४४

२ (ग) मानस १।२७६ से मिलाइये
अनर्घराघव ४।४९
प्रसन्नराघव ४।१९ के बाद
हनुमन्नाटक १।४१

३ प्रसन्न राघव ४।१० के बाद
४ अनर्घराघव ४।१८ ४२–४४
५ " ४।४०, ४२, ४३ ४७ के बाद

और 'पुत्रत्व' के सद्भाव के लिए पहले आमन्त्रित करते हैं।[1] किन्तु उनकी निरन्तर उपेक्षा देखकर वे भी विवश हो जाते हैं। वहां परशुराम के दमन के लिए शतानन्द उन्हें भद्दी गालियां देते हैं और शाप तक भी देना चाहते हैं तब दशरथ और वसिष्ठ उन्हें रोक लेते हैं।[2] जब जनक अपना धनुषबाण सम्भालते हैं तब दशरथ उन्हें समझाते हैं[3] किन्तु जब परशुराम वसिष्ठ के लिये अपशब्द कहते हैं तब तो जनक शतानन्द विश्वामित्र आदि सभी मिलकर उन्हें फटकारने लगते हैं।[4] 'बाल रामायण' में शतानन्द दशरथ और विश्वामित्र तो उन्हें शब्दों से समझाते हैं किन्तु जनक अपने धनुष पर जब बाण चढ़ा लेते हैं तब दशरथ और विश्वामित्र दोनों उन्हें रोकते हैं।[5] 'हनुमन्नाटक' में राम तो परशुराम की कटूक्तियों से खिन्न होकर उनके दमन के लिए इतने विवश हो जाते हैं कि फिर वे न तो उनको ब्राह्मण होने के कारण अवध्य मानते हैं और न स्वयं को ही रघुवंशी होने के कारण उनके शासन में अनधिकारी समझते हैं।[6]

(१४) राम परीक्षा—संस्कृत के सभी ग्रन्थों में राम की शक्ति परीक्षा के लिए परशुराम के वैष्णव धनुष के प्रयोग का वर्णन किया गया है। 'मानस' में उसका उद्देश्य केवल उनकी ईश्वरत्व परीक्षा है।[7] रघुवंश[8] रामायण मंजरी[9] रामचरित[10] राघवीय[11] उदारराघव[12] पद्मपुराण[13] हनुमन्नाटक[14] प्रसन्न राघव[15] अनर्घ राघव[16] भट्टिकाव्य[17] आदि ग्रंथों में राम शक्ति प्रदर्शन करते हुए उस धनुष को केवल सज्य ही नहीं करते हैं अपितु उस पर एक बाण चढ़ा कर उसका प्रयोग भी परशुराम के ही ऊपर अनिवार्य रूप से करना चाहते हैं और अन्त में उन्हीं की प्रार्थना के अनुसार वे उनका पुण्य प्राप्त स्वर्गलोक समाप्त भी कर देते हैं।

राम को वैष्णव धनुष सज्य करते हुए देखकर 'हनुमन्नाटक'[18] और अनर्घ राघव[19] की सीता उनके द्वितीय विवाह की आशंका करती है जिसका उल्लेख 'मानस' में नहीं है। 'बाल रामायण' नाटक में उस धनुष को लक्ष्मण बीच में ही

---

१ महावीर चरित ३।२
२ महावीर चरित ३।१८।२०,२२ ३३
३ ३।२९–३०
४ " ३।३०–३९
५ बाल रामायण ४।५८–६१
६ हनुमन्नाटक १।४६
७ मानस १।२८४
८ रघुवंश ११।८७
९ रा० मंजरी। बाल। ६२१
१० रामचरित ८।८४
११ राघवीय ४।७६
१२ उदार राघव ३।१२४
१३ पद्म। उत्तर। २४२।१७८
१४ हनुमन्नाटक १।४६
१५ प्रसन्न राघव ४।४३
१६ अनर्घराघव ४।२७
१७ भट्टिकाव्य २।५३
१८ हनुमन्नाटक १।५
१९ अनर्घराघव ४।५७

लेकर तोड़ डालते हैं जिससे प्रसन्न होकर जनक उर्मिला के साथ उनके विवाह की उसी समय घोषणा कर देते हैं।[1] 'मानस' में यह घटना नहीं है। परशुराम के पराजित एवं लज्जित होने के पश्चात् शीघ्र ही चले जाने का वर्णन प्रायः सभी ग्रंथों में मिलता है किन्तु 'रामकथा' में वे जाते समय राम का चरण-स्पर्श करते हैं[2] जबकि 'हनुमन्नाटक' में स्वयं राम ही उनका चरणस्पर्श करते हैं जिससे प्रसन्न होकर वे वहीं उनके विवाह में भी सम्मिलित होते हैं।[3] किसी भी अन्य ग्रन्थ में ऐसा वर्णन नहीं मिलता है।

'मानस' के इस प्रसंग पर संस्कृत के काव्यों का कोई प्रभाव नहीं जान पड़ता है क्योंकि अयोध्या के मार्ग में परशुराम के मिलन उनके विकत्थन और वैष्णव धनुष पर चढ़ाये गये बाण से उनके स्वर्गरोध आदि का कोई उल्लेख यहाँ नहीं मिलता है। जहाँ तक संस्कृत के नाटकों का सम्बन्ध है उनमें वर्णित राम-परशुराम कलह उसमें जनकादि के योग राम के क्रोध और अन्त में राम के द्वारा परशुराम के चरणस्पर्श आदि प्रसंगों को भी संभवतः अनौचित्य के कारण 'मानस' में कोई स्थान नहीं मिल सका है। हाँ स्वयंवर शाला में ही परशुराम के आगमन और वहीं लक्ष्मण से उनका संवाद कराने की प्रेरणा तुलसी को उन नाटकों से अवश्य मिली है। उन्होंने एक तो कथावस्तु में रोचकता एवं नाटकीयता लाने के लिए दूसरे स्वयंवर के प्रतियोगी तथा विद्रोही राजाओं को उनके प्रबलतम विजेता (परशुराम) के दमन से एकदम शान्त करने के लिए और तीसरे 'परशुराम-पराजय' के पश्चात् 'राम-विवाह' के वातावरण को पूर्ण आनन्दमय बनाने के लिए स्वयंवरशाला में ही परशुराम विवाद को प्राथमिकता दी। इसके अतिरिक्त राम के चरित्र की महत्ता स्थापित करने के लिए उन्होंने इस प्रसंग की समस्त कटुता को 'परशुराम-लक्ष्मण संवाद' में ही सीमित कर दिया और राम अथवा जनक आदि को उसमें कहीं भी बीच में आने नहीं दिया। इन सभी विशेषताओं से 'मानस' का यह प्रसंग अत्यधिक आकर्षक हो गया है।

(१५) राम-विवाह—परशुराम-विवाद के सकुशल समाप्त हो जाने के पश्चात् जनक राम और सीता के विवाह को नियमित एवं वैवाहिक रूप देने के लिए तथा वंशव्यवहार एवं लोकवेदाचार के निर्वाह के लिए विश्वामित्र की आज्ञा से दशरथ को सूचना और निमंत्रण भेजते हैं।[4]

राम की कुशलता और विवाह के समाचार से हर्षित प्रसन्न होकर दशरथ बारात सजाकर तुरन्त मिथिला के लिये प्रस्थान करते हैं।[5] मार्ग में उन्हें अनेक

---

१ बाल रामायण ४।८१

२ रामकथा पृष्ठ ११

३ हनुमन्नाटक १।५८

४ मानस १।२८६–२८७

५ मानस १।२६०–२६८

शुभ शकुन होते हैं।[1] बारात के सत्कार के लिए जनक, मार्ग में अनेक स्थानों पर भोजन तथा आवास आदि का प्रबन्ध करते हैं और मिथिला आने पर उस बारात को एक अच्छे जनवासे में टिका देते हैं।[2] वहाँ सीता बारातियों की सेवा करने के लिए अपने दैवी प्रभाव से ऋद्धि-सिद्धियों को नियुक्त कर देती हैं।[3]

राजभवन में बारात के आने पर मंगलाचार के साथ-साथ परछन[4] आरती[5] शान्ति-पाठ[6] अर्घ्य,[7] आसन[8] निछावर[9] तथा सामध[10] आदि के समस्त कुलाचार सम्पन्न होते हैं। सीता के मंडप में आने पर दोनों ओर के कुल-गुरुओं के द्वारा गुरु गौरी और गणेश आदि की पूजा की जाती है जिसमें सब देवता लोग प्रगट होकर अपना अपना कार्य करते हैं। वहाँ सूर्य अपना वंशव्यवहार बतलाते हैं अग्नि देव आहुति लेते हैं और वेद विप्रवेश में विवाह-विधि बतलाते हैं।[11] इसके पश्चात् पाँवपखारन शाखोच्चार, पाणिग्रहण कन्यादान गठबन्धन भाँवर तथा माँगभराई आदि[12] का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। राम विवाह के समान ही भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के विवाहों के भी सम्पन्न होने का उल्लेख यहाँ मिलता है।[13]

विवाह के उपरान्त जनक, वस्त्र, वाहन भी दास, दासी आदि के रूप में विविध दायज देते हैं।[14] फिर सखियाँ सभी वरों तथा वधुओं को 'कोहबर'[15] में ले जाती हैं। वहाँ लहकौर के पश्चात् सब वधुयें दशरथ से आशीर्वाद लेने के लिए जनवासे' जाती हैं।[16] फिर वहाँ से लौट कर 'जेवनार' होती है जिसमें अवसर के अनुकूल गालियाँ भी गाई जाती हैं।[17] अन्त में विदा के दिन जनक सुआर' (भोजन सामग्री) और बहुत सा दायज पुनः देते हैं।[18] उनकी रानियाँ सीता को समुचित शिक्षा' देती हैं। उस समय जनक भी मोह-वश सीता को हृदय से लगाकर उन्हें सान्त्वना देते हुए नारी धर्म तथा कुल-रीति आदि समझाते हैं और फिर उन्हें विदा कर देते हैं।[19]

बारात के अयोध्या पहुँचने पर कौशल्या आदि सभी रानियाँ मंगलगान, आरती, परिछन, निछावर और दान करती हैं तथा वसिष्ठ के आदेश से फिर अन्य लोकाचार भी किए जाते हैं।[20] सब बारातियों को ससम्मान विदा करने के बाद विश्वामित्र को भी वहाँ बड़े सत्कार और पूजा के साथ विदा किया जाता है।[21]

तुलसी ने 'राम-विवाह' के प्रसंग का वर्णन इतने विस्तार से किया है कि उसमें उनके अरण्य और किष्किन्धा' दोनों काण्ड समा सकते हैं। निश्चय ही तुलसी

---

१ मानस १।३०१ — २ मानस १।३०४-३०६
३ " १।३०६-३०७ — ४-१० १।३१२-३२०
११ " १।३२३ — १२ " १।३२४-३२५
१३ " १।३२६ — १४-१७ " १।३२६-३२९
१८ " १।३३३ — १९ " १।३३४-३३६
२० " १।३४८ ३५२ — २१ " १।३५२,३६०

का मन इस वर्णन में अत्यधिक रमा है। अपने इष्टदेव के विवाहोत्सव के उल्लास में इन्होंने सर्वत्र शब्दों का 'अतिव्यय' ही प्रस्तुत किया है भले ही इसके कारण उन्हें अन्यत्र मितव्ययिता से काम लेना पड़ गया हो।

इस विवाह-वर्णन में तुलसी ने वैदिक एवं लौकिक सभी विधियों का समन्वय किया है। इनमें परछन आरती निछावर, पायस पाँव-पखारन मण्डपछादन भाँवर, माँगभराई कोहबर लहकौर जेवनार गालियाँ, जुआर और दायज आदि लौकिक विधियाँ हैं जो आज भी उत्तर प्रदेश के अधिकांश विवाहों में व्यवहृत होती हैं। इनके अतिरिक्त शान्तिपाठ मधुपर्क आसन शाखोच्चार पाणिग्रहण और कन्यादान आदि विधियाँ वैदिक हैं अथवा वर्तमान प्रचलित प्रथाओं के अनुकूल हैं और उत्तर भारत के लगभग समस्त हिन्दू विवाहों में उनका उपयोग किया जाता है। इस प्रकार इस प्रसंग में तुलसी ने विवाह के लोक-वेदाचार दायज और सीतोपदेश आदि का विशेष रूप से वर्णन किया है। संस्कृत ग्रंथों में यह प्रसंग अनेक विभिन्नताएं रखता है।

(१६) लोक-वेदाचार—संस्कृत के ग्रंथों में लौकिक विधियों का न तो कोई उल्लेख किया गया है और न वहाँ उसकी कोई अपेक्षा ही जान पड़ती है। कोहबर[1] और कंकण-मोचन[2] का वर्णन दो-एक ग्रन्थों में अवश्य मिलता है। वैदिक विधियों में 'रामायण-मंजरी' में 'शाखोच्चार' का उल्लेख है जिसमें ब्रह्मा से लेकर दशरथ तक के 'रामवंश' का वर्णन वशिष्ठ करते हैं और निमि से लेकर अपने आप तक 'सीता वंश' का वर्णन स्वयं जनक करते हैं।[3] महावीर चरित में शतानन्द और वशिष्ठ दोनों कुलगुरुओं की अनुपस्थिति में उन दोनों की ओर से विश्वामित्र के द्वारा ही सीता आदि चारों कन्याओं के दान तथा ग्रहण करने का वर्णन किया गया है।[4] बाल रामायण के संस्कारों में 'पाणिग्रहण' होने का उल्लेख अभी किया जा चुका है।[5]

(१७) दायज-वर्णन—'राघवीय' के दायज में असंख्य द्रव्य हाथी घोड़े पदाति, रथ और १०० दासियों के देने का उल्लेख है।[6] 'उदारराघव' में रत्न हाथी घोड़े गाय बकरी दासी पालकी गाड़ी रेशमी वस्त्रों की पेटी कस्तूरी कपूर आदि सभी कुछ दायज में दिया जाता है।[7] वहाँ कुशध्वज अपनी पुत्रियों मांडवी और श्रुतकीर्ति के लिए अलग से दायज देते हैं।[8]

(१८) सीतोपदेश—'जानकी-हरण'[9] में केवल जनक के द्वारा तथा बाल-रामायण[10] में जनक और शतानन्द दोनों के द्वारा सीता को वधू-धर्म के उपदेश देने का प्रस्ताव किया गया है।

---

१ राघवीय ७।२१ — २ महावीर चरित २।५०
३ रा० मंजरी । बाल ।५३४-५४६ — ४ " " १।५८
५ प्रस्तुत निबन्ध पृ० १४० — ६ राघवीय ७।२४
७-८ उदार राघव ३।११५ — ९ जानकी हरण ९।११
१० बाल रामायण ७।४२-४४

(१९) अन्य विशेषतायें—उदार-राघव में दशरथ को किसी दूत भाषा में निमन्त्रण भेजे जाने का वर्णन मिलता है किन्तु सुमन्त्र उसका सही-सही अर्थ समझ लेते हैं। वहीं उस बारात में गुरु-पत्नी अरुन्धती, कौशल्या आदि रानियों, चेटियों और वेश्याओं आदि के भी सम्मिलित होकर मिथिला जाने का कथन किया गया है।[1]

संस्कृत साहित्य में 'राम-विवाह' के वर्णन को उतना महत्व या विस्तार नहीं मिला है जितना उसे 'मानस' में प्राप्त हुआ है। कथाक्रम के विचार से वहाँ इतना विस्तार अपेक्षित भी नहीं है किन्तु तुलसी ने अपने दृष्टिकोण की विशेषता के कारण ही अपनी कवित्व-शक्ति का अधिकतम सदुपयोग इसी प्रसंग में किया है। यह उनकी वर्णन-शैली की ही सरलता का परिणाम है कि पाठक कथा की प्रगति की ओर अपने ध्यान न देकर उसी प्रसंग 'रस प्रवाह' में निरन्तर मग्न बना रहता है।

२ अयोध्या-काण्ड

पिछले 'काण्ड' में राम के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। प्रस्तुत काण्ड में 'राम के राज्याभिषेक के संभार' से लेकर कैकयी की वरदान-याचना' राम-वन-गमन', 'सीता-लक्ष्मण-अनुगमन', 'राम निषाद-मिलन' राम मुनि-मिलन' 'सुमन्त्र प्रत्यावर्तन' 'दशरथ-मरण', 'भरत के अयोध्या-आगमन, चित्रकूट में राम भरत मिलन' और भरत के नन्दिग्राम प्रवास तक के प्रसंग वर्णित हुये हैं।

(१) राम-यौवराज्याभिषेक का संभार—राम के विवाह के पश्चात् उनको सबका योग्य और समर्थ देख कर एक ओर अयोध्या के नागरिक उनके यौवराज्य की कामना करते हैं।[2] तो दूसरी ओर दशरथ दर्पण में अपने केश को श्वेत देखकर अपनी वृद्धावस्था के अनुमान से राम को युवराज-पद पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।[3] गुरु वसिष्ठ की अनुमति[4] एवं नागरिकों की सहमति[5] के पश्चात् अभिषेक-सामग्री एकत्र की जाती है जिसमें विविध तीर्थों के जल औषध कन्दमूल, चामरचर्म अनेक वस्त्र मणिगण आदि की व्यवस्था सम्मिलित है।[6] राम को 'यौवराज्य' की सूचना के साथ-साथ राजधर्म की शिक्षा देने के लिये जब वसिष्ठ उनके भवन में जाते हैं।[7] इस समाचार से राम को भ्रातृप्रेम-वश यह खेद होता है कि सब भाइयों के सब प्रकार समान होने पर भी केवल आयु

---

१ उदार राघव ३।१००–१०७
२ मानस २।१
३ मानस २।२
४ " २।४
५ " २।५
६ " २।६
७ " २।९–१०

में सबसे बड़े होने के कारण ही उन्हें यह 'राज्यभार' दिया जा रहा है। इस प्रकार इस प्रसंग में तुलसी ने 'दशरथ के श्वेत-केश' अभिषेक-सज्जा' राज-धर्मोपदेश' और 'राम के खेद' आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया है। संस्कृत-साहित्य में इसका वर्णन विभिन्न रूप से प्राप्त होता है।

(२) दशरथ के श्वेत-केश—'रघुवंश'[1] 'रामचम्पू'[2] 'द्विसन्धान'[3] आदि में भी 'श्वेत केश' के दर्शन दशरथ के द्वारा अपनी वृद्धता के अनुमान का उल्लेख है। अन्य ग्रन्थों में दशरथ अपने को स्वतः वृद्ध मान कर और राम को अभिषेक के योग्य समझ कर सचिवों तथा पुरोहितों की अनुमति से उनके यौवराज्य' का विचार करते हैं। 'महावीर चरित'[4] तथा अनर्घ राघव'[5] में वे मिथिला में ही 'परशुराम-विजयोत्सव' के साथ-साथ 'रामाभिषेकोत्सव' भी मनाने का आदेश देते हैं। महावीर चरित' में तो स्वयं भरत और उनके मामा युधाजित् ही उनसे रामाभिषेक के लिए प्रार्थना करते हैं।[6]

(३) अभिषेक-सज्जा—महाभारत'[7] और रामायणमञ्जरी'[8] में इस अभिषेक के लिए 'पुष्य-नक्षत्र' निश्चित किये जाने का उल्लेख है। उदार राघव में अभिषेकोत्सव के लिए सभी समुद्रों नदियों और सरोवरों के जल से पूर्ण कलश प्रस्तुत किए जाते हैं। वीथियां केसर और गन्ध जल से सिक्त की जाती हैं। सभी स्थानों पर मोतियों की झालरें लटकाई जाती हैं। मणिमण्डित तोरण बनाए जाते हैं। ऊँचे-ऊँचे बांसों पर रंग बिरंगे वस्त्र टांगे जाते हैं। वेणु काहल शंख उनका हुडुक्का आनक दुन्दुभि आदि वाद्य बजाए जाते हैं। नागरिक-गण अपने भवन सजाते हैं और वेश्यायें अपने शरीर।[9] 'प्रतिमा नाटक में अभिषेक के लिए व्यञ्जन छत्र मणि पटह भद्रासन कुश-कुसुम-संयुक्त तीर्थजल और पुष्परथ आदि की व्यवस्था की जाती है।[10]

(४) राजधर्मोपदेश—मानस' के वशिष्ठ के स्थान पर 'रामायण मञ्जरी'[11] में दशरथ और उदार राघव[12] में सुमन्त्र के द्वारा राम को उपदेश' दिए जाने का वर्णन मिलता है।

(५) राम का खेद—'मानस में राम का यह खेद केवल आत्मगत है

---

१ रघुवंश १२।२
२ रामचम्पू ३।११
३ द्विसंधान ४।१-३
४ महावीर चरित ४।४७
५ अनर्घराघव ४।६६ के बाद
६ " ४।४८
७ महाभारत। वन।२७७।१५
८ रा० मञ्जरी। अयोध्या।६५०
९ उदार राघव ४।४-१०
१० प्रतिमा १।१
११ रा० मञ्जरी। अयोध्या।६६१-६६८
१२ उदार राघव ४।१२-१५

जबकि 'उदार राघव' में वे अपने अभिषेक का घोर विरोध करते हैं और सुमन्त्र के सामने उसके विषय में अनेक तर्क भी प्रस्तुत करते हैं, किन्तु सुमन्त्र उन्हें किसी प्रकार समझा बुझा कर अन्त में मना लेते हैं।[1] अन्य ग्रन्थों में इस खेद का कोई विवरण नहीं मिलता है।

इस प्रसंग में तुलसी ने राम को 'युवराज' बनाने में सहायक उन सभी संभव विचारों का समन्वय किया है, जो संस्कृत-ग्रन्थों में प्राप्त थे। नागरिकों की उत्कट अभिलाषा, श्वेत-केश-दर्शन से दशरथ की दृढ़ता, गुरु वशिष्ठ के आशीर्वाद और ऋषियों तथा नागरिकों आदि की सहमति आदि समस्त साधनों का एकमात्र साध्य 'रामाभिषेक' ही है। यहाँ वशिष्ठ के वस्तुतः गुरुत्व की सिद्धि के लिए उनके द्वारा ही राम को धर्मोपदेश दिला कर उनके महत्त्व को निरूपित किया गया है। इसके साथ ही राम के मानसिक खेद का उल्लेख करके तुलसी ने उनके आदर्श चरित्र की महत्ता का भी प्रतिपादन किया है, जो अन्यत्र संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध नहीं है।

(६) कैकयी की वरदान-याचना—'मानस' के अनुसार राम के अभिषेक में विघ्न करने वाले केवल देवगण हैं। निश्चरमाता के रूप में अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए वे सरस्वती की सहायता से कैकयी की दासी मन्थरा की बुद्धि इस प्रकार भ्रष्ट करवा देते हैं कि नगर की अभिषेक-सज्जा से सन्तप्त होकर कैकयी से सौतिया डाह को एक दम उभार देती है।[2] भरत की अनुपस्थिति में राम के अभिषेक को कौशल्या का एक घातक षड्यन्त्र[3] बतला कर और अनेक सपत्नी-कष्टों का आर्तपूर्ण चित्रण करके वह कैकयी से आग्रह करती है कि वह दशरथ के पास सुरक्षित अपने दोनों वरों को मांग करके एक से राम के स्थान पर भरत को राजा बना ले और दूसरे से राम को १४ वर्ष के लिए वन भेज दे, ताकि भरत निष्कण्टक राज्य कर सकें।[4] शीघ्र कार्य-सिद्धि के लिये वह उसे कुवेश धारण करके कोप भवन में जाने का परामर्श भी देती है। राजा दशरथ इस परिस्थिति से बहुत घबड़ा जाते हैं और वे 'पति-सुलभ स्वभाव' से उसे सब प्रकार से मनाते भी हैं।[5] उसी समय कैकयी उनसे अपने वरदान मांग लेती है। 'भरताभिषेक' के लिए तो दशरथ तुरन्त प्रस्तुत हो जाते हैं[6] किन्तु 'राम निर्वासन' को अपने जीवन-मरण का प्रश्न बतला कर वे उसके बदले में अपना सर्वस्व तक देने को प्रस्तुत हो जाते हैं किन्तु उसकी हृदयहीनता से उन्हें अन्त में घोर निराशा होती है।[7] इस प्रकार इस प्रसंग में तुलसी ने देव-षड्यन्त्र, मन्थरा प्रयास, कैकयी

---

१ उदार राघव ७।१९-२४
२ मानस २।१२-१६ ३ मानस २।१७-१८
४ २।१९-२२ ५ " २।२२-२७
६-७ " २।३१-३७

के कोप भवन-प्रवेश और उसकी हठधर्मिता आदि का विशेष रूप से वर्णन किया गया है जो संस्कृत के ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार से प्राप्त होता है।

(७) देव-षड्यन्त्र—यह तुलसी की बहुत ही मौलिक योजना है। 'रामायण-मञ्जरी'[1] और 'अग्नि-पुराण'[2] की मन्थरा तो राम के किसी पूर्व पदाघात से क्षुब्ध और उसके प्रतिकार के लिए ही वह उनके निर्वासन का षड्यन्त्र रचती है जबकि 'राम-कथा'[3] मन्थरा दुन्दुभि गन्धर्वी का अवतार है, जो देव-कार्य की सिद्धि के लिये ब्रह्मा के आदेश से कैकयी के पास ही नियुक्त है और अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए इस प्रकार सक्रिय है।

(८) मन्थरा के प्रयत्न—संस्कृत के अनेक ग्रन्थों में मन्थरा के प्रयत्नों का विस्तार रूप से उल्लेख किया गया है। 'रामायण-मञ्जरी' का यह वर्णन 'मानस' के वर्णन से बहुत साम्य रखता है।[4] उदार राघव का वर्णन भी पर्याप्त विस्तृत है। यहाँ मन्थरा बहुत तेज है। वह स्वयं ही जाकर दशरथ को कैकयी के पास बुला लाती है और उसके सव्याज मौन रहने पर दोनों वरदान माँग लेती है।[5] 'रामवीय' की मन्थरा कैकयी की आज्ञा से दशरथ को केवल बुला लाने का कार्य करती है।[6] 'प्रतिमा नाटक' में दशरथ को कोप-भवन तक भी नहीं जाना पड़ता है। वहाँ अभिषेक-भूमि में ही मन्थरा उनके कान में 'कुछ' कह देती है जिससे सारा समारोह स्थगित हो जाता है।[7] प्रसन्न राघव' में स्वयं कैकयी ही वहाँ जाकर वर-याचना कर लेती है।[8]

'बाल रामायण' नाटक की मन्थरा नकली है। वहाँ दशरथ और कैकयी की अनुपस्थिति में मायामय राक्षस शूर्पणखा और उसकी एक दासी क्रमशः दशरथ कैकयी और मन्थरा का रूप ग्रहण करके 'राम-निर्वासन' का षड्यन्त्र करते हैं और अतएव सफल होते हैं।[9] महावीर चरित में स्वयं शूर्पणखा ही मन्थरा का रूप धर कर 'राम विवाह' के समय मिथिला में कैकयी का जाली वरदान-याचना पत्र लेकर पहुँच जाती है।[10] 'अनर्घ राघव' में उपर्युक्त सारा षड्यन्त्र शबरी करती है।

(९) कैकयी का कोप-भवन-प्रवेश—'रामायणमञ्जरी के कोप-भवन का वर्णन 'मानस के वर्णन से बहुत साम्य रखता है। यहाँ भी कैकयी के कुवेष से

---

१ रा० मञ्जरी। अयोध्या। ६६७

२ अग्निपुराण ६।८ ३ रामकथा पृष्ठ ७

४ रा० मञ्जरी। अयोध्या। ६६९-७००

५ उदार राघव ७।४१-५२ ६ रामवीय।२३२

७ प्रतिमा १।७ ८ प्रसन्न राघव ३।४

९ बाल रामायण ६। विष्कम्भक १० महावीर चरित ४।४० के बाद

प्रविष्ट होने का संकेत मिलता है।[1] 'महाभारत' के कोप भवन में केकयी कुवेशिनी' नहीं बनती है, किन्तु शपथ कर और एकान्त में राजा दशरथ से अत्यधिक प्रेम दिखला कर अपने वर प्राप्त कर लेती है।[2] संस्कृत के अन्य ग्रन्थों में 'कोपभवन' का वर्णन नहीं प्राप्त होता है।

(१०) केकयी की हठ धर्मिता—संस्कृत के लगभग समस्त ग्रंथों में राम निर्वासन' के लिए केकयी के दुराग्रह और क्रूर निश्चय का समान वर्णन मिलता है। दशरथ के तर्कों के उत्तर में वह सर्वत्र अपने भी सबल तर्क प्रस्तुत करती है और उन्हें 'सत्य-पालन' के लिए विवश कर देती है। मंथरा के अभाव में भी उसकी क्रूरता का पूर्ण परिचय 'हनुमन्नाटक' में मिलता है जहाँ वह 'तापस-शाप' के कारण उत्पन्न महोत्पातों का सम्बन्ध सीता के साथ जोड़कर उन्हें 'अमंगली वधू' के रूप में विख्यात करती है और राम से कुछ आन्तरिक द्वेष होने के कारण वह उन्हें 'निजकुलांगार-मूर्ति' आदि कहती हुई दशरथ से उनके और सीता के निर्वासन की प्रार्थना करती है ताकि भरत अयोध्या पर शान्तिपूर्वक राज्य कर सकें।[3]

कुछ ग्रन्थों में, केकयी की केवल क्रूरता और कठोरता को ही न दिखलाकर उसकी कोमलता वत्सलता और निर्दोषता का भी उल्लेख किया गया है। पूर्वोक्त बालरामायण,' 'महावीर-चरित और 'अनर्घराघव' आदि नाटकों में केकयी को निर्दोष सिद्ध करने के लिए ही अन्यों मन्थराओं के प्रयत्नों का आयोजन है। 'प्रतिमा नाटक' में केकयी दशरथ को तापस-शाप' से शीघ्र मुक्ति दिलाने के सद्विचार से वशिष्ट आदि के परामर्श के अनुसार राम का १४ दिन का वनवास माँगना चाहती है, किन्तु घबराहट में १४ वर्ष कह जाती है।[4] इस प्रकार यहाँ केकयी की ऊपरी असावधानी दिखला कर उसके हृदय की पूर्ण शुद्धता का संकेत किया गया है। इसी प्रकार रामायण-मंजरी में ब्राह्मण-शाप' के कारण उसकी बुद्धि के फिर जाने का संकेत करके उसकी निर्दोषता सिद्ध की गई है।[5]

तुलसी ने 'मानस में केकयी के चरित्र का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया है। उसे निर्दोष सिद्ध करने के लिए उन्होंने कोई प्रयत्न ठीक नहीं समझा प्रत्युत अपने 'इष्टदेव के निर्वासन के अपराध के कारण उन्होंने उसको अपनी ग्लानि प्रगट करने का भी कोई अवसर नहीं दिया। इसके अतिरिक्त 'तापस शाप'[6] और 'बालवत्सय'

१ रा० मंजरी। अयोध्या। ७०६–७०७

२ महाभारत। वन। २७७।१९, २६ ३ हनुमन्नाटक।३।२

४ प्रतिमा १।१२ के बाद

५ कैकेय्या ब्राह्मण पूर्व मूर्धो बाल्ये विडम्बित।
तच्छापशवमपतस्या मति र्कीर्तिपराङ्मुखी। रा० मंजरी। अयोध्या ७०२

६ मानस २।१२५

की भविष्यवाणी[1] से 'राम-वन-गमन' की अनिवार्यता बतला कर भी तुलसी ने 'मानस' के किसी पात्र के द्वारा न तो कैकयी को निर्दोष कहलवाया और न उसके प्रति किसी को थोड़ी सी भी सहानुभूति व्यक्त करने का अवसर दिया। मन्थरा के विष-वमन से प्रभावित कैकयी की क्रूरता के निरूपण से तुलसी ने राजमहलों के षड्यन्त्र' और 'रूठी हठ' आदि का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है।

(११) राम-वन-गमन और सीता-लक्ष्मण-अनुगमन—कैकयी की वर याचना से क्षुब्ध मानस' के दशरथ रात भर मर्मान्तिक द्विविधा में पड़े रहते हैं। प्रातःकाल बड़ी देर तक उनका दर्शन न पाकर उनके मंत्री सुमंत्र 'कैकयी भवन' में ही उनके पास पहुँच जाते हैं और वहां उन्हें अचेत और अव्यवस्थित देख कर वे कैकयी की आज्ञा से राम को वहीं पर शीघ्र बुला लाते हैं। राम के पूछने पर कैकयी जब उन्हें सब स्पष्ट बतला देती हैं तब वे माता पिता की आज्ञा को सर्वमान्य बतला कर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं।[2] उसी समय दशरथ सचेत होकर राम को हृदय से लगा लेते हैं किन्तु वे मुंह से कुछ भी नहीं बोलते हैं और मन ही मन यह मनाते हैं कि राम किसी प्रकार वन न जावें।[3] राम उन्हें समझा-बुझा कर माता कौसल्या के पास आज्ञा मांगने चले जाते हैं। वनवास की चर्चा से पहले वे अत्यन्त दुःखी होती हैं किन्तु माता (विमाता भी) और पिता की सम्मिलित आज्ञा को सर्वोपरि बतला कर वे उन्हें अन्त में स्वीकृति दे ही देती हैं।[4]

उसी समय इस अप्रिय समाचार को सुनकर सीता भी वहीं आ जाती हैं उनके कुछ न कहने पर भी कौसल्या उनकी मनोदशा समझ कर राम से कहती हैं कि सीता भी उनके साथ वनगमन के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं। यह सुनकर राम वन के अनेक भीषण कष्टों का उल्लेख करके सीता को वहीं रहने का परामर्श देते हैं,[5] किन्तु जब वे पति-वियोग के कष्टों को दुःसह बतला कर वन में भी पति-संयोग के आकर्षक आनन्द का सविशेष वर्णन करती हैं और अनुगमन के लिए अत्यधिक आग्रह करती हैं, तब राम विवश हो जाते हैं।[6] इसके पश्चात् जब लक्ष्मण राम के पैर पकड़ करके उनसे अपने अनुगमन के लिए मूक प्रार्थना करते हैं तब अयोध्या की सुरक्षा के विचार से राम उन्हें वहीं छोड़ देना चाहते हैं किन्तु उनकी अनन्य भक्ति देख कर वे उन्हें सर्वप्रथम माता सुमित्रा से अनुमति प्राप्त करने का परामर्श देते हैं।[7] अन्त में सीता और लक्ष्मण के साथ वन जाने के लिए प्रस्तुत राम जब दशरथ के पास अन्तिम आज्ञा के लिए जाते हैं तब वे उनके ईश्वरत्व का उल्लेख करके 'कर्म की विचित्र गति पर पश्चाताप करते हैं जिसके कारण उनके अपराध पर उन्हें

---

१ मानस २।१५२

२ मानस २।३७–४१

३ मानस २।४४–४५

४ " २।५१–५७

५ " २।५७–६१

६ " २।६४–६८

७ " २।७०–७२

(राम को) वन जाना पड़ रहा है।[1] यहाँ कैकयी राम आदि की विदा में अति विलम्ब देखकर अत्यन्त कुपित हो जाती है और मुनि-जनोचित वल्कलादि लाकर राम को दे देती है। उसका आशय समझकर राम शीघ्र ही मुनि वेश बनाकर वहाँ से चल देते हैं। बाहर आकर वे ब्राह्मणों को विविध दान देकर अपने दास-दासियों को गुरु वशिष्ठ के चरणों में सौंप देते हैं।[2] उसी समय सुमन्त्र दशरथ की आज्ञा से एक रथ लेकर उनके पास पहुँच जाते हैं, जिस पर बैठकर वे तीनों वन के लिए प्रस्थान कर देते हैं।[3]

इस प्रकार इस प्रसंग में तुलसी ने 'सुमन्त्र की विकलता', दशरथ की विवशता कौशल्या की प्रतिक्रिया सीता के आग्रह लक्ष्मण के आग्रह, लक्ष्मण को सुमित्रा की अनुमति राम के संपरिधान और सुमन्त्र के साथ वन प्रस्थान आदि का विशेष रूप से वर्णन किया है। संस्कृत के ग्रन्थों में इस प्रसंग के विस्तार में बड़ी विविधताएँ हैं।

(१२) सुमन्त्र की विकलता—'रामायण-मंजरी' में भी सुमन्त्र के द्वारा अन्तःपुर में जाने और कैकयी तथा दशरथ की सम्मिलित आज्ञा से राम को बुला लाने का वर्णन मिलता है।[4] 'उदार-राघव' में अन्तःपुर में जाने से पहले ही सुमन्त्र को राम-निर्वासन का पता लग जाता है और उसी की पुष्टि के लिये वे वहाँ जाते हैं तथा कैकयी की आज्ञा से राम को वहाँ ले भी आते हैं। उस समय 'मंथरा' का नाम लेकर जब कैकयी मौन हो जाती है तब वशिष्ठ, जो वहाँ पहले से उपस्थित हैं राम को सारा रहस्य बतला देते हैं।[5] 'राघवीय' में वरयाचना के समय सुमंत्र भी उपस्थित रहते हैं और वे उसे इस कुविचार के लिए रोकते भी हैं। यहाँ राम माता-पिता की पद-वन्दना के लिये स्वयमेव वहीं पहुँच जाते हैं और कैकयी से 'सब कुछ जान लेते हैं।[6] 'चम्पू रामायण' में केवल दशरथ की आज्ञा से ही सुमंत्र जब राम को बुला लाते हैं तब कैकयी उनको सारी घटना बतला देती है।[7] इस अवसर पर कैकयी को समझाते हुए सुमन्त्र उसकी माता के भी दुराग्रह की एक कथा का वर्णन करते हैं।[8]

(१३) दशरथ की विवशता—कैकयी के अन्तःपुर में राम को सामने आते देखकर 'रामायण-मंजरी' के दशरथ रोते हुए उन्हें केवल 'पुत्र' कह कर शीघ्र ही लज्जावश मौन हो जाते हैं।[1] राम-वन-गमन के समय भी वे केवल एक ही बात कहते हैं कि अयोध्या की सारी सेना और सम्पत्ति राम को सौंप दी जाय, ताकि

१ मानस २।७६–७८
२ मानस २।७९–८०
३ " २।८१–८३
४ रा० मंजरी। अयोध्या।७१४–८११
५ उदार राघव ।५।२७–७१
६ राघवीय ।५।४१ ५४
७ चम्पूरामायण २।३३–३८
८ चम्पूरामायण २।३४ के बाद
९ रा० मंजरी। अयोध्या। ८०४

भरत उनके राज्य पर राज करें।[१] 'चम्पू रामायण' के दशरथ भी राम को इस अवसर पर 'सपरिच्छद' (सेवकों के साथ) जाने का आदेश देते हैं।[२] 'राघवीय' के दशरथ तो मौन आशीर्वाद के अतिरिक्त मुँह से एक अक्षर भी नहीं बोल पाते हैं।[३] 'उदार राघव' में वे राम के सामने ही बड़ा विलाप और प्रलाप करते हैं। वहाँ वे कभी राम की कोमलता और निर्दोषता का वर्णन करते हैं, तो कभी कैकेयी को रुलाते और फटकारते भी हैं। कभी अपने कलंक और अपयश की विस्तृत कल्पना करते हैं और कभी राम तथा लक्ष्मण से बल-पूर्वक राज्य-ग्रहण करने की प्रार्थना तक करते हैं।[४] 'अग्निपुराण' के दशरथ भी कैकेयी को 'पाप-निश्चया' 'सर्वलोकाहित कारिणी और काम रागि' आदि कह कर राम से बल प्रयोग करने का आग्रह करते हैं।[५]

(१४) कौसल्या की प्रतिक्रिया—'रामायण-मंजरी' की कौसल्या इस अवसर पर अपने 'एक-पुत्रत्व' और 'स्त्री-जीवन' को ही बार-बार धिक्कारती है।[६] 'चम्पू रामायण' में वे राम के हाथ में अभिषेकार्थ बँधे हुए मंगलसूत्र का स्मरण करके बहुत विलाप करती हैं और उनके साथ वन जाने की इच्छा भी व्यक्त करती है।[७] 'महानाटक' में वे राम को रोक कर पहले दशरथ से स्पष्टीकरण कराना चाहती हैं क्योंकि उनके विचार से वृद्ध और दुर्मद व्यक्ति के वचनों का कोई ठिकाना नहीं होता है।[८] 'राघवीय' में वे राम को केवल 'आशीर्वाद' देकर ही रह जाती हैं।[९] 'उदार राघव' की कौसल्या इस समय पर दशरथ की कामातुरता को ही सब अनर्थों का मूल बतलाती हैं और राम को वन प्रवासकाल में सतर्क व्यवहार करने के लिये आवश्यक निर्देश भी विस्तारपूर्वक देती है।[१०]

(१५) सीता का आग्रह—संस्कृत के सभी ग्रंथों में इस प्रसंग का बड़ा विस्तृत वर्णन किया गया है क्योंकि इसके द्वारा कवियों को 'पति-महत्व' का निरूपण करने के लिए एक पुष्ट आधार प्राप्त हो जाता है। 'रामायण-मंजरी' के राम जब सीता को कौसल्यादि की सेवा के लिए अयोध्या में रहने और भरत को 'नृपित्रद' राजा मानकर उन्हें कुछ भी कटु-वचन न कहने का परामर्श देते हैं तब वे कुपित होकर उनके अपने त्याग को सर्वथा अनुचित बतलाती हैं और पति को 'प्रामाणिक' तथा 'सर्वस्व' आदि कह कर अपने अनुगमन का दृढ़ निश्चय भी व्यक्त करती है।[११]

---

१ रा० मंजरी। अयोध्या। ८८६
२ चम्पूरामायण। २।१६ के बाद
३ राघवीय ३।७० ७१
४ उदार राघव ४।८० ११०
५ अग्निपुराण ६।२५ २६
६ रा० मंजरी। अयोध्या ८२८—८३६
७ चम्पूरामायण २।२८ ३०
८ महानाटक ३।११
९ राघवीय ३।८०
१० उदार राघव ३।६४—८१
११ रामायण मंजरी। अयोध्या। ८६८—८७८

'राघवीय'[1] और 'बाल रामायण'[2] की सीता भी पति-संयोग के सुखों का वर्णन करके राम से अनुगमन की प्रार्थना करती है। 'चम्पू-रामायण' में भी सीता का दृढ़ निश्चय देख कर राम उन्हें अनुमति दे देते हैं।[3] उदार राघव की सीता तो क्रोध से पैर पटकती काँपती रोती और अव्यय हँसती हुई राम से कहती हैं — "सर्प की तरह विषवमन मत करो मुझे भरमच के हाथों में सौंपते तुम्हें लज्जा नहीं आती, इसीलिए क्या पिता जनक ने मुझे तुमको दिया था कि अनाथ छोड़ कर स्वयं वन चले जाना। वहाँ वे यह भी बतलाती हैं कि उन्होंने इसनी रामायणें सुनी हैं किन्तु किसी के भी राम सीता को अकेली छोड़ कर वन नहीं जाते हैं।[4] इसके अतिरिक्त वे साथ न ले जाने की दशा में विषादि से आत्महत्या तक कर लेने की धमकी भी राम का देती हैं।[5] वियोग में शृङ्गार-शय्या को अंगार-शय्या और संयोग में अंगार शय्या को भी शृङ्गार-शय्या बतला कर वे वन के कष्टों को स्वर्ग सुख के समान कहती हैं और स्वर्ग को 'सुख-दुख मिश्र' कह कर वे राम के साथ वन जाने का सफल आग्रह करती हैं।[6]

भट्टिकाव्य[7], महावीर चरित[8] और अनर्घ राघव[9] आदि में कैकयी के वरदानों में ही राम के साथ सीता और लक्ष्मण के भी वन गमन की याचना का उल्लेख है, इसलिये वहाँ उनके आग्रह का प्रश्न ही नहीं उठता है।

(११) लक्ष्मण का आग्रह—संस्कृत के ग्रन्थों में इस प्रसंग में लक्ष्मण के क्रोध का विस्तृत उल्लेख मिलता है जो 'मानस' में वर्णित नहीं है, किन्तु उनकी कटु वाणी का संकेत उनके 'सुमन्त्र-संवाद' में अवश्य मिलता है[10] यद्यपि उसका भी कोई विवरण वहाँ नहीं दिया गया है। 'रामायण-मञ्जरी' के लक्ष्मण दशरथ को 'व्यसनी वृद्ध और स्त्रीवश्य' आदि कह कर किसी भी कारण से 'रामाभिषेक' का स्थगन नहीं चाहते हैं। वे तो भरत के भी षड्यन्त्र में लिप्त होने की सम्भावना करके उनका सामना तक करने के लिए धनुषबाण लेकर प्रस्तुत हो जाते हैं।[11] 'बाल रामायण' में वे दशरथ को 'स्यात्प्रयोग्य' तक कह देते हैं[12] और 'राघवीय' में वे उनके कण्ठच्छेद का भी विचार व्यक्त करते हैं।[13] 'उदार राघव' में वे दशरथ और कैकयी के विरोध के साथ-साथ भरत का भी समूलनाशन करके राम का शीघ्रभिषेक ही

---

१ राघवीय ३।६१-६२
२ बाल रामायण ६।११
३ चम्पू रामायण २।१२ के बाद
४ उदार राघव ३।४२-४८
५ उदार राघव ३।५२
६ " ३।५४-६०
७ भट्टिकाव्य ३।६
८ महावीर चरित ४।४१
९ अनर्घ राघव ४।६१
१० मानस २।६१
११ रा० मञ्जरी । अयोध्या । ८१८-८४२
१२ बाल रामायण ६।१७
१३ राघवीय ३।७२

अभिषेक कर डालना चाहते हैं।[1] 'चम्पू रामायण' के लक्ष्मण कैकयी को 'लोकनिन्दित' और दशरथ को 'जराक्रान्त' तथा 'कृत्याकृत्य-विवेक-मूढ़' आदि कह कर राम से उनके 'राज्यत्याग' को अनुचित बतलाते हैं और क्षत्रिय धर्म की दुहाई देकर उनसे बल-प्रयोग के लिए स्वयं आज्ञा भी माँगते हैं।[2] 'प्रतिमा' नाटक के लक्ष्मण कैकयी से कुपित होकर सारे संसार को ही 'स्त्री-रहित' कर देना चाहते हैं। उन्हें राम के राज्य से वञ्चित हो जाने से बढ़ कर, उनके निर्वासन का अधिक क्षोभ होता है।[3] इन सभी ग्रन्थों में राम के उपदेशों से ही लक्ष्मण का यह क्रोध शान्त हो जाता है। फिर वे उनसे अधिक आग्रह करके, वन में साथ जाने के लिए उनकी अनुमति प्राप्त कर लेते हैं।

'भट्टि-काव्य' 'महावीर चरित' और 'अनर्घ राघव' आदि में कैकयी के वरदानों में ही लक्ष्मण के भी वन-गमन की भावना का उल्लेख किया जा चुका है[4], इसलिए वहाँ उनके आग्रह का संकेत नहीं है।

(१७) सुमित्रा की अनुमति—संस्कृत के ग्रन्थों में सुमित्रा के चरित्र चित्रण की बड़ी उपेक्षा मिलती है। वहाँ लक्ष्मण जन्म' के अवसर को छोड़ कर अन्यत्र कहीं उसका नामोल्लेख भी नहीं किया गया है। 'मानस में लक्ष्मण को वन-गमन की अनुमति देने की वास्तविक अधिकारिणी के रूप में सुमित्रा का चित्रण करके तुलसी ने उसके साथ पूर्ण न्याय किया है। यही नहीं, उसके द्वारा लक्ष्मण को 'रामभक्ति का उपदेश दिला कर उन्होंने उसके चरित्र को और भी ऊँचा उठा दिया है। इस प्रकार यह प्रसंग तुलसी की एक मौलिक योजना है, जिसके दर्शन अन्यत्र नहीं होते हैं।

(१८) राम का सम्पत्ति-दान—इस प्रसंग का वर्णन संस्कृत के अनेक ग्रन्थों में मिलता है। 'रामायण-मंजरी' के राम सुयज्ञ और त्रिजट आदि ब्राह्मणों में अपना समस्त धन बाँट देते हैं।[5] उदार राघव' में सुयज्ञ को वसिष्ठ का पुत्र बतलाया गया है। वहाँ राम उन्हें सब बहुमूल्य वस्तुयें दे जाते हैं। शेष धन और पशु-धन को वे अन्य ब्राह्मणों तथा याचकों में वितरित कर देते हैं। वहाँ सुयज्ञ की पत्नी भी सीता से उनके वस्त्र और रत्न आदि दान में प्राप्त कर लेती है।[6]

(१९) सुमन्त्र के साथ वन प्रस्थान—संस्कृत के सभी ग्रन्थों में इस प्रसंग का विस्तृत उल्लेख मिलता है। 'मानस' में जब राम आदि नगर की सीमा पार कर लेते हैं तब उन्हें सुमन्त्र रथ के दर्शन होते हैं[7] किन्तु रामायण

१ उदार राघव ५।२३–३१ २ चम्पू रामायण २।२८–२९
३ प्रतिमा १।१८ २१ ४ प्रस्तुत निबन्ध, पृष्ठ १५७
५ रा० मंजरी। अयोध्या। ८८१–८८२
६ उदार राघव ५।८१–८५ ७ मानस २।८२

मञ्जरी[1], राघवीय[2], उदार-राघव[3], चम्पू रामायण[4] आदि में वे सब सुमन्त्र के साथ रथ पर बैठ कर ही भवन से बाहर जाते हैं।

(२०) अन्य विशेषतायें—'महावीर-चरित'[5] और हनुमन्नाटक[6] में 'राम-वन-गमन' के समय भरत की उपस्थिति और उनकी विकलता का विस्तृत वर्णन मिलता है। रामायण-मञ्जरी[7], राघवीय[8] उदार-राघव[9], और चम्पू रामायण[10] आदि ग्रन्थों में राम के द्वारा चलते समय यज्ञाग्नि ले जाने का उल्लेख किया गया है। 'पद्मपुराण' में 'वन-गमन' के लिए राम के शीघ्र तैयार हो जाने के कारणों में 'सत्यपालन' के साथ-साथ 'रावण-वध सम्बन्धी उनकी इच्छा का भी संकेत है।[11] वहीं एक 'पुरातन रामायण' में दशरथ के पूछने पर वसिष्ठ 'राम-वन गमन' का भविष्य भी उन्हें बतलाते हैं कि राक्षसवध शोकर-पूजन, सीता-वियोग कपि-सेना-संगठन और रावण-वध की घटनाओं के पश्चात् राम अयोध्या लौट कर राज्य यज्ञ और पुत्र आदि भी प्राप्त करेंगे।[12]

उर्मिला का उल्लेख इस अवसर पर न तो 'मानस' में मिलता है और न संस्कृत के किसी ग्रंथ में। केवल 'बाल-रामायण नाटक में यह संकेत है कि जब उर्मिला लक्ष्मण के साथ 'वन-गमन' की कुछ उत्सुकता प्रगट करती है, तब वे गुरुजनों की उपस्थिति के कारण उसे अपने 'अरविन्दमुख और वक्र-भृकुटि' से उसे शीघ्र ही रोक देते हैं।[13]

'मानस' के इस प्रसंग में तुलसी ने बड़े संयम और विवेक से काम लिया है जबकि संस्कृत साहित्य में पारिवारिक मर्यादा और भारतीय संस्कृति की सुरक्षा की ओर कवियों का विशेष ध्यान प्रतीत नहीं होता है। 'मानस में दशरथ और कैकयी की 'कहासुनी के समय कोई तीसरा व्यक्ति न तो वहाँ उपस्थित रहता है और न उन दोनों से एक प्रकार भाव में कहा जा सकता है। कैकयी की फटकारना तो दूर वहाँ सुमन्त्र उसके सामने सदा नतमस्तक रहते हैं। वहाँ राम के सामने दशरथ कोई विलाप या प्रलाप नहीं करते हैं। कौशल्या भी वहाँ कैकयी के प्रति कोई दुर्भाव व्यक्त नहीं करती हैं। वहाँ 'राम-सीता संवाद' में तो बहुत अधिक शालीनता है जहाँ वे दोनों कौशल्या के समक्ष परस्पर बात करने में भी लज्जा का अनुभव करते हैं। वहाँ लक्ष्मण के भाव का भी कोई संकेत नहीं है। इसके अतिरिक्त सुमित्रा की प्रतिक्रिया में वहाँ उसके सौहार्द का उल्लेख करके तुलसी ने एक बड़े अभाव की पूर्ति की है क्योंकि राम की दो विमाताओं में केवल कैकयी का

1 रा० मंजरी। अयोध्या। ८१२
2 राघवीय ५।८८
3 उदार राघव ५।९१
4 चम्पू रामायण २।४१ के बाद
5 महावीर चरित ४।२१ के बाद
6 हनुमन्नाटक ३।५
7 रा० मंजरी। अयोध्या। ८८०
8 राघवीय ५।८९
9 उदार राघव ५।८९-९०
10 चम्पू रामायण २।१६ के बाद
11 पद्म। उत्तर।२४२-१८७
12 पद्म। पाताल।११६-२०-२२
13 बाल रामायण ६।२५

ही चरित्र-चित्रण जहाँ सभी ग्रंथों में मिलता है वहाँ सुमित्रा के सम्बन्ध में वे सब मौन हैं। 'मानसकार' ने एक ओर अपने पुत्र के सुख के लिए राम को निर्वासित करने वाली और दूसरी ओर राम के साथ अपने पुत्र को भी वन में सहर्ष भेज देने वाली दोनों विमाताओं की परस्पर विरोधी भावनाओं का वर्णन करके जहाँ सुमित्रा के प्रति सम्मान भावना का विस्तार किया है, वहाँ अप्रत्यक्ष रूप से कैकयी के प्रति धिक्कार भावना संकेत भी किया है।

(२१) राम-निषाद-मिलन—अयोध्या-त्याग के पश्चात 'वन-यात्रा' के आरम्भ में ही गंगा-तट पर स्थित शृंगवेरपुर पहुँचने पर राम की सर्व प्रथम भेंट निषादराज गुह से होती है जो स्वागत के पश्चात् उन्हें अपने नगर में ले जाना चाहता है किन्तु अपने मुनिव्रत का संकेत करके राम उसे रोक देते हैं।[1] राम निर्वासन' की इस करुण स्थिति पर जब गुह अधिक क्षुब्ध होता है तब लक्ष्मण राम के ईश्वरत्व का उल्लेख करते हुये उसको आध्यात्मिक ज्ञान देकर आश्वस्त करते हैं।[2] सुमन्त्र को वहीं विदा करके जब राम 'गंगा-पार-गमन' के लिये गुह से नाव मँगवाते हैं तब वह भक्ति-वश उनके चरणों को धोने की कामना से उनमें 'मानुष कारिणि-मूरि' होने का बहाना करता है और अहल्या के समान ही अपनी नाव के भी स्त्री बन जाने की आशंका व्यक्त करता है।[3] उसका आशय समझ कर राम उससे चरण धुलवा कर ही नाव द्वारा गंगा पार करते हैं। सीता गुह को पारिश्रमिक के रूप में अपनी 'मणिमुद्रिका' देना चाहती हैं किन्तु वह उसको ग्रहण नहीं करता है।[4] फिर राम जब उसे विदा करना चाहते हैं तब वह 'मार्ग प्रदर्शन' का आग्रह करके साथी के साथ लग जाता है और उनके चित्रकूट में निश्चित बस जाने के बाद ही वापस लौटता है।[5] इस वर्णन में तुलसी ने गुह की आत्मीयता, लक्ष्मणोपदेश, नामुपीकरण मूल, गुह पारिश्रमिक आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया है जिसकी तुलना में संस्कृत साहित्य में अनेक नई बातें मिलती हैं।

(२२) गुह आत्मीयता—अध्यात्म महाभारत, रघुवंश, जानकी-हरण, और प्रसन्न राघव आदि में गुह का कोई नामोल्लेख नहीं है जबकि राघवीय[6] रामायण मञ्जरी[7] में गुह की ऐसी ही आत्मीयता का संक्षिप्त संकेत है। 'उदार-राघव' में गुह राम को अयोध्या का निष्कण्टक राज्य दिलाने के लिए अपनी ओर से उन्हें सैनिक सहायता भी देना चाहता है। उनके विश्वास के लिए वह अपनी सेना का विवरण भी उन्हें देता है।[8] चम्पू रामायण में वह उन्हें अपना समृद्ध राज्य देकर १४ वर्षों तक उनको वहीं रोक रखना चाहता है।[9]

---

१ मानस २।८८   २ मानस २।९०–९१
३ " २।९९–१०१   ४ " २।१०२
५ " २।१४२   ६ राघवीय २।८१–८४
७ रा० मञ्जरी। अयोध्या। ६०१–६०३   ८ उदार राघव ५।२४–३२
९ चंपू रामायण २।४८ के बाद

(23) अश्मगोपदेश—यह वर्णन संस्कृत के किसी भी आलोच्य ग्रंथ में प्राप्त नहीं होता है। हम इसे बड़ी सरलता से तुलसी की मौलिक योजना कह सकते थे यदि यह 'अध्यात्म-रामायण' में भी नहीं होता।[1]

(24) मानुपीकरण सूत्र—इस प्रसंग पर 'महानाटक' का बहुत आभार है। वहाँ भी गुह शिला और काष्ठ में विशेष अंतर न होने का उल्लेख करके राम के चरण धोने का आग्रह करता है।[2] तुलसी ने उसके इस आग्रह में भक्ति का समन्वय कर दिया है।[3]

(25) गुह पारिश्रमिक—'अनर्घ राघव' में राम के द्वारा गुह को पारितोषिक के रूप में 'सख्यम-मित्रता' के देने का उल्लेख किया गया है।[4] इसके अतिरिक्त संस्कृत-साहित्य में कहीं भी इसका संकेत नहीं है। इस दृष्टिकोण से तुलसी की यह योजना नितान्त मौलिक है। इसमें सीता की 'मणि-मुद्रिका' का उल्लेख करके तुलसी ने अधिक आत्मीयता की आयोजना की है।

(26) अन्य विशेषतायें—संस्कृत के नाटकों में इस प्रसंग की कुछ अन्य विशेषतायें भी मिलती हैं। 'बाल-रामायण' का गुह लक्ष्मण का मित्र और पूर्व परिचित है।[5] 'महावीर चरित' में वह लक्ष्मण को विराध के अत्याचारों की विस्तृत सूचना देता है।[6] 'अनर्घ राघव' का गुह शबरी की सहायता से राम के निर्वासन का सारा समाचार उनके आगमन के पूर्व ही जान लेता है। वहाँ कबन्ध के द्वारा उसके आक्रान्त होने पर जब लक्ष्मण उसकी रक्षा करते हैं तब वह उनको हनुमान् द्वारा प्राप्त और सुग्रीव द्वारा प्रेषित सीता का उत्तरीय देता है[7] और सुग्रीव का मैत्री-सन्देश देकर[8] वह उनसे सुग्रीव और हनुमान् का परिचय भी बाद में करवाता है।[9]

इस छोटे से प्रसंग में भी तुलसीदास ने गुह सख्य को अनुभूति के निमित्त भक्ति विवरण को सम्मिलित कर दिया है। इस अवसर पर गुह को गुसाईं द्वारा 'लक्ष्मण गीता'[10] का अपना महत्व है। साथ ही 'मानुषीकरण सूत्र' की चर्चा से वहाँ गुह की सरल-विरल भक्ति का भी बड़ा सरस चित्रण किया गया है। संस्कृत-साहित्य में इस प्रसंग को कोई महत्व नहीं प्राप्त हुआ है, जबकि तुलसी ने अपनी विशेष प्रतिभा के बल से इसमें भी अतिशय चमत्कार का समावेश कर दिया है।

---

1 अध्यात्म रामायण अयोध्या 1।1-15
2 महानाटक 3।85
3 मानस 2।100
4 अनर्घ राघव 3।2
5 बाल रामायण 6।17 के बाद
6 महावीर चरित 5।25 के बाद
7 अनर्घ रायव 5।25 के बाद
8 अनर्घ राघव 5।11 के बाद
9 अनर्घ राघव 5।50 के बाद
10 मानस 2।92-93

(२७) राम-मुनि-मिलन—गुह के साथ गंगा पार करते ही प्रयाग में राम की सर्वप्रथम भेंट भरद्वाज मुनि से होती है जो उनका विधिवत् स्वागत करते हैं और उनसे भक्ति का वरदान भी माँग लेते हैं।[1] आगे चलकर राम की दूसरी भेंट एक लघुवयस और तेजपुञ्ज तापस से होती है, जिसके दण्डवत् करने पर राम उसे हृदय से लगा लेते हैं। फिर वह तापस लक्ष्मण और सीता के भी चरणस्पर्श करता है।[2] इस 'तापस' की विदा का यहाँ आगे कोई उल्लेख नहीं मिलता है। राम की तीसरी भेंट वाल्मीकि मुनि से होती है। जब राम उनसे अपने निवास-योग्य स्थल पूछते हैं तब वे उनके ईश्वरत्व का उल्लेख करके उनसे १४ प्रकार के भक्तों के हृदयों में निवास करने की प्रार्थना करते हैं और अन्त में उनको 'चित्रकूट प्रवास' का सुझाव देते हैं।[3] इस प्रकार 'मानस' के इस प्रसंग में भरद्वाज आदि केवल तीन मुनियों का ही वर्णन है जबकि संस्कृत साहित्य में इस प्रकार का वर्णन नहीं मिलता है। वहाँ 'रघुवंश' 'महाभारत' 'बाल-रामायण' 'अनर्घ राघव' 'प्रसन्न-राघव' 'महावीर चरित', आदि अनेक ग्रंथों में तो यह प्रसंग बिल्कुल नहीं है।

(२८) भरद्वाज-मिलन—रामायण-मंजरी,[4] राघवीय,[5] जानकी-हरण[6] चम्पू रामायण[7] आदि में केवल भरद्वाज मुनि का ही उल्लेख है और उन्हीं के परामर्श से राम चित्रकूट पर प्रवास करते हैं।

(२९) लघुवयस-तापस-मिलन—यह प्रसंग संस्कृत के किसी भी ग्रंथ में नहीं मिलता है। अतः यह तुलसी की अपनी विशिष्ट योजना है किन्तु इसमें अपूर्णता के साथ-साथ एक अस्पष्टता भी है और यह अयोध्याकाण्ड की 'कथा-योजना' में एक भ्रम अंश[8] भी उपस्थित करता है।

(३०) वाल्मीकि-मिलन—केवल 'उदार राघव' में वाल्मीकि मुनि का उल्लेख है। वहाँ उनके संकेत से राम चित्रकूट भी जाते हैं किन्तु भक्ति-वर्णन का वहाँ सर्वथा अभाव है।[9] अध्यात्म रामायण में वाल्मीकि-मिलन और नवधा-भक्ति का वर्णन इस प्रसंग में अवश्य है[10] किन्तु यह अपना आलोच्य ग्रंथ नहीं है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के किसी भी ग्रंथ में यह प्रसंग नहीं है।

'मानस' में इन मुनियों के अतिरिक्त मार्ग के अनेक आश्रमों में राम के द्वारा अन्य मुनियों से मिलने का भी उल्लेख किया गया है। इस वर्णन में तुलसी

---

१ मानस २।१०६–१०७ २ मानस २।११०–१११
३ ,, २।१२४–१३२ ४ रा० मंजरी। अयोध्या। १०६
५ राघवीय ३।६२ ६ जानकी हरण १०।२१
७ चम्पू रामायण। अयोध्या। ५१ के बाद
८ प्रस्तुत ग्रंथ पृष्ठ ४३४ ९ उदार राघव ९।७४–७६
१० अध्यात्म रामायण। अयोध्या। ६।५४–६३

राम की मुनिभक्ति के निरूपण के साथ-साथ एक पवित्र वातावरण की सृष्टि भी करना चाहते हैं।

(११) सुमन्त्र प्रत्यावर्तन—'भरद्वाज मिलन' से पूर्व गंगा-तट पर ही जब राम सुमन्त्र को विदा करने लगते हैं तब वह उन्हें दशरथ के सन्देश का 'पूर्वार्ध' सुनाकर उन सबसे अयोध्या लौट चलने का आग्रह करता है।[1] उस समय राम शिव दधीच, हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव और बलि आदि का उदाहरण देकर उसके समक्ष अपने 'सत्य पालन' पर बल देते हैं और उसके प्रस्ताव को अस्वीकार करके अपने पिता के लिए प्रतिसंदेश भी देते हैं।[2] लक्ष्मण इस अवसर पर जब कुछ कटु वचन भी कहते हैं तब राम उन्हें रोकते हैं और सुमन्त्र से शपथपूर्वक आग्रह करते हैं कि वे दशरथ से उसका उल्लेख कदापि न करें।[3] इसके पश्चात् सुमन्त्र उस सन्देश का 'उत्तरार्ध' सुनाकर सीता से लौट चलने की प्रार्थना करता है किन्तु वे पति-संयोग के सुखों का वर्णन करती हुई उनकी तुलना में वनवास के कष्टों को नगण्य बतला कर अयोध्या लौटने से स्पष्ट मना कर देती हैं।[4] फिर राम सुमन्त्र को 'बरबस' विदा करके गंगा पार चले जाते हैं।[5] इसके पश्चात् सुमन्त्र निराश होकर वहीं पर तब तक पड़ा रहता है जब तक गुह राम को चित्रकूट पहुँचा कर वापस नहीं आ जाता है। अन्त में गुह सुमन्त्र को समझा बुझा कर अपने चार सेवकों के साथ अयोध्या भेज देता है।[6] वहाँ वह बड़ी व्यथा और आत्मग्लानि के साथ रात्रि के सघन अंधकार में अयोध्या में प्रवेश करके सीधे दशरथ के प्रासाद में पहुँचता है और उनके पूछने पर वह अपनी 'वनयात्रा' का सविस्तार वर्णन करता है।[7]

मानस' के इस प्रसंग दशरथ-सन्देश राम-सन्देश तथा लक्ष्मण-कटु-वचन का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है, किन्तु संस्कृत के रघुवंश, महाभारत जानकी हरण महावीर-चरित प्रसन्न-राघव अनर्घ-राघव आदि अनेक ग्रंथों में इस अवसर पर सुमन्त्र का नामोल्लेख तक नहीं है जबकि अन्य ग्रंथों में उसके विस्तार में बड़ी विभिन्नतायें हैं।

(१२) दशरथ-सन्देश—यह तुलसी की मौलिक योजना है। संस्कृत के किसी भी ग्रन्थ में इसका उल्लेख नहीं मिलता है। वस्तुतः दशरथ के चरित्र को पूर्ण उदात्त एवं राम-मय चित्रित करने के लिए ही मानसकार' का यह विशेष प्रयास है।

(१३) राम-सन्देश—'मानस' में 'राम-सन्देश' के दो उदाहरण हैं। पहला

१ मानस २।८१-८२,९४-९९
२ मानस २।९९-९६
३ मानस २।९६
४ मानस २।९६-९९
५ " २।१००
६ " २।१४२-१४३
७ " २।१४४-१५३

'राम-सुमन्त्र-संवाद'[१] में है और दूसरा सुमन्त्र-दशरथ-संवाद[२] में। पहले से दूसरा अधिक विस्तृत है। उसमें भरत के लिए भी एक सन्देश है। संस्कृत में 'उदार-राघव' का वर्णन इस दिशा में 'मानस' के वर्णन से बहुत साम्य रखता है, किन्तु यह राम के द्वारा माता-पिता के प्राण-त्याग की कल्पना के कारण मर्मस्पर्शजनक भी हो गया है।[३] 'रामायण-मंजरी' के संक्षिप्त संदेश में राम दशरथ से यह प्रार्थना करते हैं कि वे भरत के प्रति अपने वात्सल्य को कभी कम नहीं करें।[४] 'मानस' में राम या दशरथ की ऐसी संकुचित मनोवृत्ति का संकेत भी नहीं है। 'चम्पू-रामायण' के सुमन्त्र राम की केवल दिनचर्या का ही वर्णन करते हैं वहाँ कोई सन्देश नहीं है।[५] राघवीय[६] और 'भट्टिकाव्य'[७] में राम-सुमन्त्र संवाद होने पर भी किसी 'सन्देश' का संकेत नहीं है, जबकि 'प्रतिमा' के राम शोक से व्यथा रुद्ध जाने के कारण सुमन्त्र को कुछ भी संदेश नहीं दे पाते हैं।[८]

(१४) दशरथ-कटु वचन—इस प्रसंग का उल्लेख केवल 'रामायण-मंजरी' में है। वहाँ लक्ष्मण सुमन्त्र से कहते हैं कि चिन्तामणि के समान गुण वाले पुत्र (राम) का त्याग करके राजा (दशरथ) ने अपने व्यसन का परिचय दिया है और अपने परिवार के सुयश को समाप्त कर दिया है।[९] तुलसी ने इस प्रकार के विवरण को अरुचिकर एवं अस्वाभाविक समझ कर 'मानस' में कोई स्थान नहीं दिया है।

(१५) अन्य विशेषतायें—'मानस' के समान ही संस्कृत के लगभग सभी ग्रंथों में सुमन्त्र के गंगा-तट से ही विदा हो जाने का वर्णन मिलता है। केवल 'बाल रामायण' में वह राम के साथ 'नर्मदा के तट' तक जाता है अतः वहीं वह अपने विवरण में 'जनस्थान-शासन' तक की घटनाओं का उल्लेख करता है।[१०] 'चम्पू-रामायण' का सुमन्त्र गंगा-तट पर कई दिन तक इसी आशा में पड़ा रहता है कि संभवतः राम वन के कष्टों से घबड़ा कर शीघ्र ही लौट आवें और उनसे अयोध्या वापस ले चलने का आग्रह करें किन्तु अन्त में उसे निराश होना पड़ता है।[११]

तुलसी ने इस प्रसंग के वर्णन में बड़े संतुलन और सुव्यवस्था से काम लिया है। राम-सन्देश' के पूर्व पक्ष में 'दशरथ-सन्देश' को रखकर उन्होंने उसे एक पुष्ट आधार दिया है अन्यथा वह राम की अहंमन्यता का प्रतीक हो जाता। इसी तरह

---

१ मानस २।९५-९६
२ मानस २।१५१-१५२
३ उदार राघव ६।५५ ५६ ७।३७-४०
४ रा० मञ्जरी। अयोध्या। ९२१
५ चम्पू रामायण २।५२ के बाद-५६
६ राघवीय ५।६४
७ भट्टिकाव्य ३।१५-२०
८ प्रतिमा २।१७
९ चिन्तामणिगुणं पुत्रं त्यजता बत भूभुजा।
कुलं स्वव्यसनेनैव यशो नीतं परिक्षयम् ॥ रा० मञ्जरी। अयोध्या। ९२५
१० बाल रामायण ६।१८ ५५
११ चम्पू रामायण २।५२ के बाद

लक्ष्मण के 'कटु वचनों' का विवरण न देकर उन्होंने इस प्रसंग की मधुरता को अक्षुण्ण रहने दिया है।

(१६) दशरथ-मरण—सुमन्त्र से 'राम-वन-गमन' का समस्त विवरण सुन कर दुःखी और निराश दशरथ अत्यन्त विलाप करते हैं। वे कौशल्या को 'अन्ध-तापस शाप' की वह कथा सुनाते हैं, जिसका परिणाम, उनके विचार से, यही 'पुत्र वियोग' हो सकता है। फिर वे राम राम रटते हुये मर जाते हैं।[1] इसके पश्चात् वशिष्ठ विकल और सम्पूर्ण परिवार को किसी तरह शान्त करते हुये दशरथ के शव को भरत के आगमन तक एक 'तैल-नाव' में सुरक्षित रखवा देते हैं।[2] इस प्रसंग में 'अन्ध-तापस-शाप' 'राम-नाम-स्मरण' और 'तैल-नाव' आदि का विशेष वर्णन है। संस्कृत के ग्रंथों से इस वर्णन में अधिक समानता है।

(१७) अन्ध-तापस-शाप—रघुवंश[3], रामचरित[4], चम्पू-रामायण[5], रामायण-मञ्जरी[6] आदि अनेक ग्रन्थों में इस प्रसंग का विस्तृत उल्लेख है। 'उदार राघव' में 'दशरथ-मृगया-वर्णन' के अन्तर्गत यद्यपि इस शाप का भी विवरण दे दिया गया है[7], तो भी दशरथ के द्वारा मरते समय उसके स्मरण का वहाँ कोई संकेत नहीं है।[8]

(१८) राम-नाम-स्मरण—यह तुलसी की मौलिक सूझ है संस्कृत के किसी भी ग्रन्थ में ऐसी योजना नहीं है। राम-राम रट कर मर जाने में एक तो दशरथ के वात्सल्य की पराकाष्ठा है, जिससे प्रभावित होकर तुलसी ने 'ग्रंथारम्भ' में ही उनकी वन्दना की है।[9] दूसरे ऐसी मृत्यु में परिवार के सभी लोग अन्तिम क्षण तक पूर्ण सतर्क रहते हैं। रामायण-मञ्जरी[10] 'उदार-राघव'[11] और अग्नि-पुराण[12] के अनुसार दशरथ की मृत्यु उनकी अचेतना के अवसादन में ही हो जाती है और सब लोग बड़ी देर तक भ्रम में ही पड़े रहते हैं। 'महाभारत'[13], पद्म-पुराण'[14], 'महावीर चरित'[15] आदि में 'राम-वन-गमन' के समय ही 'दशरथ-मरण' का वर्णन किया गया है। इससे दशरथ के वात्सल्य का परिचय तो मिलता है, किन्तु उनकी उस उत्कट

---

१ मानस २।१५३-१५५ २ मानस २।१५५-१५७

३ रघुवंश १२।१० ४ रामचरित ९।३०

५ चंपू रामायण २।२७

६ रामायण मञ्जरी। अयोध्या।१६६-१७५

७ उदार राघव ११।१०० ८ उदार राघव ७।४४

९ मानस १।१६

१० रा० मञ्जरी। अयोध्या। १८०-१८३

११ उदार राघव ७।४८-५० १२ अग्निपुराण ६।३७-४४

१३ महाभारत। वन।२७७।३० १४ पद्म। उत्तर। २४२।१८८

१५ महावीर चरित ४।२२ के बाद

माया के दर्शन नहीं होते हैं जिसके आधार पर वे सुमन्त्र के प्रत्यागमन तक जीते रहें। वाल्मीकि-रामायण, अनर्घ-राघव प्रसन्न राघव आदि में दशरथ की मृत्यु का संकेत तो है, किन्तु उसका कोई विवरण नहीं है। 'भट्टिकाव्य' में मृत्यु के पूर्व दशरथ की विरक्ति और उपचार आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है किन्तु राम-नाम के स्मरण का वहाँ संकेत नहीं है।[1] 'प्रतिमा' के अनुसार दशरथ को मरते समय दिलीप रघु और अज आदि पूर्वजों के दर्शन होते हैं और वे उनके समीप जाने का संकेत करते हुए मर जाते हैं।[2]

(३९) शेष-भाग—इसका वर्णन रामायण-मञ्जरी[3] उदार-राघव[4] भट्टिकाव्य[5] अग्नि-पुराण[6] आदि संस्कृत के ग्रन्थों में 'मानस' के वर्णन के समान ही प्राप्त होता है। वहाँ कोई विशेषता नहीं है।

इस करुण प्रसंग में तुलसी ने राम भक्ति का समावेश बड़ी सतर्कता के साथ कर दिया है। प्रसंग के अन्य विस्तार मूल कथा के प्रमुख अंग हैं इसलिए वे सर्वत्र समान रूप में प्राप्त होते हैं। तुलसी ने उसमें भी नवीनता और मौलिकता लाने के लिये ही दशरथ के वात्सल्य का अत्यन्त मर्मस्पर्शी निरूपण किया है।

(४०) भरत का अयोध्या-आगमन—'दशरथ-मरण' के पश्चात् भरत को उनके मातुलगृह से बुलाने के लिये इधर गुरु वशिष्ठ दूतों को भेजते हैं उधर भरत को भी रात में अनेक दुःस्वप्न दिखलाई देते हैं। प्रातःकाल होते ही वे दूत वहाँ पहुँच जाते हैं और भरत उनके साथ तुरन्त अयोध्या के लिए चल देते हैं।[7] उनको आते देख कर कैकयी उनके स्वागतार्थ आरती सजा कर दौड़ती है किन्तु उन्हें उदास देख कर वह कृत्रिम दुःख के साथ उन्हें दशरथ-मरण और राम-वन-गमन का समाचार देती है।[8] उस समय भरत स्वयं को सब अनर्थों का मूल समझकर बड़ी आत्मग्लानि व्यक्त करते हैं और वे कैकयी को 'पापिनी', कुलनाशिनी' और 'कुमति' आदि कहते हुये बड़ी घृणा के साथ उसे फटकारते भी हैं।[9] इसके बाद राम-निर्वासन में अपनी अलिप्तता और निर्दोषता सिद्ध करने के लिए जब वे कौशल्या के पास जाकर अपनी स्थिति स्पष्ट व्यक्त करते हैं तब वे उन्हें सान्त्वना देती हैं और विधाता को ही इस अनर्थ के लिए दोषी ठहराती हैं।[10] फिर भी भरत अनेक पातकों और उपपातकों का सविस्तार वर्णन करके, उन्हें भोगने में अपनी तत्परता दिखलाते हैं यदि राम के निर्वासन में उनकी थोड़ी सी भी सहमति रही हो।[11] इस प्रकार इस प्रसंग में

---

१ भट्टिकाव्य ३।२०–२२
२ प्रतिमा ३।२१
३ रा० मञ्जरी। अयोध्या।६८७
४ उदार राघव ७।४८
५ भट्टिकाव्य ३।२३
६ अग्नि पुराण ६।४५
७ मानस २।१५७
८ मानस २।१५९–१६०
९ ,, २।१६१–१६२
१० ,, २।१६४–६५
११ ,, २।१६७–१६८

'भरत के दुःस्वप्न', 'भरत के क्षोभ' और 'कौसल्या के वात्सल्य' आदि का सुन्दर चित्रण किया गया है। संस्कृत के ग्रन्थों में इसमें बड़ा अन्तर मिलता है।

(४१) भरत के दुःस्वप्न—'मानस' में भरत के दुःस्वप्नों का विवरण नहीं दिया गया है, जबकि 'रामायण-मञ्जरी' के भरत समुद्र को निर्जल, चन्द्रमा को आकाश से पतित और अयोध्या नगर को अन्धकार से व्याप्त देखते हैं। वे दशरथ को पर्वत-शिखर से गिरते हुये, अंजलि से तेल पीते हुये, श्वेत वस्त्र पहने हुये, काली पीली स्त्रियों से घिरे हुये खर रथ पर बैठे हुए लाल माला और लेप धारण किए हुए तथा दक्षिण दिशा की ओर जाते हुये भी देखते हैं।[1] 'भट्टिकाव्य' के भरत-स्वप्न में तो सूर्य के आकाश से गिर कर पृथ्वी पर बसने का उल्लेख किया गया है।[2]

(४२) भरत का क्षोभ—संस्कृत के सभी ग्रन्थों में इसका वर्णन बड़े विस्तार साथ किया गया है। 'रामायण-मञ्जरी' के भरत कैकयी से सारा वृत्तांत सुन कर अपने को 'चाण्डाली-पुत्र' सा मानते हैं और उसे बहुत धिक्कारते हुये कहते हैं कि उसने अपने स्वेच्छाचार से उनके वंश और यश को कलंकित करके उन्हें महा-गर्त में डाल दिया है। वे उसे 'माताओं में अपवाद' और 'निर्लज्जा' तक कहते हुए फूट फूट कर रोने लगते हैं।[3] 'चम्पू-रामायण' में वे उसे 'कुमाता और अकीर्तिकारिणी' कह कर उससे मुँह फेर लेते हैं और शत्रुघ्न से बात करते हुये कैकयी के लिए बाधव को खा जाने वाली नाग पिता की प्राणवायु पी जाने वाली नागिन, और नीच बुद्धि वाली राक्षसी आदि विशेषणों का प्रयोग करते हैं।[4] 'भट्टिकाव्य' में भरत द्वारा कैकयी को वक्रभृकुटि और रौद्रदृष्टि से देखने तथा कोसने का उल्लेख मिलता है। वहाँ वे दुःख से पृथ्वी पर लोट-पोट कर वहीं सैकड़ों शपथें भी खाते हैं कि राम निर्वासन के उस कुकृत्य में उनकी कोई सहमति नहीं है।[5] 'राघवीय[6] और 'उदार राघव'[7] के भरत अपने 'अपुण्य' और अभाग्य को सोच कर रोने लगते हैं। 'प्रतिमा' नाटक में वे कैकयी को पापिनी और वज्रहृदया आदि कह कर बहुत धिक्कारते हैं। तथा पिता से द्रोह करने के कारण उसे वे माता भी नहीं मानते हैं।[8] 'महाभारत में भी भरत के द्वारा कैकयी को नृशंसा, पतिघातिनी, कुलोत्सादिनी अनार्या अपकारकारी और कुलपांसना' आदि कहे जाने का वर्णन मिलता है।[9] हनुमन्नाटक' में एक ही श्लोक में प्रश्नोत्तर के रूप में 'भरत-कैकयी संवाद' है जिसमें अन्त में भरत अपने

---

१ रा० मञ्जरी । अयोध्या । ३-६ २ भट्टिकाव्य ३।२४
३ रा० मञ्जरी । अयोध्या । १२-१३
४ चम्पू रामायण २।६९-७० ५ भट्टिकाव्य ३।३०-३२
६ राघवी ६।१७ ७ उदार राघव ७।२३
८ प्रतिमा ३।१६-२२
९ महाभारत । वन । २७७।११-१४

सामान्य को छोड़ कर रह जाते हैं।[1] 'प्रसन्नराघव' में वही श्लोक 'सरयू-गंगा-संवाद' में प्रयुक्त हुआ है।[2] महावीर चरित' में वहाँ भरत के सामने ही केकयी के द्वारा 'वरयाचना' का वर्णन किया गया है, वहाँ वे क्षुब्ध होकर अपने मामा युधाजित् को (जो वहीं उपस्थित हैं) उनके खल-व्यवहार के लिये फटकारने लगते हैं। वहाँ वे राम के साथ वन-गमन के लिए तत्पर भी हो जाते हैं, किन्तु राम उन्हें दूसरे वरदान की पूर्ति के लिये वहीं छोड़ जाते हैं।[3]

(४३) कौसल्या का वात्सल्य—संस्कृत के अनेक ग्रंथों में इस अवसर पर भरत और कौसल्या के संवाद का संक्षिप्त वर्णन तो मिलता है, किन्तु वह 'मानस' के समान वात्सल्य से ओत प्रोत नहीं है। 'रामायण-मञ्जरी' की कौसल्या भरत से कहती है कि केकयी धन्य है क्योंकि उसकी इच्छा पूरी हो गई है। वहाँ वे भरत को राज्य भोगने की आज्ञा देकर स्वयं सुमित्रा सहित वन जाने की इच्छा व्यक्त करती हैं। वहाँ जब भरत उनके समक्ष अनेक 'पापों' की शपथ खाकर राम-निर्वासन में अपनी अलिप्तता बतलाते हैं तब वे कुछ लज्जित होकर उन्हें साधु एवं निर्दोष कहती हैं।[4] प्रतिमा' नाटक की कौसल्या अभिवादन के समय भरत को 'निस्संताप' होने का आशीर्वाद देती हैं जिसमें छिपे हुये व्यंग्य का भरत अनुभव भी करते हैं।[5] 'चम्पू रामायण' में कौसल्या का वात्सल्य तो दूर, उलटे भरत ही उनको सैकड़ों शपथें खिला कर सती होने से रोकते हैं।[6]

इस प्रसंग में तुलसी ने भरत के उदात्त क्रोध क्षोभ और आत्मग्लानि का बड़ मनोयोग से वर्णन किया है। इसके फलस्वरूप भरत के गौरव की प्रतिष्ठा के साथ-साथ उन्होंने उनके परिवार में सभी प्रकार की शंकाओं और आशंकाओं को निर्मूल करके एक पवित्र सद्भावना-शील वातावरण के निर्माण का भी सफल प्रयत्न किया है जो संस्कृत साहित्य में प्राप्त नहीं होता है।

(४४) चित्रकूट में राम भरत मिलन—दशरथ की अन्त्येष्टि के पश्चात् जब गुरु वशिष्ठ भरत से 'राज्य-ग्रहण' का अनुरोध करते हैं और कौसल्या भी उसका समर्थन करती हैं तब भरत उसका विरोध करते हुए अपने अपराध-क्षालन के लिए राम के समीप शीघ्र जाने का निश्चय व्यक्त करते हैं।[7] दूसरे दिन अपने विश्वस्त सेवकों को अयोध्या की रक्षा का भार सौंप कर वे वहाँ से प्रस्थान करते हैं उनके साथ तिलक सामग्री लिए हुए ऋषिवयर वशिष्ठ अरुन्धती विप्रगण नागरिक-वृन्द और कौसल्या आदि मातायें भी चलती हैं।[8] शृङ्गवेरपुर पहुँचने पर

---

१ हनुमन्नाटक ३।८
२ प्रसन्न राघव ३।१८
३ महावीर चरित ४।२१ के बाद
४ रा० मञ्जरी। भरत्य १२-१४
५ प्रतिमा ३।१२ के बाद-१८
६ चम्पू रामायण २।७१ के बाद
७ मानस २।१७०-१८३
८ मानस २।१८६-१८७

भरत के स्वभाव पर सन्देह करके गुह उनका विरोध करने के लिए छिपे छिपे बड़ी रणसज्जा करता है, किन्तु सहसा बाईं ओर 'छींक' हो जाने से वह रुक जाता है और भरत के शील को जानने के लिए अनेक उपहार लेकर उनसे मिलता है।[1] जब भरत उसे 'राम-सखा' जान कर हृदय से लगा लेते हैं तब वह बड़ी प्रसन्नता से उन्हें समस्त 'राम-वृत्तान्त' बतला देता है। इसके पश्चात् गंगा पार करके जब भरत भरद्वाज मुनि से मिलते हैं, तब वे 'देव-परपंच' का संकेत करके, कैकयी को निर्दोष बतलाते हुए भरत को आत्मग्लानि से रोकते हैं।[2] फिर वे भरत का विधिवत् सत्कार करने के लिये 'ऋद्धि-सिद्धियों' की सहायता से अनेक दिव्य भोगों को जुटा देते हैं किन्तु भरत उनका स्पर्श तक नहीं करते हैं।[3] भरत के वहाँ से आगे प्रस्थान करने पर सुरकार्य में बाधा की आशंका से इन्द्र उन्हें रोकने के लिए जब बृहस्पति से प्रार्थना करते हैं तब वे उन्हें राम और भरत का शील समझा कर आश्वस्त करते हैं।[4]

कोल किरातों से भरत के ससैन्य चित्रकूट-आगमन का समाचार पाकर राम तो बड़े संकोच का अनुभव करते हैं[5] किन्तु लक्ष्मण क्रुद्ध हो जाते हैं और वे राम से भरत के कुटिलत्व तथा राजमद का विस्तृत उल्लेख करके उनको युद्ध में समाप्त कर देने के लिए उनसे (राम से) आज्ञा माँगते हैं।[6] उसी समय एक आकाशवाणी होती है जिसमें लक्ष्मण की शक्ति का विशद वर्णन करते हुए उनसे विवेक-पूर्वक कार्य करने की प्रार्थना की जाती है। फिर राम भी लक्ष्मण से भरत के गुणशील का विस्तृत निरूपण करते हुए उनको (भरत को) राजपद से सर्वथा असंपृक्त बतलाते हैं।[7] उसी समय केवल शत्रुघ्न तथा गुह को साथ लेकर भरत राम के आश्रम में पहुँच जाते हैं और उनके सामने 'त्राहि त्राहि' कहते हुए जब वे पृथ्वी पर 'लकुटवत्' गिर पड़ते हैं, तब राम बड़ी अधीरता से दौड़कर उन्हें उठा लेते हैं और अपने हृदय से लगा लेते हैं।[8] भरत से मिलने के बाद गुह के कथन से सारे परिवार को आया हुआ जानकर राम और लक्ष्मण वहाँ आकर सबसे पहले गुरु वशिष्ठ से मिलते हैं, फिर राम सभी पुरजनों से एक पल में ही मिलकर के माताओं में सर्वप्रथम कैकयी को आश्वस्त करते हैं।[9] इसके पश्चात् वशिष्ठ से दशरथ के मरण का समाचार सुनकर राम निर्जल व्रत धारण करके उनकी वैदिक क्रिया करते हैं।[10] वहाँ सीता अपनी माया से अनेक वेष बना कर प्रत्येक सास की अलग-अलग सेवा करती है।

---

१ " २।१८६-१९३
२ " २।२०६
३ मानस २।२१३-२१५
४ मानस २।२१७-२२०
५ " २।२२७
६ मानस २।२२८-२३०
७ " २।२३३-२३५
८ " २।२४०
९ " २।२४३-२४४
१० " २।२४७-२४८

केवल राम ही उनकी इस माया को समझ पाते हैं ।[1] इधर कैकयी, राम आदि की सरलता देखकर आत्मग्लानि से पश्चात्ताप करती हुई अपनी मृत्यु तक की कामना करने लगती है और उधर राम को अयोध्या लौटाने ले चलने की चिन्ता में भरत की भूख, प्यास और नींद भी समाप्त हो जाती है ।[2] इस अवसर पर वशिष्ठ भरत को परामर्श देते हैं कि वे और शत्रुघ्न दोनों ही राम आदि के स्थान पर वन चले जावें जिसे वे सहर्ष मान लेते हैं ।[3] फिर राम के पास जाकर बहुत बड़ी भूमिका के पश्चात भरत उनसे अयोध्या लौटने की प्रार्थना करते हुए उनके सामने तीन विकल्प[4] रखते हैं कि या तो वे (भरत) और शत्रुघ्न दोनों वन चले जाँय और वे तीनों (राम आदि) अयोध्या लौट जावें, या उनके (भरत के) साथ शत्रुघ्न और लक्ष्मण भी वन चले जावें तथा वे (राम) और सीता लौट जावें या लक्ष्मण के स्थान पर अब जाने से वे (भरत) उनके सहयात्री हो जावें । इन विकल्पों से राम को बड़ा संकोच होता है । उसी समय जनक के आगमन की सूचना से यह प्रथम सभा स्थगित हो जाती है ।[5]

जनक के आ जाने पर उनकी रानी कौसल्या के समक्ष याज्ञवल्क्य की भविष्यवाणी का उल्लेख करके राम के वन-गमन सुरकार्य-साधन और अयोध्या शासन आदि की अनिवार्यता बतलाती है ।[6] इसके पश्चात् जनक, वशिष्ठ और भरत के प्रयत्न से फिर सभा जुड़ती है जिसमें वशिष्ठ भरत की प्रार्थना मान लेने के लिए जब राम से अनुरोध करते हैं तब वे शपथपूर्वक बल देते हुए उन्हीं पर और जनक पर अन्तिम निर्णय छोड़ देते हैं, जिसके फलस्वरूप वे दोनों सकुचाकर एकदम मौन हो जाते हैं ।[7] उस समय भरत अपने मोह और अज्ञान का विस्तृत उल्लेख करके इधर राम से क्षमायाचना करते हैं [8] और उधर इन्द्र अपनी देवमाया से भरत, जनक वसिष्ठ और सुमन्त्र आदि बड़े लोगों को छोड़कर शेष व्यक्तियों के मन का उच्चाटन कर देते हैं । फिर राम भरत को धर्म और राजनीति का उपदेश देकर 'रघुकुल' के मूल धर्म सत्यपालन पर बल देते हैं और उन्हें अयोध्या जाकर राज्य करने का परामर्श देते हैं ।[9] राम की प्रार्थना पर अत्रि के संकेत से यह 'अभिषेक-जल' एक कूप में डाल दिया जाता है जिसका नाम बाद में 'भरत-कूप' ही पड़ जाता है ।[10] इसके बाद भरत वहाँ ५ दिन और रह कर जब अयोध्या लौटने के लिए राम से आज्ञा माँगते हैं तब उन्हें अपनी पादुकायें दे देते हैं जिन्हें लेकर वे सब (भरतादि) अयोध्या लौट आते हैं ।[11]

---

१ मानस २।२४२
२ मानस २।२५२
३ " २।२५५
४ " २।२५८
५ मानस २।२७०–२७२
६ मानस २।२८५
७ " २।२९६
८ " २।२९७–३०१
९ " २।३०२–३०६
१० " २।३०७–३१०
११ " २।३१२–३१६

'मानस' के इस प्रसंग में गुह की रणसज्जा, भरत-भरद्वाज मिलन, इन्द्र बृहस्पति-संवाद, लक्ष्मण क्रोध वसिष्ठादि स्वागत, सीता-माया, प्रथम चित्रकूट-सभा जनक-आगमन, इन्द्र-शंका, मातृवत्सल भविष्यवाणी, द्वितीय चित्रकूट-सभा, इन्द्रमाया भरतकूप और राम-पादुका-दान आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य में इस वर्णन में अनेक विभिन्नतायें मिलती हैं।

(४४) गुह की रण-सज्जा—'रामायण-मंजरी' में गुह की इस आशंका मात्र का उल्लेख है कि सेना के साथ आने वाले भरत 'राज्यलोभी' जान पड़ते हैं और सम्भवतः वे राम का वध करने के लिये ही वन आ रहे हैं। फिर वह भेंट लेकर उनसे मिलता है और उनका 'रामनिवर्तनसंकल्प' जान लेता है।[1] यहां पर भरत से मिलने के पूर्व या पश्चात् गुह की किसी भी प्रतिक्रिया का वर्णन नहीं है, जबकि 'मानस' का गुह रामभक्ति के कारण अपने प्राणों के रहते हुए भरत को गंगा पार न जाने देने का दृढ़ संकल्प करता है। 'अध्यात्मरामायण'[2] में भी यह वर्णन मिलता है, किन्तु वह अपना आलोच्य नहीं है। रामचरित[3] उदार राघव[4] चम्पू रामायण[5] आदि ग्रन्थों में गुह का अत्यन्त साधारण उल्लेख है जबकि अन्यत्र उसकी चर्चा का कहीं संकेत भी नहीं है।

(४५) भरत-भरद्वाज मिलन—'मानस' में इस अवसर पर वर्णित भरत के विराग का संकेत संस्कृत ग्रंथों में कहीं नहीं है। 'रामायण-मंजरी' में भरद्वाजाश्रम पहुंचते ही भरत को गन्धर्व-गीत और अप्सरा-नृत्य आदि दिव्य भोगों की प्राप्ति होती है और वहां उसमें उनकी प्रसन्नता का वर्णन भी मिलता है।[6] 'अध्यात्म रामायण' में भी भरद्वाज के द्वारा कामधेनु की सहायता से भरत के लिये अनेक दिव्य भोगों के जुटाने का वर्णन किया गया है।[7] 'चम्पूरामायण' में 'भरद्वाज के 'दिव्य सत्कार' को देवदुर्लभ बतलाया गया है।[8] 'भट्टिकाव्य' के भरद्वाज अपने योगबल के द्वारा कल्पवृक्ष की सहायता से दिव्य भोज्य पदार्थों और कोमल क्षौम वस्त्रों को प्रकट कर देते हैं। उनकी आज्ञा से वहां तिलोत्तमा आदि अप्सरायें गीत, वाद्य, नृत्य और विलास आदि से सबकी समान (भरत की भी) सेवा भी करती हैं।[9]

(४६) इन्द्र-बृहस्पति-संवाद—यह तुलसी की मौलिक योजना है, जिसका संकेत किसी संस्कृत ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता है। इसका मुख्य उद्देश्य पाठक को यह

---

१ रा० मंजरी । अरण्य ।९९-१०१
२ अध्यात्म रामायण । अयोध्या । ८।१२-२१
३ रामचरित ६।४७
४ उदार राघव ७।१७
५ चम्पू रामायण २।७२ के बाद
६ रा० मंजरी । अरण्य ।१०२-११२
७ अध्यात्म रामायण । अयोध्या ८।२२-२७
८ चम्पू रामायण २।७६
९ भट्टिकाव्य ३।४०-४५

बारम्बार स्मरण कराता है कि राम ब्रह्म हैं और उनका अवतार प्रमुख रूप से 'सुरकार्य-साधन' के लिए ही हुआ है।

(४८) लक्ष्मण का कोप—'रामायण मंजरी' का यह प्रसंग 'मानस' के प्रसंग से बहुत साम्य रखता है। वहां भी भरत को ससैन्य देखकर लक्ष्मण उनके 'कपटाचार' की वैसी ही आशंका करते हैं और जब वे उनसे युद्ध करने के लिए अपने बाणों को भी संभाल लेते हैं तब राम भरत की सदाचारिता और आज्ञाकारिता का उल्लेख करके उन्हें शान्त करते हैं।[1] भट्टिकाव्य के लक्ष्मण उस सेना को देख कर जब संग्राम के लिये तत्पर हो जाते हैं तब राम उन सबको श्वेत वस्त्र धारण किए हुए, भस्म लगाये हुए पैदल आते हुए और रोते हुए देखकर उनके शोक की सही संभावना करते हैं।[2] यहां लक्ष्मण का कोप भरत से सम्बद्ध नहीं है यह केवल अज्ञात आशंका से है। अन्य ग्रन्थों में इस 'कोप' का कोई संकेत नहीं है। 'मानस' में इस प्रसंग में वर्णित देवताओं की आकाशवाणी का उल्लेख भी किसी संस्कृत ग्रंथ में नहीं मिलता है। यह तुलसी की मौलिक कल्पना है। उसका उद्देश्य अप्रत्यक्ष रूप से भरत के गौरव की स्थापना करना है। साथ ही उससे यहां 'रामोपदेश' के लिए एक भूमिका भी प्रस्तुत हो जाती है। 'रामायण मञ्जरी' के 'रामोपदेश' में राम भरत को शीलवान्, विनयाढ्य और सद्वृत्त त्यागी और आज्ञाकारी कहकर उनकी बड़ी प्रशंसा करते हैं और उन्हें केवल दर्शनार्थ आया हुआ बतला कर लक्ष्मण को उनके लिए कटुवचनों के प्रयोग से रोकते भी हैं।[3]

इस प्रकार तुलसी ने इस प्रसंग में अनेक मौलिक उद्भावनाओं की आयोजना की है और प्राप्त परम्परा में भी पर्याप्त उदात्तीकरण का समावेश किया है जो संस्कृत के ग्रन्थों में सर्वथा दुर्लभ है।

(४९) वसिष्ठादि का स्वागत—'रामायण-मञ्जरी' के राम वसिष्ठ और माताओं को प्रणाम करते समय अपना नाम लेते हैं। इस अवसर पर वहां कौशल्या और सुमित्रा के वात्सल्य का भी संक्षिप्त वर्णन मिलता है।[4] किन्तु कैकयी का नामोल्लेख तक नहीं है जबकि 'मानस' के राम कैकयी से ही सर्वप्रथम भेंट करते हैं। 'चम्पू रामायण' में राम आदि को रोते हुए देखकर वसिष्ठ के द्वारा केवल उनके आश्वस्त किए जाने का उल्लेख तो है[5] किन्तु वहां वसिष्ठादि में स्वागत का कोई वर्णन नहीं है। 'रामचरित' में राम के द्वारा केवल वसिष्ठ को अभिवादन करने और

---

१ रा० मंजरी। अरण्य। ११४–११८

२ शुक्लोत्तरासंगभृतो विमुक्ताम्भसार्द्रान् पदगान् समन्तान्।
बीहिस्ट ताम्बीर्विरुद्धशोकोऽभिन्निपुर्पालरपि स्वकर्मान् ॥ भट्टिकाव्य ३।४८

३ रा० मञ्जरी। अरण्य। १६३–१६८

४ रा० मञ्जरी। अरण्य। २२१–२२३   ५ चम्पू रामायण ३।८०

उनसे आशीष प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है,[1] वहाँ माताओं का संकेत नहीं है। 'महाभारत'[2] और 'उदार-राघव'[3] में वसिष्ठ और माताओं के चित्रकूट जाने का वर्णन तो है किन्तु उनके स्वागत की चर्चा नहीं है। भट्टिकाव्य'[4] और 'पद्म पुराण' में भरत के किसी भी सहयात्री का न तो नामोल्लेख है और न किसी के स्वागत का ही संकेत है।

तुलसी ने 'मानस' के इस वर्णन में राम के 'दण्डप्रणाम' में लौकिक शिष्टाचार का और 'पल भर में सबसे मिल लेने में' उनके अलौकिक व्यवहार का विशेष रूप से समन्वय किया है। कैकयी से राम की सर्वप्रथम भेंट का उल्लेख करके तुलसी ने उनकी महत्ता और उदारता का सुदृढ़ प्रतिपादन किया है। संस्कृत के साहित्यकारों की दृष्टि इस 'अपूर्व मिलन' का न तो महत्व आंक सकी और न उसकी गहराई का ही स्पर्श कर सकी।

(१०) सीता-माया—यह तुलसी की मौलिक योजना है। इसका उद्देश्य सीता के मायात्व और राम के मायापतित्व का निर्देश करना है। संस्कृत साहित्य में इस अवसर पर इसका कहीं उल्लेख नहीं है।

(११) प्रथम चित्रकूट-सभा—यह तुलसी की एक अन्य मौलिक योजना है। इसमें वर्णित भरत के विकल्पों का उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। लक्ष्मण के स्थान पर स्वयमेव राम के साथ रहने का उनका आग्रह तो रघुवंश[6], प्रतिमा[7] आदि ग्रंथों में प्राप्त होता है किन्तु उनके अन्य विकल्पों की चर्चा कहीं नहीं है। भरत सत्याग्रह का उल्लेख अवश्य 'रामायण-मञ्जरी' में है, जहाँ वे राम के सामने कुशशय्या बिछाकर मौनी निराहार, निरालंब और निराश्रय रहने की घोषणा करते हुये उनके स्थान पर स्वयं वनवास-व्रत-पालन का प्रस्ताव करते हैं।[8]

'मानस' में इतने विकल्पों का एकमात्र यही उद्देश्य है कि राम के लिए अयोध्या लौट चलने की प्रत्येक सम्भावना की योजना हो सके। इसके साथ-साथ तुलसी यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि राम के सुख के लिए सर्वस्व त्याग करने में, भरत आदि तीनों भाइयों को किसी प्रकार की भी हिचकिचाहट नहीं है और वे उनके लिए एकधा अथवा अनेकधा सभी प्रकार से प्रस्तुत हैं।

---

१ रघुवंश ६।२१ २ महाभारत। वन।२७७।१६, १८

३ उदार राघव ७।१७ ४ भट्टिकाव्य ३।४६–५१

५ पद्म। उत्तर। २४२।१९०

निपुण्यमानो भरतस्तिस्मिन्नरण्ये स मन्त्रिभिः।
मैथ्यान्नाग्रं च वर्षाणि तीव्रमासमनुष्ठिते ॥
वनमानम्य काकुत्स्थमयाचत् भ्रातरं तत ॥

६ रघुवंश १२।१९ ७ प्रतिमा ४।२४

८ रा० मञ्जरी। अरण्य। २१०—२११

(२२) जनक-आगमन—यह तुलसी की मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का ही परिणाम है कि उन्होंने इस अवसर पर जनक को चित्रकूट में उपस्थित कर दिया। संस्कृत के किसी भी ग्रंथ में जनक की ऐसी प्रतिक्रिया का कोई संकेत नहीं मिलता है। इसके साथ ही सभा के मध्य में उनके आगमन की सूचना देने का उद्देश्य यह भी है कि भरत के विकल्पों पर सुविधापूर्वक विचार करने के लिये सबको पर्याप्त समय भी प्राप्त हो जाय।

(२३) इन्द्र-शंका—यह भी तुलसी की मौलिक योजना है। भरत की प्रार्थना पर राम के विचलित होने के स्वल्प अनुमान-मात्र से देवताओं में खलबली मच जाती है। इसीलिए देवराज इन्द्र अधिक व्यग्र होकर अपने गुरु बृहस्पति से इस सम्बन्ध में बारम्बार परामर्श करते हैं और वे राम की दृढ़ता का उल्लेख करके उन्हें सांत्वना दे देते हैं। बस यही 'उल्लेख' इस विशिष्ट योजना का मुख्य उद्देश्य है।

(२४) याज्ञवल्क्य-भविष्यवाणी—यह भी तुलसी की एक अन्य मौलिक योजना है। इसका मुख्य उद्देश्य राम-वन-गमन की अनिवार्यता बतला कर कैकयी को कलंक से बचाना है और इस प्रकार परिवार में पारस्परिक मनोमालिन्य को मिटाते हुये सहृदयता के भव्य वातावरण का निर्माण करना है।

(२५) द्वितीय चित्रकूट—सभा—वस्तुतः जनक के आगमन से 'पूर्व सभा' स्थगित हो गई थी। यह सभा उसी का उपसंहार है। संस्कृत-साहित्य में 'जनक-आगमन' का संकेत न होने के कारण एक ही सभा का वर्णन मिलता है। 'रामायण मञ्जरी' की सभा इस दिशा में 'मानस' से बहुत साम्य रखती है। उसमें भी भरत के आग्रह को न मानते हुये राम 'सत्य पालन' पर अधिक बल देते हैं। वहाँ जाबालि मुनि का संवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[१] भौतिकता की दुहाई देकर वे राम से राज्य-ग्रहण की प्रार्थना करते हैं और जब राम उसका तर्कसम्मत उत्तर देते हैं तब वशिष्ठ यह स्वीकार कर लेते हैं कि जाबालि का यह प्रयत्न तात्विक नहीं था किन्तु वात्सल्य के वशीभूत था। वहाँ भरत के सत्याग्रह करने पर राम उन्हें धर्म और नीति का उपदेश देकर रघुकुल के परम्परागत व्रत 'सत्यपालन' का महत्व समझाते हैं और उनसे अयोध्या जाकर राज्य-ग्रहण करने का अनुरोध करते हैं जिसे वे शीघ्र ही मान भी लेते हैं।[२] रामचरित[३] उदार-राघव[४] भट्टिकाव्य[५] चम्पू-रामायण[६] आदि ग्रंथों में सभा का यह रूप नहीं है। वहाँ अविस्तर राम-भरत-संवाद ही है।

---

१ रा० मञ्जरी। अरण्य। २२९-२७१
२ रा० मञ्जरी। अरण्य। २९०-३०६
३ रामचरित ६।१२-७१
४ उदार राघव ७।२७-६०
५ भट्टिकाव्य ३।२१-२६
६ चम्पू रामायण २।५०-८३

(२६) इन्द्र माया—उपर्युक्त 'इंद्रशंका' प्रसंग का उपसंहार इसमें वर्णित किया गया है। मार्गियों के चित्रकूट से उच्चाटन के लिए इस माया का प्रयोग वस्तुतः प्रशंसनीय है। इन्द्र यह चाहते भी थे कि सब लोग शीघ्र ही अयोध्या लौट जाँय और राम वन की ओर प्रस्थान करके 'सुरकार्य' करें। इसी विशेष उद्देश्य के लिये यहाँ इन्द्र की माया का प्रयोग किया गया है।

(२७) भरतकूप—यह भी तुलसी की एक नवीन योजना है। यह 'पुण्य जल' इसी उद्देश्य से चित्रकूट में लाया गया था कि वहीं पर राम का अभिषेक उससे सम्पन्न हो जायगा किन्तु राम के सर्वथा अस्वीकार करने पर उस व्यर्थ जल का भी सदुपयोग करके तुलसी ने 'भरत-यश' का एक अद्वितीय स्मारक प्रस्तुत कर दिया है। प्रतिमा नाटक में भरत के द्वारा इसी जल से राम की पादुकाओं का अभिषेक करने का उल्लेख मिलता है[1] किन्तु इससे भरत की कीर्ति को स्थायी करने की कोई योजना नहीं बन पाती है।

(२८) पादुका-दान—संस्कृत के लगभग सभी ग्रंथों में इन पादुकाओं का विशेष और विस्तृत वर्णन मिलता है। 'रामायण-मञ्जरी'[2] में भरत वशिष्ठ की प्रेरणा से 'महावीर चरित'[3] में युधाजित की प्रेरणा से और 'रामदीप'[4], 'रघुवंश'[5] 'उदार राघव'[6] प्रतिमा[7], 'अनर्घ-राघव'[8] आदि में स्वयं अपनी आत्मा की प्रेरणा से ही राम से उनकी पादुकाओं को माँग लेते हैं किन्तु 'भट्टिकाव्य'[9] और 'बाल रामायण'[10] के राम 'मानस' के राम के समान अपनी इच्छा से उन्हें पादुकायें दे देते हैं। इन सभी ग्रंथों में 'मानस' के समान ही राम-पादुकाओं के सिंहासन पर स्थापित किए जाने और उनसे प्रेरणा प्राप्त करते हुए भरत के द्वारा अयोध्या की राज्य-व्यवस्था करने का उल्लेख मिलता है।

(२९) भरत का नन्दि ग्राम-प्रवास—अयोध्या आकर 'मानस' के भरत राम की पादुकाओं को राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित करते हैं। जनक वहाँ कुछ दिन रह कर और राज्य का शासन सम्भाल कर फिर मिथिला लौट जाते हैं। इसके बाद भरत सचिवों को राज्य-सेवा तथा शत्रुघ्न को मातृ-सेवा सौंप कर स्वयं वशिष्ठ की आज्ञा से नन्दिग्राम चले जाते हैं। वहाँ वे जटाजूट एवं मुनिवस्त्र धारण करके ऋषि धर्म का पालन करने लगते हैं।[11]

---

१ प्रतिमा ४।२६ के बाद
२ रा० मञ्जरी। अयो०। ३०५
३ महावीर चरित ४।२३ के बाद
४ रामदीप ६।७२
५ रघुवंश १२।१३
६ उदार राघव ७।६०
७ प्रतिमा ४।२५
८ अनर्घ राघव ५।२ के बाद
९ भट्टिकाव्य ३।५६
१० बाल रामायण ६।१३ के बाद
११ मानस २।३२३–३२६

कन्दर्प-शर-पीड़ित' होकर सीता के पीन पयोधरों' में 'नखक्षत' करने का वर्णन है, जिसमें उसके कुविचार का स्पष्ट संकेत है।[१]

(४) सींक बाण—संस्कृत के सभी ग्रन्थों में इस अवसर पर राम के 'इषीकास्त्र' का वर्णन किया गया है। तुलसी ने उसे 'मन्त्र प्रेरित ब्रह्मसर' बतला कर उसमें और चमत्कार प्रस्तुत कर दिया है।

(५) इन्द्र आदि की असमर्थता— मानस' का यह वर्णन 'पद्मपुराण' से बहुत प्रभावित है। वहाँ भी जयन्त तीनों लोकों में घूमता हुआ ब्रह्मा, इन्द्र रुद्र यम और वरुण आदि सब देवताओं के समीप निराश लौटता है और अन्त में ब्रह्मा उसे राम की शरण में जाने की प्रेरणा देते हैं। वहाँ राम उसे पूर्ण अभयदान' दे देते हैं।[२] 'रामायण-मञ्जरी' में भी जयन्त के तीनों लोकों में भटकने और कहीं भी शरण न पाने का उल्लेख मिलता है।[३]

(६) अन्य विशेषतायें—बाल रामायण[४] अनर्घ राघव[५] तथा चम्पू रामायण[६] आदि ग्रंथों में इस काक का नाम 'करारव' बतलाया गया है। 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार जयन्त के एकाक्ष होते ही सारी काक-जाति उसी समय से एकाक्ष हो गई है।[७] 'चम्पू रामायण' में उसी समय से काक-जाति के चिरजीवी हो जाने का वर्णन मिलता है।[८] अनर्घ राघव[९] रघुवीर चरित[१०] में इस 'काक-प्रहार' को एक बड़ा अपशकुन बतला कर राम के ऊपर निकट भविष्य में ही किसी महान् विपत्ति की आशंका का उल्लेख किया गया है।

इस घटना के वर्णन में तुलसी का एकमात्र उद्देश्य राम के सर्वसामर्थ्य सम्पन्न ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा करना है। राम के वन-प्रवास की यह प्रथम दुर्घटना है, जिसमें कोई व्यक्ति मले ही वह इन्द्रपुत्र हो उनकी बल परीक्षा के लिए उनके सम्मान पर आक्रमण करता है। उस छद्मवेषी जयन्त को अपनी शक्ति का गर्व तो रहा ही होगा साथ ही उसे अपने पिता इन्द्र तथा अन्य बड़े देवताओं ब्रह्मा शिव आदि की भी पृष्ठ-पोषकता का अभिमान भी होगा। ऐसे आक्रामक की सर्वथा पराजय और इन्द्र आदि की भी असामर्थ्य का विस्तृत वर्णन करके तुलसी ने राम की सर्वोपरि सत्ता' का प्रमाण प्रस्तुत किया है और साथ ही भविष्य में भी अन्य आक्रमणकर्त्ताओं की भावी दुर्गति का अनुमान भी उपस्थित कर दिया है।

(७) अत्रि मिलन—चित्रकूट त्याग के पश्चात् राम की प्रथम भेंट अत्रिमुनि

१ पद्म। उत्तर। २४२।१६६
२ पद्म। उत्तर। २४२।१६६-२११
३ रा० मंजरी। अरण्य।१४७-१४८
४ बाल रामायण ६।४२ के बाद
५ अनर्घ राघव ५।२ के बाद
६ चम्पूरामायण २।६४ के बाद
७ पृथ्वीराज विजय ११।६०
८ " ५।६५
९ अनर्घ राघव ५।२ के बाद
१० रघुवीर चरित ६।४४

से होती है। राम उन्हें दण्डवत् प्रणाम करते हैं और वे उनके ईश्वरत्व का उल्लेख करते हुए उनकी स्तुति करते हैं।[1] उनकी पत्नी अनसूया सीता को 'दिव्यवस्त्राभूषण' देती हैं और पतिव्रताओं के लक्षण बतलाती हुई उन्हें नारी-धर्म का उपदेश भी देती हैं।[2]

'रामायण-मञ्जरी' का वर्णन 'मानस' के वर्णन से बहुत मिलता है, किन्तु वहाँ 'पति-महत्व' का वर्णन अधिक किया गया है। वहाँ अनसूया के पूछने पर सीता अपनी जन्म-कथा' में मेनका' को अपनी वास्तविक माता बतलाती हैं।[3] 'उदार राघव' में अत्रि के द्वारा स्वागत और अनसूया के द्वारा सीता को प्रदत्त दिव्य अंगराग का विस्तृत वर्णन है। वहाँ अत्रि राक्षसों का भय बतला कर राम को आगे वन में जाने से रोकते भी हैं।[4] राघवीय[5] चम्पूरामायण[6] पद्मपुराण[7] में भी ऐसा ही वर्णन है, किन्तु वह अति संक्षिप्त है। 'भट्टिकाव्य' में केवल अत्रि के स्वागत का संकेत है[8] और रघुवंश में केवल अनसूया के अंगराग देने का कथन है।[9] आश्चर्य-चूडामणि' में अनसूया के द्वारा सीता को दिये गये एक वरदान का भी उल्लेख है कि राम को देखते ही वे (सीता) स्वस्थ एवं पुर्नमंडित हो जायेंगी।[10] वहाँ यही वरदान सीता को उस समय शाप के समान सिद्ध हो जाता है जब रावण-वध के पश्चात् राम के प्रथम दर्शन से वे पूर्ण स्वस्थ एवं अलंकृत हो जाती हैं क्योंकि उनका यह अकस्मात् स्वास्थ्य-परिवर्तन देखकर सभी लोग भ्रम में पड़ जाते हैं।[11]

तुलसी ने वर्णनों के विस्तार से बचकर उसकी उपयोगिता का ही अधिक ध्यान रखा है, इसीलिए प्रसंगानुकूल वहाँ केवल नारी धर्म का उपदेश प्रस्तुत कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त 'मुनि-स्तुति' की पृष्ठभूमि में उनकी वह मूल भावना तो काम कर रही है, जो राम की ईश्वरत्व प्रतिष्ठा से सम्बन्धित है।

(८) विराध-वध—'मानस' में यह वर्णन अति संक्षिप्त है। मार्ग में जाते हुए राम से विराध की भेंट हो जाती है और वे उसे तीर मार डालते हैं फिर उसके रुचिर रूप प्राप्त करने पर वे उसे दुखी देखकर 'निजधाम' भेज देते हैं।[12]

संस्कृत के ग्रन्थों में इस वर्णन में अधिक विस्तार है। 'रामायण मञ्जरी' का विराध सीता का हरण करके राम और लक्ष्मण को बहुत धमकाता है और राम के बाण प्रहार करने पर वह शूल से लक्ष्मण पर आक्रमण भी करता है। जब राम

---

१ मानस ३।३-६
२ मानस ३।५
३ रा० मञ्जरी। अरण्य।३२६-३५४
४ उदार राघव ८।६-१७
५ राघवीय ७।१३-१८
६ चम्पूरामायण ३।८५
७ पद्म। उत्तर। २७१।२१३-२२०
८ भट्टिकाव्य ५।१
९ रघुवंश १२।२७
१० आश्चर्य चूडामणि २।४
११ आश्चर्य चूडामणि ७।१५ १८ के बाद
१२ मानस ३।७

उसके गुप्त के दो टुकड़े करके उसे मार डालते हैं, तब वह मरते समय अपने परिचय में स्वयं को 'शतह्रदा का पुत्र तुम्बुरु गन्धर्व' बतला कर अपने 'रम्भामोह' और कुबेर-शाप' का उल्लेख करता है। अन्त में वह राम से प्रार्थना करता है कि वे उसके शरीर को 'अवट' (गर्त) में फेंक देवें और तत्पश्चात् शरभंग से मिल लेवें।[1] 'शूल' और 'अवट' की चर्चा को छोड़कर 'रामायण-मञ्जरी' का शेष वर्णन 'रघुवीर' के समान है।[2] 'रघुवंश' में केवल सीता के हरण और विराध के गर्त में फेंक दिए जाने का उल्लेख मिलता है।[3] चम्पू रामायण' में विराध पहले सीता का हरण करता है, फिर राम के बाण चलाने पर जब वह सीता को छोड़ कर राम-लक्ष्मण दोनों का अपहरण करता है, तब वे दोनों उसके हाथों को काट डालते हैं। शेष वर्णन 'रामायण-मञ्जरी' के समान है।[4] उदार-राघव' का विराध उन तीनों का एक साथ अपहरण करता है और राम के द्वारा पूछे जाने पर वह अपनी मृत्यु का उपाय भी उन्हें बतला देता है। यहाँ उसके गन्धर्व-जन्म का विवरण नहीं है।[5] 'भट्टिकाव्य' में भी वह तीनों का अपहरण करता है। यहाँ उसकी रचना विचित्र है जिसमें उसके पैर ऊपर हैं और मस्तक नीचे है। राम यहाँ उसके हाथ तोड़ कर उसे पृथ्वी में दबा देते हैं।[6]

कथा की परम्परा के कारण ही तुलसी ने विराध का उल्लेख 'मानस' में कर दिया है किन्तु उसके विस्तार को लज्जाजनक एवं अरुचिकर समझकर उन्होंने उसे वहाँ स्थान नहीं दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने राम के द्वारा उसे निजधाम दिलवा कर उनके ईश्वरत्व का विशिष्ट संकेत भी कर दिया है।

(१) शरभङ्ग-मिलन— विराध-वध' के बाद 'मानस' के राम की भेंट 'शरभंग मुनि' से होती है जो उनसे भक्ति का वरदान प्राप्त करके अपने शरीर को योगाग्नि से भस्म कर देते हैं और वैकुण्ठ' चले जाते हैं।[1] वहीं पर आगे चल कर राम एक 'अस्थिसमूह' देखकर और उसे राक्षसों का अत्याचार जान कर समस्त राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा भी करते हैं।[2]

संस्कृत के रामायण-मञ्जरी[3] उदार-राघव[4] , चम्पूरामायण[5], रघुवीर[6]

---

१ रामायण मञ्जरी । अरण्य । ३६०-३८३
२ रघुवीर ७।३८-२२ ३ रघुवंश १२।२८-३०
४ चम्पूरामायण ३।१ के बाद-६ ५ उदार राघव ८।३२-४०
६ भट्टिकाव्य ४।२८-३

१ मानस ३।७-६ २ मानस ३।६
३ रा० मञ्जरी । अरण्य । ३८४-४१२
४ उदार राघव ८।४३-४४ ५ चम्पूरामायण ३।६-७ के बाद
६ रघुवीर ७।३६-६४

महावीर-चरित[1], भट्टिकाव्य[2] आदि में 'शरभंग-मिलन' का वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान ही है। 'महाभारत'[3] में उनके केवल साकार का और 'पद्मपुराण' में उनके केवल 'ब्रह्मलोक-प्रयाण' का ही उल्लेख मिलता है। 'राम की प्रतिज्ञा' का वर्णन केवल 'रामायण-मञ्जरी' में है किन्तु वहाँ वह एक तो केवल एक निश्चय के रूप में है[5] और दूसरे 'अस्थिसमूह' का उल्लेख न होने से वह अस्वाभाविक भी लगता है। तुलसी ने अपने वर्णन में इन सब बातों का पूरा ध्यान रखा है।

(१०) सुतीक्ष्ण-मिलन—शरभंग के बाद राम सुतीक्ष्ण के आश्रम की ओर जाते हैं जो उनका परम भक्त है। इसीलिए वह उनके दर्शन की लालसा से उन्मत्त होकर कभी नाचता-गाता है, कभी आगे-पीछे दौड़ता है और कभी वह मार्ग के बीचो-बीच में अचल होकर बैठ जाता है। राम के द्वारा 'चतुर्भुजरूप' दिखलाने पर वह दौड़ कर उन्हें दण्डवत् प्रणाम करता है और उनको अपने आश्रम में ले जाकर उनकी विविध पूजा और स्तुति करके उनसे अविरल भक्ति का वरदान भी प्राप्त कर लेता है।[6]

संस्कृत के रामचरित[7], उदार राघव[8], चम्पूरामायण[9] पद्मपुराण[10] महावीर चरित[11] आदि ग्रन्थों में इस प्रसंग का अतिसंक्षिप्त उल्लेख है। 'भट्टिकाव्य' में 'मिलन' की चर्चा नहीं है, केवल समीप की पर्णकुटी में रहने का संकेत है।[12] 'रामायण-मञ्जरी' में सुतीक्ष्ण का आतिथ्य स्वीकार करके राम वहाँ केवल एक रात रहते हैं, जबकि पास में ही 'पम्पाकिर्ण-सरोवर' के आश्रम में वे १½ वर्ष बिता देते हैं। फिर सुतीक्ष्ण की प्रार्थना पर वे वहाँ से अगस्त्याश्रम चले जाते हैं।[13]

तुलसी ने 'सुतीक्ष्ण मिलन' के इस प्रसंग में सुतीक्ष्ण भक्ति और राम के 'चतुर्भुज-रूप' का उल्लेख करके एक अद्वितीय चमत्कार का सृजन कर दिया है जिसके फलस्वरूप यह साधारण प्रसंग सहज ही असाधारण बन गया है।

(११) अगस्त्य-मिलन—सुतीक्ष्ण से मिलने के पश्चात् राम उनके गुरु अगस्त्य मुनि से मिलते हैं। वहाँ वे उनसे अपने वन-आगमन का वह सब 'रामरहस्य' स्पष्टरूप से बतला देते हैं। फिर अगस्त्य राम के ईश्वरत्व का वर्णन करते हुए उनकी स्तुति करते हैं और उनसे अविरल भक्ति का वरदान भी प्राप्त कर

---

१ महावीर चरित ३।८-९
२ भट्टिकाव्य ५।४-६
३ महाभारत। वन। २७७।४०-४१
४ पद्म। उत्तर। २४२।२२१-२२२
५ रा० मञ्जरी। अरण्य। ४११
६ मानस ३।१०-११
७ रामचरित ७।६२
८ उदार राघव ७।१४
९ चम्पूरामायण ३।७ के बाद
१० पद्म। उत्तर। २४२-।२२३
११ महावीर चरित ३।६
१२ भट्टिकाव्य ५।७०
१३ रा० मञ्जरी। अरण्य। ४१३-४४३

लेते हैं। यहाँ अगस्त्य के संकेत से ही राम दण्डकवन में स्थित पञ्चवटी-आश्रम में प्रवास करते हैं।[1]

संस्कृत के ग्रन्थों में इस वर्णन में अनेक विभिन्नतायें हैं। रघुवंश[2], महावीर चरित[3], अनर्घ राघव[4], पद्म-पुराण[5] आदि में अगस्त्य के सत्कार और पञ्चवटी प्रवास' के लिए दिए गए उनके निर्देश का केवल संक्षिप्त संकेत-मात्र है। 'रामगीत'[6] 'चम्पूरामायण'[7] 'रामायण-मञ्जरी'[8] आदि में अगस्त्यमुनि के प्रताप का क्रमशः अतिविस्तृत वर्णन मिलता है जिसमें उनके विन्ध्य-विजय समुद्र-पान, वातापि-भक्षण आदि का विशद उल्लेख किया गया है। वहाँ वे राम को वैष्णव धनुष ब्रह्म-बाण, इन्द्र-तूणीर और स्वर्ण-खड्ग भी देते हैं। 'रामायण-मञ्जरी' में वे उन्हें इन्द्र का अभेद्य कवच भी देते हैं और वन में बड़ी सतर्कता से रहने के लिए सावधान भी करते हैं। वरदान' को छोड़कर अगस्त्य के प्रताप का विस्तृत वर्णन उदार राघव' में ही मिलता है।[9]

'मानस' में तुलसी ने न तो अगस्त्य के प्रताप का वर्णन किया और न उनके वरदान का ही प्रत्युत उनके द्वारा राम की स्तुति करवाई और भक्ति का वरदान भी मँगवाया। इसके मूल में तुलसी का विवेक ही सक्रिय है, क्योंकि वे अच्छी तरह समझते हैं कि उनके वर्ण्य राम हैं न कि अगस्त्य। संस्कृत के कवियों ने इस दिशा में अधिकतर परम्परा का ही पालन किया है।

(१२) शूर्पणखा-विरूपण—इस प्रसंग में राम के पञ्चवटी प्रवास-काल में उनके पास रावण की बहिन शूर्पणखा के आने और कामपीड़ा से विकल होकर उनसे प्रणय-निवेदन करने का उल्लेख किया गया है। वहाँ राम अपने विवाहित होने का संकेत करके उसे लक्ष्मण के पास भेज देते हैं जो अपनी पराधीनता का उल्लेख करके उसको पुनः राम के पास लौट जाने का परामर्श देते हैं। अन्त में शूर्पणखा क्रुद्ध होकर अपना भयंकर राक्षसी-रूप प्रकट करती है, जिससे सीता के भय[illegible]ीत हो जाने पर लक्ष्मण राम के आदेश से उसके नाक कान काट डालते हैं।

[illegible] के लगभग सभी ग्रन्थों में यह प्रसंग कुछ अन्तर के साथ इसी रूप में प्राप्त हो जाता है। इसमें शूर्पणखा के प्रणय-निवेदन और उसके अंगभंग का वर्णन विशेषतया उल्लेखनीय है।

(१३) शूर्पणखा-प्रणय-निवेदन—'रामायण-मञ्जरी' की शूर्पणखा राम

---

१ मानस ३।१२-१३
२ रघुवंश १२।३१
३ महावीर चरित ५।९ के बाद
४ अनर्घ राघव ५।४
५ पद्म पुराण। उत्तर। २७२।२२३
६ रामगीत ७।१६-१९
७ चम्पूरामायण ३।७-१२ के बाद
८ रा० मञ्जरी ३।३८४-४०१
९ उदार राघव ८।७०-९४
१० मानस ३।१०

से उसका परिचय पूछ कर फिर, उनको अपना सच्चा परिचय भी देती है। यहाँ वह उनसे 'सीता-त्याग' की प्रार्थना करती हुई उन्हें अपने साथ रमण करने का आमन्त्रण भी देती है।[१] 'पद्मपुराण' में वह 'सीतात्याग' के स्थान पर 'सीतासहित' की प्रार्थना करती है।[२] 'उदार राघव' में वह स्वयं को राम से पूर्व परिचित बतला कर उनके जन्म से लेकर वन आगमन तक की समस्त कथा का वर्णन करती है। यहाँ वह अपना सच्चा परिचय देकर सूर्यवंश तथा पुलस्त्य वंश को परस्पर सम्बन्ध योग्य बतलाती है और राम से गान्धर्व विवाह की प्रार्थना करती है। उसे यहाँ सीता की भी चिन्ता नहीं है। वह राम से कहती है कि वे उन्हें चाहे रखें या छोड़ दें। यहाँ तो वह उनकी दासी बनने तथा सदा मानवीय-रूप में ही रहने की प्रतिज्ञा करती है और उनको रावण आदि की सहायता का प्रलोभन भी देती है।[३] 'राघवीय' की शूर्पणखा तो अत्यन्त सुन्दरी बन कर और राम के समीप आकर जब उनको प्रणाम करती है, तब वे पहले उसका परिचय पूछते हैं और फिर अपना परिचय भी देते हैं। यहाँ शूर्पणखा उन्हें 'काम' और अपने को 'रति' कहकर उनसे अपनी 'मन्मथ-व्यथा' प्रकट करती है।[४] 'रघुवंश'[५], 'चम्पूरामायण'[६], 'महावीर चरित'[७] और 'अनर्घ राघव'[८] आदि में भी शूर्पणखा की ऐसी ही काम-पीड़ा का उल्लेख मिलता है।

इस प्रसंग में, जहाँ तक राम और लक्ष्मण की प्रतिक्रिया का सम्बन्ध है, संस्कृत के सभी ग्रन्थों में, राम के द्वारा अपने विवाह और मुनिव्रत तथा लक्ष्मण के द्वारा अपने पराधीनत्व और मुनिव्रत का उल्लेख करके शूर्पणखा से पीछा छुड़ाने का वर्णन मिलता है। 'भट्टिकाव्य' में शूर्पणखा पहले लक्ष्मण के पास जाती है, अतः वे उससे राम का गुणगान करके उसे वहाँ भेज देते हैं।[९] 'रघुवंश'[१०] और 'उदार-राघव'[११] में जहाँ वह पहले राम के पास जाती है, वहाँ लक्ष्मण इसी नाते से उसको 'पूज्य' बतलाकर उसे वरने लिए त्याज्य भी समझते हैं। इसके अतिरिक्त उदार राघव में वे उसको १४ वर्ष तक प्रतीक्षा करने का परामर्श भी देते हैं।

(१४) शूर्पणखा का अङ्ग-भङ्ग—'रामायण-मञ्जरी',[१२] आश्चर्य चूड़ामणि[१३]

---

१ रामायण मञ्जरी। अरण्य। ३१८-३२१
२ पद्म। उत्तर।२४२। २२७-२४५
३ उदार राघव ६।७६-९१
४ राघवी ८।१-२१
५ रघुवंश १२।३२
६ चम्पूरामायण ३।१२
७ महावीर चरित २।११
८ अनर्घराघव ५।४ के बाद
९ भट्टिकाव्य ४।२१-२७
१० रघुवंश १२।३२
११ उदार राघव ६।९८-१००
१२ रा० मञ्जरी। अरण्य। ३४१
१३ आश्चर्य चूड़ामणि ५।१३

'रघुवीर-चरित',[1] 'पद्मपुराण',[2] और अग्निपुराण[3] में 'मानस' के वर्णन के समान ही शूर्पणखा के नाक और कान दोनों काट लिए जाने का वर्णन किया गया है, किन्तु 'प्रसन्न राघव',[4] 'भट्टिकाव्य',[5] 'बाल रामायण',[6] 'चम्पूरामायण'[7] और 'महानाटक'[8] में उसकी केवल नाक 'रामदीप'[9] 'उदार-राघव'[10] 'महावीर चरित'[11] और 'अनर्घ-राघव'[12] आदि में उसके नाक कान और ओठ तथा 'राम कथा'[13] में उसके स्तनों के भी काट लिये जाने का वर्णन मिलता है।

(१५) अन्य विशेषताएँ—भागवत[14] और पद्मपुराण[15] के अनुसार लक्ष्मण के स्थान पर राम ही शूर्पणखा का विरूपण करते हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण में शूर्पणखा के 'पर-जन्म' का भी उल्लेख मिलता है। यहाँ वह राम से निराश होकर उन्हें 'पत्नीहरण' का शाप देती है और अगले जन्म में उनको पति रूप में पाने के लिए वह पुष्कर में कठिन तपस्या भी करती है जिसके फलस्वरूप द्वापर में वह ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करके कुब्जा के रूप में जन्म लेती है और 'कृष्ण' को अपना पति बनाने में सफल होती है।[16]

'मानस' में इस प्रसंग के वर्णन में तुलसी बड़े सावधान रहे हैं। स्त्री-जाति के स्वाभाविक कामुकीत्व का संकेत करके उन्होंने शूर्पणखा की चेष्टाओं का यथार्थ वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त उसके विरूपण को रावण के लिए चुनौती-स्वरूप कह कर उन्होंने आगे की कथा का भी संकेत कर दिया है।

(१६) खर-दूषणादि-वध—लक्ष्मण से विरूपित होकर 'मानस' की शूर्पणखा खरदूषण आदि अपने समीपस्थ भाइयों को राम से युद्ध करने के लिए प्रेरित करती है। राम उस राक्षस-सेना को देखकर सीता के भयभीत होने की आशंका से उनकी सुरक्षा के निमित्त उन्हें गिरि-कन्दरा में ले जाने के लिए लक्ष्मण को आदेश देते हैं और स्वयं युद्ध के लिए तत्पर हो जाते हैं।[17] राक्षसों के माया-युद्ध करने पर वे भी ऐसी माया करते हैं कि सब राक्षस एक दूसरे को राम समझ कर आपस में ही

---

१ रघुवीर चरित ४।६०
२ पद्म। उत्तर। २४२।१४४
३ अग्निपुराण ७।५
४ प्रसन्न राघव ।५।११ के बाद
५ भट्टिकाव्य ४।११
६ बाल रामायण ५।७८ के बाद
७ चम्पूरामायण ३।१६
८ महानाटक ३।८६
९ रामदीप ८।२४
१० उदार राघव ९।१०६
११ महावीर चरित ।५।१२
१२ अनर्घ राघव ५।४ के बाद
१३ रामकथा पृष्ठ १९
१४ भागवत ९।१०।९
१५ पद्म। उत्तर। २४२।२४४
१६ ब्रह्मवैवर्त। श्रीकृष्ण जन्म १३०।४,३३
१७ मानस ३।१८

लड़ कर मर जाते हैं।[1] इस प्रकार इस प्रसंग में सीता की सुरक्षा और 'राम माया' का विशेष वर्णन मिलता है, जो संस्कृत साहित्य में विविध रूप से उल्लिखित हुआ है।

(१७) सीता की सुरक्षा—'मानस' का यह वर्णन 'अध्यात्म रामायण'[2] के अनुकरण पर है जो अपना आलोच्य नहीं है। 'रामायण-मञ्जरी'[3] और 'राघवीय'[4] के अनुसार राम खर के भेजे हुए केवल १४ राक्षसों को पहले समाप्त कर देते हैं, फिर पूरी सेना के आ जाने पर वे सीता को लक्ष्मण की देख रेख में वहीं छोड़ कर युद्ध के लिए आगे बढ़ जाते हैं। रघुवंश[5] चम्पूरामायण[6] प्रसन्न राघव[7] आदि में भी राम के द्वारा सीता को लक्ष्मण की रक्षा में छोड़ जाने का उल्लेख है किन्तु वहां किसी निश्चित स्थान का संकेत नहीं है।

(१८) राम-माया—'रघुवंश' में राम एक होने पर भी राक्षसों की संख्या के समान ही अनेक रूप धारण कर लेते हैं[8] जबकि रामायण मञ्जरी के अनुसार राक्षसों को मरते समय राम के अनेक रूप के दर्शन होते हैं।[9] अन्य ग्रंथों में इस राम-माया का कोई वर्णन नहीं प्राप्त होता है।

'मानस' में यह प्रसंग न तो अतिविस्तृत है और न अति संक्षिप्त। संस्कृत के कवियों का ध्यान यहाँ अधिकतर युद्ध वर्णन के विस्तार में ही लगता रहा है अर्थात् तुलसी ने खर-मोह और राम-माया का वर्णन करके इस प्रसंग में राम की अलौकिक सुन्दरता और शक्ति का विस्तृत निरूपण किया है। इसके साथ ही राम नाम के उच्चारणमात्र से राक्षसों की मुक्ति का संकेत करके उन्होंने राम के ईश्वरत्व का भी सुचारु रूप से प्रतिपादन किया है।

(१९) सीता हरण—खर दूषण-वध के पश्चात 'मानस' की शूर्पणखा रावण के समीप जाकर उसको राम से बदला लेने के लिए प्रेरित करती है।[10] यहाँ रावण भगवान् के बिना खर की असम्भवता सोचकर अपनी मुक्ति की कामना से ही राम से बदला लेने का षड्यन्त्र रचता है और मारीच को स्वर्णमृग बनने के लिए बाध्य करता है। मारीच के उपदेश देने पर जब वह उसे वध की धमकी देता है तब मारीच राम के हाथों से मरने में अपनी मुक्ति का निश्चय करके 'स्वर्ण-मृग' बन जाता है।[11] इधर लक्ष्मण की अनुपस्थिति में राम 'नर-लीला' करने के विचार से

---

१ मानस ३।२०
२ अध्यात्म रामायण। अरण्य। ५।१०
३ रा० मंजरी। अरण्य।५४८ ५५५
४ राघवीय ८।१२-१८
५ रघुवंश १२।४८
६ चम्पूरामायण ३।१९ के बाद
७ प्रसन्न राघव ५।१४ के बाद
८ रघुवंश १२।४५
९ रा० मञ्जरी। अरण्य। ५८०
१० मानस ३।२१-२२
११ मानस ३।२४-२६

राक्षसों के विनाश तक सीता को अग्नि में निवास करने तथा साथ में केवल प्रतिबिम्ब रूप में रहने का आदेश देते हैं।[१] फिर मारीच के स्वर्णमृग बनकर आश्रम के समीप आ जाने पर वे सीता के आग्रह से उसका पीछा करते हैं और उनको लक्ष्मण की देखरेख में छोड़ जाते हैं।[२] राम के बाण से मरते समय मारीच लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारता है और फिर 'राम-नाम' का स्मरण करता है जिससे प्रसन्न होकर राम उसे मोक्ष दे देते हैं।[३] उधर सीता 'लक्ष्मण' शब्द सुनकर राम पर विपत्ति की आशंका से लक्ष्मण को उनकी सहायता के लिए जाने का आदेश देती हैं और उनके द्वारा उपेक्षा दिखलाने पर वे उन्हें 'मर्म-वचन' कहकर जाने के लिए विवश कर देती हैं।[४] इसी बीच में रावण 'यति-वेश' में सीता के सम्मुख उपस्थित होता है और 'राजनीति भय तथा प्रीति' दिखला कर उनसे प्रणय-निवेदन करता है। सीता के द्वारा फटकारे जाने पर वह अपना असली रूप प्रकट करके उनको अपना नाम भी बतलाता है और निराशा से क्रुद्ध होकर किन्तु साथ ही उनके चरणों की मन ही मन में वन्दना भी करके वह उन्हें अपने आकाशगामी रथ में बिठाकर चल देता है।[५] इस प्रसंग में इस प्रकार तुलसी ने रावण की मुक्ति-कामना, मारीच परामर्श सीता प्रतिबिम्ब मारीच-वंचना सीता-मर्मवचन और रावण-षड्यन्त्र आदि का विशेष रूप से वर्णन किया है। संस्कृत साहित्य में इस सम्बन्ध में अनेक विभिन्नतायें मिलती हैं।

(२०) रावण-मुक्तिकामना—'राम-तापनीयोपनिषद्' में इस अवसर पर रावण का उद्देश्य 'स्वनिवृत्ति' बतलाया गया है।[६] 'पद्मपुराण' का रावण भी अपने वध की इच्छा से ही 'सीताहरण' करता है।[७] अन्य ग्रंथों में इस विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

(२१) मारीच-परामर्श—'रामायण-मञ्जरी' का यह वर्णन अत्यन्त विस्तृत है। यहां मारीच 'दण्डकारण्य में राम से प्राप्त एक अन्य पराजय का भी उल्लेख करता है जिसमें उसके सब साथी मार डाले गये थे।[८] यहीं वह 'रा' वर्ण वाले राज्य राशि रामा राम, राजा और राशि आदि शब्दों से अपने भय का उल्लेख करके अपने ऊपर राम के आतंक की पराकाष्ठा व्यक्त करता है।[९] वह रावण से यह भी स्पष्ट कह देता है कि राम के हाथों से मरना उसके हाथों से मरने से कहीं अधिक अच्छा है।[१०] 'राघवीय' का मारीच राम की भक्ति प्राप्त

---

१ मानस। ३।२४ २ ३ मानस ३।२७
४ ३।२८ ५ ,, ३।२८
६ रामतापनीयोपनिषद् ४।१७ ७ पद्म। उत्तर। २४२।१९९
८ रा० मञ्जरी। अरण्य।६९७–६९९ ९ रा० मञ्जरी। अरण्य।
१० ,, ७११ ७०२–७०३

करने का इच्छुक भी जान पड़ता है।[१] हनुमन्नाटक'[२] और 'महानाटक'[३] में मारीच के केवल उसी निश्चय का उल्लेख है कि यदि दोनों प्रकार से मरना है तो रावण की अपेक्षा राम के हाथों से मरना ही अधिक श्रेयस्कर है।

(२२) सीता प्रतिबिम्ब—'मानस' का वर्णन 'अध्यात्म रामायण'[४] के वर्णन से बहुत मिलता है किन्तु यह अपना आलोच्य ग्रन्थ नहीं है। 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में भी इसका उल्लेख है। वहाँ लक्ष्मण की अनुपस्थिति में विप्रवेशधारी अग्निदेव, राम से समुद्रतट पर मिलकर सीताहरण की भविष्यवाणी करते हुए उनसे वास्तविक सीता को दे देने और 'छाया सीता' को अपने पास रखने की प्रार्थना करते हैं।[५] वहाँ वे 'रावण वध' के पश्चात् 'सीता-शुद्धि' के अवसर पर 'छाया सीता' को वापस लेकर राम को वास्तविक सीता लौटाल भी देते हैं।[६] उस 'छाया-सीता' के वहाँ पूर्व जन्म में वेदवती तथा परजन्म में 'द्रौपदी' होने का भी उल्लेख किया गया है।[७]

(२३) मारीच-वंचना—भट्टिकाव्य[८] आश्चर्य चूड़ामणि[९] राघवीय[१०] रामायण-मंजरी[११] चम्पू रामायण[१२] आदि में मानस के वर्णन के समान ही मारीच के द्वारा एक तो 'स्वर्णमृग' बनने और दूसरे मरते समय लक्ष्मण का नाम पुकारने का उल्लेख करके उसकी दो वंचनाओं का वर्णन मिलता है। रघुवंश[१३] पद्मपुराण[१४] महावीर चरित[१५] अनर्घ राघव[१६] आदि ग्रन्थों में उसकी केवल प्रथम वंचना है। महाभारत में उसकी तीसरी वंचना भी है जहाँ वह सीता का भी नाम लेकर पुकारता है।[१७] आश्चर्य-चूड़ामणि में उसकी चौथी वंचना है, जहाँ वह मरते समय राम का रूप धारण करके लक्ष्मण को भी वंचित करता है। वहाँ उसके रूप सादृश्य से लक्ष्मण इतने अधिक भ्रांत हो जाते हैं कि राम को सामने देखकर वे उन्हें रावण समझ लेते हैं और उन पर आक्रमण का विचार करते हैं किन्तु राम की 'आश्चर्य-मुद्रिका' से मारीच के स्वरूप प्राप्त कर लेने पर वे वास्तविकता समझ कर वह क्षुब्ध होते हैं।[१८] राम के द्वारा मारीच के मोक्ष प्राप्त करने का वर्णन किसी भी संस्कृत-ग्रन्थ में नहीं है। यह मानसकार की अपनी मान्यता है, जिसके

१ राघवीय ६।१६–२६
२ हनुमन्नाटक ३।२४
३ महानाटक ३।२३
४ अध्यात्म रामायण । अरण्य ७।१ ३
५ ब्रह्मवैवर्त । प्रकृति १४।२८–३५
६-७ ब्रह्मवैवर्त । प्रकृति १४।४२–४४
८ भट्टिकाव्य ५।४९–५२
९ आश्चर्यचूड़ामणि । ३।१२।१५ २८ के बाद
१० राघवीय ६।६४–६६
११ रा० मञ्जरी । अरण्य ।७४२–७४६
१२ चम्पू रामायण ३।२६
१३ रघुवंश १२।५३
१४ पद्म । उत्तर । २४२।१२४
१५ महावीर चरित ५।१६
१६ अनर्घ राघव ५।७
१७ महाभारत । वन । २७८।२३
१८ आश्चर्यचूड़ामणि ३।१७-१८

आधार पर वह सर्वज्ञ राम के ईश्वरत्व का प्रतिपादन करता चलता है ।

(२४) सीता मर्मवचन—'मानस' में इन मर्म-वचनों का कोई विवरण नहीं है किन्तु 'रामायण-मंजरी' में सीता उसे भाई को स्वाभाविक शत्रु बतलाकर लक्ष्मण के भ्रातृ प्रेम को धोखा कहती हैं और उन्हें 'पापबुद्धि' तथा 'अनुचित बुद्धि' आदि कहकर फटकारती भी हैं । साथ ही वे अपने पतिव्रता-धर्म का उल्लेख करके लक्ष्मण की 'कुटिल आशा' पर व्यंग्य भी करती हैं ।[1] 'महाभारत' की सीता लक्ष्मण को कामी कह कर धिक्कारती हैं और शस्त्राघात या पर्वत पतन या अग्नि प्रवेश से आत्महत्या कर लेने किन्तु राम को छोड़ कर उसको (लक्ष्मण को) पति न बनाने का निश्चय भी व्यक्त करती हैं ।[2] भट्टिकाव्य में सीता लक्ष्मण को कामुक और अपनी पत्नी बनाने को उत्सुक बतलाती हैं ।[3] 'आश्चर्य चूडामणि' की सीता केवल लक्ष्मण को ही 'परपति-गामिनी' कहकर अपने पातिव्रत्य का संकेत करती हैं । वे लक्ष्मण को धमकी भी देती हैं कि वे उनके सामने ही आत्महत्या करके उन्हें निराश कर देंगी ।[4]

(२५) रावण षड्यन्त्र—'मानस' में रावण के अति-दर्प और राजनीति-भय प्रीति के वचनों का कोई विवरण नहीं है किन्तु भट्टिकाव्य[5] रामायण मञ्जरी[6] जानकी-हरण[7] राघवीय[8] महाभारत[9] और प्रतिमा[10] आदि ग्रंथों में उसका विस्तार से वर्णन किया गया है । 'मानस' में राम और लक्ष्मण के साथ रावण के किसी भी संवाद का उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु 'प्रतिमा' में राम से और 'अनर्घ राघव' में लक्ष्मण से रावण का पर्याप्त वार्तालाप होता है यद्यपि वह अपना सही परिचय कहीं भी नहीं देता है । 'प्रतिमा' नाटक में रावण अपने को काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण कहकर स्वयं को सांगोपांग वेद प्राचेतस श्राद्धकल्प आदि का विद्वान भी बतलाता है । यहाँ दशरथ के श्राद्ध के लिये उत्सुक राम के द्वारा पूछे जाने पर वह उन्हें [illegible] हिम प्रकाश महातटपर यो या [illegible] या कांचन पार्श्वमृग की व्यवस्था देता है । उसी समय वैसे ही मृग (मारीच) के प्रकट होने पर वह उसे इंगित करके उन्हें 'कल्पमाम्य' भी कहता है । फिर राम उसको लेने के लिये सीता

---

१ रा० मंजरी । अरण्य । ७७१–७७४

२ अप्यहं शस्त्रमादाय हन्यामात्मानमात्मना ।
पतेयं गिरिशृङ्गाद् वा विशेयं वा हुताशनम् ।
रामं भर्तारमुत्सृज्य न त्वहं त्वां कथंचन ।। महाभारत । वन । २७८।२७–२८

३ भट्टिकाव्य ५।२६

४ आश्चर्यचूडामणि ३।२८ के बाद

५ " ५।६१–६६ ८४।६२

६ रा० मञ्जरी । अरण्य । ७८३–७८४ ७८६–८२३

७ जानकी हरण १०।३६–८९

८ राघवीय ६।६६–७१

९ महाभारत । वन । २७८।१२ ३१

१० प्रतिमा । ५।७ के बाद, १६–१७

को माया मृग बना कर उस मृग के पीछे चले जाते हैं। लक्ष्मण वहाँ पहले से ही आश्रम के किसी कुलपति के स्वागतार्थ चले जाने के कारण अनुपस्थित हैं। रावण इस अवसर का लाभ उठा कर 'सीता-हरण' में समर्थ हो जाता है।[1] 'अनर्घराघव' में वह राम की अनुपस्थिति में उनके आश्रम में आकर लक्ष्मण से मिलता है और अपने को 'दीक्षित-बटन्दी-परिवृत' तथा जगद्विजयाभिलाषी बतला कर राम से सत्कार्य करने की इच्छा भी व्यक्त करता है। वह स्वयं को सर्वविप्रावर कह कर अपने पाखण्ड से लक्ष्मण को वंचित करता है और भिक्षा का बहाना करके वहाँ से चला जाता है।[2] आश्चर्यचूडामणि में वर्णित रावण के छद्मवेश का उल्लेख किया जा चुका है।[3] 'प्रसन्न राघव' नाटक में अनसूया के आशीर्वाद के प्रभाव से सीता के चारों ओर एक अग्निचक्र चलता रहता है जिसे वरुण-अस्त्र से बुझा कर रावण उनके हरण में सफल हो जाता है।[4] 'हनुमन्नाटक'[5] और 'महानाटक'[6] में सीता की कुटी के चारों ओर लक्ष्मण के धनुष से खिंची हुई एक रेखा का उल्लेख है जिसे रावण पार नहीं कर पाता है किन्तु सीता के उस रेखा से बाहर आते ही वह उन्हें ग्रहण कर लेता है।

मानस के इस प्रसंग में रावण के हृदय में मुक्ति-भावना और सीता हरण के समय उसके द्वारा उनकी पद-वन्दना का उल्लेख करके तुलसी ने रावण के चरित्र का एक विशिष्ट पक्ष प्रस्तुत किया है। सीता को परपुरुष-स्पर्श के कलंक से बचाने के लिए ही उन्होंने सीता-प्रतिबिम्ब की योजना स्वीकृत की है। इसके अतिरिक्त सीता के मर्मवचनों तथा रावण की दर्पोक्तियों को अनावश्यक और अनुचित समझ कर ही उन्होंने उनका यहाँ कोई विवरण नहीं दिया है। इस प्रकार इस प्रसंग के विस्तारों में तुलसी ने अपने विवेक का बड़ी कुशलता के साथ प्रयोग किया है।

(२६) जटायु-मरण—सीता के हरण के समय उनकी आर्त पुकार सुन कर गृध्रराज जटायु जो राम से पूर्व परिचित है उनकी रक्षा के लिए दौड़ता है और रावण को ललकारता हुआ उसके केश पकड़ कर उसे पृथ्वी पर पटक देता है तथा सीता को मुक्त भी कर देता है किन्तु रावण शीघ्र ही सँभल कर अपने कृपाण से उसके पंख काट देता है और सीता को अपने रथ पर फिर बिठा कर वहाँ से शीघ्र चला जाता है।[7] 'मृगवध' के पश्चात् राम तथा लक्ष्मण आश्रम में लौटकर और सीता को न पाकर उन्हें खोजते हुए जब आहत जटायु से मिलते हैं तब वह रावण के द्वारा सीता हरण का सारा वृत्तान्त उनको बतलाता है। उसकी मृतप्राय दशा देख कर राम उससे जीवित रहने का आग्रह करते हैं किन्तु वह भक्ति-वश होकर मृत्यु के समय उनको

---

१ प्रतिमा ५।८ के बाद–२१ २ अनर्घ राघव ५।५ के बाद–७
३ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ ८०–८१ ४ प्रसन्न राघव ५।४४–४५
५ हनुमन्नाटक ४।६ ६ महानाटक ३।६५
७ मानस ३।२९

उपस्थिति के सुअवसर को त्याग करके फिर जीना ही नहीं चाहता है। उसका यह निश्चय जान कर राम उससे अनुरोध करते हैं कि वह स्वर्ग में जाकर दशरथ से 'सीता-हरण' की चर्चा न करे। वे फिर उससे बलपूर्वक कहते हैं कि यदि वे सचमुच राम हैं तो कुछ दिनों में ही स्वयं रावण सपरिवार वहाँ (स्वर्ग) जाकर उनसे सब कुछ बतला देगा।[१]

इसके पश्चात् जटायु गृध्र-देह त्याग कर सहसा हरिरूप ग्रहण कर लेता है और उसके अनुकूल अनेक आभूषण, पीतपट श्याम शरीर और चार भुजायें भी धारण करता है। अन्त में वह राम की विस्तृत स्तुति करके तथा उनसे अविरल भक्ति का वरदान प्राप्त करके हरिधाम चला जाता है और राम अपने हाथों से ही उसकी यथोचित दाहक्रिया करते हैं—

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी॥
दो० अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥३।३२

इस प्रकार इस प्रसंग में तुलसी ने जटायु के राम से पूर्व परिचय जटायु रावण-युद्ध, जटायु राम-मिलन, जटायु के हरिरूप-धारण आदि का विधिवत रूप से उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य में इसके विभिन्न रूप मिलते हैं।

(२७) जटायु का राम से पूर्व परिचय—संस्कृत के रामगीत[२], भट्टिकाव्य[३] महाभारत[४], रामायण-मञ्जरी[५] रघुवीर चरित[६] प्रतिमा[७], बाल रामायण[८] रघुवंश[९] चम्पूरामायण[१०] आदि ग्रन्थों में दशरथ के साथ जटायु की मित्रता का उल्लेख मिलता है जिसके कारण वह सीता की रक्षा करने के लिये अपनी प्राणों की बाजी लगा देता है। महावीर चरित[११] 'अनर्घराघव'[१२] 'पद्मपुराण'[१३] में भी राम के प्रति जटायु की वत्सलता का पूर्व संकेत मिलता है, किन्तु उसके कारण का वहाँ उल्लेख नहीं किया गया है। रामायण-मञ्जरी में कोई पूर्व-परिचय न होने के कारण राम उसको प्रथम मिलन में राक्षस समझ कर उस पर प्रहार भी करना चाहते हैं।[१४]

---

१ मानस ३।३०–३२
२ रामगीत ३।७८
३ भट्टिकाव्य ६।४९
४ महाभारत। वन। २७९।१
५ रा० मञ्जरी। अरण्य।१०५०
६ रघुवीर चरित ३।६६
७ प्रतिमा ५।१२ के बाद
८ बाल रामायण ६।३७
९ रघुवंश १२।५४
१० चंपूरामायण ३।१३
११ महावीर चरित ५।१३ के बाद
१२ अनर्घराघव ५।६ के बाद
१३ पद्म। उत्तर। २४२।२५६
१४ रा० मञ्जरी। अरण्य।४८४

(२८) जटायु-रावण-युद्ध—संस्कृत के लगभग सभी ग्रंथों में इस युद्ध का विस्तृत वर्णन मिलता है। 'बाल-रामायण' में जटायु अनेक युद्धों को लेकर रावण के साथ युद्ध करता है। वहाँ 'चन्द्रहास' (रावण के खड्ग) के टूट जाने पर रावण उसके कण्ठ में माला पुरोह कर उसे मार डालता है।[1] लगभग सभी ग्रंथों में रावण और जटायु का विस्तृत संवाद भी प्राप्त होता है। मानस' के संवाद पर हनुमन्नाटक' के संवाद का बहुत प्रभाव है।[2]

(२९) जटायु-राम मिलन—संस्कृत के नाटकों में इसका वर्णन नहीं मिलता है। राघवीय[3], चंपू-रामायण[4] और पद्मपुराण[5] आदि काव्यों का वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान है किन्तु 'रामायण-मञ्जरी'[6], 'भट्टिकाव्य'[7], महाभारत[8] 'रघुवीर चरित'[9] आदि काव्यों में राम आहत जटायु को ही सीता-भक्षी समझ कर उस पर पहले प्रहार करने का विचार करते हैं।

(३०) जटायु का हरिरूप-धारण—'पद्मपुराण' में भी जटायु के द्वारा मरते समय 'हरि' के सामान्य रूप धारण करने और मुक्ति प्राप्त करने का उल्लेख है।[10] तुलसी ने इस 'सामान्य रूप' का विशिष्ट विस्तार कर दिया है। इस दिशा में वे 'भागवत' से प्रभावित ज्ञात होते हैं, जहाँ 'गजराज' के द्वारा 'पीत-पट और चतुर्भुज रूप धारण करके भगवद्रूप प्राप्त करने का विवरण दिया गया है।[11]

इस प्रसंग में तुलसी की मौलिकता उनके विवेकपूर्ण समन्वय में है जिसके आधार पर उन्होंने 'रसनिष्पत्ति' और भक्ति-सिद्धान्त के दृष्टिकोणों से गृध्र की विशिष्ट स्तुति और 'सारूप्यमुक्ति' का वर्णन प्रस्तुत कर दिया है।

(३१) कबन्ध-वध—'जटायु मिलन' के पश्चात सीता की खोज में भटकते हुये राम की भेंट कबन्ध राक्षस से हो जाती है और वे उसे देखते ही तुरन्त मार डालते हैं।[12] राम के हाथों से मृत्यु पाकर कबन्ध मुक्त हो जाता है और जब वह ब्राह्मण-तिरस्कार के फलस्वरूप अपने 'दुर्वासा-शाप' की कथा सुनाता है, तब राम उसे उपदेश देते हुए ब्राह्मण भक्ति पर विशेष बल देते हैं।[13] 'मानस' के इस प्रसंग में कबन्ध-मृत्यु' 'दुर्वासा-शाप' और 'रामोपदेश' की ही महत्वपूर्ण योजना है। संस्कृत के ग्रन्थों में इस प्रसंग का यह रूप नहीं मिलता है।

---

१ बाल रामायण ५।६६-७१ २ हनुमन्नाटक ४।७-१०
३ राघवीय १०।१०-१२ ४ चंपूरामायण ३।४१ के बाद
५ पद्म। उत्तर २४२।२६०-२६१
६ रा० मञ्जरी। अरण्य। १०४२-१०४६
७ भट्टिकाव्य ६।४१ ८ महाभारत। वन। २७०।१८-१९
९ रघुवीर चरित ३।६६ १० पद्म। उत्तर। २४२।२६६
११ भागवत ८।४-६
१२ मानस ३।३३ १३ मानस ३।३४

(१२) कबन्ध-मृत्यु—रामायण-मञ्जरी[१] राघवीय[२], चंपूरामायण[३], भट्टिकाव्य[४] महाभारत[५] आदि ग्रन्थों में कबन्ध राम और लक्ष्मण को अपनी लम्बी-लम्बी भुजाओं से पकड़ कर खींच लेता है और जब वह उन्हें खाना चाहता है तब वे दोनों मिल कर उसके दोनों हाथ काट डालते हैं। 'राघवीय' में वे उसके शव को एक गड्ढे में डाल कर मिट्टी से पूर भी देते हैं जबकि 'चंपूरामायण' और 'रामायण-मञ्जरी' में वे उसके अग्नि-संस्कार का भी प्रबन्ध करते हैं। 'महावीर-चरित' में कबन्ध जब वन प्रदेश में शबरी पर आक्रमण करता है तब उसकी पुकार पर दौड़ कर लक्ष्मण कबन्ध का वध कर देते हैं और शबरी की रक्षा करते हैं।[६] उस समय कबन्ध दिव्य-पुरुष होकर राम के सामने अपना परिचय देता हुआ अपने को 'श्रीपुत्र दनु' बतलाता है और शाप के कारण अपनी राक्षसता तथा इन्द्रवज्र के कारण अपनी कबन्धता का उल्लेख करता है। इसके अतिरिक्त यहाँ वह माल्यवान् के षड्यन्त्र का उद्घाटन करता हुआ राम से कहता है कि माल्यवान की आज्ञा से ही वह उन पर आक्रमण करने के लिए यहाँ नियुक्त किया गया था तथा उसी (माल्यवान्) की आज्ञा से बालि भी उनके (राम के) वध की घात में लगा हुआ है।[७]

(१३) दुर्वासा-शाप—'रामायण-मञ्जरी[८] 'चंपूरामायण'[९] आदि में दुर्वासा के स्थान पर स्थूलशिरा' मुनि के शाप का वर्णन है। भट्टिकाव्य' मे किसी मुनि का नामोल्लेख नहीं है।[१०] 'महाभारत' में केवल 'ब्राह्मण-शाप' का वर्णन है[११] और 'राघवीय' में शाप के केवल कारण (कबन्ध के दुर्व्यवहार) का ही संकेत है।[१२] 'राघवीय'[१३] 'महावीर-चरित[१४] और 'रामायण-मञ्जरी'[१५] में इन्द्र के वज्राघात से प्राप्त उसकी कबन्धता का वर्णन भी मिलता है। कुछ ग्रन्थों में कबन्ध के पूर्वजन्म का भी उल्लेख है। यथा रामायण-मञ्जरी'[१६] और महावीर चरित[१७] में वह अपने को श्री का पुत्र दनु भट्टिकाव्य[१८] में केवल श्री पुत्र

१ रा० मञ्जरी। अरण्य। १०७१-१०८०
२ राघवीय १०।१३-१८
३ चंपूरामायण ३।४२ के बाद-४३
४ भट्टिकाव्य ६।४५-४६
५ महाभारत। वन। २७९।२७-३१
६ महावीर चरित ५।२७
७ महावीर चरित ५।४४-४५
८ रा० मञ्जरी। अरण्य। १०८२
९ चंपूरामायण ३।४२ के बाद
१० भट्टिकाव्य ६।४६
११ महाभारत। वन। २७९।४२
१२ राघवीय १०।१५
१३ राघवीय १०।१५
१४ महावीर चरित ५।३४
१५ रा० मञ्जरी। अरण्य। १०७४
१६ " " । १०८०
१७ महावीर चरित ५।३४
१८ भट्टिकाव्य ६।४९

'राघवीय'[1] और 'चंपूरामायण'[2] में केवल मनु और 'महाभारत'[3] में विराधवध पूर्व' को बतलाता है।

(१४) रामोपदेश—इस प्रसंग में ब्राह्मणभक्ति-सम्बन्धी रामोपदेश की योजना तुलसी की मौलिक कल्पना है। बहुत सम्भव है कि 'महाभारत' में इस अवसर पर उल्लिखित 'ब्राह्मण-शाप' के उपसंहार के रूप में तुलसी ने इसको आयोजित किया हो। इस दृष्टिकोण से उनकी यह नवीन उद्भावना वस्तुतः अत्यन्त प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण है।

मानस में इस प्रसंग का एकमात्र उद्देश्य ब्राह्मण भक्ति का कथन करना है। ब्राह्मण-शाप के कारण कबन्धता-प्राप्त इस गन्धर्व से राम का यह कहना कि अन्य देवताओं के साथ वे भी ब्राह्मण भक्ति के सहज वश में रहते हैं उनकी ब्राह्मण भक्ति का समर्थ परिचायक तो है ही, साथ ही वह लोक में भी ब्राह्मण भक्ति को ईश्वर भक्ति से अधिक उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करता है।

(१५) शबरी-मिलन—कबन्ध-वध के पश्चात् 'मानस' के राम जब शबरी के आश्रम पर पहुँचते हैं तब वह उनका स्वागत करती है। उस समय वे उसे 'नवधाभक्ति का उपदेश देते हैं।[4] फिर सीता के सम्बन्ध में पूछे जाने पर शबरी राम से पम्पासर जाकर सुग्रीव-मैत्री करने का अनुरोध करती है[5] और तत्पश्चात् वह योगाग्नि में प्रविष्ट होकर 'हरिपद' में लीन हो जाती है।[6] इस प्रकार इस प्रसंग में राम के द्वारा नवधाभक्ति का उपदेश', शबरी के द्वारा सुग्रीव-मैत्री का अनुरोध' और उसके योगाग्नि-प्रवेश एवं हरिपद-प्राप्ति' का विशेष उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य में इसमें अनेक विभिन्नताएँ हैं।

(१६) नवधाभक्ति का उपदेश—'मानस' के समान ही इस अवसर पर नवधाभक्ति का वर्णन 'अध्यात्मरामायण'[7] में भी मिलता है, किन्तु वह अपना आलोच्य ग्रन्थ नहीं है। अन्य ग्रन्थों में यह प्रसंग कहीं भी प्राप्त नहीं होता है।

(१७) सुग्रीव-मैत्री का अनुरोध—केवल 'भट्टिकाव्य' की शबरी राम के सामने सुग्रीव-मित्रता और सीतादर्शन की भविष्यवाणी करती है।[8] वहाँ कोई अनुरोध नहीं है। अन्य ग्रन्थों में यह वर्णन कहीं नहीं मिलता है। इसमें 'अध्यात्मरामायण'[9] सम्मिलित नहीं है। महावीर चरित की शबरी सुग्रीव की सक्रिय सखिका है। वह सुग्रीव के पास से ही विभीषण का यह पत्र लाकर राम को

१ राघवीय १०।१५
२ चंपूरामायण ३।४३
३ महाभारत । वन । २७१।४२
४ मानस ३।३४-३५
५-६ मानस ३।३५-३६
७ अध्यात्मरामायण । अरण्य । १०।२२-२७
८ भट्टिकाव्य ६।७२
९ अध्यात्म रामायण । अरण्य ।१०।३५-३९

वाली हुई वह मार्ग में 'दुन्दुभि-कंकाल' और देती है[1] और उनको सुग्रीव के पास से 'बालि' के दर्शन कराती है।[2] इसके पश्चात् वह ऋष्यमूक से सुग्रीव का परिचय कराती है और इसी बीच में रामकृत 'बालिवध' की सूचना भी सबको देती है।[3] बालि की मृत्यु पर वह माल्यवान् के षड्यन्त्र का उद्घाटन भी करती है कि उसी ने राम पर आक्रमण करने के लिए बालि को वहाँ नियुक्त किया था।[4] 'अनर्घ राघव' की शबरी अत्यधिक सक्रिय है। वह सुग्रीव की सेवा के लिए जाम्बवान की आज्ञा से भरपूर प्रवेश-विद्या के द्वारा मन्थरा के शरीर में प्रवेश करती है और कैकयी का वाली पत्र बना कर 'राम निर्वासन' के षड्यन्त्र में सफल भी होती है।[5]

(१८) योगाग्नि प्रवेश और हरिपद प्राप्ति—राघवीय में शबरी के केवल 'योगाग्नि प्रवेश' का वर्णन है[6] जबकि 'रामायण-मञ्जरी' में उसके द्वारा 'तपोमय पद' भी प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है।[7]

(१९) नारद मिलन—'शबरी-मिलन' के पश्चात् आगे बढ़ने पर 'मानस' के राम की भेंट नारद मुनि से होती है। नारद इस बात से खिन्न हैं कि राम उनके शाप[8] को स्वीकार करके इस प्रकार वन में अनेक दुःखों को सह रहे हैं इसीलिए वे उनसे पूछते हैं कि उन्होंने उस अवसर पर 'विश्वमोहिनी' से विवाह करने से उन्हें (नारद को) क्यों रोका था जिसके कारण ही यह सब अनर्थ हुआ है।[9] इसके उत्तर में स्त्री-चरित्र की विस्तार से निन्दा करते हुए उन्हें समझाते हैं कि उनको स्त्री-सम्पर्क से बचाने के लिए ही उन्होंने वह प्रयत्न किया था।[10] फिर नारद के द्वारा पूछे जाने पर राम उनके समक्ष 'सन्त-लक्षण' का विस्तृत वर्णन करते हैं जिसके पश्चात् नारद उनकी स्तुति करते हुए वहाँ से ब्रह्मलोक चले जाते हैं।[11]

यह प्रसंग भी तुलसी की एक मौलिक योजना है। संस्कृत के ग्रंथों में यह कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। तुलसी ने सम्भवतः 'बालकाण्ड' में आए हुए नारद शाप की कथा के उपसंहार के रूप में इस प्रसंग को यहाँ प्रस्तुत कर दिया है। इसमें तुलसी का प्रमुख उद्देश्य 'स्त्री-निन्दा' और 'सन्तलक्षण' का विस्तार से वर्णन करना है और उसके लिए उन्होंने अत्यन्त उपयुक्त अवसर का चुनाव भी किया है जब राम स्वयं 'पत्नी वियोग' के कारण दुःखी हैं। तुलसी तो मानों ऐसे सुनहले अवसरों की ताक में रहते हैं और उनका सदैव पूरा-पूरा लाभ भी उठाते हैं।

---

१ महावीर चरित ३।१०

२ महावीर चरित ३।१८ ४४

३ " ३।२४ के बाद

४ " ३।२८ के बाद

५ अनर्घ राघव ४।१४ के बाद ३।१ के पूर्व, ४।६२ के बाद

६ राघवीय १०।२५

७ रा० मञ्जरी। अरण्य १११८

८ मानस १।१३७

९ मानस ३।४१-४३

११ " ३।४५-४६

४ किष्किन्धा काण्ड

पिछले काण्ड में 'सीता हरण' की मुख्य घटना का वर्णन किया गया है। वहाँ राम को जटायु से सीता के हरण-कर्ता का नाम और धाम ज्ञात हो जाता है। फिर शबरी से उन्हें सुग्रीव-मैत्री की प्रेरणा भी मिलती है। इसीलिए वे उससे मिलने के लिए 'किष्किन्धा' चले जाते हैं जहाँ उसकी दुःखगाथा सुनकर उसके भाई, किन्तु शत्रु 'बालि' का वध करते हैं। इसके पश्चात् सुग्रीव 'सीता-खोज' के लिये वानर दूतों को चारों ओर भेज देता है। इस प्रकार इस काण्ड में 'राम-सुग्रीव-मैत्री', 'बालि-वध' और 'सीता-खोज' के प्रयत्नों का ही वर्णन किया गया है।

(१) राम-सुग्रीव-मैत्री—राम और लक्ष्मण को वन में भटकते देख कर सुग्रीव को उनके 'बालि-दूत' होने की आशंका हो जाती है। इसीलिए उनका सच्चा पता लगाने के लिए वह अपने सचिव हनुमान को उनके पास भेजता है।[१] हनुमान् विप्रवेश बनाकर उनके पास आते हैं और उनके 'क्षत्रिय' या 'नर-नारायण' आदि होने का भ्रम करते हैं।[२] किन्तु राम जब उन्हें अपना परिचय देते हैं तब हनुमान उन्हें साक्षात् भगवान् पहिचान कर उनके चरणों में गिर पड़ते हैं और उनकी स्तुति करते हुए वे उन्हें अपनी पीठ पर बिठाकर सुग्रीव के पास ले आते हैं और उन दोनों की अग्निसाक्षी मित्रता भी सम्पन्न करा देते हैं।[३] इसके बाद सुग्रीव राम से 'सीताहरण' का आँखों देखा वर्णन करता हुआ उनको सीता का एक 'पट' भी दिखाता है जिसे पाकर राम बड़े क्षुब्ध होते हैं।[४] फिर सुग्रीव अपने 'बालि-विग्रह' की विस्तृत कथा बतला कर उन्हें 'दुन्दुभि कंकाल' और 'सप्त-ताल' आदि दिखलाता है जिसे राम बड़ी सरलता से गिरा देते हैं। इससे सुग्रीव को राम की शक्ति में पूर्ण विश्वास हो जाता है[५] और राम की प्रेरणा से वह बालि से द्वन्द्व युद्ध करने के लिए चला जाता है।[६] इस प्रकार इस प्रसंग में 'राम हनुमान् मिलन', 'अग्निसाक्षी-मित्रता' और राम की शक्ति-परीक्षा आदि का विशिष्ट निरूपण किया गया है जिसकी तुलना में संस्कृत साहित्य में अनेक विभिन्नतायें प्राप्त होती हैं।

(२) राम हनुमान् मिलन—संस्कृत के लगभग सभी काव्यों में सुग्रीव के द्वारा राम और लक्ष्मण को देखने और उन्हें बालि-दूत समझ कर भयभीत होने तथा हनुमान् को उनके पास भेजने का समान वर्णन मिलता है। 'रामायण-मंजरी'[७] में हनुमान् ब्राह्मण बन कर, किन्तु रामचरित[८] 'कम्बरामायण',[९] और 'भट्टिकाव्य',[१०]

१-२ ,, ४।१
३ ,, ४।२-८
४ मानस ४।५
५ मानस ४।६-७
६ ,, ४।६-७
७ रा० मञ्जरी। किष्किन्धा।६
८ रामचरित १०।४५
९ कम्बरामायण ४।६ के बाद
१० भट्टिकाव्य ६।१२

में भिक्षु बनकर राम-लक्ष्मण के समीप जाते हैं। 'रामायण-मंजरी'[1] में वे उन दोनों के सूर्यचन्द्र, इन्द्रोपेन्द्र तथा नरनारायण 'चम्पूरामायण'[2] में दो मेघ, दो जंगम कल्पवृक्ष तथा सूर्यचन्द्र और 'राघवीय'[3] में भी सूर्यचन्द्र तथा इन्द्रोपेन्द्र आदि होने का तर्क करते हैं। 'राघवीय' में वे उनको योगियों के मनोऽभीष्ट कहकर और भगवान् के रूप में पहचान कर भक्तिपूर्वक उनके चरणों में गिर भी पड़ते हैं।[4] 'रामायण-मंजरी' के लक्ष्मण परिचय के पश्चात् हनुमान् से यह भी कहते हैं कि कबन्ध के आग्रह से ही, लोक को शरण और इन्द्र को अभय देने वाले राम अब सुग्रीव की शरण में आए हुए हैं।[5] 'राघवीय' के राम सुग्रीव को सूर्य-पुत्र होने के कारण अपना सगोत्र भाई बतला कर उससे मिलने की उत्सुकता व्यक्त करते हैं।[6]

नाटकों में केवल 'हनुमन्नाटक' में ही इस विषय का वर्णन है। वहाँ हनुमान् को 'रौद्रस्यावतार' बतलाया गया है।[7] 'राघवीय' में उन्हें 'शब्द विद्या में सूर्य शिष्य' और 'सर्वगीर्वाणसार से अधिक' कहा गया है।[8] हनुमन्नाटक' में परिचय के पश्चात् हनुमान् ही उन्हें सीता के आभूषण' दिखलाते हैं, जिससे अधिक खिन्न होकर राम सुग्रीव से मित्रता करने के लिये उनके साथ शीघ्र चल देते हैं।[9]

(३) अग्निसाक्षी मित्रता—'मानस' के समान ही राघवीय[10] भट्टि काव्य,[11] चम्पू रामायण,[12] हनुमन्नाटक[13] और रामकथा[14] आदि में इस प्रसंग का वर्णन मिलता है, जबकि 'रामायण-मंजरी'[15] में और 'महावीरचरित'[16] में राम और सुग्रीव के 'पाणिपीडन' का भी उल्लेख है किन्तु 'महावीर चरित' में यह मित्रता बालि के आदेश से सम्पन्न होती है। वहाँ बालि अपनी मृत्यु के समय सुग्रीव को बुलाकर राम के हाथों में सौंप देता है और उसे राम का आमरण मित्र बनने के लिये आदेश देता है।[17] अनर्घ राघव में भी 'बालि-वध' के पश्चात् राम-सुग्रीव मित्रता का वर्णन है[18] किन्तु वहाँ सुग्रीव पहले से ही राम का गुणानुरागी है और

---

१ रा० मंजरी। किष्किन्धा।९ २ चम्पूरामायण ४।६ के बाद
३ राघवीय १०।४० ४ राघवीय १०।३८, ४२
५ रा० मंजरी। किष्किन्धा। १२-१४ ६ राघवीय १०।५९-६०
७ किष्किन्धाद्रौ रौद्रस्यावतारं दृष्ट्वा रामो मारुतिं वायुसूनुं।
सीता गीता येनचिन्तयापि दृष्टा हृष्टः कष्टं संहरन्माह वीरः॥

हनुमन्नाटक ५।११

८ राघवीय १०।४५ ९ हनुमन्नाटक ५।३४-४०
१० राघवीय १०।६१ ११ भट्टिकाव्य ७।१०४
१२ चम्पू रामायण ४।८ के बाद १३ हनुमन्नाटक ५।४०
१४ रामकथा पृष्ठ ९१ १५ रा० मंजरी किष्किन्धा। २१-२४
१६ महावीर चरित ५।६० १७ महावीर चरित ५।५८ के बाद
१८ अनर्घ राघव ५।५३ के बाद

इसीलिए वह युद्ध को पहले ही उनके पास भेज कर उनसे मित्रता की प्रार्थना भी करता है।[1]

(४) राम की शक्ति परीक्षा—'मानस' में राम की शक्ति का केवल प्रदर्शन वर्णित है, किन्तु संस्कृत के ग्रन्थों में उस परीक्षा का रूप दे दिया गया है। 'रामायण-मंजरी' में राम की शक्ति में शंकित सुग्रीव उनसे 'दुन्दुभि-कंकाल' को फेंकने की प्रार्थना करता है। फिर उसे भी अपर्याप्त समझ कर वह उनसे 'सप्त ताल भेद' करने का आग्रह करता है। इन दोनों परीक्षाओं में राम के सफल होने पर अपनी धृष्टता पर वह लज्जित भी होता है।[2] भट्टिकाव्य[3] राघवीय[4] चम्पू रामायण[5] आदि में भी इसी प्रकार 'शक्ति-परीक्षा' का वर्णन मिलता है। 'अभिषेक' नाटक[6] में केवल सप्तताल भेद' का उल्लेख है। 'महावीर चरित'[7] और 'अनर्घ राघव'[8] में ये घटनायें राम की शक्ति-परीक्षा से सम्बद्ध नहीं हैं। वहाँ राम 'दुन्दुभि कंकाल' को यों ही पैर के अंगूठे से फेंक देते हैं और उनका बाण बालि के हृदय के साथ ही सप्ततालों को भी एक साथ भेद देता है। अनर्घ राघव में दुन्दुभि-कंकाल' को लक्ष्मण फेंकते हैं और सप्तताल भेद' राम के बाण से ही 'बालि वध के पूर्व पूर्व घटित होता है। 'हनुमन्नाटक'[9] और 'महानाटक'[10] में ये सप्त-ताल सजीव हैं और वे बालि की आज्ञा से राम से युद्ध करने के लिए बढ़ आते हैं, तब राम उन्हें एक ही बाण से समाप्त कर देते हैं क्योंकि वहाँ लक्षण के अनुसार सप्ततालों के भेद में यदि पहला बाण असफल हो जाता है तो वे सप्तताल बाणामक को ही मार डालते हैं। 'द्विसन्धान' में सुग्रीव लक्ष्मण से कोटि-शिला उठवा कर उनकी शक्ति-परीक्षा लेता है और उसी से राम की शक्ति का अनुमान कर लेता है।[11]

तुलसी ने इस अंश में 'राम-हनुमान् संवाद' में भक्ति का जो सरस और भाव पूर्ण प्रतिपादन किया है, वह अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। इसके साथ ही राम की शक्ति का प्रभावशाली वर्णन करके भी उन्होंने उसे परीक्षा की भावना से बचा कर, राम और सुग्रीव दोनों के चरित्र को और भी उत्कृष्ट चित्रित कर दिया है।

---

१ अनर्घ राघव ५।११ के बाद
२ रा० मंजरी। किष्किन्धा ८७-९८
३ भट्टिकाव्य ६।११४-११८
४ राघवीय १०।६६
५ चम्पू रामायण ४।१२ के बाद
६ अभिषेक १।१२
७ महावीर चरित ५।१८ के बाद ५।२४ के बाद
८ अनर्घ राघव ५।२२ २२
९ हनुमन्नाटक ४।४४-५०
१० महानाटक ४।१६ ११
११ द्विसन्धान १२।४४

(५) वालि-वध—राम को 'प्रभु' पहचान कर 'मानस' का सुग्रीव जब लौकिक आकर्षणों से विरक्त होकर उनकी भक्ति करना चाहता है, तब राम उसको अपने दैवी प्रभाव से समझा बुझा कर उसे वालि के पास युद्ध करने के लिए भेज देते हैं। सुग्रीव की ललकार सुन कर वालि के दौड़ने पर उसकी पत्नी तारा उसे रोकती है और उससे राम तथा लक्ष्मण के बल का उल्लेख करती है। उस समय वालि, राम को 'समदर्शी' कह कर उन्हें युद्ध से निरपेक्ष बतलाता है तथा उनके हाथों से अपनी मृत्यु में मुक्ति का संकेत भी करता है।[1] वालि-सुग्रीव-युद्ध में सुग्रीव के हार कर भागने पर राम उसे पुष्पहार पहना कर दुबारा प्रेरित करते हैं। फिर भी सुग्रीव को हारते देखकर वे एक बाण से वालि को मृतप्राय कर देते हैं।[2] वालि के द्वारा अपने वध का कारण पूछे जाने पर राम उसको 'अनुज-वधू-हरण' का दोषी और अपने आश्रित सुग्रीव का द्वेषी बतलाते हैं। वालि के क्षमा माँग लेने पर राम उससे जीवित रहने का आग्रह करते हैं पर वह मृत्यु के समय उनके दर्शन को महत्वपूर्ण बतला कर अधिक जीना नहीं चाहता है। इसके पश्चात् वह अपने पुत्र अंगद को राम के चरणों में सौंप कर प्राणत्याग कर देता है और राम उसे निज धाम भेज देते हैं।[3] तदुपरान्त तारा को 'पतिमरण' से व्याकुल देखकर राम उसे ज्ञानोपदेश देकर शान्त करते हैं और लक्ष्मण के द्वारा सुग्रीव को राज्य और अंगद को यौवराज्य दिलवा कर उनका अभिषेक भी करवा देते हैं।[4] इस प्रसंग में तुलसी ने वालि की मुक्ति-भावना, सुग्रीव-वालि-युद्ध, राम वालि-संवाद और वालि की हरिधाम प्राप्ति आदि का विशेष वर्णन किया है।

(६) वालि की मुक्ति भावना—'अध्यात्म रामायण' का वालि राम की युद्ध-निरपेक्षता और ईश्वरता का उल्लेख तो तारा से करता है किन्तु उनके हाथों से अपनी मृत्यु की कल्पना भी नहीं करता है। वह तो राम का स्वागत करके उनको अपने आवास में लाने की योजना बनाता है।[5] मृत्यु के समय वह राम से अपनी मुक्ति का संकेत अवश्य करता है।[6] तुलसी ने इन दोनों बातों को एकत्र समन्वित करके उसकी मौलिकता का संपादन किया है। इसके अतिरिक्त यह वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है।

(७) सुग्रीव-वालि-युद्ध—रामायण-मञ्जरी[7] 'भट्टिकाव्य'[8],

---

१ मानस ४।७ २ मानस ४।८
३ ,, ४।९-१० ४ ,, ४।११
५ अध्यात्म रामायण । किष्किन्धा २।१४-१७ ६ अध्यात्म रामायण । किष्किन्धा २।१४ ४७
७ रा० मञ्जरी । किष्किन्धा । १०३-१२६

'आनन्दरामायण'[1], 'रघुवीर'[2], 'महाभारत'[3], 'अभिषेक'[4] आदि का वर्णन 'मानस' के वर्णन से बहुत समानता रखता है। हनुमन्नाटक[5] 'महावीर चरित'[6] और अनर्घराघव[7] आदि में तो केवल राम और बालि के युद्ध का उल्लेख किया गया है। हनुमन्नाटक' में तारा सुग्रीव की पत्नी है और इसीलिए वह बालि-वध' के लिए अधिक उत्सुक है।[8] शेष दोनों नाटकों में तारा का नामोल्लेख नहीं है। उसके आग्रह का वर्णन केवल 'महाभारत' और 'रामायण-मञ्जरी' में मिलता है। 'महाभारत' की तारा 'सर्वभूतरुतज्ञा' (सब प्राणियों की भाषा जानने वाली) है, इसीलिए वह सुग्रीव की ध्वनि से ही यह जान लेती है कि उसे राम की कृपा प्राप्त हो गई है।[9] रामायण-मञ्जरी में उसका यह ज्ञान अंगद की सूचना पर आधारित है।[10]

(८) राम बालि-संवाद—संस्कृत के ग्रंथों का बालि राम को बहुत खरी-खोटी सुनाता है। 'रामायण-मंजरी' में वह राम को मर्यादा विध्वंसी सदाचार हीन सर्वगुणापहारी विपन्नघाती प्रच्छन्नघाती धर्मध्वज मिथ्याविनीत आदि कहता है।[11] 'भट्टिकाव्य' में वह उनको 'नृपाहविर्जयी' परम तापस अस्त्रव्यापारपाती ब्रह्म-हत्या-पापी पापकृत्या क्षित आदि कह कर सम्बोधित करता है।[12] 'हनुमन्नाटक'[13] और 'रामायण-मंजरी'[14] का बालि राम से यह भी कहता है कि रावण तो उसके चरण में रज पुञ्ज है अतः वह उसको विजय करके उन्हें सीता को सौंप दिया सकता था। वहाँ भी उसके द्वारा पूछे जाने पर राम उसके वध का कारण भ्रातृ-जाया रति और (दासा) सुगत्य बतलाते हैं।[15] 'भट्टिकाव्य'[16], 'रघुवीर'[17] अभिषेक'[18] महानाटक[19] आदि में वे उनका भ्रातृवध का भी उल्लेख करते हैं। 'अभिषेक' का बालि 'भ्रातृजायाभिमर्शन' को अपना जाति-धर्म

---

१ पंचु रामायण ४।१३ के बाद
२ रघुवीर १०।७०–८२
३ महाभारत। वन। २८०।११–१७
४ अभिषेक १।७–११
५ हनुमन्नाटक ५।१६–१४
६ महावीर चरित ५।१०–२३
७ अनर्घ राघव ५।४६–५०
८ हनुमन्नाटक ५।५१
९ महाभारत। वन। २८०।१९–२१
१० रा० मञ्जरी। किष्किन्धा। १११–१४५
११ ' ' । १९६–१९६
१२ भट्टिकाव्य ६।१२६–१३६
१३ हनुमन्नाटक ५।२६
१४ रा मंजरी। किष्किन्धा। १७०–१८२
१५ ' " । १७३–१७८
१६ भट्टिकाव्य ६।१३८–१३६
१७ रघुवीर
१८ अभिषेक १।१६
१९ महानाटक ४।७०

बतलाता है और उसके अधर्मी होने पर वह सुग्रीव को भी समान अपराधी कहता है। इस पर राम केवल बड़े भाई को ही इस दिशा में अपराधी बतलाते हैं।[1]

(९) बालि की हरिधाम प्राप्ति—'पद्मपुराण' में बालि के द्वारा अपनी मृत्यु के समय राम के ईश्वरत्व का वर्णन करने और उनसे 'सद्गति देने की प्रार्थना'[2] करने का उल्लेख है। अन्य ग्रंथों में इसका संकेत नहीं मिलता है।

इस प्रसंग में तुलसी ने अपने उद्देश्य विशेष के कारण सुग्रीव के विराग बालि की मुक्ति-भावना और उसकी 'हरिधाम प्राप्ति' आदि की मौलिक योजना प्रस्तुत करके विशेष चमत्कार का सृजन कर दिया है जो संस्कृत ग्रन्थों में सुलभ नहीं है।

(१०) सीता-शोध—सुग्रीव के 'राज्याभिषेक' के पश्चात् राम वर्षारम्भ हो जाने के कारण सीता-शोध में विवश होकर समीप के ही प्रवर्षण-पर्वत पर प्रवास करते हैं। वर्षाकाल के बाद भी सुग्रीव को निरुद्योग जानकर वे बहुत क्षुब्ध होते हैं और लक्ष्मण को भेज कर उसे बुलवाते हैं।[3] इधर सुग्रीव को प्रमाद-ग्रस्त देख कर हनुमान उसे सामादि उपायों से समझाते हैं तथा वानर-यूथों को बुलाने की व्यवस्था भी करते हैं और उधर लक्ष्मण को क्रुद्ध होकर आते देख कर वे उन्हें मनाते हैं। फिर सुग्रीव सबके साथ राम के समीप आकर उनसे क्षमा माँग लेता है और वानर-यूथों को बुला कर उन्हें सीता-शोध के लिये चारों ओर जाने और अधिक से अधिक एक मास में ही लौट आने का आदेश देता है।[4] सबके अन्त में वह हनुमान् अंगद नल नील और जाम्बवन्त आदि को बुला कर दक्षिण दिशा में भेजता है। उसी समय राम हनुमान् को अपनी मुद्रिका देकर उन्हें सीता से मिलने और आश्वस्त करने के लिए समझाते हैं।[5] मार्ग में प्यास से विकल होकर वानर-यूथ एक पर्वत-विवर में प्रवेश करते हैं जहाँ उन्हें एक तपस्विनी स्त्री के दर्शन होते हैं। वह उनका स्वागत करके उन्हें सीता प्राप्ति की सान्त्वना देती है और उनसे अपनी आँखें बन्द करके बाहर चले जाने का अनुरोध भी करती है।[6] इधर बाहर आते ही वे सब वानर-यूथ समुद्र को सामने देख कर चिन्तामग्न हो जाते हैं और उधर वह तपस्विनी राम के पास जाकर उनकी स्तुति करती है और उनसे अनपायिनी भक्ति का वरदान पाकर बदरीवन चली जाती है।[7] समुद्र-तट पर वानरों का कोलाहल सुन जटायु का बड़ा भाई सम्पाति अपनी पर्वतगुफा से बाहर निकल कर उन्हें देखता है और अपना आहार समझ कर बड़ा प्रसन्न होता है।[8]

---

१ अभिषेक १।१६ के बाद-२१
२ पद्म । पाताल । ११६।३० के बाद
३ मानस ४।१८
४ मानस ४।१९-२१
५ " ४।२३
६ " ४।२४-२५
७ " ४।२५
८ " ४।२७

किन्तु अंगद से जटायु-कथा सुनकर वह खिन्न हो जाता है और उन सबको अभय दान देकर अपने और जटायु के भ्रातृत्व तथा सूर्य अभियान आदि के सम्बन्ध में बतलाता है। वह चन्द्रमा मुनि की उस भविष्यवाणी का भी उल्लेख करता है कि राम दूतों के दर्शन से उसे नये पंखों की प्राप्ति होगी, जिससे सत्य सिद्ध होने पर वह उन सबको लंका में स्थित सीता का पता बतलाता है और सागर-पार करके वहाँ जाने का पथ बता कर चला जाता है।[1] इस प्रकार इस प्रसंग में सुग्रीव-प्रमाद, वानरदूत-प्रेषण, तपस्विनी-मिलन और सम्पाति-मिलन का विशेष वर्णन किया गया है। संस्कृत साहित्य में इसकी अनेक रूपता दर्शनीय है।

(११) सुग्रीव-प्रमाद—संस्कृत काव्यों में इसका वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। 'राम-चरित' महाकाव्य का आरम्भ ही इसी से होता है। वहाँ लक्ष्मण सुग्रीव के प्रमाद का उल्लेख करते हुए उसे दण्डित करने के लिए जब राम से किष्किन्धा जाने की आज्ञा माँगते हैं तब राम सुग्रीव के प्रति निराशा व्यक्त करते हैं। फिर भी जटायु और कबन्ध के वचनों का उल्लेख करके वे लक्ष्मण से कहते हैं कि उन्हें उसके स्वयं आगमन की प्रतीक्षा करनी चाहिए।[2] वहाँ सुग्रीव के आने पर राम उसकी सहायता अस्वीकार कर देते हैं और जब वे उससे लौट जाने का अनुरोध करते हैं, तब सुग्रीव अपने प्रमाद के लिए क्षमा माँग लेता है।[3]

'रामायण-मंजरी' के राम सुग्रीव को कार्यपराङ्मुख स्वार्थ पण्डित दुरात्मा आदि बतला कर पहले लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि वे सुग्रीव से यह स्पष्ट कह दें कि यदि वह उनकी उपेक्षा करेगा तो वे उसे बालि की तरह समाप्त कर देंगे।[4] फिर उन्हें रोक कर वे सुग्रीव से नम्र व्यवहार ही करने के लिए उनसे अनुरोध करते हैं।[5] वहाँ तारा क्रुद्ध लक्ष्मण से यह भी कहती है कि उनके लिए सुग्रीव राम के समान ही पूज्य है।[6] 'महाभारत' के भी राम सुग्रीव को ग्राम्यधर्मप्रमत्त, स्वार्थ पण्डित कुलाधम कृतघ्न, वानरापसद, आदि मान कर लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि वे किष्किन्धा जाकर उसे यदि भोगासक्त पावें तो उसे वहीं समाप्त कर दें, अन्यथा उसे उनके पास बुलावें। वहाँ लक्ष्मण के आने पर सुग्रीव स्वयं को अपराधी न मान कर अपनी सारी भावनायें उनको बतलाता है कि उसने दूतों को एक मास की अवधि देकर चारों ओर पहले ही भेज दिया है।[7] 'भट्टिकाव्य' में भी राम सुग्रीव के लिए मर्षण (स्वैर) प्रमत्त मूढ़स्वभाव स्त्रीवत्सल, स्त्रीसुखवान् आदि विशेषणों का प्रयोग करते हुए लक्ष्मण से कहते हैं कि वह प्रमादी सुग्रीव भी यमपथ बालि की

---

१ मानस ४।२४–२९ २ रामचरित १।२०–३१
३ रामचरित १।४१–६० ४ रा० मंजरी । किष्किन्धा । ६१–६३
५ रा० मंजरी । किष्किन्धा । ७६–८१ ६ " " " । १४९–१५१
७ महाभारत । वन । २८२।४।२२

तरह उनके हाथों से मरना चाहता है।[1] चम्पूरामायण[2] 'अग्निपुराण'[3] और 'राघवीय'[4] में भी राम-क्रोध का ऐसा ही उल्लेख मिलता है।

तुलसी ने इस प्रसंग के विस्तार में बड़े संयम से काम लिया है। संस्कृत काव्यों की परम्परा के अनुसार वे राम के 'मानवोचित' क्रोध का वर्णन करते हैं और शीघ्र ही उसे 'नरलीला' कह कर उसमें अलौकिकता का सम्पादन भी कर देते हैं। लक्ष्मण के क्रोध का संकेत करते हुए भी वे सुग्रीव की मर्यादा की रक्षा के लिए उसे व्यक्त नहीं होने देते हैं, जबकि संस्कृत ग्रन्थों के लक्ष्मण प्रायः सर्वत्र अपनी सीमा का उल्लंघन कर जाते हैं।

(१२) वानर-दूत प्रेषण—'रामायण-मंजरी' में वानर-दूतों का बड़े विस्तार से नामोल्लेख किया गया है। यहाँ पूर्व दिशा में विनत दक्षिण दिशा में जाम्बवान् पश्चिम दिशा में सुषेण और उत्तर दिशा में शतबलि के प्रमुख दूत बन कर जाने का उल्लेख किया गया है।[5] यहाँ सुग्रीव उन्हें चारों दिशाओं की नदियों, पर्वतों देशों और उनके निवासियों का पूर्ण विवरण देकर उनको बड़ी सतर्कता के साथ अपने अपने क्षेत्र में सीता-शोध करने के लिए आदेश देता है। राम के पूछने पर सुग्रीव अपने इस विस्तृत भौगोलिक ज्ञान का कारण 'बालि भय' बतलाता है जिससे आतंकित होकर भटकते रहने के कारण उसे देश का इतना अधिक परिचय प्राप्त हो गया है।[6] यहाँ पूर्व पश्चिम और उत्तर के नायकों के निराश लौट आने के पश्चात् ही दक्षिण दल के भेजे जाने का उल्लेख है।[7] 'चम्पूरामायण'[8], 'राघवीय'[9] 'भट्टिकाव्य'[10] आदि में भी विनत आदि के इन्हीं दिशाओं में नियुक्त किए जाने का वर्णन है किन्तु वहाँ भौगोलिक विवरण नहीं मिलता है और अन्तिम दो ग्रंथों में विनत आदि के लौटने का संकेत भी नहीं है। 'महाभारत' में भी विनत आदि का नामोल्लेख नहीं है किन्तु शेष वर्णन समान है।[11]

'रामचरित' में यह वर्णन अति विस्तृत है। यहाँ सुग्रीव राम के समक्ष सभी वानर-सेना-पतियों का परिचय देता है और शतबलि सुषेण और विनत को पूर्वोक्त दिशाओं का निवासी तथा केसरी तार गवाक्ष दधिमुख गन्धमादन नल रुमण्वान् मैन्द द्विविद अंगद, जाम्बवान् नल नील हनुमान् आदि को सर्वगामी

---

1 भट्टिकाव्य ७।१६–१८
2 चम्पूरामायण। किष्किन्धा। १४ के बाद
3 अग्निपुराण ८।५–७
4 राघवीय ११।१७–६२
5 रा० मंजरी। किष्किन्धा।२०३–२६२
6 रा० मंजरी। किष्किन्धा।२१६–२६४
7 " " ।२६५–६७
8 चम्पूरामायण। ।१८
9 राघवीय ११।६६–७०
10 भट्टिकाव्य ७।३५–५१
11 महाभारत। वन। २८२।२३–२४

कह कर अब उनसे ही इन वानरों की नियुक्ति की प्रार्थना करता है।[1] तब राम सीता की मृत्यु की कल्पना करके सुग्रीव से लौट आने का आग्रह करते हैं और कहते कि यदि वे वानर-दूत कहीं सीता को देख भी लेंगे तो भी परिचय के अभाव में वे उन्हें पहचान नहीं सकेंगे।[2] फिर सुग्रीव के अनुरोध पर वे सीता के रूप गुणों, गुप्त और प्रकट अंगों आदि का विवरण देकर उनके रक्त चरण कुचनयन स्मित अधर और चूड़ामणि आदि की विशेष पहचान भी बतलाते हैं।[3] यहां दूतों को भेजते समय किसी के लिए किसी दिशा विशेष का संकेत नहीं किया गया है। वहीं हनुमान् को प्रस्थान के लिये उद्यत देख कर राम उनको रोक लेते हैं और उनसे सीता के रूप और गुण का पुन अत्यन्त विस्तृत वर्णन करके अपनी पहचान के लिए उन्हें अपनी मुद्रिका और सीता का मणिनूपुर तथा स्तनोत्तरीय भी दे देते हैं। इसके पश्चात वे उन्हें परिचय और सन्देश देना सिखलाते हुए 'सीताहरण' के पश्चात् 'वानरदूत प्रेषण'[4] से सम्बन्धित अपने उद्योगों, 'दिलीप' से लेकर दशरथ तक अपने वंश के पूर्वजों[5] और अन्ध-तापस शाप से लेकर अपने जन्म विवाह निर्वासन और चित्रकूट प्रवास[6] तक की घटनाओं का समस्त विवरण भी देते हैं। इसके साथ ही वे उनसे अपना बल-वर्णन भी करते हैं।[7] यहां हनुमान आदि एक मास तक वहां ठहर कर अन्य दिशाओं के सभी दूतों के निरुद्ध लौट आने पर ही वहां से प्रस्थान करते हैं।[8] इन दूतों के विवरण के माध्यम से लेखक ने वहां भारत के दक्षिणापथ का तत्कालीन भौगोलिक चित्रण विस्तार से प्रस्तुत कर दिया है।[9]

रामायण-मञ्जरी[10], रामदीप[11] भट्टिकाव्य[12] हनुमन्नाटक[13] आदि में भी इस अवसर पर हनुमान् के साथ राम के सम्वाद तथा मुद्रिका-दान का कथन किया गया है। रघुवंश[14], चम्पू रामायण[15] अग्निपुराण[16] प्रसन्न राघव[17] आदि में संवाद न होने पर भी मुद्रिका का उल्लेख सीता-हनुमान्-संवाद में अवश्य मिलता है किन्तु महाभारत[18] और पद्मपुराण[19] में मुद्रिका का भी कोई संकेत नहीं है।

तुलसी ने इस वर्णन में अपनी मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का बड़ा अच्छा परिचय

---

१ रामचरित ६।१६-८६
२ रामचरित ७।११-२२
३ " ७।१८-८०
४ " ८।११-२१
५ " ८।२४-३९
६ " ८।४०-२३
७ " ८।५४-६५
८ " १०।१०९
९ " १०।११-१०३
१० रा० मंजरी। किष्किन्धा।२४५, २४६
११ रामदीप ११।७१-७४
१२ भट्टिकाव्य ७।४७-५०
१३ हनुमन्नाटक ६।७
१४ रघुवंश १२।६२
१५ चम्पू रामायण ५।१०
१६ अग्निपुराण ८।११, ६।६
१७ प्रसन्नराघव ६।१८
१८ महाभारत। वन। २८२। ६२-७१
१९ पद्म। उत्तर। २४२। २३०

किया है। संस्कृत के वर्णनों में न तो उतनी हार्दिकता है और न आत्मीयता। 'राम चरित' के अनावश्यक विस्तार को ही संस्कृत के ही अन्य ग्रंथों में कहीं समर्थन प्राप्त नहीं हुआ है। संस्कृत के कवि इस अवसर पर अपने भौगोलिक ज्ञान के प्रदर्शन में प्रवृत्त होकर राम के विरही हृदय के तीव्र स्पन्दन को प्राय बिल्कुल भूल गये। विरहकाल में जब एक क्षण युग सा व्यतीत हो रहा हो तब इतना बड़ा विस्तार प्रस्तुत कर देना कवि के महाकवित्व का परिचायक भले ही हो उसके कवि हृदय का प्रमाण नहीं देता है। तुलसी ने इस प्रसंग में संक्षेप के प्रयोग से एक मार्मिक प्रभाव उत्पन्न कर दिया है।

(१३) तपस्विनी-मिलन—'मानस' में 'तपस्विनी' का कोई नाम नहीं दिया गया है, किन्तु 'रामायण-मञ्जरी' में उसका नाम 'स्वयंप्रभा' बतलाया गया है। यहाँ उसके सौन्दर्य और वानरों के साथ उसके संवाद का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। वे तुरंग यहीं एक मास तक आनन्द करते हैं फिर स्वयंप्रभा उनकी आँखें बन्द करा के उन्हें गुफा से बाहर समुद्र-तट पर पहुँचा देती है।[1] रामचरित में गुफा में प्रवेश करते ही वानरों की पहली भेंट 'दुर्दम' नामक राक्षस से होती है, जिसे अंगद समाप्त करते हैं। वहीं पर एक वानरी हनुमान से दो बार प्रेम प्रस्ताव करती है और तिरस्कृत होती है, फिर स्वयंप्रभा के आते ही वह अदृश्य हो जाती है। यहाँ भी स्वयंप्रभा के सौन्दर्य और उसके जन्म-वृत्तान्त का विस्तृत वर्णन किया गया है।[2] 'भट्टिकाव्य'[3] 'रामचीत'[4], 'चम्पू रामायण'[5] आदि में भी स्वयंप्रभा के द्वारा वानरों के स्वागत तथा उन्हें समुद्रतट तक पहुँचाने का ऐसा ही समान वर्णन मिलता है। 'महाभारत' में उस तपस्विनी का नाम प्रभावती है[6] और वहाँ उसके द्वारा किये गये वानरों के केवल स्वागत का ही उल्लेख है। 'अग्निपुराण' के अनुसार उसका नाम सुप्रभा है। वहाँ स्वागत आदि का कोई संकेत नहीं है।

तुलसी ने इस प्रसंग को भी आवश्यकता के अनुसार संक्षिप्त करके अपनी सुरुचि का प्रमाण दिया है। इसके साथ ही अपने सिद्धान्त-विशेष के अनुरोध से उन्होंने स्वयंप्रभा को 'रामभक्ति' का विशद वर्णन करके सारे प्रसंग में एक नवीनता का सृजन कर दिया है।

(१४) सम्पाति-मिलन—'रामायण मञ्जरी' का वर्णन 'मानस' के वर्णन से बहुत साम्य रखता है। वहाँ सम्पाति अंगद से सब दुख जानकर रावण के वध

---

१ रा० मञ्जरी। किष्किन्धा।१२७–११२
२ रामचरित ११।७–११४ से ११।१२
३ भट्टिकाव्य ७।६२–७०
४ रामचीत ११।७७
५ चम्पू रामायण ४।१६ के बाद
६ महाभारत। वन।२८२–४१–४२
७ अग्निपुराण ८।११

करने की इच्छा व्यक्त करता है, किन्तु वृद्धता के कारण अपने को असमर्थ बतलाता है। वह अपने और जटायु के 'सूर्य-अभियान' का वर्णन करता हुआ 'निशाकर' मुनि की कृपा और उनके वरदान का भी उल्लेख करता है।[1] 'रामचरित' का सम्पाति अपने और जटायु के मेघ हिमालय मुन्दय, सूर्य आदि के अभियानों का उल्लेख करता है। वहां निशाकर मुनि के वरदान का उल्लेख मानस' के वर्णन के समान ही है।[2] इन दोनों ग्रंथों में संपाति के और उसके पुत्र सुपार्श्व के सीता रक्षा के लिए किये गये उपयोगों का भी सविस्तार निरूपण मिलता है।[3] चम्पू रामायण[4] राम कथा[5] अग्निपुराण[6] रामचीय[7] आदि में भी इसी प्रकार सम्पाति के द्वारा पक्षप्राप्ति तथा 'सीता की प्रवृत्ति' बतलाने का वर्णन किया गया है। महाभारत[8] और भट्टिकाव्य[9] में उसकी 'पक्षप्राप्ति' का संकेत नहीं है। रघुवंश में केवल एक पंक्ति में ही 'सीता प्रवृत्ति' का उल्लेख किया गया है।[10]

मानस' के इस प्रसंग में तुलसी ने परम्परा से प्राप्त कथा को बड़े कौशल से संक्षेप में समन्वित किया है। अन्त में सम्पाति के मुख से रामभक्ति के महत्व का निरूपण करा के इन्होंने उसमें अलौकिक भक्ता का पुट दे दिया है, जो अन्यत्र संस्कृत ग्रंथों में दुर्लभ है।

५ सुन्दर काण्ड

पिछले काण्ड में सम्पाति के उल्लेख से हनुमान् आदि को सीता के लंका में होने का पुष्ट प्रमाण मिल जाता है। इसके पश्चात् इस काण्ड में 'हनुमत् समुद्र-लंघन' 'हनुमान् विभीषण-मिलन' 'हनुमान-सीता-मिलन' 'लंका-दहन' 'विभीषण की शरणागति' और 'समुद्र शासन' आदि का विशेष वर्णन किया गया है। संस्कृत के ग्रन्थों में इन प्रसंगों में अनेक विभिन्नतायें प्राप्त होती हैं।

(१) हनुमान समुद्र-लंघन—'सीता-खोज' के लिये लंका पहुंचने के विचार से 'मानस' के हनुमान् जब समुद्र-लंघन' करने लगते हैं तब समुद्र उनके राम-दूत होने के नाते उनका विश्राम और सहायता देने के लिए समुद्र 'मैनाक' को भेजता है। हनुमान उसे अनावश्यक कह कर आदर विदा कर देते हैं।[11] फिर नागमाता सुरसा देवताओं की प्रेरणा से उनकी बल बुद्धि परीक्षा के लिए उनके पास आकर

---

१ रा० मञ्जरी । किष्किन्धा ३६५–४१४
२ रामचरित १४।६६–७०
३ प्राकृत विमर्श, पृष्ठ ८,१४
४ चम्पूरामायण । किष्किन्धा । ४०–४१
५ रामकथा, पृष्ठ १०
६ अग्निपुराण ८।१३–१५
७ रामचीय ११।७८–७९
८ महाभारत । वन । २८२।४७–५७
९ भट्टिकाव्य ७।७६–१०१
१० रघुवंश ।१२।६०
११ मानस ५।१

उन्हें खाने का विचार प्रकट करती है। हनुमान उसे समझाते हैं, किन्तु उसके न मानने और अपना मुँह 'एक योजन' चौड़ा बना लेने पर वे भी अपने मुँह को 'दो योजन' का बना लेते हैं। फिर उसके 'सोलह योजन' का मुँह बना लेने पर वे 'बत्तीस योजन' का मुँह बना लेते हैं। वे उसके मुख विस्तार के उत्तर में अपने मुख विस्तार को बराबर दुगुना रखते हुए अन्त में उसके 'सौ योजन' कर लेने पर स्वयं 'अति लघुरूप' धारण करके उसके मुख में प्रवेश करके शीघ्र ही बाहर निकल आते हैं और उससे विदा माँगते हैं। हनुमान की यह दक्षता देखकर सुरसा उन्हें रामकार्य सम्पन्न करने का आशीर्वाद भी दे देती है।[1]

वहाँ सुरसा के बाद हनुमान की भेंट एक छाया-ग्राहिणी निशचरी से होती है, जिसे मार कर वे समुद्र के पार पहुँच जाते हैं।[2] वहाँ उनके द्वारा 'मशक रूप' धारण करके लंका में प्रवेश करने पर भी लंकिनी राक्षसी उन्हें पकड़ लेती है। जब हनुमान उससे मुक्ति पाने के लिए उस पर मुष्टि प्रहार करते हैं तब वह उनसे ब्रह्मा के वचनों का उल्लेख करती हुई निशाचर नाश की भविष्यवाणी करती है और उन्हें लंका-प्रवेश की अनुमति दे देती है।[3]

'रामायण-मञ्जरी' का यह वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान होने पर भी अधिक विस्तृत है। वहाँ समुद्र की प्रेरणा के साथ-साथ वायु के उपकार का बदला चुकाने के लिये भी मैनाक वायु-पुत्र हनुमान की सहायता करना चाहता है। 'सुरसा-वर्णन' में वहाँ सुरसा के राक्षस-रूप धारण करने और दस योजन का मुँह बनाने का वर्णन है। वहाँ भी उसके 'सौ योजन' का मुँह कर लेने पर हनुमान अंगुष्ठ-मात्र होकर उसके मुँह में प्रवेश करते और बाहर निकलते हैं। वहाँ उसके आशीर्वाद का संकेत नहीं है।[4] छाया ग्राहिणी निशचरी का नाम वहाँ राहुमाता सिंहिका है जिसके द्वारा रोके जाने पर हनुमान उसके मुँह में प्रवेश करके उसका वक्षस्थल फाड़ करके बाहर निकल आते हैं।[5] 'रामचरित' में नागमाता सुरसा के स्थान पर देवमाता सरमा का वर्णन है। वहाँ वे दोनों (हनुमान और सुरसा) एक दूसरे को पराजित करने के लिये आकाश में अपने शरीर का विस्तार करते हैं। अन्त में हनुमान वहाँ 'अणुरूप' होकर उसकी स्तुति करते हैं और विदा माँग लेते हैं। वहाँ सरमा के बाद मैनाक का वर्णन है फिर हनुमान और सिंहिका का

---

१ मानस ५।२ २ मानस ५।३
३ ,, ५।४-५
४ रा० मञ्जरी। किष्किंधा। ५४१-५४३
५ रा० मञ्जरी। किष्किंधा। ५४८-५५९
६ ,, ,, ५६०-६४
७ रामचरित १६।४१ ८६

विस्तृत संवाद भी है।[१] 'भट्टिकाव्य'[२], 'राघवीय'[३], 'चम्पू रामायण'[४] आदि में भी मैनाक वायु के उपकार का संकेत करता है। भट्टिकाव्य में मैनाक-मिलन' से पूर्व हनुमान की भेंट एक अन्य राक्षसी से वर्णित हुई जिसके मुख में घुस कर और उसका पेट फाड़ कर वे बाहर निकलते हैं। इसके बाद वे जल में स्थित सौ योजन के मुख वाली किसी दूसरी राक्षसी के मुख में अणु बनकर प्रवेश करते हैं और बाहर आ जाते हैं।[५] 'राघवीय'[६] और चम्पू रामायण'[७] में भी नागमाता सुरसा का वर्णन है। 'राघवीय में उसके आशीर्वाद का भी उल्लेख मिलता है। इन दोनों ग्रन्थों में सिंहिका' का वृत्तान्त भी 'मानस' के वर्णन के समान है।

संस्कृत के ग्रंथों में इन तीनों बाधाओं के क्रम और संख्या में भी बड़ा अन्तर मिलता है। चम्पू रामायण, राघवीय और रामायण मञ्जरी में 'मानस' के समान ही मैनाक सुरसा और सिंहिका का क्रम है। 'रामचरित में सुरसा मैनाक और सिंहिका है तो भट्टिकाव्य में सिंहिका, मनाक और सुरसा है। 'दशावतार चरित'[८] में केवल दो बाधायें हैं सिंहिका और मैनाक। 'अग्निपुराण'[९] में पहले मैनाक है फिर सिंहिका और 'रघुवीर चरित'[१०] में पहले सुरसा है फिर सिंहिका। 'हनुमन्नाटक'[११] में केवल मैनाक है और 'महाभारत'[१२] में केवल जल-राक्षसी है। 'लंकिनी' का वर्णन केवल 'चम्पू रामायण में है। वहाँ उसे लंकाधि-देवता'[१३] कहा गया है। 'अध्यात्म रामायण की लंकिनी हनुमान को अशोकवाटिका म स्थित सीता का पता भी बतलाती है।[१४]

संस्कृत ग्रंथों से परम्परा प्राप्त इस वर्णन को 'मानस' में यथोचित स्थान देकर तुलसी ने उसमें भी 'रामभक्ति' के समन्वय से एक विशेष चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

(२) हनुमान् विभीषण-मिलन—लंका में प्रवेश करने के पश्चात् हनुमान् सीता को प्रतिभवन खोजते हुए, विभीषण के द्वार पर पहुँच जाते हैं। वहाँ उसे 'रामायुध से अंकित और 'तुलसीवृन्द से शोभित देखकर उन्हें आश्चर्य होता है। उसी समय विभीषण के जागने और राम नाम के उच्चारण करने पर उनको उसके

---

१ रामचरित १६।८६–११०
२ भट्टिकाव्य ८।८,१४
३ राघवीय १२।२१–२२
४ चम्पू रामायण ५।५
५ भट्टिकाव्य ८।१–१४
६ राघवीय १२।३६–४३
७ चम्पू रामायण ५।७–८
८ दशावतार चरित ७।८९–११०
९ अग्निपुराण ९।३
१० रघुवीर चरित ११।४६,५०
११ हनुमन्नाटक ६।११
१२ महाभारत । वन । २८२।२६
१३ चम्पूरामायण ५।१२ के बाद
१४ अध्यात्म रामायण । सुन्दर १।४३–५०

'रामभक्त' होने का निश्चय हो जाता है और वे उससे परिचय करते हुए अपनी सारी कथा बतलाते हैं। जब वे उससे सीता का पता पूछते हैं, तब वह उन्हें पता के साथ-साथ उनसे मिलने की सारी युक्ति भी बतला देता है।[1]

यह प्रसंग तुलसी की मौलिक कल्पना है क्योंकि यह संस्कृत के किसी भी ग्रंथ में प्राप्त नहीं होता है। संस्कृत साहित्य में रावण और विभीषण के भवनों में कोई बाह्य अन्तर नहीं दिखलाया गया है इसीलिये हनुमान वहाँ दोनों में समान रूप से ही खोज करते हैं। तुलसी ने विभीषण के रामभक्त होने के नाते उसके भवन में सीता-खोज को अनुचित समझ करके उसे एक पृथक रूप दे दिया है और विभीषण के मुख से हनुमान को सीता की प्रवृत्ति कहला करके उन्होंने राम मिलन से पूर्व ही विभीषण को अविचल रामभक्ति का स्पष्ट प्रमाण भी दे दिया है।

(१) हनुमान्-सीता मिलन—विभीषण के संकेत से हनुमान अशोक वाटिका में सीता के प्रथम दर्शन करके जब उनसे मिलने का विचार करते हैं तभी रावण अनेक स्त्रियों के साथ वहाँ आ जाता है। वह सीता को साम आदि सभी उपायों से बहुत समझाता है और अन्त में केवल एक बार देख लेने की कृपा करने पर वह उनके समक्ष मन्दोदरी आदि अपनी सब रानियों को उनकी दासी तक बना देने का निश्चय व्यक्त करता है। रावण के इस हठ पर सीता उसे बहुत फटकारती हैं और उसको राम के पराक्रम का पुनः स्मरण कराती हैं। जब रावण सीता की इस उपेक्षा को अपना अपमान समझ कर उनका सिर काट डालने की धमकी देकर खीझता है तब मन्दोदरी उसे रोक लेती है। फिर वह सीता को एक मास की अवधि देकर और राक्षसियों को उन्हें त्रस्त करने का आदेश देकर चला जाता है।[2] इसके बाद वहाँ त्रिजटा सब राक्षसियों को अपना एक स्वप्न सुनाती है जिसमें लंकादाह, राक्षसनाश रावण-दुर्दशा और विभीषण-राज्यप्राप्ति आदि का संकेत है।[3] उस स्वप्न को सुनते ही राक्षसियों के भाग जाने पर सीता त्रिजटा से राम-विरह को असह्य बतला कर उससे चिता बनाने और आग लाने की प्रार्थना करती है, किन्तु वह रात में आग को दुर्लभ बतला कर वहाँ से चली जाती है। फिर सीता जब अशोक वृक्ष से प्रार्थना करती है कि वह अपना नाम सार्थक करने के लिये उन्हें कुछ अग्निकण प्रदान करदे तब वहीं पर छिपे हुए हनुमान 'राम-मुद्रिका' गिरा देते हैं। सीता के चकित होने पर वे राम के गुण गाते हुए आदि से अन्त तक सब कथा सुनाते हैं और अपना परिचय देकर उस मुद्रिका को राम की भेंट बतलाते हैं।[4] सीता के द्वारा पूछे जाने पर वे राम के विरह का वर्णन करते हुए उनका सन्देश भी उन्हें देते हैं और उनको आश्वस्त करते हैं।[5] हनुमान के लघु रूप को देखकर सीता

---

१ मानस ५।८ | २ मानस ५।१०
३ " ५।११ | ४ " ५।१२-१३
५ " ५।१४-१५

जब उनकी भक्ति में शंका प्रकट करती हैं, तब हनुमान अपना 'कनकभूधराकार शरीर' उनको दिखलाते हैं[1] और उनका आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। लंका-दाह' के पश्चात् हनुमान सीता से दुबारा मिलते हैं और चूड़ामणि तथा 'जयन्त-कथा' को प्रत्यभिज्ञान के रूप में लेकर समुद्र के इस पार आ जाते हैं।[2]

इस प्रकार इस प्रसंग में रावण-सीता-संवाद' त्रिजटास्वप्न' हनुमान सीता-संवाद', 'प्रत्यभिज्ञान-दान' आदि का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। संस्कृत साहित्य में इस प्रसंग में अनेक स्थलों पर उल्लेखनीय अन्तर प्राप्त होता है।

(४) रावण-सीता संवाद—संस्कृत के काव्यों में 'रामायण मञ्जरी' में सीता को दिए गए रावण के प्रलोभनों का विस्तृत वर्णन किया गया है जिसके उत्तर में सीता 'मानस' की सीता के समान ही तृण की ओट से उसे बहुत धिक्कारती है। यहाँ रावण केवल 'काम प्रभाव' से ही उनको अवध्य बतलाता है और उन्हें दो मास की अवधि देकर चला जाता है।[3] 'राघवीय' का रावण सीता से अप्रसन्न होकर जब उनकी हत्या के लिए आगे बढ़ता है तब उसके साथ की स्त्रियाँ उसे रोक लेती हैं। यहाँ हनुमान के द्वारा उसको क्रोधपूर्वक देखते रहने का भी संकेत है।[4] 'रामचरित' में भी रावण की स्त्रियाँ उसको सीता-वध से रोक लेती हैं किन्तु यहाँ 'सीता-तृण ग्रहण' और 'अवधि' आदि का संकेत नहीं है। यहाँ सीता सुपार्श्व के सम्मुख व्यक्त की गई रावण की दीनता का उससे उल्लेख करती हैं और स्वयं को 'राक्षस-कुलक्षय-कालरात्रि' बतला कर उसे 'लंकादहन' और 'सपरिवार-मरण' का शाप भी देती हैं। यहाँ भी रावण द्वारा सीता को त्रास देने के समय उसका सामना करने के लिए हनुमान के सतर्कतापूर्वक छिपे-छिपे आगे बढ़ने और उसके लौट जाने पर उनके भी शान्त हो जाने का वर्णन किया गया है।[5] 'भट्टिकाव्य' का रावण सीता को धमकी देकर फिर स्वयमेव चला जाता है। यहाँ तृण-वर्णन नहीं है किन्तु 'अवधि' 'मानस' के समान केवल एक मास की है।[6] 'चम्पूरामायण'[7] का रावण अधिकतर मौन ही रहता है। यहाँ सीता तृण की ओट से बोलती हुई उससे स्वयं को यमपुरी पहुँचा देने की प्रार्थना करती हैं। यहाँ केवल एक दिन की ही 'अवधि' का संकेत है। 'महाभारत' में रावण के दर्प और प्रलोभन आदि का विस्तृत वर्णन है। यहाँ भी सीता तृण की ओट से उसको फटकारती हैं। यहाँ रावण के द्वारा अवधि-दान का कोई संकेत नहीं है।[8]

---

१ मानस ५।११ २ मानस ५।२७
३ रा० मञ्जरी। सुन्दर। २०५–२११
४ राघवीय ११।११–४५ ५ रामचरित ११।६७–८७
६ भट्टिकाव्य ८।७४–९५ ७ चम्पूरामायण ५।२० के बाद
८ महाभारत। वन। २८०।१–२०

संस्कृत के नाटकों में से 'प्रसन्न राघव' के संवाद का 'मानस' के इस संवाद पर समरस प्रभाव है। वहाँ दो विद्याधरों के हस्तन्यास (माया नाटक) में (जिसे राम और लक्ष्मण भी देख रहे हैं) इस प्रसंग का अभिनय किया गया है। वहाँ रावण सीता को धमकाने के लिए पहले अपने खड्ग 'चन्द्रहास' का प्रयोग करता है, फिर वह उनके 'रक्तपान' की कामना से एक कपाल माँगता है, उसी समय अशोक वृक्ष पर बैठे हुए हनुमान् वहीं से 'अक्ष' का कटा हुआ सिर उसके हाथों में फेंक देते हैं जिससे खिन्न और क्रुद्ध होकर वह वहाँ से तुरन्त चला जाता है।[1] 'आश्चर्य चूड़ामणि' का रावण तो सीता के चरणों पर अपना सिर तक रख देता है, जिसे वे तत्काल ठुकरा देती हैं। वहाँ रावण के क्रुद्ध होने पर मन्दोदरी उसे रोक देती है।[2] 'अभिषेक' की सीता अपने 'पातिव्रत तेज' के प्रभाव से जब रावण को शाप देने का प्रयत्न करती है, तब वह उनके तेज की हँसी उड़ाता है। वहाँ हनुमान रावण को देख कर पहले उसके वध का विचार करते हैं किन्तु पराजय की आशंका से रुक जाते हैं।[3] 'हनुमन्नाटक'[4] और 'महानाटक'[5] का रावण सीता को वंचित करने के लिए राम और लक्ष्मण के नकली कटे हुए सिरों को उनके सामने रख कर उनको अपने प्रेमालाप और प्रलोभन से आश्वस्त करना चाहता है किन्तु भेद खुल जाने पर वह भाग जाता है और फिर दुबारा अपने ही नकली कटे हुए दस सिरों को लेकर वह राम-वेश में सीता के सम्मुख उपस्थित होता है। सीता उसे राम समझ कर मिलने के लिए जब दौड़ती है तब वह एक शाप के कारण भयभीत होकर भाग जाता है। वहाँ सीता सरमा से रावण के इन षड्यन्त्रों के रहस्य को ज्ञात करके बहुत खेद प्रकट करती है।

इस प्रसंग में तुलसी की मौलिकता उनके समन्वय में है। विभिन्न ग्रन्थों से आवश्यक परम्परा और सामग्री का चयन करके उन्होंने मानस के इस वर्णन को प्रवाहिष्णुता प्रदान की है। इस दिशा में उन्हें कहीं से भी भाव-अर्थ या शैली और छन्द ग्रहण करने में भी कोई हिचकिचाहट नहीं हुई है।

(५) त्रिजटा-स्वप्न—'रामायण-मंजरी' और 'महाभारत' में इस स्वप्न का विस्तृत वर्णन किया गया है। वहाँ प्रथम ग्रन्थ में राम और लक्ष्मण के द्वारा श्वेत वस्त्र, माल्य और लेप शोभित होकर दिव्य आकाशगामी रथ पर बैठने, सीता के द्वारा समुद्र से घिरे हुए श्वेत पर्वत पर चढ़ कर राम के साथ लंका में प्रवेश करने, राम और लक्ष्मण के द्वारा पुष्पक पर चढ़ कर लंका जाने, सीता के द्वारा 'महागज' पर बैठ कर सूर्य और चन्द्र का हाथ से स्पर्श करने, रावण के द्वारा पुष्पक से गिरने, रक्ताम्बर और मुण्डित होकर कृष्ण स्त्रियों के द्वारा पृथ्वी पर घसीटे जाने

१ प्रसन्न राघव ६।२६–३१
२ आश्चर्यचूड़ामणि ५।२७–३१ के बाद
३ अभिषेक ३।१४–१८
४ हनुमन्नाटक १०।१–२१
५ महानाटक ८।२६–३४

लाल माला और लेप से युक्त होकर उसके दक्षिण दिशा में जाने, गोमय के तालाब में प्रवेश करने और काली देवी के द्वारा गले में बाँध कर खींचे जाने, लंका के जल कर समुद्र में डूबने, कुम्भकर्णादि राक्षसों के भी गोमय के तालाब में फँसने तथा विभीषण के श्वेतपर्वत पर चढ़ कर घूमने का उल्लेख मिलता है।[1] द्वितीय ग्रंथ में रावण के तेल से अभिषिक्त होने मुण्डित होकर कीचड़ में फँसने और खर-रथ पर नाचने कुम्भकर्णादि के नग्न और मुण्डित होने, विभीषण के द्वारा श्वेत पगड़ी धारण करने और राम के द्वारा सागरयुक्त पृथ्वी की रक्षा करके यश प्राप्त करने का वर्णन किया गया है।[2] 'भट्टिकाव्य' में केवल सीता के द्वारा सूर्य और चन्द्र के स्पर्श का वर्णन मिलता है।[3]

'मानस' का स्वप्न स्वप्न कम है और भविष्यवाणी अधिक। संस्कृत के कवि इस प्रसंग में जहाँ स्वप्नशास्त्र का विश्लेषण करने में प्रवृत्त रहे हैं वहाँ तुलसी का ध्यान उसके प्रभाव की ओर ही एकाग्र रहा है। इस दृष्टिकोण से तुलसी का यह 'स्वप्नवर्णन' अधिक सफल और प्रभावशाली है।

(९) हनुमान्-सीता-संवाद—'रामायण-मञ्जरी' की सीता हनुमान को रावण की माया जानकर पहले भयभीत होती है किन्तु उनके परिचय और 'राम मुद्रिका' देने के बाद वे 'विरूप' राक्षस की सूचना का उल्लेख करके 'राम-सुग्रीव मित्रता' के समाचार से अपना परिचय बतलाती है। जहाँ जब हनुमान उनको कन्धे पर बिठा कर राम के समीप ले जाने का विचार व्यक्त करते हैं तब वे उनकी शक्ति पर सन्देह प्रकट करती है। उस समय हनुमान अपना विशाल रूप दिखा करके उन्हें सन्तुष्ट करते हैं। फिर भी सीता मार्ग में गिर जाने के भय से और पर-पुरुष के स्पर्श की आशंका से उसके साथ जाना अस्वीकार कर देती है। 'चंपूरामायण' का वर्णन भी ऐसा ही है किन्तु वहाँ 'विरूप राक्षस' का उल्लेख नहीं है।[5] 'भट्टिकाव्य' में हनुमान् के विशाल रूप का भी संकेत नहीं है।[6] 'राघवीय' में हनुमान सीता को स्वयमेव अपना विशाल रूप दिखला कर उन्हें 'वानर-शक्ति' का विशेष परिचय देते हैं।[7] 'रामचरित' की सीता हनुमान से मित्रता और विभीषण के सत्कार्यों की प्रशंसा करती है। यहाँ इस प्रसंग के अति विस्तृत होने पर भी हनुमान के विशाल रूप-धारण और विरूप राक्षस की सूचना का कोई वर्णन नहीं है।[8]

---

१ रा० मञ्जरी। सुन्दर। २८१–२९६

२ महाभारत। वन। २८०।६४–७१

३ भट्टिकाव्य ८।१००

४ रा० मञ्जरी। सुन्दर। ३०६–३७५

५ चंपूरामायण ५।२६–३६

६ भट्टिकाव्य ८।१०२–१२५

७ राघवीय ११।३७–७५

८ रामचरित २०।५–७७

संस्कृत के लगभग सभी ग्रंथों में इस अवसर पर राम के द्वारा विभीषण का तिलक करने और उसे लंका का राज्य देने की प्रतिज्ञा करने का उल्लेख समान रूप से मिलता है।

तुलसी ने इस प्रसंग में राम के ईश्वरत्व का और उनकी वत्सलता की विशेषताओं का विस्तृत उल्लेख करके एक अलौकिकता का सृजन कर दिया है।

(१७) समुद्र-शासन—विभीषण के मिलन के पश्चात् राम जब उससे समुद्र-तरण का उपाय पूछते हैं तब वह समुद्र को उनका 'कुलगुरु' बतला कर उनको उसकी उपासना का परामर्श देता है। लक्ष्मण के विरोध करने पर भी राम तीन दिन तक समुद्र की कृपा की व्यर्थ प्रतीक्षा करते हैं। फिर उनके शरसंधान करते ही जब समुद्र से लपटें उठने लगती हैं और जलजन्तु जलने लगते हैं तब समुद्र स्वयं भयभीत होकर और विप्रवेश में आकर उन्हें अनेक उपहार देता है और क्षमा माँग लेता है। वहाँ वह जलचरनादि पंचतत्वों को सहज जड़ और उन्हीं (राम) की माया से उत्पन्न बतला कर वह उनसे कृपा की प्रार्थना करता है और पारगमन के लिए नल और नील को प्राप्त ऋषियों के आशीर्वाद का उल्लेख करता है।[1] इस प्रसंग में राम की समुद्रोपासना राम कोप और नल-नील की उपयोगिता का विशेष उल्लेख हुआ है जो संस्कृत ग्रंथों में भी कुछ अन्तर से प्राप्त हो जाता है।

(१८) राम की समुद्रोपासना—'मानस' की तरह रामायण-मञ्जरी[2] राघवीय,[3] चम्पूरामायण[4] आदि में भी विभीषण के परामर्श से ही राम समुद्र की उपासना करते हैं। हनुमन्नाटक[5] और महाभारत[6] में वे स्वेच्छा से ही यह उपासना करते हैं। इन ग्रन्थों में लक्ष्मण के विरोध का उल्लेख नहीं है प्रत्युत 'रामायण मञ्जरी' के लक्ष्मण उसका समर्थन करते हैं और 'महाभारत' में वे राम के साथ स्वयं उपासना भी करते हैं।[7]

तुलसी ने इस अवसर पर लक्ष्मण के कोप का वर्णन करके एक तो उनकी सहज उग्रता का स्वाभाविक चित्रण किया है और दूसरे उनकी उक्तियों के माध्यम से भाग्यवादियों विमुख कर्मण्यों के लिए एक शिक्षा की व्यवस्था भी की है।

(१९) राम-कोप—संस्कृत के लगभग सभी ग्रन्थों में इस अवसर पर राम के कोप का वर्णन मिलता है। रामायण मञ्जरी,[9] चम्पूरामायण,[10] राघवीय,[11] महावीरचरित[12]

१ मानस ५।५०-६०
२ रा० मंजरी। युद्ध। १०६-२०१
३ राघवीय १६।५-९
४ चम्पूरामायण ६।२० के बाद
५ हनुमन्नाटक ७।१५
६ महाभारत। वन। २८३।१०
७ रामायण मञ्जरी। युद्ध। २०७
८ महाभारत। वन।२८३।१२
९ रा० मञ्जरी। युद्ध। २१०-२१७
१० चम्पूरामायण ६।२४
११ राघवीय १६।११-२६
१२ महावीर।

और भट्टिकाव्य[1] में रामकोप के फलस्वरूप समुद्र के क्षोभ का भी विस्तृत विवरण दिया गया है। 'पद्मपुराण' में तो समुद्र सूख ही जाता है, फिर राम उसकी प्रार्थना पर उसे वरुणास्त्र से भर देते हैं।[2] रामायण-मञ्जरी,[3] भट्टिकाव्य,[4] बालरामायण[5] आदि में समुद्र गंगा-यमुना के साथ प्रगट होता है। अन्यत्र वह अकेला ही राम के सम्मुख आकर उनकी स्तुति करता है। 'महाभारत' में वह स्वप्न में आकर राम को सेतुबन्ध का उपाय बतलाता[6] है और 'अभिषेक' में वह वरुण-रूप में स्वयं उपस्थित हो जाता है।[7] 'रामचरित' में जब राम और लक्ष्मण दोनों समुद्र पर अपने अग्नि बाण का प्रयोग करना चाहते हैं, तब सुग्रीव उसे अनावश्यक बतला कर रात भर में ही सेतु निर्माण कर देने के लिए नल को आज्ञा देता है।[8] रामायण-मञ्जरी का समुद्र इस अवसर पर अपनी दशरथ-मित्रता और एक मास के अयोध्या प्रवास का भी राम से उल्लेख करता है।[9]

तुलसी यहाँ अनावश्यक विस्तार से बचकर राम के ईश्वरत्व का ही अधिक वर्णन करते हैं और इस प्रकार इस प्रसंग में अधिक चमत्कार का आयोजन करते हैं।

(२०) नल और नील की उपयोगिता—संस्कृत के लगभग सभी ग्रन्थों में इस प्रसंग में केवल नल के ही 'सेतुबन्ध' में समर्थ होने का उल्लेख किया गया है। यहाँ ऋषि के आशीर्वाद का कोई संकेत नहीं है। भट्टिकाव्य[10] और भागवत[11] में नल का नामोल्लेख तक नहीं है। वहाँ सभी वानर मिलकर सेतु का निर्माण कर लेते हैं।

तुलसी की समन्वयशीलता का सहज परिचय यहाँ भी मिल जाता है। अनेक ग्रंथों से विविध उपकरण संकलित करके उन्होंने यहाँ अपनी सुरुचि को ही प्राथमिकता दी है। वर्णित विस्तारों में भी इसी रहस्य का प्रभाव दर्शनीय है।

६ लंका काण्ड

पिछले काण्ड में सेतुबन्ध की भूमिका का उल्लेख किया जा चुका है। इस काण्ड में सेतुबन्ध, अंगद-दौत्य, लक्ष्मण-मूर्छा, कुम्भकर्ण वध, मेघनाद वध, रावण-वध, विभीषण-अभिषेक, सीता-शुद्धि और राम के अवध-पुनरागमन आदि के प्रसंग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। संस्कृत साहित्य में वर्णित प्रसंगों से इनकी तुलना करने पर अनेक विशेषतायें उपलब्ध होती हैं।

---

१ भट्टिकाव्य १३।३-५
२ पद्म। उत्तर। २४२।२१७-२१८
३ रा० मञ्जरी। युद्ध। २२८-२४०
४ भट्टिकाव्य। ११।५-१४
५ बाल रामायण ७।१४
६ महाभारत। वन।२८३।१४-४२
७ अभिषेक ४।१९ के बाद
८ रामचरित २१।२०-१२
९ रा० मञ्जरी। युद्ध। २४४ २४६
१० भट्टिकाव्य। १३।१२
११ भागवत ९।१०।१२-१६

(१) सेतुबन्ध—समुद्र के संकेत के अनुसार राम के आदेश से नल और नील सेतु रचना में प्रवृत्त होते हैं। सेतु की प्रतिष्ठि के लिए राम वहाँ पर शम्भु स्थापना करते हैं। फिर सारी वानर-सेना उस सेतु से शीघ्र ही समुद्र पार करके लंका में प्रविष्ट हो जाती है। भावी अनिष्ट की आशंका से क्षुब्ध होकर मन्दोदरी रावण को 'सीतार्पण' के लिए बहुत समझाती है किन्तु वह उसकी उपेक्षा करके अपने 'अखाड़े' में आकर रासरंग में व्यस्त हो जाता है। राम उसके इस अभिमान को दूर करने के लिए एक ही बाण से उसके मुकुट आदि को नष्ट करके जब उसका 'रसभंग' कर देते हैं तब मन्दोदरी अत्यन्त विकल होकर उसे पुन: समझाती है किन्तु रावण अपने हठ पर दृढ़ रहता है।[1] इस प्रकार इस प्रसंग में सेतु-निर्माण शम्भुस्थापना, मन्दोदरी-उपदेश रावण-रसरंग आदि का वर्णन किया गया है। संस्कृत के ग्रंथों में इसमें अनेक विभिन्नतायें मिलती हैं।

(२) सेतु निर्माण—'रामायण-मञ्जरी' में नल के अध्यवसाय से ६ दिन में दस योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा सेतु तैयार हो जाता है।[2] 'महाभारत' में भी सेतु के इसी विस्तार का वर्णन है। वहाँ उसका नाम ही 'नलसेतु' पड़ जाता है।[3] भट्टिकाव्य[4] राघवीय[5] रामचरित[6] चम्पूरामायण[7] आदि में सेतुबन्ध के लिए लाये गये पर्वतों के सौन्दर्य तथा समुद्र-जल में उनके फेंकने से उत्पन्न तरंग भंग और जल-चर-क्षोभ आदि का बड़ा रोचक और चमत्कारिक वर्णन किया गया है। 'बालरामायण' नाटक में मेरु हिमालय मन्दर कैलाश गन्धमादन अंजन विन्ध्य रोहण आदि पर्वतों से लाये गये प्रस्तर खण्डों से सेतु निर्माण करने का उल्लेख मिलता है।[8] हनुमन्नाटक[9] और महानाटक[10] में इस सेतुनिर्माण का श्रेय समुद्र अथवा नल आदि को न देकर राम के प्रताप को ही दिया गया है। तुलसी ने भी इसी का समर्थन करते हुए इस प्रसंग में अलौकिकता के सम्पादन का सफल प्रयास किया है।

(३) शम्भु-स्थापना—'पद्मपुराण' की पुरातन रामायण के अनुसार राम इस अवसर पर जब शिव की पूजा करते हैं तब वे प्रगट होकर उन्हें अपना धनुष वरदान के रूप में दे देते हैं जिस पर बैठकर सभी लोग एक ही बार में समुद्र पार कर लेते हैं।[11] फिर रावण-वध के पश्चात् राम अयोध्या लौटते समय उसी स्थान पर शिव प्रतिष्ठा करते हैं।[12] अध्यात्मरामायण को छोड़ कर (जो अपना आलोच्य नहीं है)

---

१ मानस ६।१-१६ — २ रा० मञ्जरी । युद्ध । २५१-२६४
३ महाभारत । वन ।२८३।४४ — ४ भट्टिकाव्य १३।१२-३०
५ राघवीय ११।७३-४८ — ६ रामचरित २६।२७-६२
७ चम्पूरामायण ६।११-२८ — ८ बालरामायण ७।४०-६०
९ हनुमन्नाटक ७।११ — १० महानाटक ६।८३
११ पद्म । पाताल । ११६ पृ० २७६ — १२ पद्म । पाताल ११६ पृ० २७९

अन्य ग्रंथों में इसका वर्णन नहीं मिलता है।

तुलसी ने 'मानस' में शिव के उपकार का संकेत न करके इस प्रसंग में राम की समर्थता निस्वार्थता और शिव-निष्ठा का ही प्रभावशाली परिचय दिया है।

(४) मन्दोदरी उपदेश—हनुमन्नाटक[1] और महानाटक[2] में मन्दोदरी रावण से हनुमान के पराक्रम का उल्लेख करके उससे 'सीतार्पण' की बारम्बार प्रार्थना करती है, किन्तु रावण अपनी गर्वोक्तियों से उसे शान्त कर देता है। 'हनुमन्नाटक' की मन्दोदरी रावण को सीता से विमुख करने के लिये उसे अपने शारीरिक सौन्दर्य से अपनी ओर आकृष्ट भी करना चाहती है।[3] 'महावीर चरित' का रावण मन्दोदरी को 'मुग्ध अबला' कह कर उसकी बातों को हँसी में उड़ा देता है।[4] 'राम चरित' की मन्दोदरी रावण से प्रार्थना करती है कि वह विभीषण को किसी तरह मनाकर ले आवे और उसे राम से न मिलने दे। वहाँ वह उसे 'सीतार्पण' के लिए बाध्य भी नहीं करती है। इसके साथ ही वह उसको देवभयी में एकत्व-बुद्धि का उपदेश देती हुई शिव के समान ही विष्णु राम को भी उसके लिए पूज्य बतलाती है।[5] इस पर कामुक रावण उसे प्रसन्न करने और बहलाने के लिये झूठ बोलता है कि वह अभी विभीषण को मनाने सीता को वापस करने राम से सन्धि करने, ब्राह्मणों और देवताओं को अभयदान देने तथा स्वयं निष्काम होकर पूर्ण धार्मिक बनने के लिये बस अभी जा रहा है।[6]

मानस[7] में तुलसी ने इस प्रसंग में राम के ईश्वरत्व का विस्तृत उल्लेख करके जिस अलौकिकता का समन्वय किया है, उसका निरूपण संस्कृत के किसी भी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता है। 'मानस' की मन्दोदरी राम को 'कर्त्ता पालक और संहर्ता' आदि कहकर उनकी शरण जाने के लिये रावण से विशेष आग्रह करती है। इसके साथ ही वह नीति का उल्लेख करके वृद्धावस्था के युवाभिषेक और वानप्रस्थ पर बल देती हुई लौकिक वैभव के प्रति अपनी विरक्ति का संकेत भी करती है।[8] संस्कृत-साहित्य में मन्दोदरी के ऐसे सात्विक और धार्मिक उपदेश का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है जबकि 'मानस' में उसके एक दूसरे से अधिक प्रभावशाली चार उपदेश[8] प्राप्त होते हैं। इसके लिये तुलसी का अपना भक्तिमय दृष्टिकोण ही उत्तर दायी है, जिसके फलस्वरूप वे 'रामयश-वर्णन के लिये अधिकाधिक अवसरों को आयोजित कर लेते हैं।

---

१ हनुमन्नाटक ११५-७
२ महानाटक ८।२१-२२
३ हनुमन्नाटक ११११
४ महावीर चरित ६।१५
५ रामचरित २४।८१-११९
६ रामचरित २४।११६-१२८
७ मानस ६।७
८ मानस ५।३६, ६।६-७, १४-१५, ३६ ३७

(५) रावण-रस-भङ्ग—रावकी म 'रामायण मञ्जरी' आदि में लंका के शिखर पर स्थित रावण के एक प्रासाद का उल्लेख मिलता है जहाँ से वह राम की सेना का निरीक्षण करके शुक और सारण से सबका परिचय प्राप्त कर लेता है किन्तु वहाँ पर रास रंग होने और रामबाण के द्वारा उसके भंग होने की घटना का वर्णन करना तुलसी की अपनी मौलिक कल्पना है जिसका वर्णन संस्कृत के ग्रंथों में कहीं नहीं है।

(६) अङ्गद दौत्य—लंका-युद्ध के पूर्व राम अपने सचिवों से मन्त्रणा करने के पश्चात् शान्ति से ही कार्यसिद्धि के लिये जाम्बवान् के मत से अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजते हैं। वहाँ अंगद अपना परिचय देकर और रावण के साथ अपने पिता (बालि) की भी मित्रता का उल्लेख करके स्वयं को उसका हितैषी बतलाता है। वह 'सीताहरण' को उसका महान् अपराध कह कर उससे सीता को वापस करने और राम की शरण जाने का आग्रह भी करता है। जब रावण उसको पितृघातक राम का सेवक होने के कारण 'कुलघातक' कह कर सम्बोधित करता है और दूतवध को नीतिविरुद्ध बतला कर उसके कठोर वचनों को क्षमा करने में अपनी नीतिमत्ता का उल्लेख करता है, तब अंगद उसकी परपत्नी के हरण करने और अपनी बहिन (सूर्पनखा) के विरूपण का अपमान सहने के कारण उसकी नीति-मत्ता पर व्यंग करता है।[1] फिर रावण जब राम-सेना में सबको दुर्बल और असमर्थ बतला कर केवल हनुमान को कुछ वीर कहता है तब अंगद उनको (हनुमान को) मधुदूत' बतला कर उसका उपहास करता है। वह उसकी गर्वोक्तियों पर व्यंग करते हुए उसके विजेताओं बलि सहस्रबाहु और बालि आदि का नामोल्लेख करता है। इसके बाद वह उसको बहुत फटकारता हुआ अपने दोनों हाथों को पृथ्वी पर जोर से पटक देता है, जिससे रावण सिंहासन से गुड़क पड़ता है और अंगद उसके कुछ मुकुटों को उठा कर उसी समय राम-सेना की ओर फेंक देता है।[2] इसके पश्चात् अंगद उसकी सभा में पैर जमा कर यह शर्त लगाता है कि यदि उसे कोई हटा देगा तो वह हार जायगा। सब राक्षसों के असफल होने पर रावण स्वयं उठता है, तब अंगद उससे राम के चरण-ग्रहण का अनुरोध करके वहाँ से उड़कर 'राम सेना' में वापस लौट जाता है।[3] इस प्रकार इस प्रसंग में रावण संवाद रावण के मकुट-हरण और अंगद के पदारोपण का मुख्य रूप से वर्णन किया गया है जो संस्कृत-साहित्य में विविध रूप से मिलता है।

(७) रावण-अङ्गद-संवाद—मानस के इस प्रसंग पर 'हनुमन्नाटक' और 'महानाटक' का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। कई स्थानों पर तो अक्षरशः अनुवाद प्राप्त होता

---

१ रामदीप १६।६३-६६ — २ रा० मंजरी। युद्ध। ११२ ११४
३ मानस ६।१७-२२ — ४ मानस ६।२३-२४
५ " ६।२९-३२ — ६ ६।३४-३५

है।[1] यहाँ राम के एक सन्देश का भी उल्लेख है जिसमें वे कहते हैं कि अज्ञान अथवा अभिमान से अपहृत सीता को रावण शीघ्र वापस कर दे अन्यथा लक्ष्मण के बाण उसे सपरिवार समाप्त कर देंगे। यहाँ भी रावण के द्वारा राम-सभा में सबको असमर्थ तथा हनुमान का ही कुछ समर्थ बतलाने पर अंगद हनुमान के 'दूतमात्र' होने की सूचना देकर उसकी हँसी उड़ाता है और उसी अनुपात से राम के बल का अनुमान करने के लिए वह उससे आग्रह करता है।[2] जब रावण शिवधनुर्भंग बालिवध तामसाद सेतुबन्ध आदि पराक्रमों को तुच्छ बतला कर अपने कैलासोत्तोलन और सूर्य भग्न इन्द्र यम आदि पर अपनी विजय का सगर्व उल्लेख करता है तब अंगद बलि बालि सहस्रार्जुन आदि का नामोल्लेख करके उनके सामने उसकी परवशता बतला कर उस पर व्यंग करता है।[3] 'मानस' के समान ही यहाँ भी रावण के द्वारा अपने को 'धर्मशील' बतलाने पर अंगद उसके 'परस्त्रीहरण' के कलंक का उल्लेख करके उसकी हँसी उड़ाता है।[4] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अंगद 'पितृवैर' के कारण रावण को और 'पितृवध' के कारण राम को भी अपना शत्रु मानता है। यहाँ वह राम के वध के लिये उत्सुक होने पर भी पहले अपने दोनों के समान शत्रु रावण का नाश करना चाहता है और इसीलिये वह रावण को फटकारता हुआ राम के प्रति उसके क्रोध को उद्दीप्त करने का प्रयत्न करता है।[5] 'रामायण-मञ्जरी' में भी राम के एक सन्देश का उल्लेख है। यहाँ अंगद के उपदेश से क्रुद्ध रावण के संकेत से कुछ राक्षस जब उसको पकड़ लेते हैं, तब वह उनको साथ लेकर आकाश में उड़ जाता है और उन्हें पृथ्वी पर पटक कर राम के पास लौट आता है।[8] 'पद्मपुराण'[9] 'राघवीय'[10] 'महाभारत'[11] आदि में भी राम के सन्देश और राक्षसों के पराभव का इसी प्रकार वर्णन किया गया है। 'महावीर चरित' में प्रहस्त अंगद के दूतत्व का उल्लेख करके उन राक्षसों को अंगद पर आक्रमण करने से रोक देता है।[12] यहाँ अंगद रावण को मार डालने की धमकी भी देता है किन्तु राम की आज्ञा के अभाव के कारण उसके वध न करने में अपनी विवशता का संकेत करता है।[13]

'रामचरित' का रावण अंगद को दूत के स्थान पर अपना मित्र समझता है

---

१ हनुमन्नाटक ८।६, ६ २२ २४ ३२ ३३, ४३ ४७
२ " ८।२ ३ हनुमन्नाटक ८।६-६, १२ १५
४ " ८।३१, ३६, २१, ३३
५ " ८।१४ ३२ ६ " ८।२२
७ ८।३ ८ रा० मञ्जरी। युद्ध। ३८६-४०३
९ पद्मपुराण ६।११ के बाद-३८
१० राघवीय १७।२८-३४ ११ महाभारत। वन। २८४।७-२२
१२ महावीर चरित ६।१६ के बाद १३ महावीर चरित ६।२२

और उसके राम से लड़ कर अपने पक्ष में आने की सम्भावना करता है। यहाँ जब अंगद उससे सीता को वापस करने, विभीषण का अभिषेक करने वानरों को प्रणाम करने और राम को सर्वस्व समर्पण करने का आग्रह करता है तब वह तीन शर्त रखता है कि राम विभीषण तथा सुग्रीव का वध करें सेना का विघटन करें और राक्षसों को प्रणाम करके शीघ्र लौट जाँय।[1] यहाँ भी अंगद के कोप और धमकी का समान उल्लेख मिलता है।[2] 'अद्भुत-दर्पण' में लक्ष्मण अंगद शौत्य के प्रस्ताव पर ही राम का विरोध करते हैं और उसके लिए उन पर कटु आक्षेप भी करते हैं[3] जबकि 'दूतांगद' में वे स्वयं ही 'अंगद-शौत्य' का प्रस्ताव रखते हैं।[4] रघुवंश, भट्टिकाव्य पद्मपुराण प्रसन्न-राघव अनर्घराघव आदि ग्रंथों में यह प्रसंग प्राप्त नहीं होता है।

तुलसी ने इस प्रसंग का 'मानस' में जितने बड़े विस्तार से वर्णन किया है उतना विस्तार हनुमन्नाटक और महानाटक के अतिरिक्त कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ता है। यहाँ उनको राम के ईश्वरत्व का वर्णन करने और रावण को समझाने तथा फटकारने के लिए एक स्वर्णिम अवसर मिल गया है जिसका उन्होंने पूरा पूरा लाभ भी उठाया है।

(८) रावण-मुकुट-हरण— हनुमन्नाटक में अंगद के द्वारा क्रोध से पृथ्वी पर हाथ पटकने का वर्णन मिलता है[5] किन्तु उसके प्रभाव से रावण के मुकुटों का संकेत नहीं है। राघवीय[6] चम्पूरामायण[7] 'रामकथा आदि[8] में सुग्रीव के द्वारा प्रथम दर्शन पर ही झपट कर उसके मुकुट छीन लाने का वर्णन किया गया है। बहुत सम्भव है कि तुलसी ने सुग्रीव के इस साहस को उसके लिए अनुचित समझ कर उसे अंगद के साथ इस प्रकार जोड़ दिया हो। जो कुछ भी हो तुलसी की यह एक विशिष्ट कल्पना है और उनके प्रशस्त विवेक का पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती है।

(९) अंगद का पदारोपण—यह प्रसंग भी संस्कृत के किसी ग्रंथ में नहीं प्राप्त होता है, अतः तुलसी की मौलिक योजना है। किसी बात पर अधिक बल देने के लिए पदारोपण की यह पद्धति वस्तुतः अत्यन्त प्रभावशाली है। संस्कृत के ग्रन्थों में अंगद पर राक्षसों के टूट पड़ने और उसके द्वारा उनको पृथ्वी पर पटक कर लौट आने का वर्णन अभी किया जा चुका है। इस घटना से अंगद के शौर्य की प्रतिष्ठा तो होती है किन्तु सम्मान की प्रतिष्ठा नहीं होती है। 'मानस' में वर्णित 'पदारोपण' की घटना से राक्षसों में निराशा आ जाती है और उनके हृदयों पर अंगद की धाक

---

१ रामचरित ९८।५४-१०१ २ रामचरित ९८।१०२-१०९
३ अद्भुत दर्पण ११।० ११ ४ दूतांगद। ९ के बाद
५ हनुमन्नाटक ८।१९ के बाद ६ राघवीय १७।२४-२७
७ चंपूरामायण ६।११ ८ रामकथा पृष्ठ ४२

इतनी अधिक जम जाती है कि फिर उनमें अथवा रावण में उसको छेड़ने का साहस ही नहीं होता है। इस दृष्टि से यह वर्णन सचमुच अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(१०) लक्ष्मण-मूर्छा— अंगद-पौरुष के असफल हो जाने के पश्चात् युद्ध अनिवार्य हो जाता है जिसमें अंगद और हनुमान के द्वारा राक्षसों के सेनापतियों को मार-मार कर राम के पास फेंकने तथा राम के द्वारा उनको अपना स्मरण—बैर भाव से ही सही—करने के कारण निजधाम भेज देने का वर्णन किया गया है।[1] वहाँ राक्षसों की माया से जब चारों ओर अन्धकार का प्रसार हो जाता है तब राम अपने ज्ञानास्त्र से पुनः प्रकाश कर देते हैं।[2] मायावी मेघनाद जब आकाश से अंगार, रुधिर, पत्थर और धूलि आदि की वर्षा करता है तब राम एक ही बाण से उसकी सारी माया समाप्त कर देते हैं।[3] फिर मेघनाद लक्ष्मण पर शक्ति से आक्रमण करके उन्हें अचेत करके भाग जाता है। जाम्बवान के कहने से हनुमान उसी समय सुषेण वैद्य को लंका से भवन समेत उठा लाते हैं और उसके द्वारा औषधि तथा पर्वत का नाम बतलाने पर उसे लाने के लिए वे प्रस्थान करते हैं।[4] रावण यह समाचार पाकर उनके मार्ग में बाधा पहुँचाने के लिये कालनेमि को नियुक्त कर देता है, जो मुनि रूप धारण करके मार्ग में आश्रम बनाकर बैठ जाता है और हनुमान के आते ही राम-गुण गाता हुआ उन्हें ज्ञानोपदेश और दीक्षा देने की आतुरता व्यक्त करता है। हनुमान् के जल माँगने पर वह पास के तालाब की ओर संकेत करता है जिसमें प्रवेश करते ही उनके पैर से दब कर एक मकरी मुक्ति प्राप्त करती है जो उन्हें कालनेमि का सारा षड्यन्त्र बतला देती है।[5] फिर हनुमान् कालनेमि को मार कर उड़ते हुए द्रोण पर्वत पर पहुँच जाते हैं किन्तु औषधि न पहिचान सकने के कारण वे सारा पर्वत ही उखाड़ कर चल देते हैं।[6] मार्ग में अयोध्या के ऊपर आने पर भरत जब उन्हें राक्षस समझ कर एक बाण से नीचे गिरा देते हैं तब हनुमान उन्हें सारी घटनायें बतलाते हैं जिसे सुनकर भरत को बड़ा पश्चाताप होता है और वे उनको अपने बाण पर पर्वत समेत बैठ कर वहाँ से शीघ्र जाने के लिए उनसे आग्रह करते हैं। हनुमान राम प्रभाव की सराहना करके भरत से इस बल पर विश्वास करते हैं और वहाँ से रामपद वन्दन कर चल देते हैं।[7] इधर लक्ष्मण को बराबर अचेत देख कर राम करुण-विलाप करते हैं और उधर उसी समय हनुमान वहाँ आ जाते हैं। वैद्य के उपाय से लक्ष्मण के स्वस्थ होने पर हनुमान उसको लंका में यथास्थान पहुँचा आते हैं।[8]

---

१ मानस ६।४४-४५
२ मानस ६।४६-४७
३ मानस ६।४८-५२
४ मानस ६।५४-५५
५ मानस ६।५६-५७
६ मानस ६।५८
७ मानस ६।५९
८ मानस ६।६०
९ मानस ६।६१-६२

तुलसी ने इस प्रसंग में इस प्रकार मेघनाद के माया-युद्ध और शक्ति-प्रयोग, हनुमान द्वारा औषधि-आनयन कालनेमि-वध और हनुमान भरत-मिलन आदि का महत्वपूर्ण उल्लेख किया है। संस्कृत साहित्य में इस प्रसंग में अनेक विभिन्नतायें मिलती हैं।

(११) मेघनाद का माया-युद्ध और शक्ति प्रयोग—रामायण-मञ्जरी,[1] पद्मपुराण[2] रामकथा[3] भट्टिकाव्य[4] चम्पूरामायण[5] रामवीय[6] रामचरित[7] महाभारत[8] आदि में मेघनाद के माया-युद्ध का विस्तार से वर्णन किया गया है, किन्तु उसकी शक्ति से लक्ष्मण के या किसी अन्य के मूर्छित होने का उल्लेख नहीं मिलता है। वहां इन युद्धों में मेघनाद आकाश में छिपकर राम सेना पर घोर बाण-वृष्टि करता है और अपनी माया से सभी वीरों को पराजित करके तथा राम और लक्ष्मण को नागपाश-बद्ध करके लौट जाता है।

संस्कृत की काव्य परम्परा से सर्वथा पृथक यह तुलसी का मौलिक प्रयास है। वहाँ लगभग सभी ग्रन्थों में लक्ष्मण के साथ ही मेघनाद के युद्ध और उनके द्वारा ही उसके वध का वर्णन किया गया है, इतना तुलसी को भी स्वीकार्य है किन्तु मेघनाद के द्वारा समस्त वानर-सेना और राम-लक्ष्मण तक की पराजय की कल्पना तुलसी को सह्य नहीं है। नागपाश की घटना का वर्णन भी उन्होंने परम्परावश और राम के ईश्वरत्व के निरूपण के लिये ही किया है। वहाँ उन्होंने मेघनाद को लक्ष्मण का योग्य प्रतियोगी चित्रित करने के लिए ही उसकी प्रभावशाली 'शक्ति' का संकेत किया है।

(१२) हनुमान् द्वारा औषध आनयन—संस्कृत के ग्रन्थों में मेघनाद के स्थान पर रावण को 'शक्ति' के प्रहार से लक्ष्मण के मूर्छित होने का वर्णन मिलता है। चम्पूरामायण[9] रामचरित[10] और रामवीय[11] में रावण लक्ष्मण पर दो बार शक्ति प्रहार करता है। प्रथम प्रहार में 'मानस' के लक्ष्मण के समान ही[12] वहाँ भी लक्ष्मण स्वयं सचेत हो जाते हैं किन्तु द्वितीय प्रहार में वहाँ भी तथा रामायण-मञ्जरी[13]

१ रा० मंजरी। युद्ध। ४२६–४७६ २ पद्म। उत्तर।२४२।१०१–१०२
३ रामकथा पृष्ठ ४३ ४ भट्टिकाव्य १४।४४–४७
५ चम्पूरामायण ६।४२–४५ ६ रामवीय १७।६६,६६
७ रामचरित ३०।७६–८६ ३१।१–४१
८ महाभारत। वन।२८८।८–२६, २८६।१
९ चम्पूरामायण ६।४१ के बाद ७१ के बाद—८२
१० रामचरित ३३।८७–६० ४४।१७–३४
११ रामवीय १८।२२–२६, १६।२२–३०
१२ मानस ६।८३–८४ १३ रा० मंजरी। युद्ध। ११३६–३७

भट्टिकाव्य[1], महावीर चरित[2] रघुवंश[3] पद्मपुराण[4] और हनुमन्नाटक[5] आदि ग्रन्थों में वे हनुमान् के द्वारा प्रस्तुत पर्वत ओषधि के प्रयोग से ही स्वस्थ होते हैं। पद्मपुराण[6], रामकथा[7] राघवीय[8], भट्टिकाव्य[9] चम्पूरामायण[10], रामायण-मञ्जरी[11] और रामचरित[12] आदि ग्रन्थों में हनुमान के द्वारा दुबारा वही ओषधि' उसी प्रकार से लाने का उल्लेख उस समय मिलता है जब मेघनाद अपने बाण प्रहार से समस्त वानर-सेना को क्षत-विक्षत करके चला जाता है।

मानस' में केवल एक बार ही हनुमान के इस महाभारम प्रयास का वर्णन किया गया है क्योंकि उसकी पुनरावृत्ति से प्रथम घटना के अवमूल्यन तथा हनुमान की 'शक्ति' के अनावश्यक ज्ञापन की आशंका से तुलसी पूर्णतया परिचित हैं। यही तो उनका विवेक है।

(१३) हनुमान् द्वारा कालनेमि-वध—संस्कृत के ग्रंथों में यद्यपि हनुमान के द्वारा अनेक बार दिव्योषधि लाने का वर्णन है, किन्तु मार्ग में उन्हें किसी प्रकार की भी बाधा प्राप्त होने का कोई संकेत कहीं नहीं किया गया है। केवल 'हनुमन्नाटक' में उनके द्वारा 'मायामहर्षियों' के वध का संकेत है किन्तु किसी का नामोल्लेख नहीं है। यहीं पर उनके द्वारा कम्पकासी राक्षसी (मकरी) तथा अन्य राक्षसों के वध करने और कोटि गन्धर्वों' को पराजित करने का भी वर्णन किया गया है।[13] 'कालनेमि प्रसंग' का विस्तृत वर्णन केवल अध्यात्मरामायण में मिलता है[14], परन्तु वह अपना उपजीव्य ग्रंथ नहीं है।

तुलसी ने रामयश-वर्णन और रावण प्रबोध का एक और अवसर प्राप्त करने के लिए 'कालनेमि' के माध्यम को स्वीकार किया है। इसके साथ ही उसमें हनुमान की दक्षता और वीरता का प्रमाण भी प्राप्त हो जाता है।

(१४) हनुमान्-भरत मिलन—'महावीर चरित[15]', द्विसन्धान[16] और हनुमन्नाटक[17] के अतिरिक्त इस मिलन का कहीं संकेत भी नहीं मिलता है।

---

१ भट्टिकाव्य १७।९४ २ महावीर चरित ५।२१-२२
३ रघुवंश १२।७८ ४ पद्म। उत्तर। २४२।११२
५ हनुमन्नाटक ११।१५-१७ २० २१-१८
६ पद्म। उत्तर। २४२।१०४ ७ रामकथा पृष्ठ ४६
८ राघवीय १८।६७ ९ भट्टिकाव्य १३।१०७
१० चम्पूरामायण ६।६६ ११ रा० मंजरी। युद्ध।९८७ १००४
१२ रामचरित १२।६१-१११ १३ हनुमन्नाटक १३।३२
१४ अध्यात्मरामायण। युद्ध ६। ६६-६१ ७।१-११
१५ महावीर चरित ७।८ के बाद १६ द्विसन्धान १७।१०
१७ हनुमन्नाटक १३।२४-३०

'हनुमन्नाटक' में इस अवसर पर हनुमान के मन में अयोध्या जाने और वहाँ की कुशलता लाने का विचार पहले से ही विद्यमान है वे वहाँ अकस्मात् ही नहीं पहुँच जाते हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ सुमित्रा के एक स्वप्न का भी उल्लेख किया गया है जिसमें वह अपने बायें हाथ को एक साँप से डसा हुआ देखती है। उस दुःस्वप्न की शांति के लिए वहाँ भरत और वशिष्ठ एक यज्ञ करते हैं, जिसकी पूर्णाहुति के समय ही हनुमान के दर्शन होने पर भरत उन्हें विघ्न समझ कर एक बाण से ही नीचे गिरा देते हैं।[1] वहाँ भरत स्वयं 'पर्वतौषधि' से हनुमान को स्वस्थ भी कर देते हैं। जब हनुमान भरत पर क्रोध से और उनकी शक्ति के जिज्ञासा भाव से अपनी थकावट व्यक्त करते हुए उनसे ही पर्वत ले जाने का आग्रह करते हैं तब भरत उनको पर्वत सहित अपने बाण पर बिठा कर उसे छोड़ने का उपक्रम करते हैं। फिर हनुमान उस बाण से उतर कर उनसे क्षमा माँग लेते हैं और स्वस्थ होकर स्वयमेव चले जाते हैं।[2]

तुलसी ने नन्दिग्राम में भरत की स्थिति का ध्यान रख करके इस प्रसंग में सुमित्रा आदि का उल्लेख नहीं किया। वहाँ हनुमान को स्वस्थ करने के लिए उन्होंने 'पर्वतौषधि' के स्थान पर भरत के अनुभाव' का वर्णन करके उनके चारित्रिक उत्कर्ष को और अधिक विकसित कर दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने भरत की शक्ति-परीक्षा और हनुमान के क्षोभ तथा मर्यादाहार दोनों को अनुचित समझ कर उनका कहीं भी संकेत नहीं किया है।

(११) कुम्भकर्ण-वध—लक्ष्मण के पुनः स्वस्थ होने के समाचार से खिन्न रावण कुम्भकर्ण को युद्ध में भेजने के लिए बड़े प्रयत्नों से जगवाता है, और उसको युद्ध के सारे विवरण से सूचित करता है जिसे सुनकर कुम्भकर्ण राम के ईश्वरत्व का उल्लेख करके सीता-हरण तथा 'रामविरोध' के लिये उसको फटकारता है और सब उपायों को व्यर्थ बतला कर वह युद्ध भूमि के लिए स्वयं प्रस्थान करता है।[3] वहाँ विभीषण के मिलने पर उसे राम भक्ति के लिए धन्यवाद देता है और स्वयं को कालवश बतला कर युद्ध में प्रवृत्त हो जाता है। जब वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर वानर-सेना का महानाश करने लगता है और राम के ऊपर भी एक पर्वतखण्ड लेकर दौड़ता है, तब राम उसके दोनों हाथ काट डालते हैं। फिर भी उसके दौड़ने पर वे एक बाण से उसको समाप्त कर देते हैं। वहाँ कुम्भकर्ण के मरते ही उसका तेज राम के मुँह में समा जाता है और राम उसे निजधाम भेज देते हैं।[4] इस प्रकार इस प्रसंग में कुम्भकर्ण के जागरण भीषण युद्ध तथा निजधाम प्राप्ति आदि का प्रमुख रूप से उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य में इसके विविध रूप मिलते हैं।

---

१ हनुमन्नाटक १३।२१–२४
२ हनुमन्नाटक १३।२७ २९-३०
३ मानस ६।६१–६३
४ मानस ६।७०–७१

(१६) कुम्भकर्ण-जागरण—'रामायण-मञ्जरी' में कुम्भकर्ण को जगाने के लिए उसके वक्ष स्थल पर हजारों राक्षस रथ हाथी और घोड़े दौड़ाते हैं एवं गदा, मुद्गर और तोमर आदि से भयंकर प्रहार करते हैं। अन्त में वह देवताओं और गन्धर्वों आदि की स्त्रियों के पीनस्तन के स्पर्श से ही जागता है।[1] 'राघवीय' में उसके वक्ष पर 'पहाड़' फेंके जाते हैं सैकड़ों घड़े पानी डाला जाता है, सभी अंगों में छोनों से दबाया जाता है हाथी दौड़ाये जाते हैं और मर्म भाड़े के घनों से कूटा जाता है परन्तु वह अन्त में स्वेच्छा से ही जागता है।[2] इसी प्रकार 'भट्टिकाव्य' और 'आनन्द रामायण' में भी वह स्वेच्छा से जागता है, यद्यपि प्रथम ग्रन्थ में उसके केश उखाड़े जाते हैं उसे मशालों से जलाया जाता है और उसके शरीर में भालूओं दाँतों तथा शूलों को चुभाया जाता है[3] और द्वितीय ग्रंथ में दशकोटि (८ सर्पों, विन्ध्यादि पर्वतों दिग्गजों तथा सपरिवार शंकर' का भी प्रयोग किया जाता है।[4]

इन विविध विवरणों को हास्यास्पद कथागतिरोधक और अनावश्यक जान कर तुलसी ने उनको मानस में कोई स्थान नहीं दिया है, जब कि संस्कृत के कवि इनके विस्तारों में ही बड़ा रस लेते रहे हैं।

(१७) कुम्भकर्ण-युद्ध—'रामायण-मञ्जरी'[5] 'महाभारत'[6] 'अग्निपुराण'[7] 'भट्टिकाव्य'[8] 'आनन्दरामायण'[9] 'रामचरित'[10] 'राघवीय'[11] आदि सभी ग्रन्थों में कुम्भकर्ण के पर्वताकार शरीर और विविध पराक्रम का चित्रण किया गया है। 'अनर्घराघव'[12] और 'प्रसन्नराघव'[13] नाटकों में कुम्भकर्ण को कोई भी महत्व नहीं मिला है। यहाँ प्रथम ग्रंथ में एक श्लोक और द्वितीय ग्रंथ में आधे ही श्लोक में उसका समस्त उल्लेख समाप्त किया गया है। रघुवंश[14] में मेघनाद के पश्चात् और 'पद्मपुराण'[15] में रावण के पश्चात् उसके वध का वर्णन किया गया है जो मानस के क्रम से विपरीत है। 'महाभारत'[16] में कुम्भकर्ण वध का श्रेय राम के स्थान पर लक्ष्मण को दिया गया है।

तुलसी ने इस प्रसंग को पर्याप्त विस्तार और महत्व दिया है तथा वर्णनों में अधिकतर परम्परा का ही पालन किया है।

(१८) कुम्भकर्ण की निज धाम-प्राप्ति—यह तुलसी की मौलिक योजना

१ रा० मंजरी। युद्ध। ७१२-७४०
२ राघवीय १०।४६-५०
३ भट्टिकाव्य १५।२-५
४ आनन्दरामायण ८।२१-३४
५ रा० मंजरी। युद्ध। ७४१-८७८
६ महाभारत। वन। २८७।१-११
७ अग्नि।१०।११-१५
८ भट्टिकाव्य १५।२१-७०
९ आनन्दरामायण ९।२४-२६ के बाद
१० रामचरित १७।१७-२४
११ राघवीय १०।५२-६०
१२ अनर्घराघव ६।२०
१३ प्रसन्नराघव ७।२४
१४ रघुवंश १२।७९-८१
१५ पद्म। पाताल। ११६ पृ० ५७६
१६ महाभारत। वन। २८७।१२-१८

है। इसका मुख्य उद्देश्य राम के ईश्वरत्व का निदर्शन करना है और 'गीता'[1] के उक्त भक्ति-सिद्धान्त का सुपुष्ट प्रतिपादन करना है, जिसका राम यहाँ स्वयं उल्लेख करते हैं कि वैर भाव से भी उनका स्मरण करने पर राक्षस-लोग मुक्ति के लिये सर्वथा अधिकारी हैं —

"...... बैर भाव मोहि सुमिरत निसचर ॥
देहि परमगति सो जिय जानी। ...... ॥६।४५

(१९) मेघनाद-वध—कुम्भकर्ण की मृत्यु से क्षुब्ध रावण को सान्त्वना देकर 'मानस' का मेघनाद स्वयं युद्धभूमि में आता है और वह एक मायामय रथ पर बैठ कर अदृश्य होकर और आकाश में उड़ कर वानर सेना पर शक्ति शूल खड्ग, कृपाण आदि की वर्षा करके जब राम को नागपाश से आबद्ध करके चला जाता है तब नारद के द्वारा प्रेषित गरुड़ वहाँ आकर सब माया-नागों को खा जाता है और राम स्वस्थ हो जाते हैं। जब मेघनाद विजय प्राप्ति के लिए एक गुफा में जाकर यज्ञ करने लगता है तब विभीषण से उसकी सूचना पाकर राम, लक्ष्मण को यज्ञ ध्वंस तथा मेघनाद के वध के लिए वहाँ भेज देते हैं।[2] वानरों के द्वारा यज्ञ विध्वंस कर देने पर लक्ष्मण उसे एक बाण से ही समाप्त कर देते हैं। इस प्रसंग में राम की नाग-पाश-बद्धता मेघनाद के यज्ञ और लक्ष्मण द्वारा मेघनाद-वध का मुख्यतया उल्लेख किया गया है। संस्कृत-साहित्य में इसमें कुछ विभिन्नतायें हैं।

(२०) राम की नागपाश-बद्धता—राघवीय[3] चम्पूरामायण[4] पद्मपुराण[5] भट्टिकाव्य[6] रामचरित[7] महाभारत[8] आदि सभी ग्रन्थों में मेघनाद के नागपाश से राम के साथ लक्ष्मण के भी आबद्ध होने का वर्णन मिलता है। उस नागपाश से उनकी मुक्ति के लिये 'रामायण-मञ्जरी'[9] में नारद स्वयं आकर राम की स्तुति करते हैं और उनसे गरुड़ का स्मरण करने के लिये अनुरोध करते हैं, जिसके फलस्वरूप गरुड़ आकर अपने करस्पर्श से राम और लक्ष्मण को स्वस्थ कर देता है।[9] 'भट्टिकाव्य'[10] में यह अनुरोध विभीषण करते हैं। वहाँ गरुड़ को देखते ही सब नाग समुद्र में घुस जाते हैं। चम्पूरामायण[11], 'रामकथा'[12], पद्मपुराण[13] राघवीय[14] आदि में

---

१ 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥ गीता ४।११
२ मानस ६।७४-७५
३ राघवीय १७।२२-२६
४ चम्पूरामायण ६।४४-४५
५ पद्म। उत्तर।२४२।३०१
६ भट्टिकाव्य १४।४८-७०
७ रामचरित ३०।७६-८६
८ महाभारत। वन।२८८।१
९ रा० मञ्जरी। युद्ध। ५५१-५६१
१० भट्टिकाव्य १४।६५-६६
११ चम्पूरामायण ६।४६
१२ रामकथा पृष्ठ ४४
१३ पद्म। उत्तर।२४२।३०२
१४ राघवीय १७।६६-६७

गरुड़ के स्वयमेव आने का उल्लेख किया गया है।[1] 'राघवीय'[1] और 'रामचरित'[2] में गरुड़ राम के ईश्वरत्व का वर्णन करके स्वयं को उनका सहायक बतलाता है और मेघनाद को दिये गये ब्रह्मा के उस वरदान का भी उल्लेख करता है, जिससे वह उनको नागपाश-बद्ध करने में सफल हो सका है। इसके साथ ही वह उनकी मुक्ति के लिये ब्रह्मा के द्वारा की गई अपनी नियुक्ति का भी संकेत करता है। 'महाभारत' में विभीषण के द्वारा 'प्रज्ञास्त्र' से राम-लक्ष्मण के प्रबोधित किए जाने और सुग्रीव के द्वारा दिव्य-मन्त्र से अभिमंत्रित महौषधि के प्रयोग से उनके स्वस्थ होने का वर्णन किया गया है।[3]

तुलसी ने इस प्रसंग में परम्परा-पालन और राम के ईश्वरत्व प्रतिपादन के लिए ही 'गरुड़' का प्रयोग किया है और इसके उपसंहार के रूप में उन्होंने 'गरुड़ मोह' और 'गरुड़-काक-संवाद' के प्रसंगों की भी सफल योजना की है।[4] संस्कृत के ग्रन्थों में ऐसी विशेषता कहीं नहीं है।

(२१) मेघनाद यज्ञ—'रामायण मञ्जरी' में मेघनाद के द्वारा निकुंभिला में यज्ञ करने का वर्णन किया गया है। वहीं पर उस यज्ञ के पूर्ण होने की दशा में मेघनाद के अजेय होने तथा अपूर्ण होने की दशा में 'यज्ञ भंग-कर्ता' के द्वारा ही उसके वध करने का भी उल्लेख किया गया है।[5] 'रामचरित' में उस यज्ञ से सारथि कवच, अस्त्र शस्त्र और ध्वज के साथ विशिष्ट रथ की प्राप्ति हो जाने पर मेघनाद की अजेयता का संकेत मिलता है।[6] 'भट्टिकाव्य' में 'ब्रह्मशिरा' अस्त्र की प्राप्ति की सम्भावना की गई है।[7] राघवीय[8], अग्निपुराण[9] 'चम्पूरामायण'[10] में भी मेघनाद के निकुम्भिला-यज्ञ का संक्षिप्त वर्णन है। संस्कृत के इन सभी ग्रन्थों में इस यज्ञ के पूर्व मेघनाद के द्वारा 'माया-सीता' के वध का वर्णन मिलता है, जिससे वानर सेना में शोक छा जाने और राम के करुण विलाप करने का उल्लेख किया गया है। उसी समय मेघनाद को निश्चिन्त होकर यज्ञ करने का अवसर मिल जाता है।

तुलसी ने इस पृष्ठभूमि को अनुचित समझ कर उसके स्थान पर मेघनाद की पराजय और लज्जा का ही वर्णन किया है जिसके पश्चात् वह बल प्राप्त करने के उद्देश्य से ही मेघनाद यज्ञ में प्रवृत्त होता है। इन प्रसंगों की यह नवीन योजना तुलसी की अपनी विशेषता है।

---

१ राघवीय १७।६८-७०
२ रामचरित ११।१६६ १७५,१२१ १११
३ महाभारत ।।।२८९।५-७
४ मानस ७।५८-१२५
५ रा० मञ्जरी। युद्ध। ११००-११०३
६ रामचरित ४३।१७-२२
७ भट्टिकाव्य १७।२५-२७
८ राघवीय १५।७१-७५
९ अग्नि ।।१०।२०-२१
१० चम्पूरामायण ६।७० के बाद

है। इसका मुख्य उद्देश्य राम के ईश्वरत्व का निदर्शन करना है और गीता[1] के उस भक्ति-सिद्धान्त का सुपुष्ट प्रतिपादन करना है जिसका राम यहाँ स्वयं उल्लेख करते हैं, कि बैर भाव से भी उनका स्मरण करने पर राक्षस-लोग मुक्ति के लिये सर्वथा अधिकारी हैं —

------ ------ --- ---- - बैर भाव मोहि सुमिरत निसचर ॥
देहिं परमगति सो जिय जानी। ------- --- ------॥६।४५

(१९) मेघनाद-वध—कुम्भकर्ण की मृत्यु से क्षुब्ध रावण को सान्त्वना देकर 'मानस' का मेघनाद स्वयं युद्धभूमि में जाता है और वह एक मायामय रथ पर बैठ कर, अदृश्य होकर और आकाश में उड़ कर वानर सेना पर शक्ति शूल खड्ग, कृपाण आदि की वर्षा करके जब राम को नागपाश से आबद्ध करके चला जाता है तब नारद के द्वारा प्रेषित गरुड़ वहाँ आकर सब माया नागों को खा जाता है और राम स्वस्थ हो जाते हैं। जब मेघनाद विजय प्राप्ति के लिए एक गुफा में जाकर यज्ञ करने लगता है, तब विभीषण से उसकी सूचना पाकर राम, लक्ष्मण को यज्ञ ध्वंस तथा मेघनाद के वध के लिए वहाँ भेज देते हैं।[2] वानरों के द्वारा यज्ञ विध्वंस कर देने पर लक्ष्मण उसे एक बाण से ही समाप्त कर देते हैं। इस प्रसंग में राम की नाग-पाश-बद्धता मेघनाद के यज्ञ और लक्ष्मण द्वारा मेघनाद-वध का मुख्यतया उल्लेख किया गया है। संस्कृत-साहित्य में इसमें कुछ विभिन्नतायें हैं।

(२०) राम की नागपाश-बद्धता—राघवीय[3] चम्पूरामायण[4] पद्मपुराण[5] भट्टिकाव्य[6] रामचरित[7] महाभारत[8] आदि सभी ग्रन्थों में मेघनाद के नागपाश से राम के साथ लक्ष्मण के भी आबद्ध होने का वर्णन मिलता है। उस नागपाश से उनकी मुक्ति के लिये 'रामायण-मञ्जरी'[9] में नारद स्वयं आकर राम की स्तुति करते हैं और उनसे गरुड़ का स्मरण करने के लिये अनुरोध करते हैं, जिसके फलस्वरूप गरुड़ आकर अपने करस्पर्श से राम और लक्ष्मण को स्वस्थ कर देता है।[9] भट्टि-काव्य[10] में यह अनुरोध विभीषण करते हैं। वहाँ गरुड़ को देखते ही सब नाग समुद्र में घुस जाते हैं। चम्पूरामायण[11], 'रामकथा'[12] पद्मपुराण[13] राघवीय[14] आदि में

---

१ ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥ गीता ४।११
२ मानस ६।७४–७५
३ राघवीय १७।२२–२६ ४ चम्पूरामायण ६।४४–४५
५ पद्म। उत्तर।२४२।१०१ ६ भट्टिकाव्य १४।४८–५०
७ रामचरित १०।७६–८६ ८ महाभारत। वन।२८६।१
९ रा० मञ्जरी। युद्ध। ५५१–५६१ १० भट्टिकाव्य १४।६२–६६
११ चम्पूरामायण ६।४६ १२ रामकथा पृष्ठ ४४
१३ पद्म। उत्तर।२४२।१०२ १४ राघवीय १७।६६–६७

गरुड़ के स्वयमेव आने का उल्लेख किया गया है। 'रामगीत'[1] और 'रामचरित'[2] में गरुड़ राम के ईश्वरत्व का वर्णन करके स्वयं को उनका सहायक बतलाता है और मेघनाद को दिये गये ब्रह्मा के उस वरदान का भी उल्लेख करता है, जिससे वह उनको नागपाश-बद्ध करने में सफल हो सका है। इसके साथ ही वह उनकी मुक्ति के लिये ब्रह्मा के द्वारा की गई अपनी नियुक्ति का भी संकेत करता है। 'महाभारत' में विभीषण के द्वारा 'प्रज्ञास्त्र' से राम-लक्ष्मण के प्रबोधित किए जाने और सुग्रीव के द्वारा विश्व-मन्त्र से अभिमंत्रित महौषधि के प्रभाव से उनके स्वस्थ होने का वर्णन किया गया है।[3]

तुलसी ने इस प्रसंग में परम्परा-पालन और राम के ईश्वरत्व प्रतिपादन के लिए ही 'गरुड़' का प्रयोग किया है और इसके उपसंहार के रूप में उन्होंने 'गरुड़ मोह' और 'गरुड़-काक-संवाद' के प्रसंगों की भी सफल योजना की है।[4] संस्कृत के ग्रन्थों में ऐसी विशेषता कहीं नहीं है।

(२१) मेघनाद यज्ञ—'रामायण मञ्जरी' में मेघनाद के द्वारा निकुंभिला में यज्ञ करने का वर्णन किया गया है। वहाँ पर उस यज्ञ के पूर्ण होने की दशा में मेघनाद के अजेय होने तथा अपूर्ण होने की दशा में 'यज्ञ भंग-कर्ता' के द्वारा ही उसके वध करने का भी उल्लेख किया गया है।[5] 'रामचरित' में उस यज्ञ से सारथि, कवच, अस्त्र, अश्व और ध्वज के साथ विशिष्ट रथ की प्राप्ति हो जाने पर मेघनाद की अजेयता का संकेत मिलता है।[6] 'भट्टिकाव्य' में 'ब्रह्मशिरा' अस्त्र की प्राप्ति की सम्भावना की गई है।[7] रामगीत[8], 'अग्निपुराण'[9] 'चम्पूरामायण'[10] में भी मेघनाद के निकुम्भिला-यज्ञ का संक्षिप्त वर्णन है। संस्कृत के इन सभी ग्रंथों में इस यज्ञ के पूर्व मेघनाद के द्वारा 'माया-सीता' के वध का वर्णन मिलता है, जिससे वानर सेना में शोक छा जाने और राम के करुण विलाप करने का उल्लेख किया गया है। उसी समय मेघनाद को निश्चिन्त होकर यज्ञ करने का अवसर मिल जाता है।

तुलसी ने इस पृष्ठभूमि को अनुचित समझ कर उसके स्थान पर मेघनाद को पराजय और लज्जा का ही वर्णन किया है, जिसके पश्चात् वह बल प्राप्त करने के उद्देश्य से ही मेघनाद यज्ञ में प्रवृत्त होता है। इन प्रसंगों की यह नवीन योजना तुलसी की अपनी विशेषता है।

---

१ रामगीत १७।६८-७०
२ रामचरित ३१।११६ १०५,१२१ १११
३ महाभारत ३।२८१।५-७
४ मानस ७।५८-१२५
५ रा० मञ्जरी। युद्ध। ११००-११०३
६ रामचरित ४१।१७-१२
७ भट्टिकाव्य १७।२५-२७
८ रामगीत १८।७३-७५
९ अग्नि ।१०।१०-२१
१० चम्पूरामायण ६।७० के बाद

(२२) लक्ष्मण द्वारा मेघनाद-वध—'रामायण-मञ्जरी' में जब मेघनाद वानर-सेना को मूर्च्छित करके विभीषण पर 'यमास्त्र' का प्रयोग करता है तब लक्ष्मण कुबेरास्त्र से उसे काट देते हैं और राम का नाम लेकर 'रौद्रमहास्त्र' से मेघनाद को समाप्त भी कर देते हैं।[1] 'चम्पूरामायण' में यह युद्ध तीन दिन तक चलता है। यहाँ लक्ष्मण विभीषण पर प्रयुक्त मेघनाद की शक्ति को अपने 'अर्धचन्द्र बाण' से काट कर 'ऐन्द्रास्त्र' से उसका वध कर देते हैं।[2] 'भट्टिकाव्य' में मेघनाद लक्ष्मण के 'वारुणास्त्र' को अपने 'पाशुपतास्त्र' से रोक कर उन पर आसुरास्त्र से प्रहार करता है, जिसे लक्ष्मण 'माहेश्वरास्त्र' से काट देते हैं और रौद्रमहेश्वरास्त्र से उसे मार डालते हैं।[3] 'रामचरित' में भी तीन दिन के युद्ध का वर्णन है जिसमें मेघनाद के 'शिखिरैवतास्त्र' को लक्ष्मण 'वारुणास्त्र' से काटते हैं और फिर राम का स्मरण करके 'रौद्रअर्धचन्द्र बाण' से उसका शिरच्छेद कर देते हैं।[4] 'बालरामायण' नाटक के लक्ष्मण मेघनाद के आग्नेयास्त्र को वारुणास्त्र से, 'तामिस्रास्त्र' को चन्द्रास्त्र से, 'राक्षसास्त्र' को वैष्णवास्त्र से और 'भस्मास्त्र' को 'आत्मपरमास्त्र' से काट देते हैं और फिर एक बाण से उसे भस्म कर देते हैं।[5]

'मानस' के इस प्रसंग में तुलसी ने अनावश्यक विस्तार छोड़ कर लक्ष्मण की उस प्रतिज्ञा का उल्लेख किया है जिसमें वे मेघनाद के उसी दिन वध करने का निश्चय व्यक्त करते हैं भले ही शंकर उसके सहायक हों। इस प्रकार यहाँ लक्ष्मण का जो चरित्रोत्कर्ष प्रस्तुत किया गया है वह संस्कृत के ग्रंथों में अप्राप्य है।

(२३) रावण-वध—मेघनाद की मृत्यु के पश्चात् रावण स्वयं युद्धभूमि के लिए प्रस्थान करता है। वहाँ भयानक युद्ध करके वह ब्रह्मा की दी हुई शक्ति से लक्ष्मण को आहत कर देता है और अपनी विजय के लिए एक यज्ञ करने चला जाता है। कुछ समय पश्चात् वह शक्ति लक्ष्मण के शरीर से स्वयमेव निकल कर आकाश में चली जाती है और वे स्वस्थ हो जाते हैं।[6] इसी बीच में विभीषण से रावण के यज्ञ का समाचार पाकर के राम उसके ध्वंस के लिए हनुमान् आदि वानरों को आदेश देते हैं। यज्ञ भंग से क्रुद्ध होकर रावण भयानक युद्ध आरम्भ कर देता है। युद्धभूमि में राम को रथहीन देखकर इन्द्र अपने सारथि के साथ एक रथ उनके पास भेज देते हैं।[7] अपने मायायुद्ध में जब रावण अनेक राम-लक्ष्मणों को प्रदर्शित कर देता है तब राम एक बाण से उस माया को नष्ट कर देते हैं। उस युद्ध में राम अपने बाणों से ज्यों ज्यों रावण के सिर काटते हैं त्यों त्यों ब्रह्मा के वरदान के प्रभाव से उसके नये नये सिर निकल आते हैं। फिर रावण जब विभीषण को देख

---

१ रा० मञ्जरी। युद्ध। ११९०–११५२
२ चम्पूरामायण ६।७२–७६
३ भट्टिकाव्य १७।१२–४६
४ रामचरित ४३।२३–६२
५ बाल रामायण ८।४६–८१
६ मानस ६।७३–७४
७ मानस ६।८५–८८
८ मानस ६।८६

कर उस पर शक्ति-प्रहार करता है, तब राम विभीषण को पीछे हटाकर उस शक्ति को अपने वक्ष पर सह लेते हैं।[1] इसके बाद रावण अपनी माया से जब अनेक रावणों को प्रकट कर देता है तब राम एक बाण से उस माया को भी नष्ट कर देते हैं।[2] वहाँ रावण के वध में विलम्ब देखकर सीता के घबड़ाने पर त्रिजटा उन्हें समझाती है कि रावण के हृदय में उनका वास है और उनके हृदय में राम का वास है जिसमें सारे लोक बसे हुए हैं अतः राम त्रिजटा के विचार से ही रावण का वध नहीं कर पा रहे हैं।[3] अन्त में राम के द्वारा पूछे जाने पर विभीषण उन्हें रावण की मृत्यु का रहस्य बतलाता है कि रावण की नाभिकुण्ड में अमृत भरा हुआ है जिसके समाप्त होने पर ही वह मर सकेगा। फिर तो राम ३१ बाणों का एकसाथ प्रयोग करके उसकी नाभि दस सिरों तथा बीस बाहुओं को अपना लक्ष्य बनाते हैं और उसको मार डालते हैं। राम के ये बाण रावण के सिरों और बाहुओं को मन्दोदरी के सामने रखकर पुनः उनके तरकश में प्रविष्ट हो जाते हैं। मरते समय रावण का तेज राम के मुख में समा जाता है और राम उसे भी 'निजधाम' भेज देते हैं।[4] इस प्रकार इस प्रसंग में रावण-यज्ञ-ध्वंस इन्द्र रथ रावण माया-युद्ध विभीषण पर शक्ति-प्रहार सीता त्रिजटा संवाद रावण की नाभि कुण्ड में अमृत और उसकी निजधाम प्राप्ति का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य में इस वर्णन में अनेक विभिन्नतायें दृष्टिगोचर होती हैं।

(२४) रावण-यज्ञ-ध्वंस— अध्यात्म रामायण[6] का यह वर्णन मानस[5] के वर्णन से बहुत साम्य रखता है किन्तु वह अपना आलोच्य नहीं है। 'पद्मपुराण'[7] में रावण के द्वारा एक अभिचारात्मक यज्ञ किये जाने और वानरों के द्वारा उसके विध्वंस होने का संक्षिप्त उल्लेख है। इस प्रसंग के मूल में तुलसी का उद्देश्य रावण के तिरस्कार के अतिरिक्त अनुचित उद्देश्य वाले ऐसे अपवित्र यज्ञों की निरर्थकता का भी प्रतिपादन करना है।

(२५) इन्द्र रथ—इसका उल्लेख संस्कृत के लगभग सभी ग्रंथों में प्राप्त होता है। पद्मपुराण,[8] प्रसन्न राघव[9] और महावीर चरित[10] में केवल रथ और सारथि का ही वर्णन मिलता है। परन्तु रामायण[11] और रघुवंश[12] में उसके अतिरिक्त कवच भट्टिकाव्य[13] में तथा आदि रामायण-मञ्जरी[14] में कवच और धनुष दोनों का उल्लेख

---

१ मानस ६।९०-९४
२ मानस ६।९६-९७
३ " ६।९९
४ " ६।१०२
५ " ६।१०३-१०४
६ अध्यात्म रामायण। युद्ध। १०।१०-११
७ पद्म। उत्तर। २४२।१११-११४
८ पद्मपुराण। उत्तर।२४२।११५-११६
९ प्रसन्न राघव ७।३८ के बाद
१० महावीर चरित ६।३० के बाद
११ वाल्मीकि रामायण ६।१०२ के बाद
१२ रघुवंश १२।८४-८६
१३ भट्टिकाव्य १७।६७
१४ रा० मञ्जरी। युद्ध। १२११-१७

किया गया है। वहाँ उस रथ में एक सहस्र अश्व जुते हुए हैं। 'रघुवंश' में उन अश्वों का रंग यदि कपिल है[1] तो 'रामचरित' में नीला है। वहाँ सुग्रीव तथा विभीषण के अधिक आग्रह करने पर ही राम उस रथ को स्वीकार करते हैं।[2] 'महाभारत' के राम उस रथ को रावण-माया समझते हैं।[3] हनुमन्नाटक में वे रथ में बैठने के पूर्व हनुमान को उसकी ध्वजा में स्थापित कर देते हैं।[4] 'महावीर चरित' के अनुसार इन्द्र और गन्धर्वराज दोनों आकाश से 'राम-रावण युद्ध' देखते हैं। उसी समय राम को रथहीन देख कर इन्द्र गन्धर्वराज के रथ में बैठ जाते हैं और अपना रथ राम के लिए भेज देते हैं।[5] 'बालरामायण' का रावण इन्द्र के इस पक्षपात से उन पर कुपित भी हो जाता है।[6]

'मानस' का यह प्रसंग परम्परानुकूल ही है फिर भी उसमें सारग्रहण के फलस्वरूप अधिक स्वाभाविकता आ गई है जब कि संस्कृत के ग्रंथों में अनावश्यक विस्तार मिलता है।

(२९) रावण का मायायुद्ध—'रामायण-मञ्जरी' में रावण व्याघ्र सिंह और हाथी के मुँह वाले बाणों से दस दिशाओं को आच्छादित कर देता है। वहाँ राम उसके 'रुद्रास्त्र' को 'गान्धर्वास्त्र' से और 'नागास्त्र' को 'सुपर्णास्त्र' से काट देते हैं।[7] 'रामचरित' के राम उसके 'मौरयास्त्र' को 'वारुणास्त्र' से 'ज्वलनदैवतास्त्र' को 'वायव्यास्त्र' से तथा 'शक्ति' को 'क्षुरमुख' से काट देते हैं और उसके त्रिशूल-प्रहार करने पर वे उसे ब्रह्मास्त्र से मार डालते हैं।[8] 'भट्टिकाव्य' में राम-रावण के 'आसुरास्त्र' को पावकास्त्र से 'रौद्रास्त्र' को 'गान्धर्वास्त्र' से और 'पाशुपतास्त्र' को 'ब्रह्मास्त्र' से नष्ट करते हैं।[9] चम्पूरामायण में यह युद्ध सात दिन तक चलता है जिसमें अनेक अस्त्रों के परस्पर काटे जाने का वर्णन है किन्तु उनके प्रयोक्ताओं का वहाँ नामोल्लेख नहीं है।[10] 'महाभारत' में भी शूल मुशल, परशु शक्ति शूर, शतघ्नी आदि के प्रयोग का वर्णन किया गया है। वहाँ रावण कभी अपने शरीर से सहस्रों सशस्त्र राक्षसों को प्रगट कर देता है और कभी स्वयं राम और लक्ष्मण का रूप धारण करके उन पर आक्रमण कर देता है।[11] 'अनर्घराघव' नाटक में भी इस

---

१ रघुवंश १२।८४ २ रामचरित १६।१ ४७।२९–५८

३ महाभारत। वन। १६०।१२–१७

४ निर्दग्धाखिलराक्षसेन्द्रनगरः सौमित्रिसंजीवना—
पोत्पाटीपधिपर्वतश्च मरुतः पुत्रो ध्वजे वर्तते ॥ हनुमन्नाटक १४।३

५ महावीर चरित ६।१० के बाद ६ बाल रामायण ८।२५–२६

७ रा० मञ्जरी। युद्ध। १२१२–१२१४ १२१९

८ रामचरित १६।५१–२६ ४७।८९–९६

९ भट्टिकाव्य १७।८९–९८ १० चम्पूरामायण ६।८६ के बाद

११ महाभारत। वन। २६०।५–२४

मायास्त्रों का विविध वर्णन मिलता है।[1] 'अद्भुत-दर्पण' का रावण अपनी माया से इतने रावणों को उत्पन्न कर देता है कि प्रत्येक वानर को चार, सेनापति को पाँच, सुग्रीव का सात, अंगद को आठ, लक्ष्मण को एक सौ तथा राम को असंख्य रावण घेर लेते हैं। वहाँ राम भी अपने 'महामायामयास्त्र' से उन असंख्य रावणों के लिए असंख्य रामों को प्रगट कर देते हैं।[2] 'बाल-रामायण' में राम रावण के द्वन्द्व-युद्ध' का वर्णन किया गया है। वहाँ दशरथ और इन्द्र दोनों ही आकाश से यह युद्ध देख रहे हैं। दशरथ, वात्सल्यवश, राम की सहायता के लिए जब-जब उस युद्ध में कूद हस्तक्षेप करना चाहते हैं तब-तब इन्द्र उसको 'अधर्म' बतला कर उन्हें बीच-बीच रोकते भी रहते हैं।[3] यहाँ भी राम के 'आग्नेयास्त्र' को रावण 'वारुण्यास्त्र' से वे उसको असमावारास्त्र' से, वह उसको 'सामुद्रास्त्र से और अन्त में वे उसको 'वायव्यास्त्र' से काट देते हैं।

तुलसी ने मानस' के इस प्रसंग में राम के मायायुद्ध का वर्णन न करके उनकी पूज्यता सुरक्षित रखी है। इसके साथ ही रावण की माया को भी एक ही क्षण में नष्ट करने वाली राम की शक्ति का उल्लेख करके उन्होंने उनके सर्वशक्तिमान और मायातीत स्वरूप का बारम्बार निरूपण किया है।

(२७) रावण का विभीषण पर शक्ति-प्रहार— रामायण-मञ्जरी[5], 'राघवीय'[6] 'भट्टिकाव्य'[7] आदि में इस प्रसंग का उल्लेख किया गया है। यहाँ प्रथम ग्रंथ में उस शक्ति' को राम अपने बाण से बीच में ही काट देते हैं किन्तु अन्य ग्रंथों में यह काम लक्ष्मण करते हैं। 'मानस' में शक्ति को काटने के स्थान पर राम के द्वारा उसको स्वयं अपने वक्ष पर सह लेने का वर्णन करके तुलसी ने राम की उस अद्वितीय शरणागतवत्सलता का पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत किया है, जिसमें उन्हें अपने प्राणों की भी चिन्ता नहीं रहती है। राम के चरित्र की यह विशेषता संस्कृत ग्रंथों में कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती है।

प्रसन्नराघव' के विद्याधर संवाद में इस प्रसंग का संकेत देखा जा सकता है, यहाँ रावण के उसी समय तक सुरक्षित रह लेने का उल्लेख किया गया है जब तक राम उसके हृदय में सीता के निवास का ध्यान करके उसका वध नहीं कर देते हैं।[8] 'हनुमन्नाटक' का वर्णन 'मानस' से अक्षरशः मिलता है किन्तु वहाँ यह सम्वाद के

---

१ अनर्घ राघव ६।७४ के बाद
२ अद्भुत दर्पण ९।३-४
३ बाल रामायण १०।२२ के बाद
४ बालरामायण १०।२६-३६
५ रा० मञ्जरी। युद्ध। १२१८-१९
६ राघवीय १६।२०-२१
७ भट्टिकाव्य १७।६०-६१
८ अयं रावणहृदि सुतनुर्वैदेहीमुख-
विलोकिताऽरेषी जनकनृपतिपुत्री निवसति ॥ प्रसन्नराघव ७।४६

के रूप में न होकर राम के भावक के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[1] राम के विराट् रूपत्व को निदर्शन करने के लिए ही तुलसी ने इस प्रसंग का वर्णन किया है, किन्तु उसे राम की गर्वोक्ति के रूप में अनुचित मान कर उन्होंने कथित पात्रों के संवाद के माध्यम से उसे व्यक्त करा दिया है। तुलसी का यही विवेक उन्हें अन्य कवियों से पृथक करके एक उच्चासन पर सुशोभित कर देता है।

(२९) रावण की नाभि-कुण्ड में अमृत— केवल 'अध्यात्म रामायण' में यह प्रसंग मिलता है किन्तु वह अपना सामीप्य नहीं है। वहाँ अमृत के नष्ट हो जाने के बाद भी रावण तब तक बराबर लड़ता रहता है जब तक राम मातलि के संकेत से ब्रह्मास्त्र के द्वारा उसे देवताओं के निश्चित समय में ही मार नहीं डालते हैं।[2] 'पद्मपुराण' में भी विभीषण के द्वारा रावण के शरीर में किसी निश्चित स्थान के संकेत का उल्लेख मिलता है जहाँ पर प्रहार करके राम उसे मार डालते हैं[3] किन्तु 'अमृत-कुण्ड' की वहाँ कोई चर्चा नहीं है। अन्य ग्रन्थों में यह प्रसंग नहीं मिलता है। तुलसी ने 'अमृतकुण्ड' के महत्त्व को समझ कर 'मानस' में उसके सूख जाने के तुरन्त बाद ही रावण की मृत्यु का वर्णन कर दिया है। इस प्रकार यह प्रसंग अधिक रोचक और चमत्कारपूर्ण बन गया है। संस्कृत ग्रन्थों में इसके अभाव से इसकी यहाँ मौलिकता स्वयं सिद्ध है।

(३०) रावण की निजधाम प्राप्ति—इसका उल्लेख केवल 'अध्यात्म रामायण' में है। वहाँ देवताओं के आश्चर्य प्रकट करने पर नारद रावण की इस 'सायुज्यमुक्ति' के कारणों में उसके द्वारा अहर्निश राम के ध्यान और राम के हाथों से ही उसके वध को बतलाते हैं।[4] अन्य ग्रन्थों में यह प्रसंग नहीं मिलता है। तुलसी ने यहाँ पर देवताओं की शंका के स्थान पर उनकी प्रसन्नता का उल्लेख करके 'सायुज्यमुक्ति' के सिद्धान्त को उनके द्वारा मान्य बतलाया है और इस प्रकार राम भक्ति का विशेष महत्त्वपूर्ण निरूपण किया है।

(३१) विभीषण तिलक—रावण की मृत्यु के पश्चात् विभीषण जब मन्दोदरी आदि रावण की रानियों के विलाप को देखकर क्षुब्ध हो जाता है तब राम की आज्ञा से लक्ष्मण उसे सान्त्वना देते हैं और उसके द्वारा रावण की विधिवत् क्रिया सम्पन्न हो जाने के पश्चात् वे उसका तिलक भी कर देते हैं।[5] इस प्रकार यहाँ विभीषण के 'शोक' और 'अभिषेक' का ही वर्णन किया गया है। संस्कृत-साहित्य में भी इसका निरूपण प्रायः सर्वत्र मिलता है।

---

१ हृदयस्य प्रतिवासरं वसति सा तस्मात्स्वहं रावणो
मध्यास्ते भुवनावली विलसिता तीर्णं शर्म सन्त्विमि ॥ हनुमन्नाटक १४।२६
२ अध्यात्मरामायण । युद्ध । ११।५१–७२
३ पद्म । पाताल । ११६।४८ के बाद
४ अध्यात्मरामायण । युद्ध । ११।७८–८६ ५ मानस ६।१०४–१०६

(१२) विभीषण-शोक— 'चम्पू रामायण'[1] और 'भट्टिकाव्य'[2] में विभीषण के विलाप का विस्तार से वर्णन किया गया है। वहां प्रथम ग्रन्थ में वह अपने को धूर्त भाग्यहीन कुलक्षयकारक, कूटधर्मी कलंकी आदि कह कर स्वयं को फटकारता है और कुम्भकर्ण को ही रावण का सच्चा भाई मानता है। वहां रावण की रानियां भी उसे धिक्कारती हैं।[1] द्वितीय ग्रन्थ में विभीषण अपने 'सहोदर' भाई की मृत्यु से अत्यन्त दुःखी होकर बहुत विलाप और प्रलाप करता है और पिछली सारी घटनाओं का स्मरण करके वह देवताओं की वर्तमान प्रसन्नता का भी संकेत करता है।[2] 'रामायण-मञ्जरी' के विभीषण को कोई शोक नहीं है। वह रावण को नृशंस, कृतघ्न, दुराचारी क्रूर और निर्लज्ज आदि कह कर उसकी अन्त्यक्रिया भी नहीं करना चाहता है।[3] 'आश्चर्य-चूडामणि' में विभीषण इस अवसर पर विरक्त हो जाता है और रावण की पापमयी चंचला लक्ष्मी से अपना वैराग्य बतला कर केवल राम का ही आश्रय ग्रहण करना चाहता है। इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में विभीषण की प्रतिक्रिया का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। तुलसी ने 'मानस' के इस प्रसंग में विभीषण के दृढ़ 'राम भक्त' होने का चित्रण करके उसकी चारित्रिक उत्कृष्टता की स्थापना की है।[4]

(१३) विभीषण अभिषेक—'रामायण-मञ्जरी' में इसके लिए हेमरत्नघट सर्वौषधि फल और अक्षत आदि का उल्लेख किया गया है।[5] 'राघवीय'[6] में केवल शुभदिन का संकेत है और 'चम्पू रामायण'[7] में सभी पुण्यतीर्थों के जल लाने का वर्णन है। अन्य ग्रंथों में विभीषण के केवल सिंहासनासीन होने का ही संकेत मिलता है। तुलसी ने इस प्रसंग में राम के द्वारा 'नगर प्रवेश' न करने का उल्लेख करके राम के चरित्र की विशेषता का पुनः निरूपण कर दिया है।

(१४) सीता शुद्धि— विभीषण तिलक के पश्चात् 'मानस' के राम सीता की कुशलता जानने के लिए हनुमान को अशोक-वाटिका में भेजते हैं। सीता के आने पर वे उनके अग्नि में पूर्वस्थापित स्वरूप को उनको प्राप्त करने के लिए उन्हें कुछ दुर्वचन कहते हैं[8] जिनको सुनकर सीता लक्ष्मण से चिता-निर्माण करवाती हैं और स्वयं को मन-वचन-कर्म से राम की अनन्य सेविका कह कर अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं। उस समय उनके प्रतिबिम्ब और लौकिक कलंक के वहीं जल जाने के पश्चात् अग्निदेव स्वयं प्रकट होकर उनको राम को समर्पित कर देते हैं।[9] फिर

---

१ चम्पू रामायण । ६ । ८८ के बाद–७४ के बाद
२ भट्टिकाव्य १७।११२–१८।१–१६–१९ १–१०
३ रा० मञ्जरी । लंकोत्तर । २१–१५
४ आश्चर्यचूडामणि ७।७
५ " " ४७।४९
६ राघवीय १२।१२
७ चम्पूरामायण ६।१४ के बाद
८ मानस ६।१०७–१०८
९ मानस ६।१०९

देवगण पुष्प बरसाते हुए उनका गुणगान करने लगते हैं इन्द्र तथा शिव उनकी स्तुति करते हैं और दशरथ उन्हें आशीर्वाद देते हैं।[1] इस प्रसंग में राम के दुर्वचन सीता का अग्निप्रवेश अग्नि द्वारा समर्पण देवस्तुति, दशरथ आशीर्वाद का प्रमुख रूप से वर्णन किया गया है। संस्कृत-साहित्य में इसके विभिन्न विस्तार मिलते हैं।

(१५) राम के दुर्वचन—'मानस' में इसका कोई विस्तार नहीं है किन्तु 'रामायण-मञ्जरी' में राम सीता को स्वेच्छागमन के लिए मुक्त करते हुए उनको देवरों सुग्रीव विभीषण अथवा देशान्तर में किसी के भी भवन में बस जाने की स्वतन्त्रता दे देते हैं।[2] भट्टिकाव्य में वे उनको उनमें से किसी के साथ विवाह करने की भी अनुमति भी देते हैं।[3] महाभारत' के राम उनको स्वाचशील हवि' कह कर स्वच्छन्द विचरण के लिए मुक्त कर देते हैं।[4] अभिषेक के राम तो उनको वहीं लंका में छोड़ जाना चाहते हैं।[5] 'रामचरित' के राम स्वयं अशोक-वाटिका तक जाते हैं। वहाँ उन्हें देखकर सीता त्रिजटा से कहती हैं कि राम उनके सकाप्रवास के कलंक से अवश्य क्षुब्ध होंगे। फिर वे अपनी अन्तरात्मा वायु, अग्नि आकाश और पृथ्वी आदि को अपनी पवित्रता का साक्षी बतलाकर खेद भी प्रकट करती हैं कि वे सब उनकी पवित्रता की घोषणा क्यों नहीं करते हैं। अन्त में वे राम की असाधारणता का संकेत करके त्रिजटा के समझाने पर भी शीघ्र ही अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं।[6] 'आश्चर्यचूडामणि' में अनसूया के वरदान से राम को देखते ही सीता स्वत पूर्णमंडित हो जाती हैं। विरहिणी' का वह शृङ्गारिक रूप देख कर राम उनको चरित्रहीन समझ लेते हैं। सुग्रीव, लक्ष्मण और हनुमान भी जब सीता को उस रूप में देखकर पहचान नहीं पाते हैं। तब सीता उस वरदान को शाप बतलाकर बहुत क्षुब्ध होती हैं। फिर राम जब क्रुद्ध होकर उनको छलिनी पुंश्चली आदि कहने लगते हैं और सुग्रीव उनके निर्वासन के लिए और लक्ष्मण तथा हनुमान उन्हें शारीरिक दण्ड देने के लिए राम को परामर्श देते हैं तब सीता अग्नि प्रवेश की इच्छा व्यक्त करती हैं जिसे सुन कर वे सब लोग सहर्ष अनुमति दे देते हैं।[7] अद्भुत दर्पण में मय राक्षस राम की लंका-विजय को व्यर्थ करने के लिये स्वयं राम बन जाता है और सीता को दूषित कह कर त्याग देने का अभिनय करता है जिससे वे शोक और अपमान का अनुभव करके अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं।[8] इस प्रसंग में तुलसी ने राम के कटु वचनों का उल्लेख न करके उन्हें केवल व्यंग्य ही रहने दिया है जब कि संस्कृत के साहित्यकार इस दिशा में अनेक नाटकीय उद्भावनाओं में ही लिप्त रह कर

१ मानस ६।११०-११५
२ रा० मंजरी। लंकोत्तर। ८७-९१
३ भट्टिकाव्य २०।२२-२५
४ महाभारत। वन। २९१।१०-१३
५ अभिषेक ६।२१ के बाद
६ रामचरित ४०।२९-४२
७ आश्चर्यचूडामणि ७।१६
८ आश्चर्यचूडामणि ७।१६-१८ के बाद
९ अद्भुत दर्पण १०।८

तत्कालीन वातावरण को वह शुद्धता और पवित्रता नहीं प्रदान कर सके हैं, जो 'मानस' में सहज सुलभ है।

(१६) सीता का अग्नि-प्रवेश—'रामायण-मञ्जरी' की सीता लज्जा, विस्मय, कोप, अपमान आदि का अनुभव करके तथा स्वयं को 'जनक-पुत्री', 'दशरथ वधू' और 'राम-पत्नी' बतला कर लक्ष्मण से चिता बनवाती हैं और अपने को मन-वचन-कर्म से पतिव्रता बतलाती हुई अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं।[1] 'भट्टिकाव्य' में वे केवल पञ्च तत्वों को अपना साक्षी बतला कर अग्नि से प्रार्थना करती हैं कि यदि वे दूषित हों तो वह उन्हें जला दे।[2] 'रामचरित' में वे अपने को स्वप्न में भी 'अस्खलित' कहती हुई चिता में प्रवेश कर जाती हैं।[3] 'हनुमन्नाटक' में भी वे अपने को मन-वचन-कर्म से पतिव्रता बतलाती हुई दूषित होने की अवस्था में ही अग्नि से स्वयं को भस्म करने की प्रार्थना करती हैं।[4] 'बाल रामायण' में वे इस समय लक्ष्मी सरस्वती स्वाहा सावित्री तथा अपने कुल-देवताओं का स्मरण करती हैं।[5] 'आश्चर्य चूडामणि' में वे अयोध्या के गुरुजनों और राम को प्रणाम करके लक्ष्मण आदि को अपने समान ही राम का आज्ञाकारी बनने का उपदेश देती हैं।[6] 'पद्मपुराण'[7] तथा 'रामकथा'[8] में वे बिना कुछ कहे चुपचाप चिता में प्रवेश करती हैं।

तुलसी ने 'मानस' के इस प्रसंग में सीता के लिए अग्नि के चन्दनवत् हो जाने और उसमें उनके प्रतिबिम्ब जल जाने का उल्लेख करके वहाँ एक दिव्य चमत्कार का सृजन कर लिया है जो संस्कृत-साहित्य में नहीं मिलता है।

(१७) अग्नि द्वारा समर्पण- रामायण-मञ्जरी[9] भट्टिकाव्य[10] 'पद्म पुराण'[11] अभिषेक[12] रामचरित[13] आदि सभी ग्रंथों में अग्निदेव के द्वारा प्रकट होकर सीता को शुद्ध बतलाने और उनको राम को समर्पण करने का वर्णन मिलता है। तुलसी ने 'मानस' में केवल समर्पण करने का ही उल्लेख किया है और शुद्धता की चर्चा को अनुचित एवं अनावश्यक मान कर छोड़ दिया है।

(१८) देवस्तुति- रामचरित[14] 'रामचरित'[15] 'पद्मपुराण'[16] 'भट्टिकाव्य'[17] 'रामायण मञ्जरी'[18] आदि सभी ग्रंथों में ब्रह्मा शिव इन्द्र नारद आदि देवताओं के आने और

---

१ रा० मञ्जरी। लंकोत्तर। ६३-१०४
२ भट्टिकाव्य २०।२७-२८
३ रामचरित १९।८२
४ हनुमन्नाटक १४।६४
५ बालरामायण १०।२
६ आश्चर्यचूडामणि ७।१८ के बाद
७ पद्म। उत्तर। २४।१२६
८ रामकथा पृष्ठ ५०
९ रा०मञ्जरी। लंकोत्तर। ११७-११८
१० भट्टिकाव्य २१।१-१२
११ पद्म। उत्तर। २४२।१४१-१४२
१२ अभिषेक ६।२७-२८
१३ रामचरित २०।११-१४
१४ रामचरित २०।१-११
१५ रामचरित ४०।५०-६४
१६ पद्म। उत्तर। २४२।१११
१७ भट्टिकाव्य २१।७-१८
१८ रा०मञ्जरी। लं

राम के विष्णुत्व तथा सीता के सतीत्व का निरूपण करने एवं सीता को शुद्ध बतलाकर राम से स्वीकार करने के आग्रह का भी वर्णन मिलता है। तुलसी ने इस प्रसंग में देवताओं के इस आग्रह का संकेत नहीं किया है क्योंकि वे अपने राम को उतना अल्पज्ञ और हठी नहीं समझते हैं कि उन्हें सीता की दिव्यता और निष्कलंकता का भी परिचय न हो। इस अवसर पर राम की 'नरलीला' और 'लोकपक्ष-समन्वय' का वर्णन करके मानसकार ने इस प्रसंग को और अधिक चमत्कारपूर्ण बना दिया है।

(१६) दशरथ आशीर्वाद—'रामायण-मञ्जरी' में इस अवसर पर दशरथ राम संवाद का वर्णन मिलता है जिसमें दशरथ राम को देवताओं के द्वारा प्रशंसित देख कर उन्हें धन्यवाद देते हैं और राम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे कैकयी तथा भरत के प्रति अपने दुर्भाव को समाप्त कर दें।[1] 'राघवीय' के दशरथ लक्ष्मण और सीता के कर्तव्यों की प्रशंसा करते हुए राम को अयोध्या जाने और राज्य करने का अनुरोध करते हैं।[2] वहाँ वे सुग्रीव हनुमान और विभीषण की भी प्रशंसा करते हैं और अन्त में वे राम लक्ष्मण और सीता का आलिंगन भी करते हैं।[3] 'महाभारत' और 'अद्भुत-दर्पण'[4,5] में भी दशरथ राम को शीघ्र अयोध्या जाने और वहाँ राज्य करने का आदेश देते हैं। 'चम्पूरामायण'[6] और 'भट्टिकाव्य'[7] आदि में भी दशरथ के द्वारा दर्शन और आशीर्वाद दिए जाने का संक्षिप्त उल्लेख मिलता है। 'आश्चर्य चूड़ामणि' में राम को मनु से लेकर दशरथ तक सभी पितरों के दर्शन वहाँ प्राप्त हो जाते हैं।[8]

तुलसी ने यहाँ पर दशरथ-दर्शन के कारण-रूप में उनकी सगुणोपासकता और मोक्ष विरक्ति का उल्लेख करके उनके चरित्र का जो उत्कर्ष प्रतिपादित किया है वह संस्कृत ग्रन्थों में नहीं मिलता।

(४) राम का लंका से प्रस्थान—सीता-ग्रहण के पश्चात् वनवास की अवधि को समाप्त होते जानकर राम जब लंका से प्रस्थान करने का विचार करते हैं तब विभीषण उनके लिए उसी समय पुष्पक विमान प्रस्तुत कर देता है। फिर राम वानर-सेना विघटित करके सीता लक्ष्मण सुग्रीव अंगद, हनुमान जाम्बवान नल नील और विभीषण आदि को साथ लेकर उस विमान से अयोध्या की ओर चल देते हैं। मार्ग में वे सीता को युद्ध भूमि समुद्र रामेश्वर मन्दिर दण्डकवन अगस्त्याश्रम, चित्रकूट प्रयाग आदि स्थानों को दिखलाते हुए 'राम जब त्रिवेणी के पास पहुँचते हैं तब भरत को सूचना देने के लिये हनुमान को वहीं से भेजकर वे स्वयं भरद्वाज के आश्रम में उनसे मिलने के लिए चले जाते हैं। फिर वे गुह से मिल कर अयोध्या की

---

१ रा०मञ्जरी ।लंकोत्तर।१२३-१२८   २ राघवीय २०।१७-४२
३ राघवीय २०।४३-४६   ४ महाभारत । वन । २९१।२६-२७
५ अद्भुत दर्पण १०।१६ २१   ६ चम्पू रामायण ६।१८ के बाद
७ भट्टिकाव्य २१।१०   ८ आश्चर्यचूड़ामणि ७।२६

ओर बढ़ते हैं।[1] इस प्रसंग में पुष्पक यात्रा और 'हनुमान-प्रेषण' का ही विशेष वर्णन है, जो संस्कृत-ग्रंथों में विभिन्न रूपों में मिलता है।

(४१) पुष्पक-यात्रा—संस्कृत के सभी ग्रंथों में इस यात्रा का विशिष्ट वर्णन किया गया है। 'रामायण-मञ्जरी'[2], 'रामबोध'[3] 'चम्पू रामायण'[4] 'पद्म पुराण'[5] 'महाभारत'[6] आदि ग्रंथों में इसका संक्षिप्त उल्लेख मिलता है जबकि 'रघुवंश'[7] में इसी परिचित मार्ग का अति विस्तार से वर्णन किया गया है। अनर्घ राघव[8] 'बालरामायण'[9], 'महावीरचरित'[10] आदि नाटकों के लेखकों को इसी बहाने से अपने समस्त भौगोलिक ज्ञान के प्रदर्शन का अवसर ही मानों हाथ लग गया है। वहाँ वे राम को हिमालय मन्दर, कैलास सुमेरु आदि पर्वतों का चक्कर लगवा कर उन्हें 'इन्द्रलोक' और 'सूर्यलोक' तक की सैर करवा देते हैं। यहाँ इस लम्बी यात्रा से पुष्पक विमान का पूरा-पूरा लाभ उठाने की चेष्टा तो की गई है किन्तु राम की अयोध्या सम्बन्धी 'चिन्ता' की एकदम उपेक्षा करदी गई है। तुलसी ने इस यात्रा का अति संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करके राम के हृदय की गति के साथ ही मानों कथा की गति को भी जोड़ दिया है। भरत की चिन्ता में राम के हृदय की व्यग्रता का सहज अनुमान करके उन्होंने 'यात्रा-वर्णन' के व्यवधान को भी बीच में उपस्थित नहीं होने दिया जबकि संस्कृत के नाटककार उसे ही साध्य मान कर उसी के विस्तारों में रम गये।

(४२) हनुमान् प्रेषण—'भट्टिकाव्य'[11] 'बालरामायण'[12] 'महावीरचरित'[13] 'प्रसन्नराघव'[14], 'अनर्घराघव'[15] आदि ग्रंथों के राम हनुमान को लंका से ही अयोध्या भेज देते हैं। 'रामायण-मञ्जरी'[16] 'रामबोध'[17] 'पद्मपुराण'[18] आदि में वे 'भरद्वाज मिलन' के पश्चात् उनको भेजते हैं। 'महाभारत'[19] में वे अयोध्या की सीमा पर पहुँच कर उन्हें भेज देते हैं। यहाँ तुलसी का ध्यान समय की व्यस्तता और सदुपयोगिता की ओर अधिक है, इसीलिए वे एक ओर हनुमान् को भेजते हैं और दूसरी ओर उसी समय में राम भरद्वाज मिलन का वर्णन करते हैं। यही तो तुलसी की सर्वोत्कृष्टता है।

---

१ मानस ६।११८–१२१
२ रा० मञ्जरी। लंकोत्तर ११८।१२७
३ रामबोध २०।१६–२६
४ चम्पूरामायण ६।६६–१०२
५ पद्म। उत्तर। २४२।१४४–१२०
६ महाभारत। वन। २९१।५१–५१
७ रघुवंश १३।१–६७
८ अनर्घराघव ७।१२–११२
९ बाल रामायण १०।२२–८६
१० महावीरचरित ७।११ २९
११ भट्टिकाव्य २२।१–१७
१२ बालरामायण १०।६६
१३ महावीर चरित ७।८ के बा
१४ प्रसन्नराघव ७।७२ के बाद
१५ अनर्घराघव ७।११
१६ रा० मञ्जरी। लंकोत्तर ११६
१७ रामबोध २०।२६
१८ पद्म। उत्तर। २४२।१२१
१९ महाभारत। वन। २९१।६१

७ उत्तर काण्ड

पिछले काण्ड में राम के द्वारा लंका से प्रस्थान करने का उल्लेख किया जा चुका है। इस काण्ड में राम के अयोध्या प्रत्यावर्तन और राज्याभिषेक के वर्णन के साथ मूल कथा समाप्त हो जाती है फिर उपसंहार भाग में 'काक-भुसुण्ड-संवाद' के माध्यम से 'भक्ति सिद्धान्त' का गूढ़ तात्विक निरूपण किया गया है। अन्त में कथा के अधिकारी और माहात्म्य' वर्णन के साथ-साथ 'मानस' का यह अन्तिम काण्ड भी समाप्त हो जाता है।

(१) राम का अयोध्या प्रत्यावर्तन—हनुमान् से राम के आगमन का समाचार सुनकर 'मानस' के भरत नन्दिग्राम से अयोध्या जाकर सबको सूचित करते हैं तथा वहाँ राम के स्वागत की विशद व्यवस्था भी करते हैं। उसी समय पुष्पक विमान से नगर के समीप आकर राम उस विमान को कुबेर के पास जाने की आज्ञा देते हैं और सबसे पहले गुरु वसिष्ठ से मिलते हैं। फिर वे चरणों पर गिरते हुए भरत को उठा कर अपने हृदय से लगा लेते हैं। इसके बाद वे शत्रुघ्न से मिल कर अनेक रूप प्रगट करते हैं और सभी पुरवासियों से एक साथ भेंट कर लेते हैं।[1] उसके बाद वे कौसल्या, कैकयी और सुमित्रा से मिलते हैं। नगर प्रवेश करते ही विभीषण आदि मनुष्य रूप धारण कर लेते हैं और राम उनको बुला कर गुरु वसिष्ठ से उनका परिचय करवाते हैं। फिर वे कैकयी को लज्जित जानकर उससे पुनः मिलते हैं।[2] इस प्रकार इस प्रसंग में पुष्पक विसर्जन राम पुरवासी-मिलन सुग्रीवादि-परिचय और कैकयी-संकोच का विशेषतः उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य में इसमें अनेक विभिन्नतायें हैं।

(२) पुष्पक-विसर्जन—'रामायण-मञ्जरी'[3] और 'रामगीत'[4] का वर्णन मानस के वर्णन के समान है किन्तु 'रघुवंश'[5] महाभारत'[6] और अनर्घराघव'[7] के पश्चात् पुष्पक को विदा करने का उल्लेख है। 'बाल रामायण'[8] के स्वयं कुबेर ही उस समय आकर अपने उस विमान को माँग ले जाते हैं। 'मानस' में तुलसी ने विदा के समय पुष्पक के भी हर्ष और विरह का उल्लेख करके एक अलौकिक चमत्कार उत्पन्न कर दिया है, जो संस्कृत ग्रंथों में प्राप्त नहीं होता है।

(३) राम का पुरवासी-मिलन—यह तुलसी की मौलिक योजना है। इसमें उनका मुख्य उद्देश्य राम की लोकप्रियता के साथ साथ उनकी ईश्वरता का प्रतिपादन करना भी है। संस्कृत के ग्रन्थों में इसका सर्वथा अभाव है।

(४) सुग्रीवादि परिचय—'मानस' की तरह 'रघुवंश' में भी सुग्रीवादि

---

१ मानस ७।५-६ | २ मानस ७।७-१
३ रा० मञ्जरी। लंकोत्तर।१०१ | ४ रामगीत २०।७०
५ रघुवंश १४।२० | ६ महाभारत वन। २९१।६६
७ अनर्घराघव ७।१४१ | ८ बालरामायण १०।१०१

मानव रूप धारण कर के सबसे मिलते हैं।[1] यहाँ राम सुग्रीव और विभीषण को क्रमशः 'दुर्गतिबन्धु' और 'मुख्य मित्र'[2] महावीर चरित में दुःखसागरपति और धर्म मित्र[3] तथा 'बाल रामायण' में उन्हें 'सीता के देवर'[4] आदि कहकर उनका परिचय कराते हैं। 'पृथ्वीराज-विजय'[5] तथा 'रामायण-मञ्जरी'[6] में भरत के भ्रातृ प्रेम को देखकर सुग्रीव और विभीषण के लज्जित होने का भी संकेत मिलता है। भट्टिकाव्य' में केवल उन्हीं दोनों के अयोध्या आने का वर्णन है जबकि अन्य सभी ग्रंथों में उनके साथ जाम्बवान सुषेण, नल, नील अंगद और हनुमान आदि का भी उल्लेख किया गया है। अद्भुत-दर्पण' में तो सभी वानर और राक्षस सपत्नीक आते हैं। यहाँ त्रिजटा और सरमा के भी आने का वर्णन मिलता है।[8]

'मानस' के राम को अपने दोनों मित्रों के सम्मान का बहुत ध्यान है। वे उन्हें 'समरसागर का बेड़ा' और 'भरत से भी अधिक प्रिय' कहते हैं। इस प्रकार राम की आत्मीयता और मित्र-प्रेम का यहाँ सर्वश्रेष्ठ निरूपण मिलता है जो अन्यत्र दुर्लभ है।

(५) कैकयी-संकोच—महावीर चरित में इस अवसर पर अरुन्धती 'पूर्वापरा-परयम' का संकेत करके कैकयी से संकोच-त्याग' करने का अनुरोध करती है।[9] 'चम्पू रामायण' की कैकयी इस अवसर पर स्वयं अपने आचरण से ही अत्यन्त दुःखी हो जाती है।[10] तुलसी ने इस प्रसंग में स्वयं राम के द्वारा कैकयी के संकोच के अनुभव करने का उल्लेख करके उनके चरित्र की जिस विशेषता का प्रतिपादन किया है वह उनकी मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का ही परिणाम है।

(६) राम का राज्याभिषेक—राम के पुनः अयोध्या आगमन से अति प्रसन्न गुरु वशिष्ठ उसी दिन उनके अभिषेक करने का निश्चय करते हैं। इस उत्सव के लिए नगर में सजावट होने और अनेक मांगलिक पदार्थों के एकत्र किए जाने का विस्तृत वर्णन किया गया है।[11] अभिषेक के लिए जब राम और सीता एक दिव्य सिंहासन पर सुशोभित होते हैं तब गुरु वशिष्ठ उनका 'प्रथम तिलक' करते हैं देवता फूल बरसाते हुए स्तुति करते हैं। गन्धर्व और किन्नर गुणगान करते हैं अप्सरायें नाचती हैं मुनि लोग प्रसन्न होते हैं और वह तथा शिव उनकी स्तुति करते हैं।[12] यहाँ राम सब वानरों को विदा करने के समय सर्वप्रथम सुग्रीव को भरत के बनाये हुए वस्त्र स्वयं अपने हाथों से पहनाते हैं फिर उन्हीं के संकेत से लक्ष्मण विभीषण

---

१ रघुवंश १२।७४
२ रघुवंश १३।७२
३ महावीर चरित ७।१२
४ बालरामायण १०।१०१ के बाद
५ पृथ्वीराज विजय ११।९०
६ रा० मञ्जरी। लंकोत्तर। १७१
७ भट्टिकाव्य २२।२१
८ अद्भुत दर्पण १०।९७ के बाद–२१
९ महावीर चरित ७।११ के बाद
१० चम्पू रामायण ६।१०६ के बाद
११ भागवत ७।१०
१२ मानस ७।१२-१४

ो वस्त्र पहनाते हैं। अंगद को राम बड़ी कठिनाई से विदा कर पाते हैं और नुमान तो सुग्रीव से आज्ञा माँग कर उन्हीं के पास रह जाते हैं।[1] इसके पश्चात् ाम गुह को भी वस्त्राभूषण देकर विदा कर देते हैं[2] और निश्चिन्त होकर अपने ाज्य की सुव्यवस्था में लग जाते हैं।[3] इस प्रकार यहाँ अभिषेक-समारोह, सुग्रीवादि िदा और रामराज्य का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। संस्कृत साहित्य में भी ाय ऐसा ही समान वर्णन प्राप्त होता है।

(७) अभिषेक समारोह—'रामायण-मञ्जरी' में सुग्रीव की आज्ञा से ानरगण स्वर्ण-घटों में चार समुद्रों तथा एक सौ नदियों का जल लाते हैं, फिर सिष्ठादि मुनि बड़ी विधि से राम का अभिषेक करते हैं। 'राघवीय' में विश्वा-मत्र उनके पुत्र मधुच्छन्द जनक कृष्णद्वैपायन शतानन्द वाल्मीकि जाबालि, भृगु, ुलस्त्य अगस्त्य और काश्यप आदि मुनियों के सम्मिलित होने का वर्णन किया गया ै। वहाँ चार समुद्रों के जल मँगाने सुग्रीवादि के द्वारा छत्र ग्रहण करने और भरत े भी यौवराज्याभिषेक होने का भी उल्लेख मिलता है।[4] 'भट्टिकाव्य' में केवल रत के यौवराज्य का ही वर्णन है उसी से 'राज्याभिषेक' का अनुमान-मात्र किया ा सकता है।[5] 'चम्पूरामायण'[6] और रघुवंश'[7] में भी इस अवसर पर 'समुद्र ल और छत्रादि-ग्रहण' का विशेष वर्णन किया गया है। अभिषेक' नाटक में यह मारोह लंका में ही 'सीता-शुद्धि' के पश्चात् 'अग्निदेव' के द्वारा सम्पन्न कर दिया ाता है।[8] 'प्रतिमा' नाटक में यह 'जनस्थान' में ही संपादित होता है।[10] 'पद्मपुराण' ें इस अभिषेक का सबसे अधिक विस्तृत वर्णन मिलता है। वहाँ वसिष्ठ वामदेव ाबालि कश्यप' मार्कण्डेय मौद्गल्य पर्वत और नारदमुनि भी अभिषेक में संलग्न ैं और सुवर्ण कलश दिव्य रत्न तीर्थ-जल मंगल द्रव्य आदि की विशद व्यवस्था ी गई है। वहाँ राम और सीता के सिंहासन पर बैठने के पश्चात् चारों वेदों े वैष्णव सूक्तों का उच्चारण किया जाता है सुग्रीवादि छत्र चामर ग्रहण करते हैं ेवता गन्धर्व और अप्सरागण जयजयकार करते हैं तथा शिव राम की स्तुति करते ैं।[11] वहाँ राम अपना विराट् स्वरूप भी सबको दिखलाते हैं।[12] इस प्रसंग में ुलसी 'पद्मपुराण' से अधिक प्रभावित जान पड़ते हैं। फिर भी उन्होंने उसके अन्य विस्तारों को अनावश्यक समझ कर स्वीकार नहीं किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने ेदों का मानवीकरण करके यहाँ एक अलौकिकता का सृजन कर दिया है, जो अन्यत्र नहीं है।

---

१ मानस ७।१७-१९ | २ मानस ७।२०
३ ' ७।२१-२१ | ४ रा० मञ्जरी। लंकोत्तर।१७८-१७९
५ राघवीय २।७५-८५ | ६ भट्टिकाव्य २२।११
७ चम्पूरामायण ६।१०७-१०९ | ८ रघुवंश १४।७-११
९ अभिषेक ६।११ के बाद-१४ | १० प्रतिमा ७।७ के बाद-९
११ पद्म उत्तर। २४१।१-४१ | १२ पद्म उत्तर। २४१।४२ ४४

(८) सुग्रीवादि विदा—'रघुवंश' के राम, सुग्रीवादि को विदा करते समय सीता के द्वारा लाई गई पूजा-सामग्री का उपयोग करते हैं।[1] 'राघवीय'[2] और 'रामायण-मञ्जरी'[3] में सीता के द्वारा अपना कंठहार उतार कर सुग्रीव को पहना देने का वर्णन मिलता है। अन्य वानरों को वहाँ केवल सोना चाँदी, मणि, भूषण आदि से सन्तुष्ट कर दिया जाता है। 'हनुमन्नाटक' में इस अवसर पर अंगद के 'कोप' का उल्लेख किया गया है। वह वहाँ 'पितृवध' का बदला लेने के लिए राम को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारता है किन्तु उसी समय एक आकाशवाणी के द्वारा 'कृष्णावतार' में बालि के प्रतिकार की भविष्यवाणी सुनकर वह प्रसन्न होता है और राम की स्तुति भी करने लगता है।[4]

'मानस' के वर्णन में अधिक सरसता और आत्मीयता है। वहाँ प्रेमाधिक्य के कारण हनुमान के विदा न हो सकने के वर्णन में ममत्व का जो उद्रेक मिलता है उसका लेशमात्र भी कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता है।

(९) राम राज्य—'मानस' के अनुसार राम के राज्य संभालते ही त्रैलोक्य में प्रेम और आनन्द का विकास तथा वैर शोक एवं 'काल-कर्म-स्वभाव-कृत' समस्त दुःखों का विनाश हो जाता है। सभी मनुष्य वर्णाश्रम वेद-धर्म-पालक श्रुतिनीति-रत, राम भक्त और एकपत्नीव्रत हो जाते हैं तथा सभी स्त्रियाँ पूर्ण पतिव्रता हो जाती हैं। प्राकृतिक-क्षेत्र में भी वनस्पति जगत और पशु-पक्षियों में सर्वत्र प्रसन्नता और सम्पन्नता की लहर दौड़ जाती है।[5] 'भागवत' के अनुसार भी राम की प्रजा स्वधर्म निरत वर्णाश्रम धर्म-पालक और राम भक्ति-पूर्ण हो जाती है। वहाँ राम के 'एक-पत्नीव्रत' से समस्त नागरिकों के भी प्रेरणा प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है।[6] 'राघवनैषधीय' में ब्राह्मणों के यज्ञ-यज्ञादि-स्वाध्याय का भी संकेत किया गया है।[7] 'कुवलयोदय' में पुत्रशोक पति-शोक और अकालमृत्यु आदि के अभाव का वर्णन मिलता है।[8] 'ब्रह्मपुराण'[9] और 'पद्मपुराण'[10] के पाताल खण्ड में राम राज्य का अति विस्तृत वर्णन किया गया है। वहाँ भी अकालमरण, रोग, ईति भीति, अनुचित आचार और अकाल आदि की समाप्ति और सब नागरिकों के धन-धान्य परिवार

१ रघुवंश १४।१९ — २ राघवीय २०।८६-८७
३ रा० मञ्जरी । अंकोत्तर । १८४-१८७
४ आकाशवाण्यथैवमहो स बाली दासो हनिष्यति पुनर्यदुराजवतारे ।
श्रुत्वा विलोक्य रघुनन्दनमानराशौ कारुण्यमंगदहृदि पुत्र स रघादिपुत्रः ॥
हनुमन्नाटक १४।७६
५ मानस ७।२०-२१ — ६ भागवत ९।१०।५१-५५
७ राघवनैषधीय १।११८ — ८ कुवलयोदय १।११-१२
९ ब्रह्मपुराण २१३।१४५, १४४ — १० पद्म । पाताल । ४।४८-५५
५।२२-४५

स्वास्थ्य आदि से सम्पन्न हो जाने का उल्लेख है। 'रामायण-मञ्जरी' में पृथ्वी के स्वर्गोपम, मनुष्यों के देवोपम और वृक्षों के कल्पोपम हो जाने के उल्लेख से रामराज्य के ऐश्वर्य का संकेत कर दिया गया है।[1]

'मानस' के रामराज्य वर्णन में तुलसी ने बराबर प्रकृति के सर्वोन्मुख विकास और राम के ईश्वरत्व का निरूपण करके उसमें दिव्य भाव के आयोजन का सफल प्रयास किया है।

(१०) उपसंहार—मूलकथा की समाप्ति के पश्चात् ग्रंथ की समाप्ति तक के अन्य समस्त वर्णन 'उपसंहार' के रूप में हैं। इसमें शिव-पार्वती-संवाद' के अन्तर्गत 'काक-गरुड़-संवाद' की योजना है जिसका सम्बन्ध 'लंकाकाण्ड' में वर्णित मेघनाद की नागपाश' वाली घटना से है।[2] वहाँ राम की 'नरलीला' से अपरिचित गरुड़ अपने को उनसे अधिक शक्तिशाली समझ कर अहंकार ग्रस्त हो जाता है और इस प्रकार वह राम के ईश्वरत्व में संशयग्रस्त हो जाता है।[3] फिर ब्रह्मा और शिव से भी अपनी शंका का समाधान न पाकर के वह उनके संकेत से काक भुशुण्डि के समीप जाता है जो इस दिशा में स्वयं भुक्तभोगी है। फिर काकभुशुण्डि गरुड़ से अपनी विगत शंका का संकेत करके राम के विराट्-रूप-दर्शन[4] का उल्लेख करता है। तुलसी ने यहाँ काकभुशुण्डि के 'पूर्वजन्म-वर्णन' के माध्यम से कलियुग का रोचक चित्रण प्रस्तुत किया है[5] और उसके ज्ञानोपदेश के द्वारा भक्ति-सिद्धान्तों का विस्तार से निरूपण कर दिया है। वस्तुतः 'मानस' का उत्तरकाण्ड कथा की दृष्टि से उतना उपयोगी नहीं है जितना सिद्धान्तों की दृष्टि से। भक्ति ज्ञान आदि का जो वर्णन उत्तर काण्ड में मिलता है वह दार्शनिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का है।[6]

इस 'काक-गरुड़-संवाद' के पश्चात् शिव के द्वारा 'राम-कथा' के अधिकारियों के लक्षण और उस कथा के माहात्म्य का भी वर्णन किया गया है। इस प्रकार इस प्रसंग में काक-गरुड़-संवाद' कलियुग-वर्णन 'कथा के अधिकारी और 'माहात्म्य वर्णन का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। संस्कृत-साहित्य में इस दिशा में कुछ विभिन्नतायें मिलती हैं।

(११) काक-गरुड़-संवाद—संस्कृत के किसी भी आलोच्य ग्रन्थ में यह संवाद प्राप्त नहीं होता है। इसमें तुलसी का उद्देश्य एक तो गरुड़ के साथ-साथ अन्य शंकालुओं की भी वैसी ही शंकाओं का समाधान करना है और दूसरे भक्ति-सिद्धान्तों का विशद रूप से निरूपण करना है। इस दिशा में वे गीता और अध्यात्म रामायण के बहुत आभारी हैं।

---

१ रा० मञ्जरी। उत्तर। १८९,१९१ २ मानस ६।७३-७४
३ मानस ७।५८ ४ ७।७९-८८
५ " ७।९७-१०२
६ डा० सरनामसिंह शर्मा हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव प्रथम संस्करण पृष्ठ ४५

(१२) कलियुग-वर्णन—'मानस' का यह वर्णन भागवत, पद्मपुराण विष्णुपुराण और ब्रह्मपुराण आदि के वर्णनों से बहुत मिलता जुलता है। तुलसी ने सभी पुराणों से उचित समन्वय करके, इस प्रसंग को पर्याप्त विस्तार दिया है। पुराणों में यह 'कलिवर्णन' एक 'भविष्यवाणी' के रूप में है, किन्तु 'मानस' में उसे पूर्वजन्म की घटनाओं पर आधारित बनला कर उसे एक प्रामाणिकता भी दी गई है। इसके अतिरिक्त पुराणों में इस काल्पनिक कलि-काल की सर्वत्र निन्दा ही की गई है जबकि तुलसी ने 'मानस' में 'रामभक्ति' के चमत्कारी प्रभाव का वर्णन करके उस कलिकाल को सर्वश्रेष्ठ ठहराया है।[1]

(१३) कथा के अधिकारी और कथा-माहात्म्य—संस्कृत के ग्रन्थों, विशेषकर पुराणों में कथा के अधिकारियों के विस्तृत लक्षण देने और कथा के माहात्म्य का वर्णन करने की एक प्राचीन परम्परा मिलती है जिसका एकमात्र यही उद्देश्य होता है कि उस ग्रंथ का पारायण करने के पूर्व पाठक उसमें वर्णित निर्देशों के अनुसार अपने में आवश्यक योग्यता का सम्पादन कर सके और 'माहात्म्य' के लौकिक आकर्षणों से स्वयं प्रेरित हो तथा अपने सहयोगियों की संख्या भी निरन्तर बढ़ाता रहे। इस प्रकार इन दोनों वर्णनों का मूल लक्ष्य एक उचित वातावरण का निर्माण करना होता है जो ऐसे ग्रन्थों के अध्ययन के लिये एक प्रकार से अनिवार्य माना जाता है।

इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर तुलसी ने भी 'मानस' की कथा के अधिकारियों की योग्यता का एक मापदण्ड प्रस्तुत कर दिया है[2] और अधिक से अधिक अनुकूल पाठकों को आकृष्ट करने के लिए 'ग्रन्थ' के माहात्म्य का भी स्थान-स्थान पर विस्तृत निरूपण कर दिया है।[3]

अपनी इस कुशल योजना में गोस्वामी तुलसीदास ने आशातीत सफलता भी प्राप्त की है। 'रामचरित-मानस' की लोकप्रियता इसका सबसे बड़ा प्रमाण है।

इस प्रकार इस अध्याय में 'मानस' और संस्कृत के ग्रंथों में प्राप्त 'राम कथा' के तुलनात्मक विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि तुलसी ने अपने सिद्धान्त-विशेष के अनुसार मूलकथा में अनेक छोटे-बड़े प्रसंगों को सफल योजना की है। विभिन्न संस्कृत-साहित्य से यत्र-तत्र प्रेरणा प्राप्त करते हुए भी उन्होंने अपने विवेक से सर्वत्र नवीनता अथवा मौलिकता का ही निरूपण किया है। 'मूल कथा' के अतिरिक्त, भूमिका और उपसंहार भाग में भी उन्होंने एक अनुकूल वातावरण के निर्माण की समर्थ चेष्टा की है जिसके परिणामस्वरूप साहित्यिक नैतिक और आध्यात्मिक सभी दृष्टियों से 'मानस' एक महान गौरवशाली ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है।

---

१ मानस ६।१०१   २ मानस ७।१२८

३ " ७।१२६-१३०

अध्याय ३

तात्विक-विवेचन

किसी वस्तु की सृष्टि के पर्यवलोकन के लिए उसके तत्वों का ज्ञान ही आवश्यक नहीं है अपितु उनका उपयोग भी बहुत आवश्यक है। प्रत्येक तत्व का उपयोग उसकी स्थिति और मात्रा से भी सम्बन्धित होता है। यही बात काव्यतत्वों के सम्बन्ध में भी लागू होती है। प्रबन्ध काव्य (विशेष रूप से महाकाव्य) अपनी तात्विक विशेषताओं में पूर्णरूप से अवलम्बित होता है। साहित्य-शास्त्रियों का कहना है कि वस्तु नेता और रस प्रबन्ध काव्य के प्रमुख तत्व हैं। वस्तु का सम्बन्ध उसके विविध रूपों से है जिनको दो वर्गों में विभक्त किया जाता है आधिकारिक तथा प्रासंगिक। वस्तु उस समय तक विन्यस्त नहीं हो सकती जब तक उसको धारण करने वाले न हों। इन्हीं को पात्र संज्ञा दी जाती है। अनेक पात्रों में प्रधान पात्र जो फल का भोक्ता भी होता है नेता अथवा नायक कहलाता है। इस प्रकार वस्तु के प्रसार में नायकादि पात्रों की उपयोगिता विशेष उल्लेखनीय होती है। उन पात्रों की क्रियाओं को रूप देने के लिए भाषा और शैली की अपेक्षा होती है। इन सब में प्रायकर से रस का संचार होना भी अनिवार्य है। भारतीय साहित्यकारों ने उसके बिना काव्यादि की स्थिति तक नहीं मानी है। अतः 'रामचरित-मानस' के तात्विक विवेचन के लिए उसके इन्हीं सब उपकरणों पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। आलोच्य विषय के अन्तर्गत यह विवेचना उस समय तक पूरी नहीं समझी जा सकती जब तक कि रामायणोत्तर संस्कृत ग्रन्थों के साथ उसकी तुलनात्मक पीठिका न दी जावे। अतएव वस्तु नेता और रस के अन्तर्गत इस विवेचना का प्रसार अपेक्षित है।

१ वस्तु विवेचन

(१) वस्तु-भेद—ऊपर यह कहा ही जा चुका है कि वस्तु के दो रूप आधिकारिक और प्रासंगिक होते हैं। 'आधिकारिक' वस्तु का सम्बन्ध कथा के मुख्य पात्र से और 'प्रासंगिक' वस्तु का संबन्ध अन्य पात्रों से होता है। इन अन्य पात्रों में कुछ अधिक महत्व के और कुछ न्यून महत्व के होते हैं इसीलिए कुछ प्रासंगिक कथायें बड़ी और अधिक महत्वपूर्ण होती हैं जबकि अन्य कथायें उनकी अपेक्षा छोटी और कम महत्व की होती हैं। 'आधिकारिक' कथा के कलेवर और सौष्ठव के विस्तार में ही इन प्रासंगिक' कथाओं की उपयोगिता होती है। अतः किसी भी आधिकारिक कथा में आवश्यकतानुसार अनेक प्रासंगिक कथायें समाविष्ट करली जाती हैं। इन सभी

कथाओं में मुख्यता सदैव 'आधिकारिक' कथा की ही होती है और 'प्रासंगिक' कथायें गौण रहती हैं तथा उनकी योजना लेखक की सौन्दर्य बुद्धि पर ही अधिकतर निर्भर होती है।

(२) 'मानस' की आधिकारिक कथा– मानस के मुख्य पात्र 'राम' हैं। अत: उनसे सीधा सम्बन्ध रखने वाली कथा ही 'मानस' की 'आधिकारिक' कथा है, जिसमें रामजन्म राम-विवाह राम-निर्वासन राम-वनप्रवास सीता–हरण सीता-खोज, सीता–प्राप्ति और राम के अयोध्या प्रत्यागमन आदि की मुख्य घटनायें सम्मिलित हैं। इस कथा में विस्तार और सुचारुता की अभिवृद्धि के लिये अनेक प्रासंगिक कथायें भी आयोजित हैं जिनके नायक अन्य अनेक छोटे बड़े पात्र हैं। उनमें सुग्रीव, हनुमान् और विभीषण अधिक महत्त्वपूर्ण हैं अतः उनसे सम्बद्ध प्रासंगिक कथायें भी अधिक विस्तार एवं सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं जबकि परशुराम आदि उनकी अपेक्षा कम महत्त्व के पात्र हैं और इसीलिए उनकी प्रासंगिक कथायें भी अपेक्षाकृत संक्षिप्त और साधारण हैं। बड़ी प्रासंगिक कथायें जहाँ से आरम्भ होती हैं वहाँ से चल कर मुख्य कथा के अनिवार्य होने तक उसमें पूरा-पूरा सहयोग देती हैं किन्तु छोटी कथायें अपना स्थानीय और एकदेशीय चमत्कार दिखलाकर शीघ्र ही शान्त हो जाती हैं। इन्हीं बड़ी और छोटी कथाओं को साहित्य शास्त्रियों ने क्रमश: 'पताका' और 'प्रकरी' के विशेष नाम से अभिहित किया है।

यह ऊपर कहा ही जा चुका है कि मानस की आधिकारिक कथा 'रामजन्म' से लेकर 'राम राज्य-स्थापन' तक ही है। तुलसी ने ग्रंथारम्भ के साथ ही उसका आरम्भ न करके 'बाल-काण्ड' के लगभग आधे भाग में[1] उसका आरम्भ किया है। इस कथा की समाप्ति भी इसी प्रकार ग्रंथ के साथ न होकर 'उत्तर काण्ड' के लगभग आधे भाग पर[2] ही हो गई है। इस प्रकार 'मानस' में आधिकारिक कथा के पहले आयोजित 'बालकाण्ड' का पूर्वार्ध उसकी भूमिका के रूप में और कथा' के पश्चात् आयोजित उत्तरकाण्ड का उत्तरार्ध उसके उपसंहार के रूप में माना जा सकता है। 'भूमिका' और 'उपसंहार' की यह योजना अनेक प्रासंगिक कथाओं से समन्वित है, अतः उसका विवेचन भी उन्हीं के साथ किया जा रहा है।

जहाँ तक मानस की आधिकारिक कथा का प्रश्न है उसकी तुलना में हमें संस्कृत-ग्रन्थों के तीन वर्ग प्राप्त होते हैं एक तो वह ग्रन्थ जिनकी आधिकारिक कथा 'मानस' से मिलती है दूसरे वे जिनकी कथा 'मानस' से बृहत्तर है और तीसरे वे ग्रन्थ जिनकी कथा 'मानस' से लघुतर है। 'बृहत्तर' कथा से हमारा तात्पर्य उस कथा से है जो मानस में वर्णित रामकथा की अपेक्षा अधिक हो। यह अधिकता आदि में नहीं हो सकती क्योंकि 'रामजन्म' इस कथा का प्रारम्भिक बिन्दु है और वह सभी ग्रंथों में समान रूप से मिलता है। 'दशरथ-वर्णन' के रूप में यदि किन्हीं ग्रन्थों

---

१ मानस १।१८८ २ मानस ७।१०

में कुछ 'आदि विस्तार' मिलता भी है तो वह भूमिका के रूप में ही मान्य हो सकता है। अतः यह अधिकता केवल अन्त में ही उन ग्रन्थों में प्राप्त हो सकती है, जिनमें 'रामराज्य' के पश्चात् 'सीता-निर्वासन और 'राम-स्वर्गारोहण' तक का वर्णन हो। इसी संदर्भ में 'बृहत् कथा' से हमारा अभिप्राय उस कथा से है जिसमें 'मानस' से भी अधिक 'मूल कथा' का वर्णन किया गया हो। यह अधिकता आदि में भी हो सकती है और अन्त में भी अथवा आदि और अन्त दोनों में भी हो सकती है। इस प्रकार 'आदि बृहत्तर' 'अन्त बृहत्तर और आद्यन्त बृहत्तर' के नाम से इसके तीन भेद किए जा सकते हैं।

(३) समान आधिकारिक कथा—भट्टिकाव्य रामगीत और महाभारत (वन पर्व) में 'मानस' के समान ही 'रामजन्म' से लेकर 'रामराज्य' के वर्णन तक आधिकारिक कथा का समावेश किया गया है।

(४) बृहत्तर आधिकारिक कथा—रामायण-मञ्जरी रघुवंश राम चरित (सन्ध्याकर नन्दी) राघवनैषधीय, हनुमन्नाटक और महानाटक की मूल कथा 'मानस' से अधिक है क्योंकि वहाँ 'रामराज्य' के पश्चात् 'सीता-निर्वासन' तथा 'राम-स्वर्गारोहण' का भी वर्णन किया गया है। यहाँ यह ध्यान रखने योग्य है कि तुलसी ने अपनी कथा के स्रोत के रूप में वाल्मीकि रामायण' का नामोल्लेख करके भी उसके अनुकरण पर 'राम-स्वर्गारोहण' तक अपनी कथा का विस्तार नहीं किया जबकि पूर्वोक्त ग्रंथ इस दिशा में उस परम्परा का पालन करते हुए जान पड़ते हैं। इसके कई स्पष्ट कारण भी हैं। 'रामायण-मञ्जरी तो स्वयं उसके लेखक के अनुसार 'वाल्मीकि रामायण का कथासार ही है। 'रघुवंश' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें राम के 'पूर्वजों' और 'परजों' अनेक राजाओं की जीवनियाँ दी गई हैं। रामचरित और 'राघवनैषधीय दोनों श्लेषकाव्य हैं। वहाँ 'रामकथा' गौण रूप से गृहीत हुई है, अतः उन ग्रंथों के नायकों की आवरण कथा के साथ-साथ 'राम-कथा' भी वहीं तक निबद्ध हो गई है। 'हनुमन्नाटक' और 'महानाटक' में एक तो प्रक्षिप्त अंश अधिक है दूसरे उनमें 'नाटकत्व की अपेक्षा महाकाव्यत्व' की बहुलता है और तीसरे उनमें अन्त के केवल दो या तीन श्लोकों में ही बृहत्तर कथा का अतिसंक्षिप्त संकेत किया गया है जो अन्य वर्णनों के अनुपात में अपना नगण्य स्थान रखता है। यदि ये विषमतायें न होतीं तो बहुत संभव था कि इन ग्रंथों में भी बृहत्तर कथानक को स्वीकार न करके 'मानस' के समान ही 'रामराज्य' तक आधिकारिक कथा वर्णित होती।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त अग्निपुराण, पद्मपुराण ब्रह्मपुराण भागवत आदि में भी 'रामजन्म से लेकर 'राम-स्वर्गारोहण' तक का कथानक मिलता है। पुराणों का मूल उद्देश्य ही वंशपरम्परा का वर्णन है अतः वहाँ राम के पूर्व और पश्चात् के सभी वंशधर राजाओं का उल्लेख समस्त 'इक्ष्वाकुवंश' का विवरण दिया गया है। इस दृष्टिकोण से उनमें भी बृहत्तर कथानक का ग्रहण होना सर्वथा स्वाभाविक है।

(५) आदि लघुतर आधिकारिक कथा—संस्कृत के महाकाव्यों में 'रघुवीर चरित' में रामजन्म से लेकर 'राम-निर्वासन' तक की कथा नहीं है, और 'राम चरित' में उसके आगे सीताहरण, राम सुग्रीव-मैत्री और बालिवध' आदि का भी वर्णन नहीं किया गया है। इस प्रकार प्रथम ग्रंथ में कथा का आरम्भ राम के वन प्रवास से और द्वितीय ग्रंथ में उसके 'प्रस्रवण पर्वत प्रवास' से किया गया है। इन दोनों ग्रन्थों में 'पूर्वकथा' का विवरण देने के लिए राम-मुनि-संवाद, लक्ष्मण-सुग्रीव संवाद और राम हनुमान् संवाद आदि के माध्यम का सफल प्रयोग किया गया है। इन काव्यों के अतिरिक्त संस्कृत के नाटकों में अधिक स्वतन्त्रता से काम लिया गया है। यहाँ रामजन्म का वर्णन तो किसी भी नाटक में नहीं मिलता है। उसके अतिरिक्त 'अनर्घराघव' में विश्वामित्र-याचना, महावीर चरित्र में विश्वामित्र के आश्रम में राम-लक्ष्मण की उपस्थिति, बालरामायण में 'राम-विवाह', 'प्रतिमा' में राम-निर्वासन, आश्चर्यचूडामणि में सीता-हरण, अभिषेक में सीता-शोध' 'दूतांगद' तथा 'अद्भुत-दर्पण' में लंका अभियान' से पूर्व की कथा नहीं है। इन नाटकों में पिछली कथा के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं मिलता है। 'आरम्भ' की इस विभिन्नता के होते हुए भी इन सब नाटकों की समाप्ति 'रामाभिषेक' के वर्णन के साथ ही होती है।

(६) अन्य लघुतर आधिकारिक कथा—जानकी-हरण, उदार राघव और कम्बुरामायण ये तीन ग्रंथ इस कोटि में आते हैं। इनका आरम्भ तो 'राम जन्म' के वर्णन से होता है किन्तु अन्त विभिन्न है। जानकी हरण का अन्त ही 'सीता हरण' के वर्णन तक प्रतीत होता है यद्यपि उसकी प्रतियों में 'रामाभिषेक' तक की कथा भी मिलती है। उदार-राघव में शूर्पणखा-विरूपण और 'कम्बुरामायण' में 'सीता शोध' तक की ही घटनाएँ वर्णित हैं। ये दोनों ग्रंथ अपूर्ण मिलते हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि द्वितीय ग्रन्थ को पूर्ण करने के लिए अन्य लेखकों ने भी बड़ा प्रयास किया है।

(७) आद्यन्त लघुतर आधिकारिक कथा—इस वर्ग में केवल 'प्रसन्न-राघव' ही एक ऐसा ग्रन्थ है क्योंकि उसके न तो आदि में राम जन्म है और न अन्त में 'रामाभिषेक', इन दोनों के बीच में सीता-स्वयंवर से लेकर के 'राम अयोध्या आगमन' तक की ही मूल कथा वहाँ प्राप्त होती है।

इस प्रकार एक ही आधिकारिक कथा के विभिन्न भागों से आरम्भ करते हुए संस्कृत के अनेक कवियों ने अपने राम काव्यों का निर्माण किया है। इस दिशा में 'मानस क आरम्भ' के सृजन में तुलसी ने बड़ी दक्षता और सावधानी का परिचय दिया है। उन्होंने मानस के आरम्भ में दशरथ-वर्णन को अनावश्यक विस्तार न देकर केवल दो चार पंक्तियों में ही प्रस्तुत कर दिया है और अन्त में भी अनेक महाकाव्यों तथा नाटकों की सुदीर्घ परम्परा से अनुप्राणित होकर तथा 'राम राज्य' की

ापना में ही अनेक उद्देश्य की चरित-सम्बन्धी चरम परिणति पा जाने के कारण
होंने उसी बिन्दु पर 'रामकथा' को परिसमाप्त कर दिया है।

'अभिषेकोत्तर' कथा को विचारपूर्वक छोड़कर 'मानसकार' ने राम के
ारित्रिक उत्कर्ष की बड़ी रक्षा की है। अन्यथा

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ॥ ७। २१

कर उन्होंने 'रामराज्य' की जिस 'सर्वश्रेष्ठता' की स्थापना की है, वह
ता के ही त्याग' के उल्लेख से अवश्य धापबाद हो जाती। इसके साथ ही फिर न
'सीता-प्रतिबिम्ब की भावना का ही कोई महत्व रह पाता और न राम के
साधारण व्यक्तित्व तथा ईश्वरत्व की ही कोई प्रतिष्ठा हो पाती।

(८) मानस की प्रासङ्गिक कथायें— मानस' की मूल कथा के अन्तर्गत छोटी
ही अनेक प्रासंगिक कथायें हैं। इस मूल कथा' के आदि और अन्त में भूमिका'
र उपसंहार' का उल्लेख किया जा चुका है, जो स्वत प्रसंग मात्र ही हैं अत
नका भी उल्लेख यहाँ आवश्यक है।

(१) 'मानस' की भूमिका—'शंका-समाधान से सम्बन्धित सम्वाद
त्मक के अतिरिक्त इसमें कुछ शाप और वरदान वाली कथायें भी हैं जिनके
लस्वरूप राम का जन्म और अवतार अनिवार्य हो जाता है। एक ओर
प्रशाप के कारण जय-विजय जलन्धर, रुद्रगण और प्रतापभानु आदि रावण के
प में उत्पन्न हैं, तो दूसरी ओर कश्यप और अदिति तथा मनु और शतरूपा
ी कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु मुँह-मांगा वरदान देकर रामरूप में उनके
त्र बन जाते हैं। इस प्रकार 'रामकथा' के नायक और प्रतिनायक के अवतार का
वन करके तुलसी ने अवतारवाद की प्रतिष्ठा की है। इसके साथ ही 'विप्रशाप'
ा प्रभाव बतला कर ब्राह्मणों के महत्व का ज्ञापन भी करते हैं और 'मुँह मांगे
दानों' का उल्लेख करके वे भगवान की महती कृपा का संकेत भी करना चाहते
। ऐसी कोई स्वतन्त्र भूमिका' संस्कृत के किसी भी ग्रन्थ में नहीं है।

रामायण-सम्बन्धी तथा 'अद्भुतरामायण' में 'वाल्मीकि-रामायण' के अनुकरण
र एक भूमिका अवश्य मिलती है, जिसमें 'वाल्मीकि-नारद संवाद' के पश्चात् 'क्रौंच
ध' प्रथम श्लोक के साथ रामायण के निर्माण और राम की राजसभा में कुशलव
ारा उसके गायन' का वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त 'जानकी-हरण'
दार-राघव' और 'रामचरित' आदि में 'मूलकथा' के पूर्व दशरथ के वैभव-विलास',
ृगया-प्रेम और 'तापस-शाप' आदि का विशेष विस्तृत उल्लेख मिलता है जो वहाँ
मिका के रूप में ही प्रस्तुत किया गया माना जा सकता है। मानस' की भूमिका
साथ इन भूमिकाओं की तुलना करने से स्पष्ट हो जाता है कि इनमें न तो कोई
शेष कथात्मक उपयोगिता है, न कलात्मक चमत्कार है और न कोई सैद्धान्तिक
ष्टिकोण ही है।

(१०) 'मूलकथा' से सम्बद्ध प्रासङ्गिक कथायें—'मानस' की मूलकथा में केवल तीन बड़ी प्रासंगिक कथायें हैं, सुग्रीव-कथा' हनुमान-कथा' और 'विभीषण कथा'। इनके अतिरिक्त अनेक छोटी-छोटी प्रासंगिक कथायें उन बड़ी कथाओं में अन्तर्निविष्ट हैं। बड़ी कथाओं में से प्रथम दो कथायें 'मानस के किष्किन्धा-काण्ड से और अन्तिम कथा सुन्दर काण्ड से आरम्भ होकर 'मूलकथा' के साथ ही 'उत्तर काण्ड' में समाप्त हो जाती है। मूल आधिकारिक कथा से मुख्य बिन्दुओं[1] का विवरण अभी दिया जा चुका है। ये प्रासंगिक कथायें उन बिन्दुओं से सम्बद्ध की गई हैं। प्रत्येक बिन्दु की प्रासंगिक कथायें भिन्न भिन्न हैं। उनके इस सम्बन्ध के आयोजन में ही लेखक की कला-कुशलता और मर्मज्ञता का परिचय मिलता है। इस आयोजन में मानसकार' और संस्कृत के साहित्यकारों की सफलता का तुलनात्मक विवेचन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

(११) राम-जन्म से सम्बद्ध प्रासङ्गिक कथायें—पृथ्वी-ब्रह्मलोक-गमन, विष्णु घोषणा दशरथ-पुत्रेष्टि-यज्ञ, विष्णु-चतुर्भुज-रूप-प्रदर्शन और विराट्रूप प्रदर्शन आदि कथायें इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं। इन सभी कथाओं का एक-मात्र प्रयोजन 'राम जन्म' की अलौकिकता का वर्णन करना है। संस्कृत के आलोच्य ग्रन्थों में 'पृथ्वी-ब्रह्मलोक-गमन का वर्णन इस प्रसंग में कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। भागवत, ब्रह्मपुराण पद्मपुराण आदि में कृष्णजन्म के प्रसंग में ही उसके वर्णन का उल्लेख किया जा चुका है।[2] विष्णु घोषणा का वर्णन 'रघुवंश रामायण-मञ्जरी, राघवीय' और 'उत्तर राघव आदि ग्रन्थों में भी किया गया है किन्तु वहां सभी देवताओं को विष्णु की स्तुति के लिए क्षीरसागर तक जाना पड़ता है, जब कि 'मानस में

'हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना॥ १।१८५

कह कर तुलसी ने स्तुति के बल पर विष्णु के ब्रह्मलोक में ही प्रकट हो जाने का वर्णन किया है। इस प्रसंग की योजना में उनका यही विशिष्ट प्रयोजन है। 'पुत्रेष्टियज्ञ' का उल्लेख संस्कृत के लगभग सभी ग्रन्थों में है। उनमें भी 'पायसवितरण' की योजना में तुलसी ने अपनी मनोवैज्ञानिकता का सरस परिचय दिया है।[3] विष्णु के चतुर्भुज-रूप और विराट्-रूप के वर्णन में तुलसी पद्मपुराण से प्रभावित अवश्य हैं, किन्तु उसके निरूपण में वे सर्वथा स्वतन्त्र हैं क्योंकि पुराणकार ने विष्णु के चतुर्भुज रूप और विराट् रूप के सम्मिलित दर्शन केवल एक ही अवसर पर कराये हैं[4] वहीं तुलसी ने उसके दो भाग करके उनको विभिन्न अवसरों पर आयोजित कर दिया है। 'मानस में इन दोनों भागों की बड़ी उपयोगिता है। प्रथम भाग यदि कौशल्या को विष्णु के जन्म लेने का पूर्वाभास कराता है,[5] तो द्वितीय भाग

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २४०
२ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १२८ १२९
३ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ ११०
४ पद्म। पाताल।७।७–२९
५ मानस १।१९२

उनको अन्य देवताओं की उपासना से विरक्त भी कर देता है।[1] संस्कृत के ग्रंथों में इस सोद्देश्यता का ध्यान नहीं रखा गया है।

(१२) रामविवाह से सम्बद्ध प्रासङ्गिक कथायें—इस प्रसंग में 'विश्वामित्र याचना ताटका वध अहल्योद्धार पुष्पवाटिका-मिलन, सीता-स्वयंवर और परशुराम पराजय आदि की कथायें प्राप्त होती हैं। इन सबका सम्मिलित उद्देश्य राम के दैवी अनुभाव एवं प्रभाव का निरूपण करना है और इसीलिए तुलसी ने उनको यहाँ स्वीकार किया है।

संस्कृत के ग्रन्थों में प्राप्त विश्वामित्र-याचना के प्रसंग में विश्वामित्र के ही तेज और कोप का अधिक वर्णन मिलता है और वहाँ दशरथ एवं वशिष्ठ तक को उससे आक्रान्त दिखलाया गया है जबकि 'मानस' के विश्वामित्र राम के ईश्वरत्व से सुपरिचित हैं और पद-पद पर उसका ध्यान रखते हैं।[2] ताटका-वध प्रसंग का प्रयोजन राम के अद्भुत पराक्रम के वर्णन के साथ-साथ नाटक को 'निजपद' देने वाले उनके ईश्वरत्व का भी संकेत करना है और 'अहल्योद्धार' के प्रसंग में अहल्या की स्तुति में उनके दिव्यभाव का प्रमुख उल्लेख मिलता है। संस्कृत के ग्रंथों में वर्णित इन कथाओं में ताटका के स्वरूप और अहल्या के 'पाप-शाप' आदि का ही विस्तृत निरूपण किया गया है[3] जो मानसिक कुरुचि एवं रस-व्याघात का ही द्योतक करता है। पुष्पवाटिका-मिलन के प्रसंग में लौकिक पूर्व मिलन का अलौकिक उल्लेख है। 'शृङ्गार' का यहाँ पर्याप्त विस्तृत वर्णन होने पर भी उसमें ऐहिकता का कहीं सम्पर्क नहीं है जबकि प्रसन्नराघव और 'मैथिली-कल्याण' नाटकों में जहाँ नाटककारों ने इस दिव्ययुगल के 'रतिविलास' का साहस किया है अश्लीलता को अनायास ही प्रश्रय मिल गया है।[4] तुलसी इस दिशा में सर्वथा सावधान हैं।

'सीतास्वयंवर' की कथा राम की सर्वशक्तिमत्ता और सर्वोपरि सत्ता का परिचय देती है। 'स्वयंवर-शाला में राम के प्रथम दर्शन के अवसर पर वर्णित प्रतियोगी दर्शकों की भावनाओं में और राम के द्वारा रावण आदि के असामर्थ्यद्योतक उस शिव-धनुष के भंग करने के उल्लेख में सिद्धान्त और व्यवहार दोनों पक्षों का संपूर्ण सामञ्जस्य प्रस्तुत किया गया है जबकि संस्कृत के साहित्यकार, या तो उन स्वयंवरों में राम की उपस्थिति तक का चित्रण ही न कर सके या फिर उन 'भटमानी' राजाओं की सुदीर्घ नाम-गणना में ही व्यस्त रहे। यही एक परीय स्थिति संस्कृत ग्रन्थों में प्राप्त 'परशुराम-पराजय' कथा की भी है जिसमें परशुराम का मिलन और पराजय अयोध्या के मार्ग में वर्णित किया गया है जबकि तुलसी ने परशुराम को स्वयंवरशाला में और प्रतियोगी राजाओं की उपस्थिति में ही पराजित और लज्जित दिखला करके राम के अद्वितीय शौर्य और विक्रम का आतंक सा जमा दिया है।

---

१ मानस १।२०१-२०२ २ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ ११२,११४
३ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ ११४,११६ ४ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ ११७,११८

संस्कृत के जिन नाटकों से उन्हें यह प्रेरणा मिली है उनमें परशुराम के साथ-साथ जनक, शतानन्द, दशरथ, विश्वामित्र और राम के भी युद्ध वाक्कलह तथा अपमान सूचक संवादों की ही केवल भरमार नहीं है, प्रत्युत नेपथ्य में राम के साथ परशुराम के द्वन्द्व-युद्ध का भी संकेत किया गया है जिसमें राम उनके 'पुण्यप्राप्त स्वर्गलोक' का नाश तक भी कर देते हैं।[1] यहाँ तुलसी यह अच्छी तरह से जानते हैं कि परशुराम भी एक अवतार हैं, इसीलिए उन्होंने एक ओर इस प्रसंग की सारी कटुता को 'लक्ष्मण-परशुराम-संवाद' में ही सीमित करके राम तथा अन्य गुरुजनों की शालीनता की सुरक्षा की है और दूसरी ओर उन दोनों अवतारों की मर्यादा को भी अक्षुण्ण रखा है जबकि संस्कृत के ग्रन्थों में परशुराम को एक प्रतिनायक के रूप में ही अधिकतर चित्रित किया गया है।

(११) राम निर्वासन से सम्बद्ध प्रासंगिक कथायें—इसके अन्तर्गत देव-षड्यंत्र, मंथरा-विकार और कैकयी की वरदान-याचना आदि की कथायें उल्लेखनीय हैं। ये सभी कथायें उत्तरोत्तर प्रेरणा के फलस्वरूप एक ही दिशा में समाहित होकर समान उत्तरदायित्व के साथ अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सक्रिय हैं। इनमें देवषड्यन्त्र की कथा तुलसी की मौलिक कल्पना है। वे बारम्बार घोषित करते हैं कि 'राम जन्म' का प्रमुख उद्देश्य सुरकार्य-साधन अथवा निशिचरनाश है। इसके लिए वे राम के वन-गमन की अनिवार्यता से परिचित हैं। अतः 'राम निर्वासन' के षड्यन्त्र में देवताओं की सक्रियता का निरूपण उनको सर्वथा अभीष्ट है जिसके लिए बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी 'सरस्वती' के उपयुक्त माध्यम का चुनाव[2] उनके विवेक का परिचायक है। अन्यत्र कुछ संस्कृत ग्रंथों में मन्थरा को दुन्दुभी गन्धर्वी का अवतार कह कर उसको ब्रह्मा के आदेश से इसी कार्य के लिए कैकयी के समीप नियुक्त बतलाया गया। 'मन्थरा-षड्यंत्र' कथा की महत्वपूर्ण योजना करते हुए तुलसी ने उसमें परम्परा का अधिक ध्यान रखा है जबकि रघुवंश, पद्मपुराण, भट्टिकाव्य, प्रसन्नराघव एवं हनुमन्नाटक आदि ग्रंथों में मन्थरा के अभाव में सारा उत्तरदायित्व कैकयी पर ही पड़ जाता है। महावीरचरित, अनर्घराघव और बालरामायण आदि नाटकों में नकली मन्थराओं की सृष्टि भी इसी परम्परा-पालन के लिए की गई है।[3] तुलसी ने यहाँ उसके संवाद में ओज तथा प्रभावशीलता की नवीन उद्भावनाओं से इस प्रसंग को अधिक सजीव एवं चमत्कारपूर्ण बना दिया है। कैकयी की वरदान-याचना वाला प्रसंग 'राम निर्वासन' के लिये अन्तिम और प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। इसमें 'मानसकार' ने दशरथ और कैकयी की यथार्थ स्थिति का अत्यन्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है जबकि संस्कृत के कुछ नाटककार कैकयी की निर्दोषता और शुद्ध हृदयता के वर्णन के लिये अनेक विचित्र कल्पनाओं की सृष्टि करते रहे हैं।[4] यहाँ तुलसी

---

१ प्रस्तुत निबन्ध १४२, १४६
२ मानस २।१२
३ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १५२
४ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १५१

ने कैकेयी की कुटनीतिज्ञता की सफलता को दिखला कर उसे 'राम-निर्वासन' का एक अनिवार्य कारण सिद्ध कर दिया है।

(१४) राम-वन प्रवास से सम्बद्ध प्रासंगिक कथायें— मूल कथा' के इस बिन्दु से 'गुहमिलन' भरद्वाज-मिलन' 'यमुनातट तापस-मिलन', 'वाल्मीकि-मिलन' सुमन्त्र प्रत्यावर्तन' 'दशरथ-मरण', 'भरत-चित्रकूट-गमन', 'जनक-चित्रकूट-गमन' 'चित्रकूट-सभा 'पादुका-शासन' 'अत्रिमिलन' विराध-वध शरभंग-मिलन' सुतीक्ष्ण-मिलन और अगस्त्य-मिलन' आदि कथायें सम्बद्ध हैं। यहाँ गुह भरद्वाज, यमुनातट-तापस वाल्मीकि अत्रि शरभंग सुतीक्ष्ण और अगस्त्य आदि से राम के मिलन की कथायें उनके शील और ईश्वरत्व की द्योतक हैं जिनसे उनसे मिलने वाले उपर्युक्त सभी लोग उनकी कृपा-दृष्टि की कामना करते हुए उनसे अनपायिनी भक्ति' का वरदान भी प्राप्त करते हैं। संस्कृत के कुछ ग्रन्थों में 'गुहमिलन कथा की चर्चा ही नहीं है और कुछ में गुह के दर्प अथवा दुराव का ही विस्तृत उल्लेख किया गया है।[1] अन्य कथाओं में भरद्वाजादि के आश्रमों का वर्णन महाकाव्य के एक लक्षण के रूप में ही प्राप्त होता है जिसकी विशेषता प्रायः प्रकृति-सौन्दर्य एवं दिव्य वातावरण के निरूपण में ही जान पड़ती है। वहाँ न तो 'मानस' की सी सजीवता अथवा मार्मिकता है और न भक्ति-प्रस्तावना ही है।

मानस के 'सुमन्त्र प्रत्यावर्तन' कथा में राम का सन्देश उनकी पितृभक्ति का पुष्ट परिचायक है और दशरथ-मरण के प्रसंग में दशरथ के पुत्र प्रेम की पराकाष्ठा दृष्टिगोचर होती है। संस्कृत के ग्रन्थों में सुमन्त्र का अविस्तार उल्लेख नहीं है और जहाँ है वहाँ 'मानस' की सी मर्यादा-पूर्ण स्थिति के दर्शन नहीं होते हैं।[2] दशरथ-मरण की कथा को उन ग्रन्थों में राम-निर्वासन के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है जिससे दशरथ के तीव्र वात्सल्य का परिचय तो मिलता है किन्तु कर्तव्य के प्रति उनकी जागरूकता और अन्तिम आज्ञा भंग के साथ ही उनके प्राण भंग की करुणावस्था का निरूपण वहाँ नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक ग्रन्थों में जहाँ अन्धतापस-शाप' को दशरथ के मरण का अनिवार्य कारण था[3] प्रस्तुत किया गया है वहाँ उनका वात्सल्य अभिनय मात्र रह जाता है। तुलसी ने इसीलिये उसका अतिसंक्षिप्त संकेत करके उनके चारित्रिक उत्कर्ष की रक्षा की है।

भरत और जनक के चित्रकूट-गमन और वहाँ सभा की कथाओं की योजना राम के प्रति भरत एवं जनक के अनन्य सौभ्रात्र एवं सौमनस्य के निदर्शन के लिये की गई है। इनमें 'जनक-मिलन की कथा तो नितान्त मौलिक है और तुलसी की अप्रतिम मनोवैज्ञानिक प्रतिभा की द्योतक है। संस्कृत के महाकवि ऐसे अवसर पर जनक की प्रतिक्रिया का पूर्ण विस्मरण ही कर गये हैं। 'मानस के 'भरत मिलन' के प्रसंग में

---

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १६०-१६१
२ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १५५
३ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १९२
४ मानस २।१५५

भरत के सहगामी परिजनों और पुरजनों की आत्मीयता, माताओं की वत्सलता, गुह की मुग्धता भरद्वाज की ऋद्धि सिद्ध योजना वनपथ के ग्रामवासियों की सुहृदयता इन्द्र आदि की आशंका और लक्ष्मण के रोष-तोष के वर्णन के अतिरिक्त चित्रकूट सभा में संवादों में आध्यात्मिकता और अलौकिकता का जो सरस एवं विस्तृत निरूपण किया गया है वह उसे सप्राण एवं स्पृहणीय बना देता है जबकि संस्कृत के ग्रंथों में भरत के 'कोरे गमनागमन और शुष्क उत्तर प्रत्युत्तर के ही नीरस विवरण से यह प्रसंग एक घटनामात्र रह गया है।

जयन्तागमन और विराधवध की कथाओं में राम की शक्ति और ईश्वरता का समर्थ संकेत मिलता है जिसके प्रमाण के साक्षी एकनयन जयन्त और निजपद गामी विराध हैं। संस्कृत के साहित्यकार इन प्रसंगों में सीता के 'स्तनों के नखोल्लेख' एवं 'अपहरण'[1] के ही चित्रण में निमग्न रहे और वस्तु-योजना के महत्त्व पर अधिक ध्यान नहीं दे सके।

(१२) सीताहरण से सम्बद्ध प्रासंगिक कथायें—शूर्पणखा-विरूपण खरदूषण-वध, मारीच-वध और जटायुमरण के प्रसंग इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें प्रथम, द्वितीय और तृतीय 'सीता हरण' के कारण हैं और चतुर्थ उसका परिणाम है। यहाँ प्रथम प्रसंग में राम की शालीनता द्वितीय और तृतीय में उनकी शक्ति और चतुर्थ में उनकी अलौकिकता का प्रतिपादन किया गया है। संस्कृत साहित्य में शूर्पणखा-विरूपण के प्रसंग में शूर्पणखा के सौन्दर्य निरूपण एवं प्रणयनिवेदन और उसके साथ राम लक्ष्मण के स्निग्ध संभाषण एवं किंचित् आदर्शन के सविस्तार चित्रण से[2] रसाभास का ही अतिपोषण हुआ है जबकि मानस में राक्षसी की स्वाभाविक काम प्रवृत्ति और उसकी कुचेष्टाओं का यथार्थ वर्णन करते हुए तुलसी ने उसके विरूपण को रावण के लिए एक चुनौती[3] बतला कर भविष्य की कथा का भी सूक्ष्म संकेत कर दिया है। इससे प्रसंगों के नियोजन और उनके पूर्वापर-संगुम्फन के सम्बन्ध में मानसकार[4] की विलक्षण दक्षता का प्रमाण मिलता है। 'खरदूषणवध' के प्रसंग में अवकाश न होते हुए भी तुलसी ने राम के सौन्दर्य से खर की मुग्धता का, उनकी शक्ति से १४ सहस्र राक्षसों की समाप्ति का और उनकी ईश्वरता से उन राक्षसों की निजपद प्राप्ति का वर्णन[5] करके उनके लौकिक एवं अलौकिक अनुभाव का जो निरूपण किया है वह संस्कृत साहित्य में सर्वथा अप्राप्य है। वहाँ तो बड़े बड़े महाकवि युद्ध के विस्तारों में ही उलझ गये और इस प्रकार प्रसंग योजना की उपयोगिता का विचार ही न कर सके। 'मारीच-वध' प्रसंग 'रामकथा की परम्परा का अनिवार्य अंग है। उसमें भी तुलसी ने मारीच के द्वारा राम के ईश्वरत्व के निरू-

---

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १०७ — २ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १८०
३ " " १८३–१८४ — ४ मानस ३।१७
५ मानस ३।१९–२०

पण से और उसके 'निजपद प्राप्ति' के उल्लेख से एक दिव्य वातावरण की सृष्टि की है। जटायु-मरण के प्रसंग में जटायु की 'सारूप्य' और 'सालोक्य' मुक्ति' का वर्णन करके तुलसी ने राम के ईश्वरत्व का सविशेष निरूपण किया है, जबकि संस्कृत के ग्रंथों में इस प्रसंगों का कोई उचित महत्व प्राप्त नहीं हुआ है।

तुलसी की यही विशेषता है कि वे प्राप्त प्रसंगों में सुरुचि एवं सौष्ठव के विचार से सर्वत्र आवश्यक परिवर्तन एवं परिवर्धन कर लिया करते हैं तथा कभी-कभी उनमें उचित प्रेषणीयता का अभाव देखकर नवीन उद्भावनाओं का मौलिक सृजन भी कर लेते हैं। समर्थ महाकवियों की यही एक पहचान होती है।

(११) सीता-शोध से सम्बद्ध प्रासंगिक कथायें—'मूलकथा' के इस बिन्दु का अत्यधिक विकास हुआ है। इसी के अन्तर्गत सुग्रीव हनुमान् और विभीषण के नायकत्व में तीन बड़ी प्रासंगिक कथाओं का आरम्भ होता है जिनका विस्तार मूलकथा के अन्त तक दिखलाई पड़ता है। सुग्रीव-मिलन के पूर्व कबन्ध-वध शबरी मिलन और नारद मिलन तथा उसके पश्चात् बालि-वध' के प्रसंग राम से सम्बद्ध हैं। राम-सुग्रीव-मैत्री' की भूमिका यों तो शबरी तैयार करती है किन्तु उसके अग्नि साक्ष्य के पुरोहित हनुमान् हैं। सुग्रीव के सेवक होने पर हनुमान अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। 'सीताशोध' में सुग्रीव प्रेरक मात्र हैं वास्तविक शोधक तो हनुमान् हैं और विभीषण उनके कुछ अंश में सहायक हैं। इस प्रकार इस प्रसंग में 'बालि-युद्ध' और 'वानरदूत-प्रेषण की कथायें सुग्रीव से राम-सुग्रीव-मैत्री सुग्रीव प्रबोध स्वयंप्रभा-दर्शन सम्पाति-मिलन समुद्र लंघन विभीषण मिलन सीता-संवाद वाटिका-भंग रावण प्रबोध और लंकादहन आदि की कथायें हनुमान से तथा सीता प्रवृत्ति-निवेदन हनुमान रक्षण प्रयत्न और रावण प्रबोध आदि की कथायें विभीषण से सम्बद्ध हैं।

राम से सम्बद्ध कथाओं में कबन्धवध' उनकी अद्वितीय शक्ति आह्वान-भक्ति और अलौकिकता की स्थापना के लिये आयोजित है जबकि संस्कृत ग्रंथों में इस प्रसंग के कबन्ध के द्वारा सीता-हरण करने और युद्ध करने का तो विस्तृत विवरण' मिलता है किन्तु उपरिनिर्दिष्ट तत्वों की चर्चा तक नहीं है। अनेक ग्रंथों में यहाँ शबरी-मिलन की कथा का नितान्त अभाव है कबन्ध को ही सुग्रीव मिलन का संकेतक बतलाया गया है। मानस' की शबरी-कथा' इस उपर्युक्त संकेत के अतिरिक्त राम के मुख से नवधाभक्ति के प्रामाणिक उपदेश' के निमित्त प्रयुक्त हुई है किन्तु संस्कृत के अधिकतर ग्रन्थों में शबरी का नामोल्लेख ही नहीं है और कुछ ग्रन्थों में उसे दूत रूप में या 'नकली मन्थरा' के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। 'मानस' की शबरी इस राजनीति से सर्वथा दूर एक शुद्ध तापसी के रूप में ही प्रतिष्ठित है।

---

१ मानस ३।३२ २ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १९१-१९२

३ ३।३५-३६

नारद-मिलन की कथा बालकाण्ड के 'नारदमोह' की कथा के उपसंहार के रूप में मानी जा सकती है। 'नारी निन्दा' और सन्तलक्षण के निरूपण से ही उसकी उपयोगिता है। यह कथा मूलकथा की प्रगति में किसी प्रकार भी साधक नहीं है, इसीलिए सम्भवतः संस्कृत के ग्रन्थों में उसके दर्शन नहीं होते हैं।

'बालिवध' की कथा राम की शक्ति और दैवी अनुभाव के निदर्शन के साथ एक नैतिक सिद्धान्त का प्रतिपादन भी करती है —

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥ ४।९॥

'मानस' का बालि राम के ईश्वरत्व से सुपरिचित है और वह उनके हाथों से अपनी मृत्यु को भी वरदान-सदृश मानता है। इसके अतिरिक्त यहाँ 'रावण विजेता बालि के वध में राम की सामर्थ्य दिखला कर उनके द्वारा निकट भविष्य में रावण-वध की सम्भावना का संकेत भी इस प्रसंग में किया गया है। राम के द्वारा प्रतिज्ञापूर्ति और मित्रता-निर्वाह का उल्लेख भी यहाँ सोद्देश्य है। संस्कृत के काव्यों में लगभग सर्वत्र एक ही परम्परा का पालन किया गया है किन्तु कुछ नाटकों में बालि का रावण से प्रेरित बतला कर उसके साथ राम के सीधे द्वन्द्व-युद्ध का विस्तृत वर्णन भी प्राप्त होता है जिससे स्थिति एकदम बदल जाती है और उसकी योजना का उद्देश्य केवल वध वर्णन-मात्र रह जाता है। नाटकीय दृष्टिकोण से यह प्रदर्शन भले ही स्वाभाविक लगता हो किन्तु काव्यौचित्य के विचार से वह एक बड़ी अव्यवस्था का निदर्शक हो जाता है।

सुग्रीव व उसका बालियुद्ध की कथा उन दोनों के पूर्ववैर का चित्रण करती हुई राम के द्वारा क्रियमाण 'बालिवध' की भूमिका का काम देती है और उनकी 'शरणागत-वत्सलता' का भी पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती है। 'वानरदूत प्रेषण' की कथा भी सभी संस्कृत ग्रन्थों में प्राप्त है। वहाँ बहुत से कवियों ने इसको अपने भौगोलिक ज्ञान प्रदर्शन का माध्यम बना लिया है जबकि तुलसी ने राम-हृदय के तत्कालीन तीव्र स्पन्दन का अनुभव करके उसका संक्षिप्तता, क्षिप्रता और सरलता के सरस समन्वय के साथ आयोजित किया है। साथ ही सुग्रीव के द्वारा 'राम काजु अरु मोर निहोरा' कहला कर 'मानसकार' ने एक वाक्य में ही इस प्रसंग के सोद्देश्य आशय को अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत कर दिया है।

हनुमान से सम्बद्ध कथाओं में 'राम-सुग्रीव-मैत्री' की कथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसके अभाव में रामकथा के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। ऐसे अनिवार्य प्रसंग में भी तुलसी ने हनुमान के द्वारा राम के ईश्वरत्व के अनुरूप का उल्लेख करते हुए भक्त और भगवान के मधुर सम्बन्धों का सरस विवेचन भी कर दिया है, जिससे उसकी योजना में दिव्यता के साथ-साथ चमत्कृति भी संश्लिष्ट

---

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ ११८ २ मानस ४।२२

गई है। संस्कृत के ग्रन्थों में यह प्रयास नहीं है। सुग्रीव प्रबोध' में हनुमान के रूप की व्यापकता स्पष्ट है, जिसको संस्कृत के साहित्यकार न तो आत्मसात कर सके और न व्यक्त ही कर सके। स्वयंप्रभा-कथा की योजना का एकमात्र उद्देश्य वानरदूतों को समुद्रतट तक शीघ्रता से पहुँचा देना है। तुलसी ने इसको भी स्वयंप्रभा की राम भक्ति से संवलित कर दिया है, जबकि संस्कृत के महाकवि इस प्रसंग में स्वयंप्रभा के इतिहास' का ही शोधन करते रहे और साधन को ही साध्य मान बैठे। 'सम्पाति-मिलन' के प्रसंग में रामदूतों के दर्शन से सम्पाति की 'नवपक्ष प्राप्ति' का उल्लेख 'मानस' के समान ही अनेक संस्कृत ग्रन्थों में मिलता है किन्तु वहाँ यह एक संयोग-मात्र अथवा भविष्यवाणी के रूप में ही अविस्तर निर्दिष्ट हुआ है, जबकि 'मानस' में तुलसी ने उसे स्पष्ट शब्दों में 'रामकृपा' कह कर, सम्पाति के द्वारा उन दूतों का भक्तिमय प्रबोधन भी वर्णित किया है। कुछ ग्रन्थों में सम्पाति और उसके पुत्र सुपार्श्व के उद्योगों के वर्णन से' इस प्रसंग को अत्यधिक विस्तार देने का प्रयत्न भी किया गया है जिससे उन कवियों की महाकाव्य-निर्माण-शक्ति का परिचय तो मिलता है, किन्तु उनके महाकवित्व का आभास नहीं होता है। इसी प्रकार 'समुद्रलंघन' की कथा में भी संस्कृत-काव्यों में अनावश्यक विस्तार के दर्शन होते हैं, जबकि तुलसी ने सर्वत्र रामभक्ति का पुट देकर एक अलौकिकता का विकास किया है।

'विभीषण मिलन-कथा' तुलसी की मौलिक योजना है जो संस्कृत के किसी भी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होती है। यहीं से विभीषण से सम्बद्ध प्रासंगिक कथा आरम्भ होती है जो 'मूल-कथा' के साथ-साथ अन्त तक समान गति से चलती है। संस्कृत के ग्रंथों में रावण और विभीषण के भवनों में कोई अन्तर नहीं बतलाया गया है इसीलिए हनुमान वहाँ दोनों स्थानों पर समान रूप से सीता की खोज करते हैं। किन्तु तुलसी को शत्रु और भक्त की यह समान स्थिति कदापि स्वीकार्य नहीं है इसीलिए उन्होंने विभीषण के भवन को 'रामायुध' से अंकित' दिखलाया है और वहीं विभीषण एवं हनुमान के सरस भक्तिपूर्ण संवाद के पश्चात् उन्होंने विभीषण के द्वारा हनुमान को सीता का पता बतलाने का स्पष्ट वर्णन किया है।

'सीता-मिलन' के प्रसंग में हनुमान् के कुशल दूत-रूप का चित्रण किया गया है। सन्देशों और प्रत्यभिज्ञानों के आदान-प्रदान के अतिरिक्त सीता को आश्वस्त करने के लिए हनुमान उनके समक्ष अपना 'कनक भूधराकार शरीर' का प्रदर्शन भी करते हैं। उसी शरीर के अनुरूप उनके पौरुष का प्रमाण देने के लिए ही 'वाटिका भंग' की कथा आयोजित की गई है जिसमें राम-कार्य की सिद्धि के लिए हनुमान नाग पाशबद्ध भी हो जाते हैं और रावण की सभा में पहुँचकर वे उसे सीता प्रत्यर्पण के

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २०४ २ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २१ २५
३ मानस ५।५ ४ मानस ५।८

लिये बारम्बार प्रभावित करते हैं। 'रावण प्रबोध-कथा' का यही मन्तव्य है। रावण के न मानने पर और क्रुद्ध होकर हनुमान के वध की आज्ञा देने पर विभीषण 'दूतवध' को अनुचित बतला कर हनुमान की रक्षा करने का प्रयत्न करता है। सीता प्रवृत्ति के निवेदन के पश्चात् विभीषण का यह दूसरा सहयोग है। विभीषण की बात मानकर रावण जब हनुमान के वध के स्थान पर उनके अंग भंग करने के लिए तुल जाता है और उनकी पूँछ में आग लगवा ही देता है तब हनुमान् उसी आग से विभीषण भवन को छोड़ कर समस्त लंका को भस्मसात् कर डालते हैं। अध्यात्म की यह कथा 'वाटिका भंग' के पश्चात् रावण को हनुमान के द्वितीय' पौरुष ज्ञापन के लिये आयोजित की गई है। संस्कृत-साहित्य में इन प्रसंगों में हनुमान के रामभक्त-रूप का चित्रण नहीं है इसीलिए वहाँ उनके दर्प मर्यादातिक्रमण एवं अनुचित संलाप-विकल्पों का ही सविस्तार वर्णन किया गया है।

विभीषण से सम्बद्ध सीता-प्रवृत्ति-निवेदन और हनुमान रक्षा प्रयत्नों की कथाओं का उल्लेख अभी किया जा चुका है। इनमें 'प्रथम कथा' की मौलिकता सर्वथा असंदिग्ध है और द्वितीय कथा में संस्कृत-साहित्य में केवल 'नीति-तत्त्व' की ही प्रधानता मिलती है। 'मानस' के विभीषण की आन्तरिक स्निग्धता वहाँ दृष्टिगोचर नहीं होती है। इसी प्रकार 'रावण प्रबोध' के प्रसंग में भी विभीषण के द्वारा राम के ईश्वरत्व-वर्णन में उसके जिस भावावेश, उत्साह और सौहार्द के दर्शन होते हैं, वह संस्कृत ग्रन्थों में अप्राप्य है। वहाँ विभीषण अधिकतर भ्रातृप्रेरणा और भ्रातृप्रेम से ही इस दिशा में प्रवृत्त होता है।[1]

(१०) सीताप्राप्ति' से सम्बद्ध प्रासंगिक कथायें—इसके अन्तर्गत सुग्रीव के द्वारा वानर-सैन्य-संगठन, और लंका-युद्ध में उसके सहयोग की कथायें सुग्रीव से, विभीषण की शरणागति और 'रावण-युद्ध' राम के साथ उसके सहयोग की कथायें विभीषण से, लक्ष्मण-मूर्छा और लंका-दहन के अवसर पर हनुमान के प्रयत्न की कथायें हनुमान से, नागपाशमुक्ति की कथा गरुड़ से, मेघनाद-वध की कथा लक्ष्मण से और कुम्भकर्ण-वध, एवं विभीषणाभिषेक की कथायें राम से सम्बद्ध हैं।

वानर-दूत-प्रेषण के पश्चात् वानर-सैन्य-संगठन सुग्रीव का द्वितीय प्रमुख सहयोग है। इसके अतिरिक्त समुद्र-तट पर पहुँच कर 'सेतुबन्ध' में और लंका में पहुँच कर राम-रावण-युद्ध में भी उसके सक्रिय सहयोग का विस्तृत वर्णन 'मानस में किया गया है। संस्कृत के सभी ग्रंथों में ये प्रसंग समान ही प्राप्त हो जाते हैं किन्तु तुलसी ने उनमें राम के ईश्वरत्व का संकेत[2] करके उनकी योजना को और अधिक चमत्कारपूर्ण बना दिया है।

विभीषण की शरणागति उसकी आन्तरिक प्रेरणा का परिणाम है इसीलिए राम उसे 'पावनी भक्ति के साथ-साथ एक तिलक' में ही लंका की सम्पदा भी

---

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २१६

२ मानस ५।४२, ६।१

प्रणाम कर देते हैं। संस्कृत-साहित्य में भक्त और भगवान के इस सरस मिलन का वर्णन नहीं है। वहाँ वे केवल विभीषण और राम हैं। 'मानस' का विभीषण 'रावण' के विनाश में सर्वाधिक सहयोग देने की भावना से ही राम को मेघनाद-यज्ञ, रावण-यज्ञ और रावण के नाभिकुण्ड में अमृत की उपस्थिति की सूचना देता है। मेघनाद के यज्ञ' की सूचना का उल्लेख कुछ संस्कृत ग्रन्थों में भी है, किन्तु अन्तिम दोनों प्रसंग मानस' में सर्वथा नवीन और मौलिक हैं। विभीषण की सम्पूर्ण भक्ति के निदर्शन के लिए ही तुलसी ने उन्हें यहाँ पर आयोजित किया है।

'लक्ष्मण-मूर्च्छा' के अवसर पर 'संजीवनौषधि' लाना हनुमान का तृतीय महान सहयोग है। इसके पूर्व सुग्रीव-मैत्री एवं 'सीता-शोध' के प्रसंगों में वे अपनी सक्रियता का निरूपण कर चुके हैं। संस्कृत के ग्रन्थों में हनुमान का यह तृतीय उद्योग अनेक बार वर्णित है।[1] तुलसी इस प्रसंग की योजना में विशेष सतर्क हैं। उन्होंने यहाँ एक तो लक्ष्मण के साथ राम की मूर्च्छा का उल्लेख न करके उनके महत्व की सुरक्षा की है दूसरे पिष्टपेषण से बचने के लिए हनुमान के केवल एक ही उद्योग का वर्णन किया है और तीसरे उनके परिलक्षित गर्व के अपहार के लिये उन्होंने इसी प्रसंग में उनके साथ भरत-मिलन की घटना का भी वर्णन कर दिया है। इन विशेषताओं के कारण 'मानस' के इस प्रसंग की योजना अधिक सोद्देश्य और सबल हो गई है। इसी प्रकार 'नागपाश-मुक्ति' की कथा भी मानस' में कई उद्देश्यों से आयोजित हुई है। रामचरित की अलौकिकता के वर्णन के साथ-साथ इसमें गरुड़ के उस भ्रम और दर्प का भी संकेत है जिसके विनाश के निमित्त 'उत्तर काण्ड' में काक-गरुड़ संवाद' का सविस्तार वर्णन किया गया है। संस्कृत के साहित्य कारों ने इस अवसर पर गरुड़ की मनःस्थिति का कोई वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया है।

लक्ष्मण के द्वारा 'मेघनाद-वध' की योजना मानस' के समान ही लगभग सभी संस्कृत ग्रन्थों में प्राप्त होती है किन्तु तुलसी ने इस प्रसंग में लक्ष्मण की उस प्रतिज्ञा में उनके चारित्रगत उत्कर्ष का महत्वपूर्ण संकेत कर दिया है जिसमें सैकड़ों शंकरों के विरोध करने पर भी उसी दिन मेघनाद के वध का निश्चय व्यक्त करते हैं। इस प्रतिज्ञा में "रामदुहाई"[2] के निमित्त से जो अलौकिक चमत्कार उत्पन्न हो गया है वही इस प्रसंग की योजना का मूल लक्ष्य है। संस्कृत के ग्रंथों में इस प्रसंग में "रणविद्या" का ही विस्तृत वर्णन मिलता है जिससे लक्ष्मण के अद्भुत शौर्य की प्रतिष्ठा तो होती है, किन्तु उनकी रामनिष्ठा का संकेत नहीं मिलता है।

कुम्भकर्ण-वध की घटना 'मानस' के समान ही संस्कृत के ग्रंथों में भी आयोजित मिलती है, किन्तु 'मानस' में कुम्भकर्ण की मुक्ति का उल्लेख 'भूमिका'

---

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २२७ २ मानस ६।७२

३ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २२६-२३२

की 'हेतुकथाओं' से सम्बद्ध है जबकि संस्कृत साहित्य में इन 'हेतुकथाओं' का सर्वथा अभाव है। विभीषणशरणागति प्रसंग में राम के द्वारा "पिता वचन मैं नगर न आवउँ"[1] कहलाकर तुलसी ने उनकी जिस चारित्रिक दृढ़ता एवं नीतिमत्ता का वर्णन किया है, वह अन्यत्र अप्राप्य है।

(१८) राम के अयोध्या प्रत्यागमन से सम्बद्ध कथायें–इसके अन्तर्गत भरद्वाज मिलन गुह–मिलन वेद–स्तुति शिव–स्तुति सनकादि–स्तुति वसिष्ठ–स्तुति नारद–स्तुति की कथायें हैं। पहली दोनों कथाओं का आयोजन तुलसी ने भरद्वाज और गुह को राम के प्रत्यागमन से आश्वासन देने और राम के ईश्वरत्व के संबंध में उनकी दृढ़ आस्था के प्रतिपादन के लिए किया है। इन कथाओं को अयोध्याकाण्ड मे वर्णित इन दोनों की मिलन–कथाओं का उपसंहार भी माना जा सकता है। शेष पाँचों स्तुतियों का एकमात्र यही लक्ष्य है कि राम ईश्वर हैं, अतः सर्व–स्तुत्य हैं।

उपर्युक्त विशेषताओं के दृष्टिकोण से यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि 'मानसकार' ने इन समस्त प्रसंग–योजनाओं में अद्वितीय सफलता प्राप्त की है। संस्कृत साहित्य में इन प्रसंगों के कहीं वर्णन नहीं होते हैं।

(१९) 'मानस' का उपसंहार–भूमिका के समान ही इसमें भी शंका समाधान और 'संवाद–योजना' की पद्धति का आश्रय लिया गया है। यहाँ भुशुण्डी काक अपने अनुभवों के आधार पर शंकालु गरुड़ को स्वस्थ तथा निर्भ्रम करता है और प्रसंग में अपने पूर्वजन्मों का विस्तृत परिचय भी देता है। इन दोनों पक्षियों के संवाद में भक्ति और दर्शन का बड़ा व्यापक विवेचन किया गया है जो 'गीता' और 'अध्यात्म–रामायण' से बहुत कुछ प्रभावित है। इसके पश्चात् पौराणिक शैली में कथा के माहात्म्य और अधिकारियों के लक्षण आदि का शास्त्रीय निरूपण सा किया गया है जो 'मानस' के प्रति तुलसी की भक्तासक्तता को व्यक्त करता है। संस्कृत के ग्रन्थों में यह माहात्म्यादि वर्णन नहीं है, जिससे उनमें केवल समर्थ पाठकों का ही प्रवेश हो सकता है जबकि 'मानस' पर सर्व साधारण का समान अधिकार है। इसी लिए वह बड़े से बड़े विद्वान् साहित्य–मर्मज्ञ से लेकर अपढ़ भक्त तक का 'मानस मंथन' करता रहा है और करता रहेगा। तुलसी की यह उपसंहार योजना सर्वथा मौलिक है क्योंकि संस्कृत के आलोच्य ग्रन्थों में ऐसी योजना कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती है।

इस वस्तु विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता कि यद्यपि तुलसी ने अपनी कथा के स्रोत में नानापुराण निगमागम आदि का संकेत कर दिया है, तो भी उन्होंने इसके वस्तु–संगठन में अपने विवेक और स्वातन्त्र्य का स्पष्ट परिचय दिया है। वस्तुतः उन्होंने अपनी भक्ति को उत्तरोत्तर दृढ़ करने तथा रामचरित का मर्म समझने के लिए अधिक से अधिक प्राचीन राम–साहित्य–रूप रत्नाकर का मन्थनपूर्वक शोध किया

---

१ मानस ६।१०६

और अपनी सद्ग्राहिता के अनुसार मनोवांछित सारभूत रचनोपकरण रत्नों को ही ग्रहण किया और उन्हें अपने दिव्य प्रकाश तथा मौलिकता की शान पर चढ़ा कर विशेष सुसंस्कृत रूप देकर अपने नूतन राम साहित्य में सन्निविष्ट किया ।"[1]

तुलसी इस तथ्य से भी सुपरिचित हैं कि कथा में तारतम्य की एक-सूत्रता के साथ-साथ उसमें प्रभावान्विति का ध्यान रखना भी परम आवश्यक होता है जो अन्ततोगत्वा अभीप्सित 'रसनिष्पत्ति' का नियोजन करता है। संस्कृत के कवियों ने परम्परा-पालन की दृष्टि से अधिकतर केवल कथा के वर्णन में ही अपने कर्त्तव्यों की सफलता मान ली है और उसकी सोद्देश्यता के विचार से अपनी किसी नवीनता का प्रतिपादन नहीं किया है। इससे यह स्पष्ट है कि संस्कृत के इन ग्रन्थों में से किसी भी एक में 'रामचरित-मानस' की सी पूर्णता व्यापकता प्रभावात्मकता और गंभीरता एक साथ विद्यमान नहीं मिलती है। अतः राम-काव्य में इस ग्रन्थ का अद्वितीय महत्व है।[2]

२ पात्र-विवेचन

(१) नेता—प्रबन्ध-काव्य में नेता या नायक का स्थान अति महत्वपूर्ण होता है क्योंकि वस्तु का सारा ताना-बाना उसी के ऊपर या चारों ओर बुना जाता है। रस की अनेक लहरियां उसी के सम्बन्ध से विधाविशेष में लहराती चली जाती हैं। सम्बन्ध-सूत्र का निर्वाह उसी के कार्य-कलाप पर आधारित रहता है। यों तो अन्य पात्र भी होते हैं किन्तु उन सबका अस्तित्व नायक के अस्तित्व से ही सम्बन्धित होता है क्योंकि मूल घटना के उपरान्त अभ्युदित प्रमुख फल का भोक्ता वही होता है।

'मानस' के नेता राम हैं। सारी कथायें परोक्ष या अपरोक्ष रूप से उन्हीं से सम्बन्धित हैं। अन्यान्य प्रसंगों में उपनायकों की स्थिति भी राम से अप्रभावित दृष्टिगोचर नहीं होती है। 'राम जन्म' से सम्बन्धित सभी प्रसंगों से लेकर 'रामराज्य' के महत्व तक राम ही का परिवेश है। रावण के वैभव एवं गौरव में भी परोक्षरूप से राम के ऐश्वर्य की झांकी मिल सकती है। प्रतिनायक की पराजय का सम्बन्ध नायक की जय से होता है अतएव प्रतिनायक के गौरव की पीठिका पर नायक के गौरव की प्रतिष्ठा स्वयमेव हो जाती है। राम के द्वारा महान् शक्तिशाली रावण का वध 'मानस' की मूल घटना है जिसके पश्चात् राम को धर्मराज्य की स्थापना का अवसर मिलता है। यही राम को धर्म फल की प्राप्ति है जिसमें अर्थ भी स्पष्टतया निहित है।

'मानस' का उतना महत्व अनेक घटनाओं और वर्णनों से नहीं है जितना उसके नेता के सम्बन्ध से है। मानस के नेता का व्यक्तित्व जितना महान् है उतनी

---

१ डा॰ राजपति दीक्षित—तुलसीदास और उनका युग पृष्ठ १४६

२ डा॰ सधीरथ मिश्र—तुलसी रसायन, पृष्ठ ७२

ही महती उसकी पृष्ठभूमि है। स्पष्टतः राम हमारे सामने लौकिक और अलौकिक दो रूपों में प्रकट होते हैं। अपने अलौकिक रूप में वे केवल क्षीरशायी विष्णु ही नहीं हैं वरन् निर्गुण निरीह निर्विकार एवं अनन्त मायेश—ब्रह्म भी हैं जिसका संकेत 'मानसकार' पद-पद पर पाठक को देता चलता है। उसे भय है कि कहीं पाठक राम को केवल 'दाशरथि राम' न समझ लें। वस्तुतः तुलसीदास की आँखों के सामने कबीर के राम की भूमिका है, जो 'दशरथ राम' नहीं हैं और जिसको किसी विशेष नाम से अभिहित करना भी उचित नहीं है। इसके साथ ही तुलसी के हृदय में 'दाशरथि राम' की भी प्रतिष्ठा है इसीलिए उन्होंने पुराणों के मत का भी समुचित उपयोग करते हुए ब्रह्म विष्णु और राम के सम्बन्धों की एकत्र प्रतिष्ठा की है। यही 'मानस' के राम का लौकिक और अलौकिक रूप है। अपने अलौकिक रूप में वे निर्गुण ब्रह्म और सगुण विष्णु हैं तथा लौकिक रूप में वे 'राजकुमार' राम हैं ही।

(२) निर्गुण ब्रह्म-रूप—मानस के आरम्भ में ही गोस्वामी जी ने

'यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा।
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥' १। श्लोक ६

कह कर यह स्पष्ट कर दिया है कि यह सारा विश्व जिसकी माया के वशीभूत है वह ब्रह्म ही राम नाम से अभिहित हुआ है। उसी को तुलसी ने हरि अभिधा भी प्रदान की है। राम को 'व्यापक ब्रह्म' परमानन्द-स्वरूप परेश और 'पुराण' कह कर तुलसीदास ने ब्रह्म के सर्वोच्च पद पर आसीन कर दिया है। वे कहते हैं—

"राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेश पुराना।"१।११६

इसके अनुसार जो राम ब्रह्मपद पर आसीन हैं, वे दार्शनिकों (अद्वैतवादियों) के राम होते हुए भी भक्तों के राम हैं, क्योंकि उन्हीं का नाम "भ्रम तिमिर पतंगा"[२] है। अद्वैतवादियों के ब्रह्म के नाम में यह सामर्थ्य नहीं है। यह ब्रह्म 'निर्गुण-वाचक' है और उसका किसी नाम रूप तथा इच्छा आदि से सम्बन्ध भी नहीं है। "एक अनीह अरूप अनामा।"[३] कह कर तुलसी ने एक समस्या के साथ उसका हल भी प्रस्तुत कर दिया है। एक बार वे कहते हैं कि उसका नाम 'भ्रमतिमिर पतंगा' है और दूसरी ओर वे कहते हैं कि वह 'अनाम' है। इस प्रकार यहाँ अनाम अथवा निर्गुण ब्रह्म का शास्त्रनिरूपण और सनाम अथवा सगुण ब्रह्म का 'भक्ति-तोष' प्रतिपादित किया गया है।

(३) सगुण ब्रह्म-रूप—'मानस' में राम के सगुण ईश्वरत्व का ही विशेष वर्णन किया गया है। सामान्यतः इसके दो रूप हमारे सामने आते हैं। एक ब्रह्म रूप और दूसरा विष्णुरूप। 'ब्रह्मरूप' में वे विष्णु तथा अन्य देवताओं के भी नियामक बतलाए गए हैं। तुलसी ने राम को "बिधि हरि संभु नचावन हारे" और विष्णु कोटि सम

---

१ मानस १।११६   २ मानस १।११३
३ " १।१२७

पालन कर्ता"[1] कह कर उनके ब्रह्मत्व की ओर संकेत किया है और 'हरि हित सहित रामु जब जोहे । रमा समेत रमापति मोहे ।।'"[2] कह कर अवतार रूप में रमा के लौकिक सौन्दर्य की पराकाष्ठा की ओर इंगित किया है । यहां ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णु और राम भिन्न हैं और वास्तव में व्यावहारिक दृष्टि से अवतार और अवतारी में भेद होना भी चाहिए किन्तु यह भेद राम के मौलिक विष्णु स्वरूप का संकेतक नहीं है । यही तो उनका मूल ब्रह्मत्व है ।

(४) विष्णु-रूप—'मानस' के अधिकतर विस्तार में तुलसी ने राम और विष्णु की अभिन्नता का प्रतिपादन किया है । उन्होंने विष्णु को सर्वत्र 'हरिपद' से अभिहित किया है । 'मानस' के आरम्भ में ही—

"वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ।"[3] । श्लोक ६

कह कर वे 'रामाख्य हरि' की ही वन्दना करते हैं । इसके अतिरिक्त राम और हरि की एकता मान कर ही वे 'राम-चरित-मानस' को 'हरिचरितमानस' के नाम से भी अभिहित करते हैं । वहां शिव भी 'हरि व्यापक सर्वत्र समाना'[4] कह कर हरि शब्द से विष्णु का ही उल्लेख करते हैं । 'राम-जन्म' के पूर्व कौसल्या के समक्ष जो चतुर्भुज रूपधारी विष्णु प्रकट होते हैं वे ही उनकी प्रार्थना पर रामरूप में 'शिशु-लीला' करने लगते हैं । इस प्रकार 'मानस' में राम और विष्णु की एकता का ही सर्वत्र निरूपण किया गया है । अपने इस 'विष्णुरूप' में राम को ब्रह्मा और शिव से अत्यधिक शक्तिशाली बतलाया गया है । इसीलिए महात्मा स्वयंप्रभा विभीषण, अंगद, मंदोदरी इन्द्र भरत सनकादि काकभुशुण्डि[5] और स्वयं 'मानसकार' ने भी अपनी स्तुतियों में उनको उन दोनों के द्वारा पूज्य माना है ।[6] यही नहीं 'मानस' में उन दोनों को राम की स्तुतिकर्ता के रूप में प्रस्तुत भी किया गया है ।[7] प्रत्यक्ष व्यवहार में 'विष्णु राम' की इस प्रभुता का प्रमाण जयन्त का अनुभव भी है और स्वयं राम भी यही कहते हैं कि उनके शत्रु की प्राण रक्षा करने में ब्रह्मा और शिव भी समर्थ नहीं हैं ।[8] इस प्रकार उपर्युक्त दोनों सूत्रों से मानस के राम की अलौकिकता का चित्रण किया गया है । संस्कृत ग्रन्थों में भी उसका अनेक प्रकार से वर्णन प्राप्त होता है, वहां राम के निर्गुण ब्रह्मत्व के साथ-साथ उनके सगुण अवतारी विष्णुत्व का भी विस्तार से निरूपण किया गया है ।

---

१ मानस ७।१२ २ मानस १।३१७
३ मानस ७।१२१ ४ मानस १।१८२
५ मानस १।१८४ १८६ १६२, २११ ४।२३, ३।७ ५।२२, १०४ १११, ७।५ ३४ १३ १२४ ३।श्लोक १, ७।श्लोक २ ।
६ मानस ६।१११, ११२ ७ मानस १।२
८ मानस ३।१

(५) संस्कृत साहित्य में राम का ब्रह्मरूप—'राघवीय'[1] में राम को स्वप्रकाशचिदानन्द, सनातन, अनश्वर और 'योगियों का अन्वेष्टव्य' 'रामचरित'[2] में उनको परमपुरुष अनादिनिधन, अज ब्रह्म, आनन्दसिन्धु, गम्भीरागमगोचर, योगिगम्य 'महावीर चरित'[3] में उन्हें साक्षात् पुराणपुरुष और पारमार्थिकों का तत्त्व, 'रामायण मञ्जरी'[4] में नारायण सनातन और परमात्मा, 'चित्रचम्पू'[5] में वेदान्तवेद्य प्रवर्तकरूप, योगिजनसार अविगम्य, अव्यक्त, अनादि और अनन्त, 'भट्टिकाव्य'[6] में अज और नारायण 'ब्रह्मवैवर्तपुराण'[7] में प्रकृति पर और देवत्रयी के ईश्वर तथा 'पद्मपुराण'[8] में मूलप्रकृति, परमात्मा परब्रह्म योगिध्येय और अनामय के विशेषणों से अभिहित किया गया है।

(६) संस्कृत साहित्य में राम का विष्णु-रूप—राम के सगुण विष्णुत्व का उल्लेख तो संस्कृत के लगभग सभी ग्रन्थों में अनिवार्य रूप से किया गया है क्योंकि उसके अभाव में कथानक का संगठन ही नहीं सम्भव नहीं है। 'विष्णुपुराण'[9] और 'राघवनैषधीय'[10] में रामादि चारों भाइयों को विष्णु का चतुर्थांश कहा गया है। 'राघवीय'[11] और 'अद्भुत दर्पण'[12] में राम को गरुड़-सेवित बतला कर उनके विष्णुत्व का निरूपण किया गया है। 'आश्चर्य चूडामणि'[13] में उनको 'भुवन-संहरणो द्यकारण हरि' के रूप में स्मरण किया गया है। 'रामायण मञ्जरी'[14] में राम को शेष-कृतशिरस् विष्णु 'राघवपाण्डवीय'[15] में जगत्क्षेमकर विष्णु 'पद्मपुराण'[16] में जगत्-पिता संसारभयापहारि और पीताम्बर विष्णु, 'रामचरित'[17] में उन्हें क्षीरसशायन, समुद्रशायी और मधुकैटभासुरादिहन्ता विष्णु तथा 'उदार राघव'[18] में शेष शायी और पतितपावन-[illegible] विष्णु की अभिधा दी गई है। 'राघवीय'[19] 'राम चरित'[20] 'रामायण मञ्जरी'[21] आदि ग्रंथों में उनके मत्स्यादि अवतारों का वर्णन भी संक्षेप में किया गया है। दशावतारचरित तथा भागवत एवं विष्णुपुराण आदि समस्त

---

१ राघवीय ७।२४–२५,१०।४८ २ रामचरित ३।८–११
३ महावीर चरित ७।२ ४ रा० मञ्जरी। युद्ध। ५२२–५६०
५ चित्रचम्पू २११–२१८ ६ भट्टिकाव्य २१।१६–१७
७ ब्रह्मवैवर्तपुराण। श्रीकृष्ण उत्तरार्ध ६२।२१
८ पद्म। उत्तर।२४२।११७, २४३।२४–२७
९ विष्णुपुराण ४।४।८७ १० राघवनैषधीय १।२
११ राघवीय १७।६८।७० १२ अद्भुत दर्पण ५।४–७
१३ आश्चर्यचूडामणि ५।११ १४ रा० मञ्जरी। युद्ध।१७५
१५ राघवपाण्डवीय १।१६ १६ पद्म। पाताल। ११६।२८
१७ रामचरित ६।८–११ १८ उदार राघव २।१३–१४
१९ राघवीय २०।२१ २० रामचरित ६।८–११
२१ रामायण मञ्जरी। युद्ध। ५२२-५६०

पुराणों का उद्देश्य ही विष्णु के सभी अवतारों का वर्णन करना है। किन्तु राम की इस प्रमविष्णुता से ही वहाँ ब्रह्मा और शिव की अपेक्षा उनकी अधिक शक्तिमत्ता प्रमाणित होती है।

राम के विष्णु रूप के वर्णन के अतिरिक्त 'रामचरित' में विष्णु और शिव की (परोक्ष में राम और शिव की) एकरूपता का वर्णन मिलता है। वहीं पर उनको (राम को) त्रैलक्यी का प्रतिरूप भी कहा गया है।[1] 'पद्मपुराण' में तो राम और सीता को 'शिव-पार्वती', ब्रह्म-सावित्री' एवं 'विष्णु-लक्ष्मी' आदि का प्रतिबिम्ब माना गया है।[2]

(७) राम का लौकिक रूप—'मानस' में राम के ब्रह्म और विष्णु-रूप के अतिरिक्त उनके लौकिक रूप का भी विशद चित्रण किया गया है। वस्तुतः यहाँ उनका यही रूप प्रधान है। 'मानस' के राम का लौकिक रूप वाल्मीकि के राम से प्राय: मिलता जुलता है। 'मानस' के राम अपने गुणों में वाल्मीकि के राम से किसी प्रकार कम नहीं है और जहाँ कहीं उनके चरित्र पर कोई छींटा पड़ने की सम्भावना दिखलाई दी है वहीं तुलसीदास ने कभी अलौकिकता की दुहाई देकर उनकी रक्षा की है कभी शिव अथवा किसी अन्य पात्र से उनकी लीला की व्याख्या करवा दी है, और तो और एकाध अवसर पर स्वयं राम को ही अपने चरित्र के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण देना पड़ा है।[3] इससे यह सिद्ध हो जाता है कि राम के चरित्र में आदर्श की प्रतिष्ठा करने के लिए ही तुलसीदास यह सब करते हैं। राम के इसी आदर्श चरित्र ही उनको अननुकरणीय ऊँचाई तक ले पहुँचता है। राम की विशेष का आदर्श स्वरूप को 'मर्यादापुरुषोत्तम' की संज्ञा देकर कहा गया है कि राम की झाँकी है उनका मर्यादापुरुषोत्तमत्व। इस झाँकी में वे आकृति प्रकृति और परि स्थिति तीनों दृष्टियों से आदर्श पुरुष हैं।"[4] इस झाँकी में 'मानस' के राम, पुत्र तथा बन्धु पति मित्र शत्रु और राजा आदि के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनका यही लौकिक चरित्र हमें एक आदर्श की प्रेरणा देता है।

(८) राम का पुत्र-रूप—'मानस' के राम एक आदर्श पुत्र हैं। बचपन से ही वे अपने माता-पिता के आज्ञा-पालक हैं। पिता की आज्ञा से विश्वामित्र के साथ उनका वन गमन इसी का प्रमाण है। उनकी पितृभक्ति की वास्तविक परीक्षा 'कैकयी की वरदान-याचना' के अवसर पर होती है। उस समय भी वे पितृभक्त पुत्र को 'बड़भागी' एवं दुर्लभ कहकर पिता की आज्ञा से अपने राज्य त्याग तथा 'वन-गमन' को अपने लिए हितकर ही बतलाते हैं—

---

१ रामचरित ६।८।११ २७।११२।११४
२ पद्म। उत्तर। २४१।२४।१६
३ मानस ४।१८
४ बलदेवप्रसाद मिश्र-तुलसी दर्शन पृष्ठ १२१

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥२।४१

स्वयं कैकयी भी राम की विशेषता की प्रशंसा करती है ।[1] राम की यह पितृभक्ति उनके प्रत्येक आचरण से व्यक्त होती है इसी के लिये वे सीता और लक्ष्मण को वन-सहगमन से रोकते हैं ।[2] अपने सुमन्त्र-संदेश' में भी वे पितृभक्ति पर ही बल देते हैं ।[3] वे अपनी माता कौशल्या के भी परम भक्त हैं । विमाताओं के प्रति भी उनके हृदय में अत्यधिक सम्मान है । अपने निर्वासन की आज्ञा देने वाली कैकयी के प्रति भी उनकी हार्दिकता में कभी अन्तर नहीं पड़ता है । चित्रकूट और अयोध्या में वे उससे उसी पूर्ववत् विशिष्ट भाव से मिलते हैं[4] और अपने निर्वासन का समस्त दोष 'काल-कर्म और विधि' को देकर उसे अक्षिप्त कहते हुए सान्त्वना भी देते हैं । सुमित्रा के सम्मनोपदेश'[5] में भी राम की विमातृ भक्ति के सरस दर्शन किये जा सकते हैं ।

संस्कृत-साहित्य में 'रामायण मञ्जरी' के राम पिता की आज्ञा को 'अति आदरणीय' कह कर उनके संकेत से भयंकर प्रलयाग्नि तक में प्रवेश कर सकते हैं ।[6] 'उदार राघव' के राम पितृभक्ति को अपना धर्मधर्म बतलाते हुए आलंकारिक शैली में अपनी आदर भावनाओं को व्यक्त करते हैं ।[7] चम्पूरामायण में वे कण्डु परशुराम और पुरु आदि का उदाहरण देकर पिता की आज्ञा को 'अविचारित रूप' में ही मान लेने को सर्वश्रेष्ठ सदाचार कहते हैं ।[8] 'प्रतिमा नाटक' में वे पिता की आज्ञा को ही अपने 'वन-गमन' का मूल प्रेरक बतलाते हैं ।[9]

'पद्मपुराण', 'अग्निपुराण' 'भागवत' 'रघुवंश' 'हनुमन्नाटक' आदि में भी राम की आदर्श पितृभक्ति का विविध उल्लेख मिलता है, किन्तु मातृभक्ति के निरूपण में 'मानस' के समान सौष्ठव के दर्शन कहीं नहीं होते हैं । 'रामायण मञ्जरी' के राम कौशल्या के द्वारा उनके प्रति वात्सल्यवश ही नहीं—दशरथ के प्रति कटु वचन कहे जाने की सम्भावना करके उनको रोकते हैं ।[10] रामचरित में वे 'वन-गमन' के समय कौशल्या और सुमित्रा से प्रणाम के अतिरिक्त कोई बात नहीं करते हैं जबकि अपने निर्वासन के लिए कैकयी को वे हार्दिक धन्यवाद भी देते हैं ।[11] 'उदार राघव' के राम कौशल्या के विलाप और प्रलाप के उत्तर में सान्त्वना का एक शब्द भी नहीं कहते हैं किन्तु कैकयी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए

---

१ मानस २।४१ | २ मानस २।६१ ७१
३ मानस २।९६ १५१–१५२ | ४ " २।२४४,७ । १०
५ " २।७४–७६ | ६ रा० मञ्जरी । अयोध्या । ८१४ ८२०
७ उदार राघव ५।११
८ चम्पू रामायण २।१६ के बाद | ९ प्रतिमा ४।२०
१० रा० मञ्जरी । अयोध्या ।८६१–६२ | ११ रामचरित ५।५०–५२,८०

वे अपनी अन्य ७०० विमाताओं से भी क्षमा मांगते हैं तथा उनसे वात्सल्य-भाव मूल कर माता कौसल्या की सेवा करने का आग्रह व्यक्त करते हैं।[1] 'चम्पू रामायण' में वे एक ओर जहाँ कैकयी की प्रशंसा करते हैं वहीं दूसरी ओर कौसल्या को 'वन गमन' से इसलिए रोकते हैं कि उन्हें क्रूर कैकयी की कर्कशवाणी से भग्नहृदय पिता की प्राण रक्षा भी करनी है।[2] 'प्रतिमा' में कौसल्या और सुमित्रा से उनके मिलन का संकेत भी नहीं है किन्तु उनके द्वारा कैकयी के सद्गुणों की प्रशंसा का विस्तृत उल्लेख मिलता है।[3] संस्कृत साहित्य में इस मातृवर्ग को वस्तुतः अत्यन्त गौण स्थान प्राप्त हुआ है इसलिये उनके प्रति राम की आदर भावनाओं का वहाँ कोई उल्लेखनीय परिचय नहीं प्राप्त होता है।

(९) राम का शिष्य रूप—राम और विश्वामित्र—विश्वामित्र और वसिष्ठ राम के दो गुरु हैं। इनमें विश्वामित्र उनके 'दीक्षा-गुरु' हैं। राम को अपने किशोर जीवन में ही कुछ समय के लिए उनका संरक्षण प्राप्त हो जाता है। राम पद-पद पर उनका अनुशासन मानते हैं यहाँ तक कि शयन, जागरण, शयन, विश्राम और मनुर्मन के लिये भी वे 'गुरुसुखापेक्षी' हैं। उनके प्रति राम का व्यवहार बड़ा विलक्षण है।[4] राम ही इसीलिए वे 'सीता-पूर्व-मिलन' की बात भी उनको स्पष्टतया बतला देते हैं।[5] राम की इसी गुरुभक्ति से प्रभावित होकर विश्वामित्र अयोध्या में बहुत समय तक उनके साथ रहकर उनका आतिथ्य ग्रहण करते हैं।[6] संस्कृत ग्रंथों में रघुवंश[7] राघवीय,[8] 'रामायण-मञ्जरी'[9] और 'महावीर चरित'[10] में भी राम के इसी आदर्श शिष्य-रूप का सरस किन्तु संक्षिप्त वर्णन मिलता है।

(१०) राम और वसिष्ठ—वसिष्ठ राम के कुलगुरु हैं। वे उनके जात-कर्म नामकरण चूड़ाकर्म यज्ञोपवीत, विवाह और अभिषेक आदि सभी संस्कार सम्पन्न कराते हैं।[11] राम के यौवराज्याभिषेक के पूर्व उन्हें शिक्षा देने के लिए जब वे उनके भवन पधारते हैं तब राम उनका स्वागत करते हुए उनका जो षोडश पूजा[12] करते हैं वह उनकी गुरुभक्ति का पुष्ट प्रमाण है। 'वन प्रस्थान' से पूर्व भी राम के द्वारा वसिष्ठ की शरण में अपने दास-दासियों को सौंप जाना[13] उनके प्रति उनके अगाध विश्वास का प्रतीक है। सिद्धान्त-रूप में भी राम गुरुजन को लोक और वेद में 'बड़भागी'[14] मानते हैं।

---

१ उदार राघव ४।११४-११८ ।१२० ११-८२
२ चम्पू रामायण २।२८, ३०
३ प्रतिमा १।११ १२ के बाद
४ मानस १।२१८, २२६,२२४
५ मानस १।२३०
६ मानस १।३६०
७ रघुवंश ११।११
८ राघवीय २।६१, २।६९
९ रा० मञ्जरी । बाल । १४०-१२
१० महावीर चरित १।१८
११ मानस १।१९३ १९७, २०३ २०४, ३२१, ७।१९
१२ मानस २।९
१४ मानस २।२४९

तुलसी ने अपने सिद्धान्त-विशेष के कारण ही विश्वामित्र और वसिष्ठ को राम के ईश्वरत्व से सुपरिचित बतलाया है और वसिष्ठ के द्वारा उनसे जन्म जन्मान्तर के लिए 'अविरल भक्ति-याचना' का संकेत भी किया है।[1] संस्कृत-साहित्य में वसिष्ठ के कुल-पुरोहित रूप का ही अधिक विकास मिलता है इसीलिए उनके प्रति राम की श्रद्धा का वर्णन वहाँ स्वाभाविक है जिसका सरस परिचय रामायण-मञ्जरी,[2] महावीरचरित[3] अनर्घराघव[4] और बाल-रामायण[5] आदि ग्रंथों में सुलभ है।

(११) राम का भ्रातृ-रूप-राम और लक्ष्मण— मानस' में यद्यपि भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न तीनों भाइयों[6] के सम्बन्ध से राम के आदर्श भ्रातृत्व का निरूपण किया गया है, फिर भी उनमें लक्ष्मण को राम का अधिक सान्निध्यलाभ हुआ है। 'मानसकार' ने उन दोनों के बचपन से ही युग्म[7] बन जाने का उल्लेख किया है, जिसका संकेत 'रघुवंश'[8] और रामायण-मञ्जरी[9] आदि में भी मिलता है। राम और लक्ष्मण के मधुर भ्रातृत्व का विस्तृत वर्णन वनप्रवास-काल में प्राप्त होता है। राम लक्ष्मण की प्रसन्नता और सुरक्षा का ध्यान बड़ी सतर्कता के साथ रखते हैं —

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे ॥२।१४२

लक्ष्मण-मूर्च्छा प्रसंग' में लक्ष्मण के प्रति राम के भ्रातृहृदय का सर्वश्रेष्ठ स्निग्ध परिचय मिलता है। वहाँ वे प्रेमाधिक्य के कारण उनके विमातृज होने पर भी उनकी सहोदरता का संकेत करते हुए उनकी तुलना में सुत वित नारि भवन परिवारा को भी उपेक्षणीय मानते हैं और अपने सत्यपालन के औचित्य पर भी क्षुब्ध एवं संदिग्ध होते हैं —

जो जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू ॥६।६१

संस्कृत-साहित्य में भी राम की इस असाधारण 'भ्रातृवत्सलता' के सर्वत्र— विशेषकर इसी प्रसंग में—दर्शन हो जाते हैं। 'रामायण-मञ्जरी' में भी वे सहोदर भाई को 'अत्यन्त दुर्लभ' कह कर लक्ष्मण के लिए मन्त्री सुत शिष्य सुहृद अनुगामी और दक्षिणभुज आदि विशेषणों का प्रयोग करते हैं।[10] 'रामचरित' के राम इस अवसर पर अपने जीवन, विजय-लाभ और सीता प्राप्ति तक के प्रति विरक्त हो जाते हैं और सुग्रीव को 'रविपुत्र' कह कर उसके 'यमराज-सहोदरत्व' के संकेत से, उससे दंड से लक्ष्मण के प्राण लौटा लाने का आग्रह तक करते हैं।[11] 'रामचरित' में भी उनकी इसी विरक्ति का चरम संकेत है।[12] 'भट्टिकाव्य' में इस अवसर पर राम

---

१ मानस ७।४८ ४६
२ रा० मञ्जरी। अरण्य १९८७-१०४
३ महावीर चरित ७।११-१५
४ अनर्घराघव ७।११६-११८,१४८
५ बालरामायण १०।१८
६ मानस १।२०२ २।७,१०
७ मानस १।११८
८ रघुवंश १०।८१
९ रा० मञ्जरी। बाल। ७८
१० रा० मञ्जरी। युद्ध। ५१५-१७
११ रामचरित ४।३५-३६
१२ रामचीय १२।२४-२६

के द्वारा आत्महत्या के प्रयत्न का भी वर्णन किया गया है, जिसमें उनके भ्रातृप्रेम की चरम सीमा देखी जा सकती है।[1] 'हनुमन्नाटक' में वे अपनी आदर्श विमातृ भक्ति को तिलाञ्जलि देकर कैकयी के प्रति आक्रोश भी व्यक्त करते हैं।[2] प्रसन्नराघव में वे सुमित्रा और उर्मिला के शोक का ध्यान करके अयोध्या लौटने का विचार तक त्याग देते हैं।[3] लक्ष्मण के प्रति अपने इसी विशेष प्रेम के कारण राम उनको 'रामायण-मञ्जरी' में युवराजपद देने का प्रयत्न करते हैं।[4]

(१२) राम और भरत—भरत के प्रति राम के वात्सल्य का जितना विस्तृत उल्लेख 'मानस' में है, उतना संस्कृत-साहित्य में कहीं नहीं मिलता है। चित्रकूट में भरत को ससैन्य आते देखकर क्षुब्ध लक्ष्मण को समझाते हुए राम भरत के सौभाग्य की बड़ी प्रशंसा करते हैं—

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥ २।२३१

लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥ २।२३२

यहाँ भरत को लक्ष्मण से भी अधिक राम प्रिय संकेतित किया गया है। 'रामायण मञ्जरी' के राम भरत को इस अवसर पर विश्वासपात्र महात्यागी और नित्यभक्त बतलाते हैं।[5] 'उदार राघव' में वे उनको 'महाश्चर्यकारी' और अपेक्षणीय कहते हैं।[6] 'प्रतिमा' नाटक में वे उन्हें सर्वगुणनिधि निष्कलुष-आत्मा और पुरुषोत्तम कह कर स्वर्ग को उनके यशों से परितोषित निर्जित और वशीकृत समझते हैं। मानस[7] के समान ही 'रघुवंश'[8] 'अनर्घराघव'[10] आदि में भी अयोध्या प्रत्यागमन के अवसर पर गुरुजनों से मिलने के तुरन्त पश्चात् ही राम भरत मिलन का वर्णन किया गया है किन्तु 'रामायण-मञ्जरी' के राम स्नेह की अधिकता के कारण विमान पर बैठे बैठे ही सर्वप्रथम भरत से मिल लेते हैं फिर विमान की विदाई के पश्चात् वे गुरुजनों के दर्शन करते हैं।[11] राघवीय[12] महाभारत[13] महावीर चरित[14] चम्पूरामायण[15] में भी राम के द्वारा भरत के सर्वप्रथम मिलन का वर्णन प्राप्त होता है। इस प्राप्ति से भरत के प्रति राम की सर्वाधिक भ्रातृवत्सलता की पुष्टि तो होती है किन्तु शिष्टाचार का अतिक्रमण भी हो जाता है इसीलिये तुलसी ने इसे स्वीकार नहीं किया है।

१ भट्टिकाव्य १४।११
२ हनुमन्नाटक १४।२८
३ प्रसन्नराघव ७।१०–१२
४ रा० मञ्जरी। लंकोत्तर। १८७
५ रा० मञ्जरी। अरण्य। १६३–१६७
६ उदारराघव २।१६
७ प्रतिमा ४।२२–२३
८ मानस ७।५
९ रघुवंश १३।७०
१० अनर्घराघव ७।१४१ के बाद
११ रा० मञ्जरी। लंकोत्तर ।१७०–१७१
१२ राघवीय २०।६४–६६
१३ महाभारत। वन। २९१।५९–६१
१४ महावीरचरित ७।३१
१५ चम्पूरामायण ६।१०६ के बाद

(१३) राम और शत्रुघ्न—'मानस' के समान ही संस्कृत-साहित्य में भी शत्रुघ्न के प्रति राम के बन्धुत्व का कोई उल्लेखनीय चित्रण नहीं मिलता है। अयोध्या-प्रत्यागमन के अवसर पर 'मानस'[1] के समान ही अनर्घराघव,[2] प्रतिमा[3] और बालरामायण[4] के 'राम शत्रुघ्न मिलन' में केवल शिष्टाचार-निर्वाह का ही संकेत मिलता है।

(१४) राम का पति रूप—सीता के प्रति राम के आभ्यन्तरिक स्नेह का परिचय उनके दाम्पत्य-जीवन के प्रत्येक प्रसंग में मिलता है। 'मानस' में उनके पूर्व राग, संयोग और वियोग की सभी परिस्थितियों में उसका सरस किन्तु संयत चित्रण किया गया है इस संयम के लिए तुलसी की मर्यादा-भावना उत्तरदायी है क्योंकि जब वे शिव और पार्वती को जगत के पिता-माता कह कर उनके शृङ्गार-वर्णन में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं[5] तब उनके भी आराध्य और अपने इष्टदेव राम और सीता के सम्बन्ध में उनकी विवशता सहज अनुमेय है। फिर भी काव्यत्व के औचित्य के विचार से उन्होंने 'मानस' में शृङ्गार के सभी पक्षों का आदर्श और मर्यादित निरूपण प्रस्तुत किया है।

(१५) पूर्वरागी राम—जनक-वाटिका' में सीता के प्रथम दर्शन से राम को एक अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है। वे प्रभावशाली शब्दों में सीता के सौन्दर्य का निरूपण करते हैं और शुभ शकुनों से प्रसन्न होकर वे अपने मानसिक क्षोभ को लक्ष्मण से उसी समय व्यक्त भी कर देते हैं। 'रघुवंशी होने के नाते ये अपने मन के सत्पथगामी होने पर पूर्ण विश्वास प्रगट करते हैं कि वह पर-नारी की ओर कभी भी आकृष्ट नहीं हो सकता है।'[6] अत वे लक्ष्मण के अतिरिक्त विश्वामित्र से भी अपने इस मिलन का सविस्तार वर्णन कर देते हैं[7] और इस प्रकार अपनी मानसिक शुद्धता का परिचय देते हैं।

'महावीर चरित' प्रसन्नराघव और मैथिलीकल्याण' नाटकों में राम के इस पूर्वराग का क्रमश: अधिक विस्तृत वर्णन किया गया है। महावीर-चरित' में विश्वामित्र के आश्रम में ही सीता के प्रथम दर्शन से राम के मन में उनके प्रति स्नेह का प्रादुर्भाव होता है और वे स्वगत कहते हैं—

'वीक्षितमिवममृतवर्तिरिव मे चक्षुराप्याययति।'[8]

'प्रसन्नराघव' में वे सीता को 'परस्त्री' समझ कर पहले संकुचित होते हैं फिर उन्हें 'कुमारी' जानकर वे शीघ्र प्रसन्न भी होते हैं और बड़े उत्साह से उनके रूप का वर्णन करने लगते हैं। उनके चले जाने पर वे क्षुब्ध होकर बड़ी व्यग्रता और अरयाग्रा से

१ मानस ७।५
२ अनर्घराघव ७।१४२
३ प्रतिमा ७।८ के बाद
४ बालरामायण १०।१०० के बाद
५ मानस १।१०३
६ मानस १।२३१
७ " १।२३७
८ महावीर चरित १।२८ के बाद

उनके पुनर्दर्शन की कामना भी करते हैं।[1] इस प्रकार यहाँ उनके पूर्वराग में यथार्थता एवं लौकिकता का ही प्राचुर्य है जो परिमार्जित होकर 'मानस' में आदर्श एवं अलौकिक बन गया है। 'मैथिली-कल्याण' नाटक में राम के पूर्वराग का ही वर्णन प्रमुख है। उसके पाँच अंकों के विस्तार में उसको पूर्ण चार अंक प्राप्त हो गये हैं। यहाँ केवल दर्शन ही नहीं अपितु उन दोनों के बीच चार मिलन की भी व्यवस्था है, जिसमें उन दोनों का पारस्परिक आकर्षण इतना अधिक बढ़ जाता है कि वे बिछुड़ते ही असह्य विरह की तीव्रानुभूति करने लगते हैं, जो अनेक सरस उपचारों से भी शान्त नहीं हो पाती है। यहाँ भी राम के द्वारा सीता के सौन्दर्य का सविस्तार मर्मस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत किया गया है[2] जिससे उनके दृढ़ पूर्वराग' का परिचय मिल जाता है। यहाँ उनके संकल्प विकार नेत्र और जीवन सभी कुछ सीतामय हो जाते हैं। सीता के वियोग में प्रकृति के शीतल पदार्थ उन्हें विपरीत जान पड़ते हैं। वे अपने विरहोपचार के लिए कुसुम-शय्या आदि की व्यवस्था की भी अपेक्षा करते हैं और सीता की दूती से उनका सन्देश पाकर वे उनसे मिलने के लिए संकेत-स्थल पर पहुँच भी जाते हैं।[3] इस प्रकार यहाँ पूर्वराग-भाव में ही राम के संयोगी और वियोगी रूपों का जो अतिरंजित वर्णन किया गया है, वह उनके रामत्व के अनुकूल नहीं जान पड़ता है।

(१६) संयोगी राम— मानस' में राम के संयोगी जीवन का बड़ा संयत वर्णन किया गया है जिसकी एक झलक 'वसन्त प्रसंग' में मिल जाती है[4] जब राम अपने हाथों से सीता का पुष्प शृङ्गार करते हैं। संस्कृत के ग्रन्थों में उन दोनों के संयोग का बड़ा ही उन्मुक्त और स्वच्छन्द वर्णन प्राप्त होता है। 'जानकीहरण' में 'संयोग-वर्णन'[5], हनुमन्नाटक' में जानकी-विलास'[6] तथा 'महानाटक' में 'वैदेही मुग्ध'[7] के नाम से स्वतन्त्र अध्यायों का आयोजन मिलता है। अन्य ग्रन्थों में भी इस प्रकार के चित्रण प्रचुर मात्रा में सुलभ हो जाते हैं।

सम्भवतः इन ग्रंथकारों ने 'काम' को ही गार्हस्थ्य-जीवन का केन्द्रबिन्दु मान कर उसी के परिवेश में ऐसा चित्रण कर दिया है, किन्तु काम' ही उस पवित्र जीवन का सर्वस्व नहीं होता है। उसके अतिरिक्त दाम्पत्य जीवन में वस्तुतः ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब दम्पति के सुखद आन्तरिक माधुर्य-भाव की सरल अभिव्यंजना होती है या हो सकती है। 'जो केवल दाम्पत्यरति ही में अपनी भावुकता प्रकट कर सकें—वे पूर्ण भावुक नहीं कहे जा सकते हैं। पूर्ण भावुक वे ही हैं जो जीवन की प्रत्येक स्थिति के मर्मस्पर्शी अंश का साक्षात्कार कर सकें और उसे श्रोता

---

१ प्रसन्नराघव २।८-९ ११-१७-१९-२० २२ ३०

२ मैथिलीकल्याण १।१९-२० २२

३ मैथिलीकल्याण २।७ १२,१३ १४

४ मानस ३।१

५ जानकीहरण । अष्टम सर्ग

६ हनुमन्नाटक । द्वितीय अंक

७ महानाटक । द्वितीय अंक

या पाठक के सम्मुख अपनी राम-भक्ति के द्वारा प्रगट कर सकें। हिन्दी के कवियों में इस प्रकार की सर्वाङ्गपूर्ण भावुकता हमारे गोस्वामीजी में ही है।"[1] इसी भावुकता से प्रेरित होकर गोस्वामीजी ने 'राम-वन गमन' के प्रसंग में राम के 'पति-हृदय' का स्निग्ध परिचय दिया है। यहाँ राम के द्वारा सीता के सौकुमार्य का चित्रण उनके आन्तरिक प्रेम की अभिव्यक्ति करता है—

हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू॥
रहहु भवन अस हृदयं बिचारी। चन्दबदनि दुखु कानन भारी॥२।६१

इसी प्रकार 'वनचर्या' में भी राम के दाम्पत्य प्रेम का शुद्ध चित्रण मिलता है—

"सीय लखन जेहि बिधि सुखु लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं।२।१४१
जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे॥२।१४२

'रामायण-मञ्जरी'[2], 'राघवीय'[3] उदारराघव 'चम्पूरामायण'[4] तथा प्रसन्नराघव'[5] आदि संस्कृत के कुछ ग्रन्थों में भी 'सीता प्रबोध' के अवसर पर राम के इसी आदर्श प्रेम के चित्रण का प्रयास दृष्टिगोचर होता है किन्तु 'भट्टिकाव्य'[7] 'हनुमन्नाटक'[8], 'महानाटक'[9] आदि में उपलब्ध उनकी वनचर्या में उनके 'दाम्पत्यरति' के वर्णन को अनावश्यक प्रश्रय मिल गया है जिसके लिये उन कवियों की मूल भावना ही उत्तरदायी है।

(१०) वियोगी राम—राम के दाम्पत्य-प्रेम की जितनी श्रेष्ठ अभिव्यञ्जना 'मानस' में प्राप्त उनके 'वियोगवर्णन' में मिलती है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। प्रेम का जो वेग संयोग में प्रच्छन्न रहता है वियोग में वह उतना मुखर और प्रखर हो जाता है उसमें कृत्रिमता एवं औपचारिकता स्वतः नष्ट हो जाती है। 'सीता-हरण' के शोकावेग से 'मानस' के मर्यादापुरुषोत्तम राम अत्यन्त क्षुब्ध हो जाते हैं, क्योंकि इस 'हरण' में केवल विरह की भावना नहीं है अपितु सीता के अनिश्चित दुर्भविष्य का भय और अज्ञात अनिष्ट की आशंका भी मिली हुई है। हनुमान के द्वारा अशोक वाटिका में स्थित सीता के पास पहुँचाए गए राम के सन्देश में उनके विरही हृदय का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥५।१५

संस्कृत के ग्रन्थों में राम के विरह का अतिरंजित वर्णन प्राप्त होता है

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल गो० तुलसीदास—सप्तम संस्करण, पृष्ठ ७४-६५
२ रा० मञ्जरी। अयोध्या। ८९७ ९९, ७७
३ राघवीय ३।६१, ६६ ४ उदारराघव ३।७४
५ चम्पूरामायण २।१२ ६ प्रसन्नराघव ३।६
७ भट्टिकाव्य ६।१३-२२ ८ हनुमन्नाटक ३।१, ५
९ महानाटक ४।११, २१

जिसमें उनके आदर्श स्वरूप की प्रतिष्ठा नहीं हो पाती है। 'हनुमन्नाटक'[1] तथा 'महानाटक'[2] में सीता के विरह में राम को इतना दुर्बल दिखलाया गया है कि उनकी मुद्रिका तक कंकण का स्थान लेने लगी है। 'भट्टिकाव्य'[3] 'रामायण मञ्जरी' के राम 'मानस' के राम के समान ही पशु-पक्षियों से सीता के सम्बन्ध में जिज्ञासा करते हैं। 'भट्टिकाव्य' 'हनुमन्नाटक' और 'महानाटक' के राम इस अवसर पर अपने विलास और दाम्पत्यरति आदि का स्मरण करके विलाप करते हैं।[4] 'रामायण-मञ्जरी'[5], 'हनुमन्नाटक' और 'महानाटक'[6] में वे सीता के अंगप्रत्यंगों का सौन्दर्य-वर्णन करते हुये उनके अकाल विनाश की कल्पना से बड़े ...न होते हैं।[7] 'महावीर चरित' में उनको 'वंश-शोकाग्नि' कहा गया है।[8] 'अनर्घराघव' में जड़ता, वाल्मीकि एवं स्मृतिभ्रम आदि लक्षणों के फलस्वरूप उनको साकार 'करुणरस' बतलाया गया है।[9] 'उन्मत्तराघव' का निर्माण ही मानो राम के इसी भावुक पतिहृदय की व्यञ्जना के लिए हुआ है। वहाँ उनके उन्माद प्रलाप और विलाप का अति विस्तृत वर्णन मिलता है।[10] इस प्रकार इन सभी ग्रन्थों में राम के विरही हृदय का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है।

(१८) राम का मित्र-रूप—'मानस' में सुग्रीव के सम्बन्ध से राम के मित्र-प्रेम का आदर्श निरूपण किया गया है। सुग्रीव की कष्टगाथा सुन कर वे उसके भाई किन्तु शत्रु बालि के वध की तुरन्त प्रतिज्ञा करते हैं।[11] सुमित्र और कुमित्र के लक्षणों को विस्तार से बतलाते हुये वे उसको अपनी पूरी-पूरी सहायता का विश्वास दिलाते हैं—

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें ॥४।७

और अपने इन्हीं वचनों का निर्वाह करते हुए वे 'बालिवध' के पश्चात् सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा भी बना देते हैं। राज-सुख में मग्न सुग्रीव के प्रमाद से वे क्षुब्ध भी होते हैं किन्तु उसके क्षमा माँग लेने पर वे उसे भरत के समान प्रिय भाई' कह कर अपने मित्र हृदय का स्निग्ध परिचय देते हैं।[12] अयोध्या में गुरु-वसिष्ठ से सुग्रीव का परिचय कराते हुए राम उसको 'समरसागर का बेड़ा' और 'भरत से भी अधिक प्रिय' कह कर उसके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते

---

१ हनुमन्नाटक ६।१६
२ महानाटक ३।१०
३ भट्टिकाव्य ६।२६
४ रा० मञ्जरी। अरण्य ।६७४
५ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २७२
६ ” ” ।१००६-१५
७ हनुमन्नाटक ५।३, ...
८ महानाटक ५।१८
९ महावीर चरित, ५।२७
१० अनर्घराघव ५।२२
११ उन्मत्तराघव। १४-१६, २०-२२, ३५-३७ ४१-४३
११ मानस ४।११, १८, २१
१२ मानस ४।१६

है और विदा के समय भरत के हाथों से बने हुए वस्त्रों को उसे स्वयं पहना कर अपने अनुपम मित्र प्रेम का उत्कृष्ट निरूपण भी करते हैं।[1]

संस्कृत-साहित्य में भी राम के मित्र प्रेम का आदर्श चित्रण मिलता है। 'रामायण-मञ्जरी' के सुग्रीव राम की मित्रता के लिए आर्या स्थिरा, सुशील-शालिनी और सर्वस्वत्यागिनी आदि विशेषणों का प्रयोग करता है।[2] 'राघवीय'[3] और 'अनर्घराघव'[4] आदि के राम तो सुग्रीव को अपना 'भाई' ही मान लेते हैं क्योंकि वे सूर्यवंशी हैं और वह सूर्य-पुत्र है। उनकी यह सम्बन्ध-कल्पना उनके मित्र प्रेम की पराकाष्ठा है, जिससे आश्वस्त होकर 'अनर्घराघव' का सुग्रीव उनसे 'मित्रपर्याय दास्य' की कामना करता है[5] और 'अभिषेक' का सुग्रीव राम की मित्रता से वानरराज्य तथा देवराज्य को भी सुलभ समझता है।[6] 'अद्भुत-दर्पण' में ही सुग्रीव के प्रति राम के अद्वितीय सौहार्द का परिचय मिलता है, जब वे उसके कटे सिर को देख कर विलाप करते हुये यहाँ तक कहते हैं कि अब भले ही त्रिभुवन (रससाथ) राक्षसों को मारा जाय किन्तु सुग्रीव जैसा मित्र तो मिल ही नहीं सकता है।[7]

सुग्रीव के स्वागत और विदाई के अवसर पर भी संस्कृत-साहित्य में राम के सौहार्दातिशय की सरस अभिव्यक्ति मिलती है। अयोध्या पहुँचने पर राम वहाँ सुग्रीव का सबसे परिचय कराते हुए उसे सुग्रीव-बन्धु, दुःखसागर-सेतु और सीता-देवर' तक कह देते हैं।[8] 'रघुवंश' के राम उसकी विदाई के समय सीता के द्वारा लाई गई पूजा सामग्री से उसे सम्मानित करते हैं[9] और इस प्रकार अपने आन्तरिक प्रेम का परिचय देते हैं।

(११) राम का शत्रु-रूप—'मानस' के राम जिस प्रकार आदर्श मित्र हैं उसी प्रकार आदर्श शत्रु भी हैं। उनके जन्म का प्रमुख उद्देश्य ही धर्म की हानि करने वाले असुरों एवं अधम अभिमानी व्यक्तियों का विनाश करना है। असुरों में वे क्रम से ताटका, सुबाहु, विराध मारीच खर, दूषण, कबन्ध कुम्भकर्ण और रावण आदि का वध करके उन्हें निजपद भी दे देते हैं और अधम अभिमानी व्यक्तियों में 'सुन्दरकाण्ड' में समुद्र को, वे पहले ही शरण माँग लेने पर उसे क्षमा कर देते हैं 'बालकाण्ड' में परशुराम को वे अपने ईश्वरत्व का परिचय देकर शान्त करते हैं, 'अरण्यकाण्ड' में जयन्त को वे शरण में आने पर एक नयन करके छोड़ देते हैं और 'किष्किन्धाकाण्ड' में बालि को आहत करके भी उसके क्षमा माँग लेने पर उसके प्राण

---

१ मानस ७।८ १९, २०
२ रा० मंजरी। किष्किन्धा। २१-२३
३ राघवीय १०।१९
४ अनर्घराघव ५।२६ के बाद
५ अनर्घराघव ५।२१ के बाद
६ अभिषेक १।४ के बाद
७ अद्भुत दर्पण ९।१७, २०
८ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २७१
९ रघुवंश १५।११

धारण करने का आग्रह करते हैं और अन्त में उसकी इच्छा पर ही उसे 'निर्वासन' भेज देते हैं।

राम वस्तुतः इतने आदर्श शत्रु हैं कि वे क्रोधी परशुराम के समक्ष विप्रवंश की प्रभुता से सम्बन्धित विनम्रता भी स्पष्ट कर देते हैं।[1] खर-दूषण के दूतों से भी अपने आदर्श शत्रु धर्म की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि वे भगोड़े[2] शत्रु पर आक्रमण नहीं करते हैं बलवान शत्रु से डरते भी नहीं हैं तथा एक बार काल तक से भी लड़ने का साहस रखते हैं।[3] रावण के दर्प प्रकट करने पर वे उससे 'पाटल-रसाल-पनस'[4] का उल्लेख करके बकवास बन्द करने और आवश्यक वीरता दिखलाने का आग्रह करते हैं। यह राम का ही आदर्श शत्रु-हृदय है जिससे प्रेरित होकर वे बालि तथा रावण के वध के पश्चात उनकी विधिवत मृतक क्रिया के लिए उनके भाइयों से आग्रह करते हैं। यही नहीं अपने द्वारा मारे गए सभी व्यक्तियों को वे 'सालोक्य' अथवा सायुज्य' मुक्ति भी प्रदान करते हैं। इसमें उनकी ईश्वरता के साथ-साथ उनकी रागद्वेष रहित आदर्श शत्रुता की भी कोमल व्यंजना है।

संस्कृत साहित्य में भी राम के इसी आदर्श शत्रु-रूप की अभिव्यक्ति अनेक प्रकार से की गई है। ताड़का वध के प्रसंग में वे शत्रु के स्त्री होने के कारण ही उस पर आक्रमण करने से हिचकिचाते हैं जिसका उल्लेख 'रामायण-मंजरी' 'बाल-रामायण' 'महावीर-चरित' और 'अनर्घराघव' आदि अनेक ग्रंथों में मिलता है।[5] अपने शत्रुओं के प्रति सहज सौहार्द के कारण ही राम मारीच को समझाते हैं और उसे मुनियों के साथ हिंसा और अत्याचार का व्यवहार करने से रोकते हैं किन्तु उसके दुराग्रह दिखलाने पर वे उसी घृणा के साथ उसका वध भी कर देते हैं।[6] संस्कृत साहित्य में 'परशुराम-विवाद प्रसंग' में राम का वह आदर्श रूप नहीं दिखलाई पड़ता है क्योंकि एक तो वे उनसे—विवश होकर ही सही—विधिवत युद्ध करते हैं और उनके परीक्षा-मात्र के लिए दिए गए वैष्णव धनुष का अनुचित उपयोग करके उनके 'पुण्यप्राप्त लोक' को नष्ट भी कर देते हैं।[7]

'मानस' में बालि विराध और कबन्ध के प्रसंग को लेकर राम की आदर्श शत्रुता के विषय में किसी को यह सन्देह हो सकता है कि उनके वध के लिए राम के पास सम्भवतः कोई आधार नहीं था किन्तु यहाँ यह स्मरणीय है कि बालि, राम के मित्र सुग्रीव का शत्रु है। अपना शत्रु तो एक बार क्षम्य हो सकता है, किन्तु मित्र का शत्रु पुरुष वध-योग्य होता है अन्यथा मित्र की दृष्टि में वह सम्मान नहीं पा पाता है। विराध और कबन्ध के विषय में उनका अनुरोध ही उनके वध का एक मात्र

१ मानस १।२८३–८४
२ मानस ३।१९
३ " ६।१०।११
४ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ ११४
५ भट्टिकाव्य २।११–१६
६ " " १४२–१४८
७ डा० माता प्रसाद गुप्त—तुलसीदास, द्वितीय संस्करण पृष्ठ १७७

प्रमुख कारण है, क्योंकि उसी के विनाश के लिए राम आरम्भ से ही कृतसंकल्प हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृत के कुछ नाटकों में जहाँ बालि को रावण-मित्र और रामवधोत्सुक विराध को सीताहरण-कर्ता तथा कबन्ध को राम पर आक्रमणकर्ता चित्रित किया गया है उनके साथ राम की शत्रुता का पर्याप्त आधार भी मिल जाता है। 'महावीर चरित' में रावण को शत्रु होने के कारण वध्य मानते हुए भी राम, उसे जगद्विजयी, महाप्रवीर अतिवीर्य अप्रमेयबल और असाधारण विद्वान् भी कहते हैं तथा उसकी 'कार्तस्मूर्ति' को वे 'मैत्रज्य सर्व गुणा' कह कर दाम जाते हैं।[1] 'राघवीय' के राम युद्धभूमि में रावण को आहत और रथ-सारथि-हीन पाकर भी उसका वध नहीं करते हैं प्रत्युत उसे स्वस्थ और समर्थ होने के लिए दूसरे रथ में लंका भेज देते हैं।[2] 'अद्भुतदर्पण' में रावण कुम्भकर्ण और मेघनाद तीनों को एक साथ असावधान देखकर जब लक्ष्मण उन पर प्रहार करना चाहते हैं तब राम अनौचित्य के कारण ही उन्हें तुरन्त रोक देते हैं।[3] इसीलिये वहाँ 'रामस्तु राजा महापुरुषः मामनुजो यथावल्यत्याहितम्' कहकर राम की आदर्श शत्रुता की सत्य प्रशंसा की गई है।[4]

(१०) राम का राजा-रूप— 'मानस' में राजा राम के सुराज्य का बड़े विस्तार के साथ आकर्षक वर्णन किया गया है। 'रामराज्य' अपनी उन विशेषताओं के कारण आज भी हमारा काम्य आदर्श है। राम के इस आदर्श रूप का बखान उनकी एक सभा में मिलता है जिसमें वे पुरजनों के समक्ष अपना सौहार्द प्रकट करते हुए कहते हैं —

नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥७।४३

इसके अतिरिक्त 'रामराज्य' के आकर्षक वर्णन में भी राम की सुशासन-व्यवस्था का पुष्ट प्रमाण मिलता है जो उनके आदर्श राजा-रूप का स्पष्ट परिचायक है। संस्कृत के सभी ग्रन्थों में विशेषकर 'रामायण-मञ्जरी' 'भागवत', 'ब्रह्मपुराण' तथा 'पद्म पुराण' आदि में रामराज्य के वैभव का अति विस्तार से वर्णन किया गया है।[5] सुख और समृद्धि के सभी स्वप्नों को साकार बनाने के लिये 'रामराज्य' के अतिरिक्त और कहीं अवकाश भी तो नहीं है इसीलिये राम-कथा के प्रणेताओं ने 'सम्पन्नता के अपने स्वप्नादर्श को वहाँ भी भर कर प्रतिष्ठापित किया है। तुलसी ने इस दिशा में बहु-संख्य वस्तु के अनुरूप ऐश्वर्य का उल्लेख करके राम के आदर्श राजा रूप की सबल और उत्तम अभिव्यक्ति की है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राम अपने सभी सम्बन्धों—पुत्र शिष्य भ्राता पति मित्र शत्रु और राजा आदि—में पूर्णतया आदर्श हैं। केवल सिद्धान्तों में ही

---

१ महावीर चरित १।३१-३३   २ राघवीय १८।४०-४३

३ अद्भुतदर्पण ९।८ के बाद १२।११।२६   ४ अद्भुत-दर्पण ९।६ के बाद

५ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २१६,

नहीं, अपितु व्यवहारों में भी वे अपने इस महान् आदर्श का साधिकार निर्वाह क-
है। यही तो राम का 'रामत्व' है। इन सम्बन्धों की सफल अभिव्यक्ति का सम्पूर्ण
उत्तरदायित्व राम के व्यक्तिगत गुणों पर है। उनकी वीरता गम्भीरता दृढ़ता,
उदारता दयालुता, समता दक्षता नैतिकता विनीतता लोकप्रियता और शरणा-
गतवत्सलता अद्वितीय तथा अलौकिक है। ये सभी गुण उनमें इतने अन्तर्ग्रथित हैं
कि योग्य अवसर पाने पर एक के साथ ही अनेक स्वतः प्रवृत्त हो जाते हैं। इन गुणों
का पृथक् विवेचन विस्तारभय से यहाँ अपेक्षित नहीं है, अतः केवल राम की उदारता
और शरणागतवत्सलता का ही यहाँ निरूपण किया जा रहा है।

(२१) राम की उदारता—राम का उदार हृदय वस्तुतः बड़ा क्षमाशील
है। उनके सामने कोई भी अपराधी अपने अपराध को स्वीकार करके जब उनसे
क्षमा माँग लेता है तब वे अपनी विशाल हृदयता का शीघ्र ही परिचय देते हैं।
परशुराम जयन्त, सुग्रीव और समुद्र ऐसे ही अपराधी हैं जो अज्ञान एवं अभिमान
के कारण प्रमादवश राम की अवहेलना कर बैठते हैं किन्तु अन्त में निराश होकर
वे उनकी शरण में आ जाते हैं और उनसे क्षमा प्राप्त करते हैं।

संस्कृत के ग्रन्थों में राम की उदारता के इस आदर्श रूप के दर्शन नहीं होते
है। वहाँ परशुराम के साथ उनका वाक्कलह और नैपथ्य-युद्ध तक होता है और वे
उनकी स्वर्गगति को समाप्त भी कर देते हैं।[1] जयन्त की 'एकाक्षता' का उल्लेख
भी वहाँ सर्वत्र दण्डस्वरूप ही है[2] क्षमा-स्वरूप नहीं। सुग्रीव के प्रति क्षमा का
संकेत समान होते हुए भी संस्कृत-ग्रन्थों में 'मानस' के समान 'भ्रातृत्व' की अभि
व्यक्ति कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती है।[3] 'समुद्र प्रसंग' में भी संस्कृत के ग्रन्थों में
सर्वत्र राम के बाण-प्रयोग का वर्णन मिलता है जबकि 'मानस' में केवल आतंक
मात्र ही का संकेत है। इन प्रसंगों के अतिरिक्त विभीषण के पूर्वोल्लिखित प्रसंग में
राम की उदारता का सर्वश्रेष्ठ परिचय मिलता है—

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ। ५।४९

इस वर्णन में तुलसी 'हनुमन्नाटक' से प्रभावित अवश्य[5] हैं किन्तु 'सकुचि' शब्द के
प्रयोग से उन्होंने यहाँ राम की अद्वितीय उदारता का संकेत कर दिया है। इस प्रकार
राम की उदारता की जो सर्वोत्तम अभिव्यंजना 'मानस' में प्राप्त होती है वह
अन्यत्र दुर्लभ है।

(२२) राम की शरणागत-वत्सलता—राम के इस गुण में उनकी अलौ
किकता और लौकिकता दोनों का समावेश है। अलौकिक दृष्टि से मोक्षलाभ के लिये

१ प्रस्तुत विवरण पृष्ठ ,१४५ १४६
२ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १७८
३ मानस ५।२१
४ " " २१८–२१९
५ हनुमन्नाटक ७।१४

वस्तुतः 'राम' की शरण में आना 'मानस' के प्रत्येक पात्र—भक्त या अभक्त की अन्तिम आकांक्षा है। लौकिक दृष्टि से 'शरण' का सम्बन्ध अधिकतर 'राजनैतिक सुरक्षा' से होता है, जिसमें शरण्य के समक्ष या तो स्वयं उसका शत्रु विवश होकर के 'त्राहि त्राहि' करता है अथवा उसके शत्रु से त्रस्त कोई अन्य व्यक्ति अपनी सुरक्षा की याचना करता है। 'मानस' के जयन्त और विभीषण इसके ठीक उदाहरण हैं। अपराधी जयन्त जब त्रिलोक में कहीं भी त्राण न पाकर राम के समक्ष गिड़गिड़ाता है तब वे उसे शरण दे देते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस प्रसंग में जयन्त को पूर्ण समाधान देने का वर्णन केवल पद्मपुराण[1] में ही मिलता है, अन्यत्र सभी ग्रंथों में उसके 'नेत्रभंग' का समान रूप से संकेत किया गया है।

राम की 'शरणागतवत्सलता' का सर्वश्रेष्ठ निरूपण 'विभीषण प्रसंग' में मिलता है। राम उसे केवल अभयदान ही नहीं देते हैं, अपितु उसको लंका का राज्य दिलाने की प्रतिज्ञा भी करते हैं। युद्धभूमि में रावण के द्वारा विभीषण पर शक्ति प्रहार किए जाने पर वे उसे पीछे ढकेल कर स्वयं आगे बढ़ जाते हैं और उस 'शक्ति' को अपने वक्ष पर झेलकर अपने उस महान् गुण का व्यावहारिक परिचय भी देते हैं।[2]

यों सिद्धान्त रूप में अपनी शरणागतवत्सलता का सविस्तार वर्णन करते हुए राम स्वयं कहते हैं—

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि ॥ ५।४३
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥ ५।४४

तुलसी ने स्वभावतः इस प्रसंग में विभीषण की भौतिक विरक्ति और राम से उसकी भक्ति-याचना का संकेत कर दिया है। संस्कृत के ग्रंथों में विभीषण का यह भक्त रूप कहीं भी प्राप्त नहीं होता है।

इस प्रकार 'मानस' के राम के चरित्र-चित्रण से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने उनके विष्ण्वादिक सभी रूपों का निरूपण करते हुए भी उनके ईश्वरत्व के प्रतिपादन की ओर अधिक ध्यान दिया है, अतः राम के निर्गुण ब्रह्म, सगुण ब्रह्म और विष्णु रूप की समन्वित झाँकी के दर्शन 'मानस' में प्रायः सर्वत्र हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी ने राम के 'नर-रूप' का जो चित्रण यहाँ किया है वह काव्यो-चित की दृष्टि से पूर्णतया उपयुक्त होने के साथ-साथ उनके विशाल हृदय की महतो-महीयान् कल्पना का साकार रूप भी है। वस्तुतः उन्होंने राम को सर्वथा महान् और अतिमहान् ही चित्रित करने का सफल प्रयास किया है इसीलिए यदि उन्हें उनके चरित्र में कहीं किसी दोष की स्वल्प सी भी संभावना प्रतीत हुई है तो उस पर उन्होंने शीघ्र ही उनकी 'नर-लीला' का झिलमिला आवरण अवश्य डाल दिया है,

१ पद्मपुराण। उत्तर। २४२।१९६–२११   २ मानस ६।९३–९१
३ मानस १।२०४,१२४,३।१८,६।११

क्योंकि उनके राम केवल नर ही नहीं अपितु साक्षात् नारायण अथवा परब्रह्म हैं। आदि-कवि वाल्मीकि के राम के साथ यदि तुलसी के राम की तुलना की जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वाल्मीकि ने राम के नरत्व और 'नारायणत्व' इन दो पक्षों में से नरत्व की पूर्णता प्रदर्शित करने के लिए उनके चरित्र का गान किया है। पर गोस्वामी जी ने राम का 'नारायणत्व' लिया है।—इससे कहीं-कहीं उन्होंने उनके नरत्व-सूचक कर्मों को दृष्टि के सामने से हटा दिया है—पर साथ ही काव्यत्व की उन्होंने पूरी रक्षा की है अस्वाभाविकता नहीं आने दी है।[1] 'वास्तव में राम का चरित्र इतना महान् है कि उसके सम्बन्ध में अधिकाधिक कहना भी सर्दव अपर्याप्त ही रहेगा। मानस के वाल्मीकि भी इसका समर्थन करते हैं:—

'राम सरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥२।१२६॥

(२३) सीता चरित—सीता 'मानस' की नायिका हैं। राम के समान ही उनका चरित्र भी अलौकिक एवं लौकिक भेद से द्विविध निरूपित हुआ है। अलौकिक रूप में वे ब्रह्म राम की "परमशक्ति"[2] मायापति राम की माया[3] और विष्णु राम की 'लक्ष्मी'[4] हैं। उद्भव-स्थिति संहारकारिणी' और सर्वश्रेयस्करी होने के साथ साथ वे 'रामवल्लभा' भी हैं।[5] इसी अलौकिकता के कारण राम के साथ उनको 'गिरा और अर्थ एवं 'जल और वीचि के समान अभिन्न' कहा गया है। इस अलौकिक रूप के अतिरिक्त अपने लौकिक रूप में वे एक 'आदर्श पत्नी और 'कुशल सद्गृहिणी' भी हैं।

(२४) आदर्श-पत्नी—सीता के इस रूप में उनके पूर्वराग संयोग और वियोग की सभी स्थितियों की सरस अभिव्यंजना हुई है। 'पुष्प-वाटिका' में राम को देखकर वे उन्हें निर्निमेष समझती हैं और पिता के पण' के स्मरण से क्षुब्ध होकर वे 'शिवधनुष' को ही लघुतर बना देने के लिए देवताओं से प्रार्थना करती है।[6] उनकी इस प्रार्थना में उनके आदर्श पूर्वराग के मधुर दर्शन किए जा सकते हैं। संस्कृत के ग्रन्थों में 'महावीर चरित' में वे राम को देखकर स्वगत ही उन्हें 'सौम्य-दर्शन एवं लोचनानन्द'[7] कहती हैं। वहाँ विश्वामित्र और कुशध्वज की उपस्थिति के कारण उनके इस 'पूर्वराग का अधिक विकास नहीं हो सका है। प्रसन्नराघव की सीता राम के प्रति आकृष्ट होकर उनके सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन भी करती हैं।[8]

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास—सप्तम सं० पृ० ७१—७४
२ मानस १।१८७
३ मानस १।१०६ १०७ २।१२६ २५२
४ ,, १।१४८,१५२
५ ,, १। श्लोक ५
६ ,, १।१८
७ ,, १।२३२
८ ,, १।२३७—२३८
९ महावीर चरित १।१८ के बाद २८ के बाद
१० प्रसन्नराघव २।२१ २५

मैथिली कल्याण की सीता तो राम गुण-श्रवण के कारण 'पूर्वासक्त' हैं अतः प्रथम दर्शन में ही उनकी वह आसक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है।[1] द्वितीय दर्शन में उनके प्रथम उन्माद का संकेत भी यहां मिलता है। यहां वे विरह दशा के कारण मरणासन्न तक हो जाती हैं और दूतों को भेजकर राम को 'संकेतस्थल' पर बुलवा भी लेती हैं।[2] 'मानस' के वर्णन में पर्याप्त विस्तार होने पर भी कामुकता का कहीं लेशमात्र भी आभास नहीं है प्रत्युत उसमें एक दिव्य आन्तरिक स्नेह की ही अभिव्यक्ति है जो संस्कृत साहित्य में कहीं भी सुलभ नहीं है।

संयोग शृ गार के वर्णन में भी 'मानसकार' ने बड़ी दक्षता एवं सतर्कता का परिचय दिया है, जब कि जानकीहरण, हनुमन्नाटक और महानाटक आदि में राम और सीता के 'दाम्पत्य-विलास' के वर्णन का उल्लेख अभी किया जा चुका है।[4] इससे उन कवियों की भावना एवं परम्परा का परिचय मिल जाता है। 'मानस' के वनपर्व वर्णन में राम और सीता के संयोग-सुखों का जो उल्लेख किया गया है उसमें उनके 'मुनिव्रत' की ही प्रधानता है[3] जिसका चित्रण संस्कृत-ग्रन्थों में कहीं नहीं मिलता है।[5] मानस में सीता की 'वन-गमन' प्रार्थना में उनकी 'पतिसेवा परायणता' का वर्णन किया गया है किन्तु संस्कृत-साहित्य में उनकी कटूक्तियों और धमकियों का भी उल्लेख मिलता है।[7] 'मानस' के मारीच प्रसंग में सीता के 'मर्म वचनों'[8] का कोई विस्तार न होने से उनके उदात्त चरित्र को कोई विशेष क्षति नहीं पहुँचती है जबकि संस्कृत के ग्रन्थों में उनके विस्तार से सीता के आदर्श चित्रण में बाधा उपस्थित होती है।

सीता के 'वियोगिनी रूप'[6] का जहाँ तक सम्बन्ध है 'मानस' में उसका सर्वश्रेष्ठ चित्रण हुआ है यद्यपि वह 'प्रसन्नराघव'[9] से बहुत कुछ प्रभावित है। रामायण मञ्जरी[10] महाभारत[11] और 'आश्चर्यचूडामणि'[12] में भी उसके सरस दर्शन प्राप्त हो जाते हैं। 'सीता-शुद्धि' प्रसंग में भी 'मानस'[13] में और संस्कृत-साहित्य[14] में वर्णित सीता के आत्म-विश्वास में उनकी अद्वितीय 'प्रेमासक्ति' दृष्टिगोचर होती है।

(२५) कुशल सद्गृहिणी— मानस की सीता की कुशलता और कर्तव्य परायणता अत्यन्त प्रशंसनीय है। गंगा-पार करते ही उतराई के रूप में गुह को

---

१ मैथिलीकल्याण १।२९ २६,२।२८ के बाद ३।७ १६,३४,३७,३६ ४२
२ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २०४
३ मानस २।११ १२१,२।१६ १४१
४ " " २०५
५ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १६६ १६७
६ मानस ३।२८
७ " " १८८
८ " ३।१२
९ प्रसन्नराघव ६।३१ के बाद–३५
१० रा० मञ्जरी। सुन्दर।२६८–२९६
११ महाभारत। वन। २८०।५०–५१
१२ आश्चर्यचूडामणि ६।५ के बाद
१३ मानस ६।१०८
१४ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २१६

"मणि-मुद्रिका"[1] देते में ग्रामीण स्त्रियों के समक्ष राम का परिचय देते समय लक्ष्मण का प्रथम उल्लेख करने में[2] तथा चित्रकूट प्रवास में सूर्यास्त के पश्चात् अपने माता पिता के भी पास अपने ठहरने के अनौचित्य के संकेत करने में[3] उनकी व्यावहारिक कुशलता दर्शनीय है। संस्कृत ग्रन्थों में प्रथम और तृतीय प्रसंगों का संकेत कहीं नहीं है और द्वितीय प्रसंग में केवल 'हनुमन्नाटक'[4] में राम के ही परिचय देने का उल्लेख मिलता है जिससे उनके इस कौशल के दर्शन वहाँ नहीं हो पाते हैं।

जहाँ तक सीता की कर्तव्यपरायणता का सम्बन्ध है, वे अपने व्यक्तिगत धर्मों के पालन में पूर्णतया दत्तचित्त हैं। राज्याभिषेक[5] के पश्चात् महारानी होते हुए भी और दासदासियों के रहने पर भी वे अपने ही हाथों से समस्त गृहपरिचर्या करती हैं। वहाँ पतिसेवा और सास-सेवा के लिए उनकी निरभिमान तत्परता में उनकी कर्मठता का स्पष्ट परिचय मिलता है[6]। संस्कृत के ग्रंथों में सीता के इस रूप का चित्रण कहीं नहीं है। वस्तुतः यह तुलसी की अपनी मौलिक और व्यावहारिक सोचना का परिणाम है जो उनकी सूक्ष्म-तत्व-दर्शिता और मनोवैज्ञानिकता का सफल निर्देशन करता है।

सीता के चरित्र-चित्रण में उनके अलौकिक और लौकिक दोनों रूपों का सफल समन्वय हुआ है। उनका ऋद्धिसिद्धि-सत्कार[7] सासों की सेवा के लिए उनका अनेक वेश-निर्माण[8] और उनका प्रतिबिम्ब-रूप[9] उनकी अलौकिकता का ही द्योतक है फिर भी तुलसी ने उनके पत्नी और गृहिणी रूप का जो मनोरम और आकर्षक चित्रण किया है उसमें 'साधारणीकरण' का अद्वितीय चमत्कार है।

(२६) रावण-चरित्र—रावण 'मानस' का प्रतिनायक है। काव्यशास्त्रों में प्रतिनायक को लुब्ध धीरोद्धत, पापी और व्यसनी आदि कहा गया है[1] किन्तु जिस प्रकार वाल्मीकि सजल राम के समस्त गुणवर्णन में असमर्थ हैं उसी प्रकार वे रावण का भी पूर्ण चित्र उपस्थित नहीं कर पाते हैं। वस्तुतः नायक में जितने सद्गुणों की कल्पना की जा सकती है प्रतिनायक में उतने से भी अधिक दुर्गुणों की स्थिति मानी जाती है। प्रतिनायक की सबलता और शक्तिमत्ता उसके विजेता नायक का ही यश बढ़ाती है। रावण अपनी तपस्या एवं साधना के बल पर ही महान शक्ति प्राप्त करता है जिसके कारण उसे अहंकार होना बहुत स्वाभाविक है। अहंकार से ही काम क्रोध लोभ और मोह का विकास होता है। अहंकारी के लिए संसार की कोई भी वस्तु इष्ट होने पर जिस प्रकार असम्य नहीं होती उसी प्रकार अनिष्ट होने पर प्रतिनायक भी नहीं रहती,

---

१ मानस २।१०२ २ मानस २।११७
३ " २।२८७ ४ हनुमन्नाटक ३।११
५ " ७।२४ ६ मानस ११।०६–१०७
७ " २।२५२ ८ " ३।२४
९ दशरूपक २।९

इसीलिये कुबेर से पुष्पक-यान छीन लेना, देव, यक्ष आदि की कुमारियों को बलपूर्वक हरण कर लेना रावण के लिये उतना ही सुकर है, जितना यज्ञ, गो, ब्राह्मणादि का विनाश करना।[1] वस्तुतः रावण का समस्त चरित्र, शक्ति और उससे उत्पन्न अहंकार काम और क्रोध आदि दुर्गुणों का ही परिणाम है।

(२७) रावण की शक्ति—'मानस' का रावण बड़ा शक्तिशाली है। पुष्पक के हरण, कैलास के उत्तोलन, रवि, शशि, पवन, वरुण कुबेर आदि देवताओं के वशीकरण की घटनाएं उसकी शक्ति की परिचायक हैं[2] जिसका उल्लेख वह राम[3] अंगद[4] और मन्दोदरी[5] आदि के समक्ष बारम्बार करता है। संस्कृत-साहित्य में 'महावीरचरित'[6], 'राघवीय'[7], 'प्रसन्नराघव'[8] अनर्घराघव[9] 'बालरामायण'[10] हनुमन्नाटक'[11] आदि सभी ग्रन्थों में उसके उपर्युक्त पराक्रमों का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

(२८) रावण का अहंकार—अपनी अप्रतिम शक्ति के कारण ही रावण अहंकारग्रस्त हो जाता है। शूर्पणखा से उसका विरूपण और राम का शौर्य सुनकर उसका 'अहं' सर्वप्रथम क्षुब्ध होता है और वह प्रतिकार के लिए ही 'सीता हरण' की योजना निश्चित कर लेता है। मारीच के समझाने पर वह अहंकारवश ही उस पर क्रुद्ध होकर उसे 'मायामृग' बनने को बाध्य करता है।[12] 'सीताहरण' की प्रथम प्रतिक्रिया 'लंकादाह' से यद्यपि सभी राक्षसों में भय का संचार होता है, तो भी रावण पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, जिसका प्रमाण मन्दोदरी विभीषण माल्यवान और शुक के साथ सम्पन्न उसके संवाद में मिल जाता है।[13] सेतुबन्ध के पश्चात् भी मन्दोदरी माल्यवान प्रहस्त और कुम्भकर्ण जैसे आत्मीयजनों के सदुपदेशों पर जब वह ध्यान नहीं देता है[14] तो रामदूत अंगद की बात अनसुनी कर देना उसके लिये कोई बड़ी बात नहीं है।[15]

संस्कृत-साहित्य में रावण के इसी अहंकार का अनेक प्रसंगों में वर्णन किया गया है। 'सीता-स्वयंवर' प्रसंग में 'प्रसन्नराघव'[16] और 'बालरामायण'[17] आदि नाटकों में वह अपने अहंकार के कारण ही 'धनुर्भंग की शर्त को अपमान समझता है

---

१ मानस १।१७६–१८१
२ मानस १।१७८–१८२
३ " ६।१०
४ " ६।२२–२८
५ " ३।१७ ६।८
६ महावीरचरित ७।१०–११,२१२
७ राघवीय १।११५–१४
८ प्रसन्नराघव १।४८,५० ५३,५८
९ अनर्घराघव ३।१८,४४,४६
१० बालरामायण २।४४,५१
११ हनुमन्नाटक ११।६,३३,३५,४४,५५,५१
१२ मानस ३।२१–२१
१३ मानस ५।३६,३८–४०,४४–४६
१४ मानस ६।६–९,१४–१४,१६
१७ ४८–४६
१५ मानस ६।२०–३५
१६ प्रसन्नराघव १।१२
१७ बालरामायण ३।११

और बलप्रयोग से ही सीता को प्राप्त करना चाहता है। 'मानस' में 'सीताहरण' के प्रसंग में रावण के द्वारा सीता को 'राजनीति' 'भय' और 'प्रीति'[1] दिखलाने का संकेत मात्र किया गया है किन्तु संस्कृत साहित्य में उसे बड़ा विस्तार मिला है। 'जानकी-हरण' में रावण के द्वारा ऐरावत के दाँत उखाड़ने, लोकपालों को जीतने, सुमेरु से रत्नहरण करने, उर्वशी तिलोत्तमा रम्भादि अप्सराओं को बन्दी बनाने[2]; 'रामायण मञ्जरी' में सोने की लंका बनाने, पुष्पक छीनने, सूर्य आदि को वश में करने, स्वर्ग में पाताल और पाताल में स्वर्ग करने की अपनी क्षमता के वर्णन में[3], 'राघवीय' में कैलाश को उठाने, कल्पवृक्ष छीनने तथा ऋषियों को बन्दी बनाने[4] और 'दशावतारचरित' में दिग्विजय करने तथा विश्वेश्वर होने की घोषणा करने में[5] उसके अहंकार की ही प्रधानता है।

(२९) रावण का काम—तुलसी ने सीता के प्रति पूज्य भाव होने से उनके सम्बन्ध में रावण की काम चेष्टाओं का वर्णन बिल्कुल नहीं किया है, प्रत्युत उसके द्वारा उनके हरण के समय उनके चरणों की मन ही मन वन्दना[6] करने का संकेत कर दिया है। अशोक-वाटिका में भी उसके द्वारा उनसे केवल एक 'कृपादृष्टि'[7] की ही याचना का उल्लेख है किन्तु 'प्रसन्नराघव'[8] और 'बाल-रामायण'[9] का रावण सीता के स्वयंवर में ही उनके प्रथम दर्शन करने पर कामोन्मत्त होकर उनके रूप-सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन करने लगता है। इसी प्रकार 'आश्चर्यचूड़ामणि'[10], 'जानकी-हरण'[11], 'राघवीय'[12] आदि ग्रन्थों में पञ्चवटी में सीता के प्रथम साक्षात्कार पर रावण की कामोक्तियों का सविस्तार उल्लेख किया गया है। 'रामायण-मंजरी'[13], 'रघुवीर-चरित'[14], 'महाभारत'[15] आदि में अशोक-वाटिका में भी रावण के द्वारा सीता से अत्यन्त कामपूर्ण अनुनय करने का संकेत मिलता है। इन प्रसंगों के अतिरिक्त 'महावीर-चरित'[16], 'अनर्घराघव'[17], 'महानाटक'[18], 'हनुमन्नाटक'[19]

---

१ मानस ३।२८ २ जानकी हरण १०।८१–८८
३ रा० मञ्जरी । अरण्य । ८००–८०४, ८११–८२२, ८४१
४ राघवीय ६।७०–७१ ५ दशावतारचरित ७।१४३
६ मानस ३।२८ ७ मानस ५।९
८ प्रसन्नराघव १।३५–३७ ९ बालरामायण १।४० ४२–४६
१० आश्चर्यचूड़ामणि ३।२०–२१ २४, २६
११ जानकीहरण १०।८९ १२ राघवीय ६।७१–७३
१३ रा० मंजरी । अरण्य । ८०५–८०७ १४ रघुवीरचरित । १२।५७ से अन्त तक
१५ महाभारत । वन।२८१।८–९ १६ १६ महावीरचरित ५।१–११
१७ अनर्घराघव ५।१७ १८ महानाटक ५।२
१९ हनुमन्नाटक ६।१ १९–४०

'आश्चर्यचूडामणि'[1] आदि ग्रन्थों में रावण की काम चेष्टाओं और विरहोपचारों का विस्तार से वर्णन किया गया है। 'बालरामायण' में तो उसके विरहोपचार के लिए एक विस्तृत गर्भांक[2] की योजना मिलती है। वहाँ उसकी विरह-शान्ति के लिए माल्यवान् के द्वारा सीता और उसकी परिचारिका सिन्दूरिका की ऐसी मूर्तियों के निर्माण करवाने का उल्लेख किया गया है, जिनके मुँह में सारिकायें हैं और वे रावण से अभीप्सित प्रेमालाप भी करती हैं, किन्तु उनको स्पर्श करते ही रावण को सारा रहस्य ज्ञात हो जाता है। इसके पश्चात् उसके प्रलाप उन्माद और विरहोपचार का वहाँ अति विस्तृत वर्णन मिलता है।[3]

(१०) रावण का क्रोध—क्रोध 'मानस' के रावण का अभिन्न स्वभाव बन गया है। इसी क्रोध के कारण वह देवताओं पर आक्रमण करके उन्हें अपने वश में कर लेता है। शूर्पणखा का विरूपण देख कर उसका शरीर क्रोध से मानों जल जाता है।[4] उसकी क्रोधभरी एक डाँट से मारीच, माल्यवान, शुक प्रहस्त और कालनेमि आदि का साहस समाप्त हो जाता है।[5] उसके क्रोधभरे एक चरणप्रहार से विभीषण का भ्रातृभाव सदा के लिए मिट जाता है।[6] संस्कृत साहित्य में भी रावण के क्रोध का ऐसा ही विस्तृत वर्णन मिलता है। उसके पराक्रम की पूर्वोक्त समस्त उपलब्धियाँ उसके क्रोध की ही देन हैं।

(११) रावण के गुण—खारे सागर में रत्नों की भाँति रावण में कुछ विशिष्ट गुण भी हैं। प्रतिमा नाटक में वह सांगोपांग वेद, मानवीय धर्मशास्त्र, माहेश्वर योगशास्त्र बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र और प्राचेतस श्राद्धकल्प का विद्वान बतलाया गया है।[7] अनर्घराघव में वह वैदेयिक कपटी-पण्डित और 'शास्त्रार्थ' में जगद्विजयाभिलाषी बन कर राम से विवाद करना चाहता है। वहाँ अपने परिचय को 'सर्व-विद्यायन' कह कर अपना 'पाण्डित्य' दिखलाता है।[8] कुछ अन्य ग्रन्थों में भी उसकी विद्वता का संक्षिप्त उल्लेख मिलता है।

वस्तुतः रावण का 'रावणत्व' उसका सबसे बड़ा दुर्गुण है जिसके कारण वह कामादि षट् विकारों का क्रीतदास सा बन गया है। उसकी विद्या और विद्वता से उसकी दुश्चेष्टाओं को ही अधिक उल्लेखना मिलती है। तुलसी ने रावण के इस चरित्र-चित्रण में उसकी 'वैरभक्ति' के समन्वय से एक अद्वितीय चमत्कार उत्पन्न कर दिया है जिससे उसके सम्बन्ध में विचार करने की दिशा ही एक दम परिवर्तित

---

१ आश्चर्यचूडामणि ५।२६-३०
२ बालरामायण ३।१०-६०
३ बालरामायण ५।६-७५
४ मानस ३।२२
५ मानस ३।२१, ६।४०, ६७, ६।१०-११
६ " ६।४१
७ प्रतिमा ५।८ के बाद
८ अनर्घराघव ३।५ के बाद

हो जाती है और उसकी प्रत्येक असत् प्रवृत्ति में किसी सद्भावना का एक मधुर भ्रम सा हो जाता है ।

(१२) अन्य पात्र—नायक राम, नायिका सीता और प्रतिनायक रावण के चरित्र-चित्रण के पश्चात 'मानस' में पुरुष पात्रों में दशरथ, भरत, लक्ष्मण सुग्रीव विभीषण और हनुमान तथा स्त्री पात्रों में कौशल्या, कैकयी और मन्दोदरी के चरित्र भी उल्लेखनीय हैं ।

(१३) दशरथ का पतिरूप—पति पिता और राजा के तीनों रूपों में दशरथ का चरित्र दृष्टव्य है । इनमें उनकी कर्तव्यपरायणता की उत्तरोत्तर प्रबलता है । 'मानस' और संस्कृत साहित्य में सर्वत्र तीनों रानियों में से केवल कैकयी के प्रति ही उनके आत्यन्तिक प्रेम का निरूपण प्राप्त होता है । कोपभवन में रूठी हुई कैकयी को मनाने के लिए किए गए उनके प्रयत्नों और आश्वासनों में उनके पति-हृदय का सरस परिचय मिलता है ।[1] 'रामायण-मंजरी'[2] और महाभारत[3] में भी उसका मधुर संकेत दर्शनीय है ।

(१४) दशरथ का पिता-रूप—दशरथ अपने इसी रूप के कारण अत्यधिक प्रसिद्ध हैं । विश्वामित्र के द्वारा राम याचना के अवसर पर उनके वात्सल्य के अपूर्व दर्शन होते हैं । यहाँ राम के प्रति सर्वाधिक स्नेह का स्पष्ट संकेत मिलता है ।[4] संस्कृत के ग्रन्थों में भी उनके इस विशेष वात्सल्य का उल्लेख है ।[5] कैकयी वरयाचना के प्रसंग में भी वे इसी अद्वितीय पुत्र प्रेम का प्रकाशन करते हैं[6] जिसकी ओर कैकयी के संकेत करने पर, वे भरत और राम को अपनी दोनों आँखों के समान बतला कर अपना 'समवात्सल्य' भी व्यक्त करते हैं । संस्कृत-साहित्य में उनके केवल राम के ही प्रति अत्यधिक स्नेह का उल्लेख किया गया है । यहाँ 'वनगमन' के लिए प्रस्तुत राम को वे अपना समस्त वैभव इसीलिए दे देना चाहते हैं ताकि भरत उनके प्रदेश पर राज्य करें ।[8] कुछ ग्रन्थों में वे राम निर्वासन के षड्यन्त्र में भरत के लिप्त होने का सन्देह भी करते हैं ।[9]

(१५) दशरथ का राजा-रूप—दशरथ 'रघुवंशी' राजा हैं । अतः सत्य वादिता और प्रतिज्ञापूर्ति उनकी वंश विशेषताएँ हैं, जिनके लिए वे प्राणों की भी चिन्ता नहीं करते हैं ।[10] राम-निर्वासन के प्रसंग पर उनका अन्तर्द्वन्द्व बड़ा मार्मिक है क्योंकि वे अपने व्यक्ति-धर्म (वात्सल्य) और कुल-धर्म (वचन-पालन) दोनों का

---

१ मानस २।२५ — २ रा० मञ्जरी । अयोध्या ७११–७१५

३ महाभारत । वन ।२७७।२२–२४

४ मानस २।२५ — ५ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १३४

६ " २।३४ — ७ मानस २।११

८ रा० मञ्जरी । अयोध्या ।८८६ — ९ चंपूरामायण २।२१, उदारराघव ४।१०९

१० मानस १।२८

एक साथ निर्वाह करना चाहते हैं जिसे कैकेयी के दुराग्रह ने असम्भव बना दिया है। अन्त में वे अपने कुधर्म पर अपने जीवन और राजत्व दोनों का बलिदान कर देते हैं। यों तो संस्कृत-साहित्य में भी उनके इस महान् त्याग का सविस्तार वर्णन किया गया है, किन्तु 'मानस' के समान मर्यादा के दर्शन कहीं नहीं होते हैं।[1] वस्तुतः दशरथ का चरित्र एक दुःखान्त गाथा है, जिसमें उनकी दृढ़ता, तत्परता एवं कर्मठता भी द्रष्टव्य है। अपनी इन सभी विशेषताओं के कारण दशरथ करुण वात्सल्य के प्रतीक' के रूप में प्रतिष्ठित हो गए हैं।

(११) भरत— मानस में भरत भक्ति की प्रतिमा हैं। यों तो उनका पुत्र रूप भी कम प्रशंसनीय नहीं है किन्तु उनका भ्रातृरूप विशेष प्रशस्त है। भरत के चरित्र-चित्रण में उनके इन्हीं दोनों रूपों — पुत्र रूप और भ्रातृरूप — का निरूपण ही विशेषकर उल्लेखनीय है। पुत्ररूप' उनकी पितृभक्ति अथवा मातृ-भक्ति का चित्रण कहीं नहीं मिलता है प्रत्युत भ्रातृभक्ति के कारण उनकी तुच्छ मातृभक्ति का ही वर्णन उल्लेख किया गया है।[2] उनके सामने वे 'पितृमरण' का भी विस्मरण कर बैठे हैं।[4] 'राज्य ग्रहण के लिए कौसल्या एवं वसिष्ठ के आग्रह की उपेक्षा करने, चित्रकूट जाकर राम से अयोध्या प्रत्यावर्तन की प्रार्थना करने एवं उनकी चरण पादुकाओं को सिंहासनासीन करके १४ वर्ष तक नन्दिग्राम में मुनि-व्रत पालन करने और में उनकी आदर्श भ्रातृ भक्ति का पुष्ट प्रमाण मिल जाता है। लक्ष्मण और स्वयं भरत के साथ अपने संवाद में राम उनके इस स्नेह की प्रशंसा करते हैं—

सगुन तुम्हार सरन पितु आता। मुनि मुनम्पु नहिं भरत समाना ॥ २।२३२

'तीन काल त्रिभुवन मत मोरे। पुण्यसिलोक तात तर तोरे ॥'[3] २।२६३

संस्कृत-साहित्य में भी भरत के इस उदार प्रेम का सर्वत्र परिमाणमयी शैली में निरूपण किया गया है।[5] प्रतिमा नाटक में वहाँ वे लक्ष्मण के अनुज हैं उनके प्रति भी उनका सौभ्रात्र दर्शनीय है।[6] भ्रातृभक्ति के अतिरिक्त वे अपने कर्तव्य के प्रति भी सदैव जागरूक हैं। चित्रकूट-प्रस्थान के पूर्व और पश्चात् भी अयोध्या की सुव्यवस्था का ध्यान रखना,[7] आकाशगामी हनुमान् को राक्षस समझ कर एक बाण से नीचे गिरा लेना और फिर उन्हें अपने बाण से ही राम के पास भेज देने का प्रस्ताव करना,[8] उनकी तत्परता और अद्भुत शक्ति के परिचायक हैं जिनका उल्लेख हनुमन्नाटक[8] और प्रतिमा[9] नाटक में भी मिलता है। संस्कृत साहित्य में केवल भरत का ही चरित्र सर्वथा निर्दोष चित्रित किया गया है फिर भी 'मानस' में उनके

---

१ प्रस्तुत निबन्ध १२६–१२८
२ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १६७
३ मानस २।१६०
४ " " १७३
५ प्रतिमा ४।७ के बाद १८ के बाद
६ मानस २।१८६।१२३
७ मानस ६।५८–६०
८ हनुमन्नाटक ११।५४–५०
९ प्रतिमा ३।१६

उदात्त और उत्कृष्ट भ्रातृस्नेह का जो सविस्तार वर्णन मिलता है वह अन्यत्र अप्राप्य है। वस्तुतः भरत को साकार राम प्रेम के रूप में प्रतिष्ठित करने का तुलसी ने जो महान् प्रयास किया है, उसमें उनको अभूतपूर्व सफलता मिली है।

(१७) लक्ष्मण—भरत की भाँति भी लक्ष्मण केवल रामनिष्ठ हैं। राम की भक्ति के लिए वे कोई भी बलिदान कर सकते हैं। उसके सामने वे अपने पिता, (वि) माता तथा अन्य भाइयों के प्रति पूर्ण तिरस्कार व्यक्त करते हैं।[1] संस्कृत साहित्य में भी उनके इसी रूप का चित्रण मिलता है।[2] उनकी यह विशेषता संभवतः उनके 'गुण-निर्माण' का प्रमाण है।[3] इसी रामभक्ति के कारण वे जनक[4] और परशुराम[5] के प्रति भी अपना रोष दिखलाते हैं। हनुमन्नाटक[6] और 'महानाटक'[7] में उनका यही रोष उनके स्थान पर राम से सम्बद्ध मिलता है। तुलसी ने सम्भवतः उसे राम के अयोग्य मानकर लक्ष्मण के साथ उसको जोड़ दिया है जिसके फलस्वरूप उनके क्रोधी स्वभाव की आरम्भ से ही प्रसिद्धि हो जाती है। उनकी इस उग्रता के चित्रण में तुलसी उनके शेषावतार[8] की कल्पना से भी प्रभावित जान पड़ते हैं। 'रामनिर्वासन' के अवसर पर दशरथ और कैकेयी के प्रति व्यक्त किये गए उनके उपर्युक्त तिरस्कार में उनकी भ्रातृभक्ति की ही प्रधानता है। सुग्रीव-प्रमाद के प्रसंग में भी 'मानस' और संस्कृत-साहित्य में समानतया वर्णित उनका क्षोभ उनके इसी भ्रातृस्नेह का सुपुष्ट परिणाम है।[9] इसके अतिरिक्त उनकी वीरता, दृढ़ता, स्थिरता और दक्षता का भी विस्तृत वर्णन मानस और संस्कृत-साहित्य में समान रूप से मिलता है। तुलसी ने उसमें उनकी भ्रातृभक्ति अथवा राम भक्ति का संकेत करके उनके चारित्रिक उत्कर्ष की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति की है। उनके समस्त चरित्र में 'गुहो-पदेश'[10] के प्रसंग में वर्णित उनकी दार्शनिकता कुछ विद्वानों को अस्वाभाविक[11] प्रतीत होती है, किन्तु उसमें तत्त्वज्ञान की अपेक्षा गुह को शान्त करने की प्रवृत्ति अधिक है जिसमें यह भी व्यंग्य है कि उसको दूसरों के पारिवारिक विषयों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

(१८) सुग्रीव—सुग्रीव भ्रातृ पीड़ित है। केवल 'महावीरचरित' में उसके बालि-पक्षपाती होने का उल्लेख है। यहाँ वह बालि की माया से ही विवश होकर

---

१ मानस २।२८–३०　　२ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १२७–१२८
३ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २७१　　४ मानस १।२५२–२५४
५ मानस १।२७१–२८६　　६ हनुमन्नाटक १।१०, ४१
७ महानाटक १।२४ २।११　　८ मानस १।१७
९ मानस ४।१८ ११ रामचरित ३।२१ राघवीय ११।२०, अग्निपुराण ८।२।७
१० मानस २।९२–९३
११ डा० माता प्रसाद गुप्त—तुलसीदास—द्वितीय संस्करण पृष्ठ २८३

राम से मैत्री करता है।[1] 'वानरराज' होने के कारण वह दूत प्रेषण, सैन्य-संगठन, सेतु-निर्माण तथा लंका-युद्ध आदि में राम की सहायता करके अपनी सक्रियता का परिचय देता है, जिससे प्रभावित होकर राम भी अयोध्या में उसके स्वागत और सम्मान किए की व्यवस्था करते हैं।[2] 'मानस' और संस्कृत-साहित्य में उसके प्रमाद का संकेत भी समान रूप से मिलता है,[3] अन्यथा सर्वत्र उसके साहस, शौर्य, चापल्य और विश्वस्त रूप का ही सविस्तार वर्णन किया गया है। तुलसी ने उसकी भक्ति और विरक्ति का भी चित्रण करके उसको 'मित्रभक्त' की कोटि में रखने का एक सफल प्रयास किया है।

(४०) विभीषण—विभीषण राम का पूर्व भक्त है। मानस के हनुमान्-मिलन प्रसंग में उसके भक्तवचन, राम-नाम-स्मरण और सीता-प्रवृत्ति-निवेदन आदि का उल्लेख उसकी रामभक्ति का ही परिचायक है। संस्कृत-साहित्य में इसका कहीं संकेत भी नहीं है। रामभक्त होने के साथ साथ वह नीतिज्ञ, नम्र, शिष्ट, उदार, भ्रातृहितैषी, कुलहितैषी और दूरदर्शी भी है; इसीलिए वह रावण से सीता-प्रत्यर्पण की प्रार्थना करता है और उससे तिरस्कृत एवं पद-प्रहारित होने पर भी वह अपने विशिष्ट गुणों के कारण ही उससे रामभक्ति करने का आग्रह करता है।[4] राम की शरण आने पर वह उनसे उनकी पावनी भक्ति की याचना करके उन्हें आत्म-समर्पण कर देता है। वह राम को लंका-युद्ध में मेघनाद-वध, रावण-वध और रावण-नाभि-सुधा[5] आदि की सूचना देकर अपनी विश्वस्तता और कर्तव्यनिष्ठा का प्रमाण भी देता है। संस्कृत के कुछ ग्रंथों में उसको राम के ईश्वरत्व से इतना अधिक परिचित बतलाया गया है कि वह रावण विनाश के अभाव में भी स्वेच्छा से उनकी शरण में चला जाता है। तुलसी ने अस्वाभाविकता के विचार से ही संभवतः उसके इस स्वेच्छागमन का निरूपण नहीं किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने उसके चरित्र में रामभक्ति का समर्पण देकर और उसकी विरक्ति एवं निरीहता का संकेत करके उसकी उदारता की ही सर्वत्र प्रतिष्ठापना की है।

(४१) हनुमान्—हनुमान मूलतः सुग्रीव के सेवक होने पर भी राम के अनन्य भक्त हैं और राम से अधिक राम के नाम के प्रथम उदाहरण हैं। वे भक्ति और शक्ति के अद्वितीय प्रतीक हैं। 'सीता-खोज एवं लक्ष्मण-मूर्छा' के प्रसंगों में उनकी 'महावीरता' के साथ साथ उनकी नम्रता, निर्भीकता, चतुरता, दक्षता, तत्परता, कर्मठता, निरभिमानता, निःस्वार्थता, निरभिमानिता तथा दूरदर्शिता आदि सद्गुणों का विशेष समन्वय है जो उनको दास्य-भक्ति के दर्शन के फलस्वरूप

---

१ महावीरचरित ५।५४ के बाद ५६
२ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २८५–२८६
३ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २०१
४ मानस ५।३८–९
५ मानस ६।१८–४१
६ मानस ६।७५,७६ १०२
७ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २९७

५

अधिक चमत्कारपूर्ण हो गया है।

संस्कृत साहित्य में हनुमान् के 'रौद्रावतार,' 'सूर्यशिष्य' और 'सर्ववेदी विशारद'[1] आदि होने का संकेत किया गया है। वहाँ जाम्बवान् के अनुरोध से राम सीता-खोज के लिए उनकी स्तुति तक करते हैं।[2] हनुमान की चारित्रिक दृढ़ता का उल्लेख 'रामचरित' में मिलता है जहाँ वे एक वानरी के अनेक प्रेम प्रस्तावों को बारम्बार अस्वीकृत कर देते हैं।[3] इसके अतिरिक्त रावण वध के समय सीता की सुरक्षा का ध्यान रखने में और उनको आत्महत्या के प्रयत्नों से बचाने में हनुमान् की क्षिप्रता दक्षता एवं सतर्कता भी दर्शनीय है।[4] 'लंकादाह' तथा संजीवनी-आनयन' के अवसरों पर उनके असाधारण विक्रम का उल्लेख भी लगभग सभी ग्रंथों में मिलता है।[5] 'मानस' में सुग्रीव की विदा के पश्चात उसकी अनुमति से हनुमान् के द्वारा राम के समीप ही रह जाने के उल्लेख[6] से तुलसी ने उनके चरित्र में उनकी स्वाभाविकता तथा रामभक्ति का जो सर्वोत्कृष्ट समन्वय किया है, वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। वस्तुतः तुलसी ने उनको एक श्रेष्ठ 'दासभक्त' के रूप में ही चित्रित किया है इसीलिए उन्होंने राम के प्रथम दर्शन के अवसर पर ही उनसे उनकी भक्तिभावना और अन्त में भी उनके द्वारा राम की 'सामीप्य प्राप्ति' का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार तुलसी ने उनके आदर्श भक्तरूप की जो अनुपम प्रतिष्ठा 'मानस' में की है वह संस्कृत-साहित्य में सर्वथा दुर्लभ है।

(४१) कौसल्या—पत्नी, सपत्नी माता एवं विमाता के चार रूपों में कौसल्या का चरित्रचित्रण उल्लेखनीय है और सबमें उनके त्याग विवेक औदार्य गाम्भीर्य सरलता और सहृदयता का आदर्श निरूपण किया गया है। राम को 'वन-गमन' की अनुमति देने के समय उनके हृदय में 'धर्मस्नेह' एवं पुत्र-स्नेह' का एक विचित्र संघर्ष होता है किन्तु कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर वे अपनी दृढ़ता और निर्ममता का ही वहाँ परिचय देती हैं। इस अवसर पर राम के सामने किया गया उनका स्पष्टीकरण उनके सूक्ष्म विवेक सपत्नीप्रेम तथा विशाल-हृदय का द्योतक है। 'राम विलोकन' से क्षुब्ध भरत को सान्त्वना देते समय उनके 'भरत शपथ' का उल्लेख करके तुलसी ने उनके सच्चे 'सम-वात्सल्य' के उद्रेक का निदर्शन कर दिया है।[7] संस्कृत के ग्रंथों में राम के प्रति कौसल्या के मोहपूर्ण वात्सल्य का ही वर्णन किया गया है, संभवतः इसी के कारण कैकेयी और भरत की बात तो दूर दशरथ के सम्बन्ध में भी उनकी कटुभावना अनेक स्थलों पर व्यक्त हुई है।[8] किन्तु तुलसी ने उनके चारों

---

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १८६
२ हनुमन्नाटक ५।१२ के बाद
३ रामचरित १२।४५—८३
४ रामचरित ११।१२-१७ २०।२-५
५ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २१२
६ मानस ७।१९
७ मानस २।५५ ५७
८ मानस २।१६९
९ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १२६

रूपों में उन्हें सर्वथा आदर्श और अनुकरणीय ही प्रतिष्ठित किया है ।

(४२) कैकेयी—कौसल्या के समान कैकेयी का भी उपर्युक्त सभी रूपों में चित्रण किया गया है जिसमें उसका मातृत्व ही सर्वाधिक प्रबल है । 'मन्थरा-प्रसंग' के पूर्व तक तो वह अपने शेष रूपों में भी समान रूप से ही सफल है किन्तु उसके पश्चात् उसको पति सपत्नियों एवं सपत्नी-पुत्रों के प्रति कोई भी आकर्षण नहीं रह जाता है । 'वरयाचना' के अवसर पर वह अपनी ईर्ष्या को इस प्रकार स्पष्टतया व्यक्त कर देती है—

कहइ करहु किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि माया ॥
राम साधु, तुम साधु सयाने । राममातु भलि सब पहिचाने ॥' २।३३

इस प्रसंग में कैकेयी लोभ, मोह, अभिमान, अविवेक, दुराग्रह, सपत्नीडाह, क्रूरता और हठधर्मिता आदि का बड़े विस्तार से वर्णन मिलता है । संस्कृत साहित्य में भी कैकेयी का ऐसा ही चित्रण है । 'अध्यात्मरामायण' में उसके दोषों को 'मायाप्रवृत्त' बतलाया गया है ।[1] कुछ नाटकों में उसके निर्दोष सिद्ध करने का भी प्रयास किया गया है[2] जबकि तुलसी ने उसके रूप में एक विमाता के ही ईर्ष्यालु और आतंकपूर्ण चित्रण में यथार्थवाद और अतिशयोक्ति का विशिष्ट समन्वय प्रस्तुत किया है जो उनकी अद्वितीय मनोवैज्ञानिक निरीक्षण शक्ति का स्पष्ट परिचायक है ।

(४३) मन्दोदरी— रावण-प्रबोध के लिए 'कान्तासम्मिततयोपदेश' की दृष्टि से मन्दोदरी का सहयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । वह एक आदर्श पत्नी और कुल हितकांक्षिणी नारी है इसीलिए 'सीतार्पण' तथा 'रामशरणगमन' के लिए दिए गए उसके चारों अनुरोधों[3] में उसकी सद्बुद्धि धार्मिकता उदारता दूरदर्शिता और विशाल हृदयता के साथ-साथ उसकी पतिपरायणता एवं कुलहितकामना के भी सरस दर्शन होते हैं । संस्कृत के कुछ ग्रंथों में रावण को 'सीतार्पण' के लिए बाध्य न करने तथा सीता के प्रति अपनी उदासीनता व्यक्त करने में उसकी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता और 'उसको देवमयी की एकत्व-बुद्धि का उपदेश देकर अपने पक्ष के अनुकूल कर लेने के प्रयासों में उसकी सफल दार्शनिकता का भी अच्छा निरूपण किया गया है ।[4]

(४४) निष्कर्ष—संस्कृत-साहित्य तथा 'मानस' में इन सभी पात्रों के चरित्र-चित्रण के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि संस्कृत-साहित्य में भरत के समान जिन पात्रों को सर्वथा निर्दोष रूप में चित्रित किया गया है 'मानस' में उनको और भी अधिक उत्कृष्ट एवं उदात्त रूप दे दिया गया है और अन्य पात्रों में जहाँ जो दोष पाए जाते हैं 'मानस' में उनका कुशलता से परिमार्जन हो गया है ।

---

१ अध्यात्मरामायण २।१४ के बाद
२ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १२१
३ मानस ५।३६ ६।६-७ ६।१५, ६।३७
४ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १२२

इतना ही नहीं उन सबमें 'रामभक्ति की अत्यधिक मात्रा में इतनी प्रतिष्ठा भी कर दी गई है कि कहीं कहीं अस्वाभाविकता के भी दर्शन हो जाते हैं। दशरथ जनक एवं वशिष्ठ आदि वरिष्ठ पात्रों का चरित्र-चित्रण इस दृष्टि से विचारणीय है, किन्तु राम की ईश्वरता के विचार से उसमें कोई खटकने वाली बात नहीं जान पड़ती है प्रत्युत भक्ति के प्रवाह में उसमें स्वच्छन्दता एवं गतिशीलता का ही परिचय मिलता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि तुलसी ने मानस के पात्रों का चरित्र चित्रण करते समय संस्कृत साहित्य में प्राप्त उनकी 'कालिमा' को पोंछ कर के और उसके स्थान पर राम भक्ति के सुनहले रंग को चढ़ा करके उनके निखरे और संवारे हुए रूपों को ही यहाँ प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है जिससे कथा के विकास में भी अधिक सौन्दर्य एवं आभिजात्य का स्वतः चमत्कारपूर्ण समावेश हो गया है। यह तुलसी के भक्तहृदय की निरन्तर भावना का ही प्रभाव है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'मानस' के पात्रों को सात्विक, राजस और तामस इन तीन प्रकृतियों के आधार पर आदर्श और सामान्य दो वर्गों में विभाजित किया है। उनके अनुसार आदर्श चित्रण के भीतर सात्विक और तामस दोनों आते हैं राजस को हम सामान्य चित्रण के भीतर ले सकते हैं। सीता राम भरत हनुमान और रावण आदर्श चित्रण के भीतर आयेंगे तथा दशरथ लक्ष्मण विभीषण सुग्रीव और कैकयी सामान्य चित्रण के भीतर। आदर्श चित्रण में हम या तो वहाँ से वहाँ तक सात्विक वृत्ति का निर्वाह पावेंगे या तामस का। प्रकृति भेद सूचक अनेकरूपता उसमें न मिलेगी। सीता राम भरत और हनुमान ये सात्विक आदर्श हैं, रावण तामस आदर्श है।[1] मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह वर्गीकरण उचित नहीं प्रतीत होता है। डा० शम्भूनाथसिंह के मत में तुलसी ने यथार्थवादी या मनोवैज्ञानिक आधार पर भी चरित्र निर्मित नहीं किए हैं। उनका दृष्टिकोण धार्मिक और आदर्श वादी था। अतः उन्होंने चरित्रों को कोटियाँ (टाइप्स) बनाकर प्रत्येक कोटि का प्रतिनिधित्व करने वाले चरित्र निर्मित किये हैं।[2] 'अतिवाद' में तो यह भी कहा जा सकता है कि 'मानस के सभी पात्र एक ही भक्त' कोटि के हैं, किन्तु यहाँ यह स्मरणीय है कि तुलसी ने अतिमहत्व वाले पात्रों के भी चरित्र-चित्रण में उनकी वैयक्तिक विशिष्टताओं का सरस निरूपण किया है। वस्तुतः चरित्र-चित्रण का एक मात्र यही उद्देश्य होता है कि पात्रों की सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक स्थितियों का समर्थ उद्घाटन किया जाये जिससे उनके व्यक्तित्व का सभी दृष्टियों से मूल्यांकन सम्भव हो सके। इसमें सम्बन्धित पात्र के वचन और कर्म के अतिरिक्त अन्य पात्रों तथा लेखक के भी तत्सम्बन्धी वचन और कर्म का महत्वपूर्ण सहयोग रहता है। इस संदर्भ में उन पात्रों की सफलता ही कवि की निजी सफलता मानी जाती है, अतः प्रत्येक

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास—सप्तम संस्करण पृष्ठ १२१

२ डा० शम्भूनाथसिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—पृ० २४७

कवि इस क्षेत्र में बड़ी तन्मयता तथा उत्कंठा के साथ प्रवृत्त होता है। प्रख्यात कथानक में तो चरित्रचित्रण के लिए कवि के सामने अनेक विवशतायें होती हैं क्योंकि परम्परा के बन्धन के कारण उसका कल्पना-क्षेत्र बहुत सीमित हो जाता है, किन्तु समर्थ महाकवि अपनी प्रतिभा के बल पर, किसी प्रकार के भी बन्धन से कभी विवश नहीं होते हैं।

हमारे गोस्वामी तुलसीदास भी ऐसे ही समर्थ महाकवि हैं और उनके चरित्र चित्रण के सम्बन्ध में यह कहना पुनरावृत्ति न होगी कि उन्होंने उस दिशा में अद्वितीय और अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है।

३ रस विवेचन

(१) रस-योजना—वस्तु और पात्र के पश्चात् रस काव्य का तीसरा और अन्तिम महत्त्वपूर्ण तत्व है। यों तो 'रस निष्पत्ति के मूलमन्त्र'[1] विभाव, अनुभाव और संचारीभाव के संयोग को समझकर कोई भी कवि किसी रस विशेष की योजना बड़ी सफलता से कर सकता है किन्तु प्रबन्ध काव्य-विशेषकर महाकाव्य में उसका आद्योपान्त कुशल निर्वाह उस कवि की मौलिक प्रतिभा एवं रसमर्मज्ञता पर ही निर्भर होता है अन्यथा उस रस के भाव-मात्र ही बने रहने अथवा 'रसाभास' में परिणत हो जाने की आशंका सदैव बनी रहती है। समर्थ महाकवि काव्य के नश्वर शरीर में रस की इस प्रधानता से पूर्ण परिचित होते हैं और कथावस्तु और पात्रों के साथ उसके उचित सामंजस्य के प्रति भी वे सदैव जागरूक रहते हैं। इसी दृष्टिकोण से वे सर्वप्रथम अनुकूल वस्तु का संग्रह करते हैं और फिर उसके सफल प्रसार के लिए समर्थ नायक का चुनाव करते हैं। ऐसे नायक के साथ उस कृति और कृतिकार का भी यश सदा के लिये अमर हो जाता है। 'काव्यं यशसे'[2] कह कर मम्मट ने काव्य-निर्माण के हेतुओं में इसीलिये 'यश' को सर्वप्रथम स्थान दिया है। तुलसी भी साधु-समाज में अपनी 'भनिति के सनमान'[3] की अपेक्षा रखते ही हैं और इसी लिए वे 'प्राकृतजन गुनगान' को हेय समझ कर 'मंगल भवन अमंगल हारी। राम की जयमंगल करनी'[4] कथा को ही अपना प्रतिपाद्य बनाते हैं।

निश्चय ही कवि की भावना में यहाँ लोक-मंगल की प्रमुखता है। उसी के निमित्त उसका उत्साह उमड़ा पड़ता है जिसकी दो धारायें हैं एक तो अपने आलम्बन का आदर्श रूप प्रस्तुत करना और दूसरे उसके प्रति लोक को प्रेरित करना जिससे वे उसके गुणग्राही बनें और उसके आदर्श आचरण का अनुकरण भी करें। 'रामादिवत् वर्तितव्यं न तु रावणादिवत्' की सूक्ति केवल धर्मोपदेशकों के काम की हो सकती है। महान् साहित्यकार तो अधिकारी पाठकों को कारयित्री प्रतिभा के लिये अनुकूल

---

१ साहित्य दर्पण ३।१
२ काव्यप्रकाश १।२
३ मानस १।१४
४ मानस १।११
५ " १।१०

निष्कर्ष प्रस्तुत कर दिया करते हैं। लोकमंगल के इस विशिष्ट रूप से समन्वित 'रामकथा' के प्रतिपादन के लिये तुलसी अपने इसी आन्तरिक उत्साह से प्रेरित होकर 'रामकाव्य के समस्त प्राचीन कवियों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं और उनके उत्साह से अनुप्राणित भी होते हैं।[1] अपने उत्साह को मूर्तरूप देने के लिये वे उस 'रामकथा' में से केवल उसी भाव को ग्रहण करते हैं, जिसमें नायक के अद्वितीय पराक्रम का सर्वश्रेष्ठ निरूपण प्राप्त होता है। वहाँ भी वे वीर-रस का पुष्ट आलम्बन प्रस्तुत करने के लिए कुछ प्रसंगों को निकाल देते हैं कुछ को मोड़ देते हैं और कुछ का नया सृजन भी कर लेते हैं। यहीं पर उनका अद्वितीय काव्य-कौशल दिखलाई पड़ता है।

वस्तु-योजना की इस पद्धति से यह स्पष्ट है कि 'मानस में उत्साह' का निरूपण ही कवि भावना का प्रधान अंग है। जहाँ तक नायक की प्रवृत्तियों का सम्बन्ध है—उनका पर्यवसान 'वीररस में ही होता है। कथा के अनेक परिवर्तन और परिवर्धन भी इसी दृष्टिकोण से सोद्देश्य हैं। 'मानस के नायक राम के जन्म का मुख्य हेतु ही 'असुर-मारि थापहिं सुरन्ह'[2] है जिसके लिए विशेष 'उत्साह' की अपेक्षा है। विश्वामित्र के साथ प्रथम वन-गमन और तदुपरान्त द्वितीय वन-गमन में भी राम के इसी उत्साह का चित्रण मिलता है, जिसके प्रति स्वयं कवि का उत्साह भी उल्लेखनीय और अविस्मरणीय है। वस्तुतः 'मानस' के नायक राम के उत्साह को हम अनेक धाराओं में प्रवाहित होते हुए देखते हैं। उन्हीं में से धर्म भी एक है। उसका मुख्य लक्ष्य धर्म प्रतिष्ठा है। यही मानस के स्थायी भाव 'उत्साह' का अभिन्न रूप है। मानस में राम के चरित्र और चरित दोनों में सर्वत्र उनके उत्साह और धर्मप्रतिष्ठा की ही प्रमुखता है। राम के इसी उत्साह की प्रशंसा करते हुए आ० रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं बाल्यावस्था में ही जिस प्रसन्नता के साथ, उन्होंने घर छोड़ा और विश्वामित्र के साथ बाहर रहकर अस्त्र विद्या प्राप्त की तथा विघ्नकारी विकट राक्षसों पर पहले-पहल अपना बल आजमाया, वह उस उत्साहपूर्ण साहस का प्रतीक है जिसे 'उत्साह कहते हैं। छोटी अवस्था में ही ऐसे विकट प्रवास के लिए जिनकी ललक हमने तुलसी देखी उन्हीं को पीछे चौदह वर्ष वन में रहकर अनेक कष्टों का सामना करते हुए जगत् को क्षुब्ध करने वाले कुम्भकर्ण और रावण ऐसे राक्षसों को मारते हुए हम देखते हैं। इस प्रकार जिन परिस्थितियों के बीच में वीर जीवन का विकास होता है उसकी परम्परा का निर्वाह हम पथ से रामचरित में देखते हैं।"[3]

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'मानस' का प्रधान रस 'वीर रस' ही है क्योंकि एक तो 'मानसकार के सारे प्रयत्न उसी के प्रतिपादन के लिए

---

१ मानस १।१३-१४ २ मानस १।१२१

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—गो० तुलसीदास, सप्तम संस्करण पृ० ११४

क्रियाशील हो रहे हैं और दूसरे 'मानस' की 'रामकथा' का आद्योपान्त ढाँचा ही कुछ इस प्रकार का है कि उसमें वीर-रस को छोड़कर और कोई दूसरा रस प्रमुख हो ही नहीं सकता है। इसके अतिरिक्त यहाँ यह भी स्मरणीय है कि उसके नायक की समस्त चेष्टायें, सर्वत्र उसके उत्साह का ही एकमात्र निरूपण करती हैं। इसी अप्रतिम 'उत्साह' के साथ वह अपने अभीप्सित उद्देश्य की ओर अग्रसर होता है और एक आदर्श राज्य—रामराज्य-की स्थापना में कृतकार्य होता है, जिसमें प्रमुखतः धर्म और गौणतः अर्थ (राज्य) रूपी फल की भी प्राप्ति होती है।

'मानस' के रस के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत विचारणीय हैं। डा० शम्भूनाथसिंह का निष्कर्ष यह है कि 'रामचरित मानस' की आधिकारिक कथा में वीर रस अंगीरस है पर ग्रंथ का पर्यवसान वीर रस में नहीं बल्कि भक्तिरस में हुआ है।[1] डा० राजपति दीक्षित कहते हैं कि 'इसमें शान्त (भक्ति) रस ही सर्वोपरि विराजमान है, अन्य सभी रस इसी के (भक्तिरस के) अंगभूत हैं।'[2] डा० भगीरथ मिश्र के विचार से 'मानस का प्रमुख रस शान्त है।'[3]

वास्तव में तथ्य यह है कि 'मानस' में आद्यन्त 'वीर' रस की ही प्रतिष्ठा है। यह ठीक है कि भक्तिरस की लहरें भी उसके प्रवाह में प्रबल हैं जिससे आदर्श चरित्र के साथ उसके प्रति भक्ति भी प्रतिष्ठित हो जाती है। भक्ति के संदर्भ में 'मानस' के पाठक अथवा श्रोतागण इसको भक्तिरस का ग्रंथ मान लेते हैं। इसके लिये उनके समक्ष कुछ आधार भी है किन्तु उत्साह को भुला देने पर भक्ति का भवन भी उठ नहीं सकता है। डा० शरनामसिंह के अनुसार समूचे 'रामचरित मानस' में वीर चरित की ही प्रधानता है और रामकाव्य के प्रणेताओं में कम से कम तुलसीदासजी ने अपने कथा-नायक का अवतरण वीर रूप में ही हुआ देखा है। राम का सर्वस्व परित्याग और राजभूत पराङ्मुखता उत्कृष्ट दानवीर का उदाहरण है। लंका को जीत कर विभीषण को दे देना इस तथ्य की ओर भी अधिक पुष्टि करता है। रावण जैसे प्रतिनायक से वन की परिस्थितियों से लोहा लेकर उसे पराजित कर देने में राम की 'रणवीरता प्रकाशित हो रही है। कर्तव्य की वेदी पर सीता के स्नेह का बलिदान राम की धर्मवीरता की दुन्दुभि बजा रहा है।

संस्कृत-साहित्य में केवल कुछ नाटकों को छोड़कर समस्त राम-काव्य में वीर रस का ही एकाधिकार है। 'उत्तर रामचरित' और 'कुन्दमाला' नाटकों में 'अभिषेकोत्तर कथा के वर्णन से 'करुण रस' की स्थिति स्वाभाविक है, मैथिली-कल्याण तथा 'उन्मत्तराघव' नाटकों में केवल 'पूर्वराग और वियोग के चित्रण से 'शृंगार की प्रमुखता है जबकि 'अद्भुत-दर्पण' तथा 'आश्चर्यचूड़ामणि' नाटकों में

१ डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—पृ० ५५७
२ डा० राजपति दीक्षित—तुलसीदास और उनका युग—पृ० ११४
३ डा० भगीरथ मिश्र—तुलसी-रसायन—पृ० ६०
४ डा० शरनामसिंह शर्मा—'राघरे फूल—पृ० ११४

'वर्णन' और 'चूड़ामणि' के विस्तारों के कारण 'अद्भुत रस' का निरूपण मिलता है, किन्तु अन्यत्र सर्वत्र 'वीर-रस' को ही सर्वप्रथम स्थान प्राप्त हुआ है।

'मानस' की रस-योजना के साथ संस्कृत-साहित्य की रस-योजना पर तुलनात्मक विचार करने से अनेक विशेषताओं का परिचय मिलता है। एक ओर तो संस्कृत के अनेक महाकवि बड़े दर्पशील[1] हैं जो अपनी काव्य-प्रतिभा का विविध वर्णन करते हैं किन्तु अपनी कृतियों में उतने समर्थ दिखलाई नहीं पड़ते हैं दूसरी ओर नम्रता और शालीनता के मूर्तरूप[2] तुलसी अपने कृतित्व में उन सभी कवियों से बहुत आगे हैं क्योंकि इन महाकवियों के ग्रंथों में रसस्थिति स्वल्प विरल प्रयत्नसाध्य और रीतिबद्ध प्राप्त होते हैं जबकि 'मानस' में अयत्नित सरस प्रसंगों की योजना सहज रूप से ही सुलभ है। इसके अतिरिक्त यहाँ ऐसे अनेक नवीन भावों की भी मधुर अभिव्यंजना मिल जाती है जिनका परिचय न तो उन महाकवियों को ही कभी हुआ और न रीति शास्त्रियों को। कुछ उदाहरणों से यह विवेचन अधिक स्पष्ट हो जायगा।

संस्कृत के महाकाव्यों में शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार अधिकतर वीर, शृङ्गार और करुण रसों को ही प्राधान्य प्राप्त हुआ है। कुछ स्थलों में 'भक्ति' का भी अच्छा निरूपण मिलता है। अतः उनके सन्दर्भ में 'मानस' के तत्सम प्रसंगों का तुलनात्मक विवेचन ही अधिक उपयुक्त होगा।

(२) वीर रस विवेचन— मानस' में 'ताटका वध' के प्रसंग में राम के लौकिक और अलौकिक पराक्रम का प्रथम परिचय प्राप्त होता है —

'एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥ १।२०६

संस्कृत के ग्रंथों में ताटका की विकट शक्ति और कुरूपता के साथ-साथ उसके वध में राम की हिचकिचाहट के उल्लेख से 'उत्साह' का वह शुद्ध चित्रण नहीं हो सका है। वहाँ उसमें भय घृणा मति लज्जा आशंका ग्लानि चिन्ता और वितर्क आदि की उपस्थिति से अपेक्षित 'रस-बोध' में बड़ा व्यवधान हो जाता है। इसी प्रकार विराध और कबन्ध के वध के वर्णन में भी स्पष्ट अन्तर प्राप्त होता है क्योंकि 'मानस' के राम उनको देखते ही समाप्त कर देते हैं और उन्हें निजधाम भेज देते हैं जब कि संस्कृत साहित्य में उन राक्षसों के द्वारा सीता हरण और राम-लक्ष्मण पर आक्रमण करने के उल्लेख से भय विस्मय अमर्ष त्रास श्रम ग्लानि और चिन्ता आदि भावों के संचार के साथ 'क्रोध' की ही प्रमुखता दृष्टिगोचर होती है। 'परशुराम विवाद प्रसंग में 'मानस' के राम के मर्यादापूर्ण उत्साह की सफल झलक मिलती है—

देव दनुज भूपति भट नाना। सम बल होउ अधिक बलवाना।

जो रन हमहि पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ॥१।२८४

संस्कृत साहित्य में इस प्रसंग में उत्साह के स्थान पर आवेग गर्व अमर्ष आदि का

१ भवभूति—महावीर चरित १।४ के बाद मुरारि—अनर्घराघव १।११ के बाद
राजशेखर—बाल रामायण १।१२,१६ १८

२ मानस १।८-१२

शोध में पर्यवसान दिखलाया गया है, जिससे राम के गौरव और उदासीन स्वभाव का सरस चित्रण नहीं हो सका है।

'मानस' के 'खर-संवाद में भी राम का यही उत्साह दर्शनीय है —

'हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं ॥
रिपु बलवन्त देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं ॥
जो न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतउं न काहू॥ १[१]

इसमें राम की रणवीरता के अतिरिक्त उनकी कर्मवीरता का भी सरस वर्णन किया गया है। संस्कृत-साहित्य में इसका कहीं संकेत भी नहीं मिलता है। राम की 'कर्म वीरता' के वर्णन उनके कैकयी-संवाद में भी प्राप्त होते हैं। 'वनगमन' की आज्ञा से क्षुब्धता के स्थान पर उनका उत्साह प्रदर्शन उनकी अपूर्व दृढ़ता का प्रतिपादन करता है।[2] संस्कृत-साहित्य में रामायण-मंजरी ' रामचरित' और उदाररराघव' आदि में भी यह संवाद मिलता है, किन्तु वहाँ मानस' के राम की सी तत्परता एवं कर्मठता के दर्शन नहीं होते हैं। 'मुनि-मिलन' के प्रसंग में भी राक्षसों से त्रस्त मुनियों के समक्ष समस्त राक्षसवध की प्रतिज्ञा[3] करना, राम के उत्साह का ही प्रतीक है। संस्कृत-साहित्य में इस प्रकार का सफल चित्रण नहीं है। 'मानस में जटायु और बालि से प्राणदान करने के लिए राम की प्रार्थना में तथा अपने द्वारा मारे गए राक्षसों को निजपद' देने में उनकी दया वीरता भी स्पष्ट है। संस्कृत-साहित्य में इसका कहीं संकेत भी नहीं है। राम की दानवीरता का सर्वश्रेष्ठ निरूपण विभीषण तिलक प्रसंग में अभी किया जा चुका है।[4]

मानस' के युद्ध-वर्णनों में प्राप्त वीर रस के सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि यहाँ तुलसी ने अनावश्यक विस्तारों से बचकर सरल सीधे और मार्मिक चित्रों को ही प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है जिससे 'रस-निष्पत्ति के उपयोगी उपकरण यहाँ स्वयमेव सुलभ हो गए हैं क्योंकि संस्कृत के कवि परम्परा से प्राप्त उन वर्णनों में 'वर्णन-विधा के कौशल पर ही बल देते रहे हैं, जिसके फलस्वरूप पर्याप्त विस्तार होते हुए भी उन वर्णनों में वह प्रेषणीयता नहीं मिलती है।

राम के अतिरिक्त भरत के 'राज्यत्याग में उनकी दानवीरता' और नन्दि-ग्राम प्रवास' में उनकी कर्मवीरता के सरस दर्शन होते हैं। भरत की 'चित्रकूट-यात्रा के प्रसंग में उनके प्रति निषाद और लक्ष्मण के क्रोधपूर्ण उत्साह का चित्रण आलम्बन के अनौचित्य के कारण- रसाभास' की कोटि में ही आता है उसे मन्यभाव की व्यंजना अथवा रौद्र को उदात्तता समझना ठीक नहीं है, जैसा कि कुछ विद्वान मानते हैं।

---

१ मानस ३।१९।४२ २ रा० मञ्जरी। अयोध्या १८२० ८२१
३ रामचरित ३।२०-२१ ४ उदाररराघव ४।७७-७९
५ मानस ३।९ ६ प्रस्तुत निबन्ध पृ० २८०
७ डा० माताप्रसाद गुप्त-तुलसीदास-द्वि० संस्करण पृष्ठ ३१८

वीर रस के अतिरिक्त प्रधान रस की योग्यता रखने वाले शृंगार और करुण रस का भी 'मानस' में विशेष निरूपण किया गया है। वहाँ शृङ्गार रस के सभी पक्षों का बड़ी योग्यता से प्रतिपादन दर्शनीय है। यह तुलसी की मौलिक प्रतिभा का ही प्रमाण है कि वे 'मानस' के विशिष्ट-वातावरण में शृङ्गार का भी सफल समन्वय कर सके हैं।

(३) शृङ्गार-रस-विवेचन—शृंगार रस का स्थायी भाव रति है जिससे मूलतः दाम्पत्ति-रति का ही बोध होता है। अतः काव्य में नायक के दाम्पत्य-संबन्धी राग-विलास का चित्रण ही प्राय इसके अन्तर्गत किया जाता है। इस सम्बन्ध में तुलसी की विवशता का पहले ही सङ्केत किया जा चुका है।[1] शृङ्गार के पूर्वराग संयोग और वियोग आदि सभी पक्षों का चित्रण वे बड़ी तत्परता के साथ आरम्भ करते हैं, किन्तु ऐसे अवसरों पर उनके 'कवि' पर उनका 'भक्त' प्रबल होता हुआ जान पड़ता है। कालिदास ने 'कुमार-सम्भव' में शिव-पार्वती के विलास वर्णन में अपने कवि के साथ कभी भी ऐसा अन्याय नहीं किया है। वस्तुतः कवि के लिए कुछ भी अकर्म नहीं है। संभवतः महात्मा तुलसीदास अपनी पत्नी रत्नावली के प्रेम की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप 'मानस' में वियोग शृंगार तक में नारी की बुराई कर जाते हैं और संयोग-शृंगार में तो वे उसे कोई प्रमुखता नहीं देना चाहते हैं—भले ही इससे रस निष्पत्ति उतनी सफल न हो सके। 'मानस' में शृंगार का यह संयत और मर्यादित भाव भी उसकी एक विशेषता बन गया है जिसके कारण उसको इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई है।

(४) पूर्वराग—मानस में जनक-वाटिका में राम और सीता के प्रथम दर्शन से उत्पन्न 'पूर्वराग' का सर्वश्रेष्ठ निरूपण किया गया है। वहीं पर राम के क्षोभ में 'रघुवंशिता'[2] और सीता के क्षोभ में 'जनक-प्रियता'[3] के स्मरण से एक विशिष्ट मर्यादा का समन्वय हो गया है। इस सम्बन्ध में 'प्रसन्नराघव' का वचन भी दर्शनीय है। वहाँ तभी तक मर्यादा है जब तक राम सीता को 'परस्त्री' समझते हैं, किन्तु उनको 'कुमारी' जानते ही उनका शृङ्गारी हृदय अनेक श्लोकों से अपनी सरसता की अभिव्यक्ति करने लगता है।[5] 'मैथिली कल्याण' में इस 'पूर्वराग' का अपूर्व विस्तार है जो अनेक स्थलों पर अश्लील तक हो गया है।[6] वहाँ राम और सीता का चित्रण साधारण लौकिक नायक और नायिका के रूप में ही किया गया है।

(५) संयोग शृङ्गार—इसी प्रकार संयोग-शृङ्गार में भी 'मानस' के चित्रण सर्वथा निष्कलुष हैं। यहाँ गार्हस्थ्य जीवन की विविध परिस्थितियों के बीच ही माधुर्य-भाव की सरस अभिव्यंजना की गई है जबकि संस्कृत के साहित्यकार संयोग और संभोग में अभेद मानकर अधिकतर कामप्रवृत्तियों के निरूपण में ही दत्तचित्त

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २०३
२ मानस १।२३० ४१ ४४
३ मानस १।२३१
४ मानस १।२३४
५ प्रसन्नराघव २।६ १०
६ मैथिलीकल्याण २।२८ के बाद, ३।१४

रहे हैं। 'मानस' में 'कोपभवन' में कैकेयी के रूठने और दशरथ के द्वारा उसको मनाने में संयोग-शृङ्गार का प्रथम सरस उल्लेख मिलता है—

सो० बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि ।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर ॥२।२४

प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरे । परिजन प्रजा सकल बस तोरे ॥

'रामायणमञ्जरी' के वर्णन में वह मार्मिकता और व्यापकता नहीं है—

प्रिये जहि प्रवृत्तस्य प्रकोपस्यास्य कारणम् ।
सर्वमात्मापि न बध्यस्त्वेत्कोपे हेतुतां गत ॥अयो० ७११

सीता को 'वन-सहगमन' से रोकने के लिए राम के अनुरोध में उनके मानसिक स्नेह का निरूपण किया जा चुका है।[1] वन की विकट परिस्थितियों में भी संयोग सुख का सरस अनुभव करने वाली सीता के चित्रण में 'संयोग-शृंगार' का वर्णन वस्तुतः स्पृहणीय है—

राम संग सिय रहति सुखारी । पुर परिजन गृह सुरति बिसारी ॥
छिनुछिनु पिय बिधु बदनु निहारी । प्रमुदित मनहु चकोर कुमारी ॥
नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी । हरषित रहति दिवस जिमि कोकी ॥
परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा । प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा ॥
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिबर । असनु अमिअ सम कंद मूल फर ॥
नाथ साथ साँथरी सुहाई । मयन सयन सय सम सुखदाई ॥२।१४०

प्रसन्नराघव[2] 'हनुमन्नाटक'[3] और वाल्मीकिरामायण[4] आदि में प्राप्त 'वनप्रवास' के विस्तृत वर्णनों में एक तो उपर्युक्त संयोग सुख की कहीं कल्पना भी नहीं मिलती है दूसरे वहाँ वनपथ में सीता की थकावट और व्याकुलता का ही अधिक विस्तार से वर्णन किया गया है जिसका मानस में संकेत नहीं है तथा तीसरे 'मानस' के समान वहाँ अतीन्द्रिय सुख का उल्लेख भी कहीं नहीं मिलता है।

(३) वियोग शृङ्गार—जहाँ तक वियोग शृंगार का सम्बन्ध है, 'मानस' में उसका मर्मस्पर्शी वर्णन प्राप्त होता है। 'सीताहरण' के पश्चात् राम की विरहता के चित्रण में तुलसी ने भाव और कला का विशिष्ट सामञ्जस्य किया है—

.... । पूछत चले लता तरु पाँती ॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रबीना ॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी । कमल सरद ससि अहिभामिनी ॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं । नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू । हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥३।३०

यद्यपि हनुमन्नाटक में इसी भाव के मूल श्लोक में शोक और जुगुप्सा का ही अतिरेक है क्योंकि वहाँ भिन्न भिन्न अंगों के उपमानों द्वारा सीता पर किए गए

1 प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १७४ 2 प्रसन्नराघव ३।२३-३१
3 ,, २-१६ 4 वाल्मीकिरामायण ६।३४-२१

पाशविक अत्याचारों की यह सम्भावना की गई है—

> अम्भोऽयं हरिणि स्मितं हिमरुचा नेत्रं कुरंगीगणै
> कान्तिश्चम्पककुड्मलैः कलरवो हाहा हृतः कोकिलैः ।
> मार्दवैर्गमनं कथं कथमहो हंसैर्विमम्यातुरा
> कान्तारे सकलैर्विभज्य पशुपक्षीतासि भो मैथिली ॥१॥

इसके अतिरिक्त वहाँ परिचित स्थलों पर केलियों के स्मरण दशरथ तथा कैकयी के प्रति आक्रोश एवं राम के विविध प्रलाप का भी विस्तृत वर्णन मिलता है जिसमें मरणा अपंगल और अनौचित्य आदि का प्राधान्य है।

मानस' में हनुमान् के द्वारा सीता के पास भेजे गए राम के संदेश में भी राम के वियोगी पति-हृदय के प्रीतिरस' का बड़ा मार्मिक परिचय प्राप्त होता है—

> कहेउ राम बियोग तव सीता । मो कहुँ सकल भए बिपरीता ॥
> नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू । काल निसा सम निसि ससि भानू ॥
> कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा । बारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥
> तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥
> सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ॥२॥

इस संदेश पर प्रसन्नराघव' का बहुत बड़ा आभार है किन्तु वहाँ 'शृङ्गार' के संयोग से वह 'कामी' हो गया है।[१] इसके अतिरिक्त 'मानस' में सीता-सन्देश[२] की भी एक मौलिक योजना है जिसका संकेत अन्य ग्रन्थों में कहीं नहीं मिलता है।

इस प्रकार तुलसी का शृङ्गाररस-निरूपण 'मानस' में अपनी सीमाओं में आबद्ध होने पर भी भावव्यंजना में अपूर्व सक्षम है। संस्कृत के कवि इस दिशा में स्वतन्त्र होते हुए भी शृंगारिक ऐन्द्रियता से ऊपर नहीं उठ सके हैं और उसी के चित्र-चित्रण में स्वयं को कृतकार्य मानते रहे हैं। वस्तुतः तुलसी के लिए जो वर्जित क्षेत्र था वही उनका रमण-क्षेत्र था अथवा यों कहें कि जिस परिधि में संस्कृत के कवि व्यस्त रहे उसके बाहर का समस्त क्षेत्र तुलसी के अधिकार में था। इसीलिए संस्कृत के कवियों का शृङ्गार-वर्णन जहाँ एकोद्दिष्ट अथवा परम्परामुक्त है वहाँ तुलसी का यह वर्णन उदार व्यापक एवं विशाल है।

(७) करुण-रस—वीर और शृंगार के अतिरिक्त करुण-रस का भी 'मानस' में बड़ा मार्मिक वर्णन किया गया है। 'दशरथ-मरण' और लक्ष्मण-मूर्छा के प्रसंग इस दृष्टिकोण से विशेषतः उल्लेखनीय हैं। कवि के 'रस-कौशल' की परीक्षा वस्तुतः मार्मिक प्रसंगों की परिधि में ही हुआ करती है। हास्य तो मूर्खता से भी निष्पन्न किया जा सकता है, किन्तु रुदन के लिये अपेक्षित हृदय-द्राव विरल-साध्य होता है। सभी में कृतकार्य कवि 'रस सिद्ध' माने जा सकते हैं। महाकवि होना सरल है, किन्तु महान् कवि के लिये यह 'रस-सिद्धता' अनिवार्य है। इस दृष्टिकोण से

---

१ प्रसन्न राघव ६।४३-४४ २ मानस ५।११

तुलसी सचमुच महान् कवि हैं ।

'रामायणमञ्जरी'[1] और 'चम्पूरामायण'[2] आदि में दशरथ-मरण के प्रसंग में 'अन्धतापस शाप' के स्मरण का अधिक विस्तार होने के कारण वहाँ शोक की तीव्रता और मर्मस्पर्शिता का वह संकेत नहीं मिलता है । इसी प्रकार 'भट्टिकाव्य' में भी मरणोन्मुख दशरथ के मद्यपानादि से विराग और रानियों के रुदन केशलुञ्चन, वक्षाघात, भूषणत्याग भूपात और वलय भंग (चूड़ी फोड़ना) आदि के वर्णन से करुणरस के उत्तम निरूपण का एक प्रयास किया गया है ।[3] अन्य ग्रन्थों में इस प्रसंग को आवश्यक महत्त्व नहीं प्राप्त हुआ है । 'मानस' में 'लक्ष्मण मूर्छा' के प्रसंग में भी करुणरस का अतीव मार्मिक वर्णन मिलता है । शोक के आवेग से मर्यादा के बन्धन छिन्न भिन्न हो जाते हैं, इसीलिये 'मानस' के राम को अपने सत्य पालन पर भी क्षोभ हो जाना स्वाभाविक है । यह क्षोभ उनके हृदय के उत्पीड़न का ही द्योतक है किसी दौर्बल्य का नहीं–

जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू । पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू ॥
जैहउँ अवध कौन मुहुँ लाई । नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई ॥६।६१

मानसकार इस अवसर पर हनुमान् के आगमन को 'जिमि करुना महँ बीर रस' कह कर प्रसंग की अभीप्सित रसवत्ता की ओर संकेत भी करता है । संस्कृत साहित्य में भी इस प्रसंग में करुणरस का सुन्दर चित्रण किया गया है[4] किन्तु वहाँ एक तो राम भी लक्ष्मण के साथ ही आहत पड़े हुए दिखलाए गए हैं अतः उनके विलाप में वह समर्थता नहीं है और दूसरे वहाँ राम के अनुभावों में उनके उपर्युक्त क्षोभ का कहीं संकेत भी नहीं है जो कि शोक की पराकाष्ठा को व्यक्त करता हुआ करुणा-वस्था को पूर्णतया साकार बना देता है । इस प्रकार 'मानस' का करुणरस-निरूपण भी संस्कृत साहित्य की अपेक्षा अधिक सबल और सजग है ।

(८) भक्ति-रस—उपर्युक्त वीरादि रसों का निरूपण राम के 'नरतन' के सम्बन्धों को लेकर ही किया गया है किन्तु 'मानस' के इस रूप के अतिरिक्त उनके ब्रह्मरूप (निर्गुण) तथा विष्णुरूप (सगुण) का भी सविस्तार निरूपण प्राप्त होता है । अपने इन्हीं तीनों रूपों के सामञ्जस्य के कारण ही वे परम आराध्य हैं । ब्रह्मरूप निराकारता के फलस्वरूप केवल ज्ञान का विषय है, जबकि विष्णुरूप, साकारता के कारण भक्तों की श्रद्धा और भक्ति का आलम्बन भी हो जाता है । 'मानस' में इस 'विष्णुरूप' के साथ ही राम के 'महाविष्णुरूप' का भी अनेक स्थलों पर चित्रण किया

---

१ रा० मञ्जरी । अयोध्या । १२७-१८३

२ चम्पूरामायण २।१७-१८ ३ भट्टिकाव्य ३।२०-२२

४ भट्टिकाव्य १४।९२ ६। रा० मञ्जरी । युद्ध । ३११-३१९ राघवीय १६।२४-२६ रामचरित ४४।२७-३२, हनुमन्नाटक १३।६ ११ ३८, प्रसन्नराघव ७।१०-१२

गया है जिसमें वे विराट् विश्वव्यापक और देवकी से कोटि गुणित बलशाली' बतलाए गए हैं। संस्कृत-साहित्य में उनके इस रूप का संकेत कहीं नहीं है वहाँ केवल विष्णुरूप का ही वर्णन है। संभवत इसी परम्परा से प्रभावित होकर तुलसी ने राम के दिव्य रूप का निदर्शन कर दिया है और साथ ही उनको व्यापक सगुण ब्रह्म सिद्ध करने के लिए उन्होंने उनके महाविष्णुत्व की भी सफल कल्पना की है।

राम का यह ईश्वर रूप ही 'भक्ति-रस' का आलम्बन माना गया है। 'मानस' के छोटे बड़े सभी पात्र राम से अनपायिनी भक्ति की कामना करते हैं। दशरथ जनक, वशिष्ठ आदि गुरुजन भी इसी दृष्टिकोण से राम की वन्दना करते हैं। उनके भाइयों में भरत तो भक्ति के साकार रूप ही हैं। लक्ष्मण भी उनकी भक्ति से कुछ कम प्रभावित नहीं हैं। सुग्रीव और विभीषण आदि राम के मित्र होते हुए भी उनसे अविरल भक्ति की याचना करते हैं। रावण और कुम्भकर्ण आदि अनेक राक्षस भी वैर भाव से राम की भक्ति करते हैं और पुरस्कार स्वरूप उनसे 'सालोक्य मुक्ति' भी प्राप्त करते हैं। जटायु जैसे पक्षी भक्त को भी राम की कृपा से 'सारूप्य मुक्ति' मिल जाती है। मुख्य कथा के अतिरिक्त 'मानस' की भूमिका और उपसंहार भाग में भक्तिरस के अनुकूल वातावरण का बड़ा विस्तार मिलता है। तुलसी का सारा प्रयास इसी ओर केन्द्रित है कि ब्रह्म राम को लोग राजकुमार राम न समझ लें इसीलिए वे बीच-बीच में अपनी ओर से भी भक्ति के पोषक उपकरणों का विस्तृत वर्णन करते हुए चलते हैं। 'मानस' की स्तुतियों और वन्दनाओं का सहयोग भी इस दिशा में भुलाया नहीं जा सकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि तुलसी ने मानस में जिस भक्तिपूर्ण वातावरण का सृजन किया है वह अद्वितीय है। पुराणों को छोड़कर संस्कृत के काव्यों में वह कहीं भी सुलभ नहीं है।

(६) निष्कर्ष—इस रस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने मानस में विभिन्न रसों को उचित स्थान देते हुए 'वीर रस' की प्रमुख रूप से प्रतिष्ठा की है। संस्कृत साहित्य में भी कुछ नाटकों को छोड़कर सर्वत्र वीररस की ही प्रधानता प्राप्त हुई है। यह समानता होने पर भी 'मानस' की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें वीर रस के स्थायी भाव 'उत्साह' के अनेकानेक रूपों का बड़ी सफलता से निरूपण किया गया है किन्तु संस्कृत के साहित्यकार केवल युद्धोत्साह को ही उत्साह मानकर उसके सीमित क्षेत्र में ही अधिकतर प्रयत्नशील रहे हैं।

४ अलंकार-विवेचन

(१) अलंकार का अभिप्राय—'अलंकार' शब्द में 'अलं' का अर्थ है पूर्णता अतः उसका अभिप्राय सम्बन्धित वर्णन को पूर्णता प्रदान करना होता है। आज प्रबन्धता की प्रधानता में इस आलंकारिक पूर्णता की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। संभवतः इसीलिए संस्कृत के अधिकतर आचार्यों ने अलंकारों को [illegible]

शरीर-काव्य का शोभातिशायी किन्तु अस्थिर धर्म माना है,[1] इस के फलस्वरूप उन्होंने काव्य में रस निष्पत्ति के लिए अलंकारों की अनिवार्यता भी स्वीकार नहीं की है। 'शोभातिशय में अतिशय' की पूर्ति का पर्याय मानने वाले कुछ आचार्य और कवि अलंकारों की 'स्थिरधर्मता' का भी समर्थन करते हैं किन्तु यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार कालिदास की 'शकुन्तला' वल्कल से भी अधिक मनोज्ञ लगती है क्योंकि मधुर आकृतियों के लिए सभी कुछ स्वतः मण्डन हो जाता है,[2] उसी प्रकार भावप्रवण वर्णन के लिये फिर अलंकारों का कोई विशेष महत्त्व नहीं रह जाता है। 'आश्चर्य-चूडामणिकार' भी यही प्रतिपादित करते हैं कि जिसकी शोभा स्वाभाविक होती है उसको संस्कार की फिर कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है—

'यस्य नैसर्गिकी शोभा तन्न संस्कारमर्हति।
क कमा प्रक्षिप्ती मार्ष्टि कौस्तुभं केन रज्यते ॥ १।२४

इसके अतिरिक्त कविता में कभी कभी अधिक अलंकार भार स्वरूप भी हो जाते हैं क्योंकि वे उसके भाव (आत्मा) को ही दबा देते हैं। ऐसे काव्यों में अलंकारों की ठीक वही स्थिति मानी जाती है जो शरीर को सजाने वाले आभूषणों की हो जाती है। यह भी देखा गया है कि अधिकतर भावहीन काव्यों को ही अलंकारों की अपेक्षा होती है। जब कहने के लिये बहुत कम होता है, तब उसको बढ़ा कर कहने के लिये नवीन प्रकारों की खोज की जाती है। ये अलंकार वस्तुतः और कुछ नहीं केवल अभिव्यक्ति के ही विभिन्न प्रकार होते हैं। इनका सबसे बड़ा उपयोग भाव को सजाने तथा वर्ण्यवस्तु के रूप गुण और कर्म के अधिकाधिक तीव्र और आकर्षक अनुभव कराने में ही होता है। तुलसी ने भी इसी प्रयोजन से 'मानस' में विभिन्न स्थलों पर अलंकारों को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इन अलंकारों से तुलसी की मनोवैज्ञानिक प्रतिभा का सरस परिचय प्राप्त होता है। अनेक संस्टपूर्ण अवसरों पर तुलसी की ऐसी सूझ-बूझ ने अलंकारों के सहयोग से ही अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। यद्यपि तुलसी अलंकार निष्ठ नहीं हैं तो भी उनकी रचनाओं में अलंकारों का बहुत अनूठा प्रयोग हुआ है। इस कौशल में संस्कृत के कवि कितने सफल अथवा असफल हुए हैं यह दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो सकता है।

(२) शब्दालंकार—शब्द और अर्थ से सम्बद्ध होने के कारण ये अलंकार भी दो प्रकार के माने गये हैं। शब्दालंकारों में शब्द 'अपरिवृत्तिसह' होते हैं, जब कि अर्थालंकारों में उन शब्दों में यथेच्छ परिवर्तन भी किया जा सकता है किन्तु वहां प्रत्येक दशा में 'अर्थ' की अक्षुण्णता अनिवार्य होती है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष और वक्रोक्ति प्रमुख हैं। इनके भेदोपभेदों की चर्चा के लिये यहाँ अब काम नहीं है। मानस' में इन सभी अलंकारों का सहज रूप से विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। अनुप्रास के दर्शन तो प्रत्येक पंक्ति में सुलभ हैं क्योंकि इसके लिए

---

१ साहित्यदर्पण १०।१   २ अभिज्ञान शाकुन्तल १।२०

प्रयत्न की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती है। अन्य शब्दालंकार, जो ईषत् यत्नसाध्य हैं, 'मानस' की अपेक्षा संस्कृत साहित्य में ही प्रचुर परिमाण में दृष्टिगोचर होते हैं। संस्कृत के काव्यों में 'शब्द क्रीड़ा' का बाहुल्य रहा है। वहां तो प्रत्येक महाकाव्य में कुछ अध्यायों में निश्चित रूप से इस 'शब्द-वैचित्र्य' का प्रदर्शन किया जाता है। काव्यशास्त्रज्ञों के द्वारा ऐसे 'चित्रकाव्यों' को अधम की संज्ञा देने पर भी अनेक महाकवि इसके निरूपण में ही अपने गौरव एवं पाण्डित्य का अनुभव करते रहे हैं।

(३) अर्थालंकार—जहाँ तक अर्थालंकारों का सम्बन्ध है उनमें ही कवि के वास्तविक काव्यकौशल की परीक्षा होती है। इन अलंकारों में उपमा उत्प्रेक्षा और रूपक अत्यन्त महत्वपूर्ण अलंकार हैं और इन तीनों पर 'मानसकार' का अद्वितीय आधिपत्य है। संस्कृत-साहित्य में कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव दण्डी का पद-लालित्य और माघ की उपर्युक्त तीनों विशेषतायें अत्यन्त प्रसिद्ध मानी हैं किन्तु तुलसी के काव्य के समक्ष यह मान्यता फीकी पड़ जाती है।

(४) उपमा—उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक तीनों अलंकार सादृश्यमूलक हैं। इनमें उपमा में 'सादृश्य' वाच्य होता है, उत्प्रेक्षा में उसकी सम्भावना की जाती है और रूपक में उसका आरोप किया जाता है। तुलसी ने इस दिशा में सभी व्यावहारिक क्षेत्रों से चमत्कारपूर्ण उपमान संगृहीत किये हैं। 'रामचरित' और 'मानस' के रूपक में उन्होंने उपमा को 'वीचिविलास'[1] के समान मनोरम माना है और 'सीता सौन्दर्य वर्णन में उन्होंने सब उपमाओं को 'जूठनी'[2] और लघु[3] बतलाया है इससे उपमा के स्वरूप और विस्तार के सम्बन्ध में उनकी मर्मज्ञता का परिचय मिल जाता है। उनका 'मानस' उपमाओं का वस्तुतः अपूर्व भण्डार है, जिसमें सार्थक और समर्थ उपमानों का बड़ा सरस संचय दृष्टिगोचर होता है। लुप्तोपमा पूर्णोपमा और मालोपमा आदि उपमा के सभी भेदोपभेदों को 'मानस' में यथा-स्थान प्रचुरता के साथ आयोजित किया गया है। ग्रंथ के आरम्भ में ही उनके ये क्रमशः उदाहरण दर्शनीय हैं —

लुप्तोपमा —

'नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन वारिज नयन। १।१ सो० ३

पूर्णोपमा —

'साधु चरित सुभ सरिस कपासू। १।२

मालोपमा—

बंदउं खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनइ पर दोषा॥
पुनि प्रनवउं पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना॥

---

१ मानस १।३७ २ मानस १।२३०
३ " १।२४७

बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन पर दोष निहारा॥१।४

इन उपमानों में कोरा सादृश्य ही नहीं है अपितु उनसे कवि के भाव-सम्बन्धी विस्तृत अध्ययन और सूक्ष्मपर्यवेक्षण का भी प्रमाण मिलता है, जबकि संस्कृत के कवियों ने अपने अलंकारों में अधिकतर सादृश्य का ही ध्यान रखा है। उदाहरणार्थ वन प्रवासी राम सीता और लक्ष्मण के लिए संस्कृत के ग्रंथों में अनेक उपमान जुटाए गए हैं। 'उदार राघव' में वे तीनों आत्मा, विद्या और विवेक अथवा चन्द्र प्रभा और प्रसाद[1] 'रघुवीरचरित में सूर्य सन्ध्या और चन्द्र अथवा प्रदोष निशा और विनय,[2] प्रतिमा नाटक में सत्य, भक्ति और शील अथवा सूर्य, छाया और दिन[3] तथा प्रसन्नराघव में चन्द्र चन्द्रिका और प्रसाद अथवा मन विभूति और सुखमाय[4] के समान प्रस्तुत किए गए हैं जब कि 'मानस' में उनके लिए ब्रह्म माया और जीव, मदन रति और मधु अथवा विधु, रोहिणी और बुध[5] के सार्थक उपमानों का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार कैकयी वरदान-याचना प्रसंग में क्षुब्ध दशरथ को रामायण मञ्जरी में 'कृत्तमूल-द्रुम'[6] 'रामचरित' में दावाग्निदग्धित वनस्पति[7] 'उदारराघव' में 'मन्त्रोपनिबद्ध नागेन्द्र'[8] और 'प्रतिमा' नाटक में प्रलयकालीन उपल मेघ, क्षुब्ध महासमुद्र एवं राहुमुख सूर्य[9] के समान बतलाया गया है, जब कि 'मानस' में उनकी क्षुब्धता का यथार्थ चित्रण करने के लिए एक से एक बढ़कर समर्थ उपमान वर्णित हुए हैं —

सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू॥
भोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥
बोध छिद्र घन समय जिमि अतिहि भयिदा माघ ॥२।२९

'सीताहरण' के प्रसंग में संस्कृत-ग्रन्थों में रावण और सीता की तुलना के लिये अनेक उपमानों का प्रयोग किया गया है। उनको 'रामायणमञ्जरी' में जम्बूक और सिंह-शिशु,[10] 'महाभारत' में सूकर और करिणी,[11] 'प्रसन्नराघव' में सूर्य और चन्द्रलेखा[12] तथा 'रघुवीर चरित' में वायस और राजहंसी श्वान और अग्निवेदी एवं धूमकेतु और चन्द्रलेखा[13] के समान बतलाया गया है, जबकि 'मानस' में इस अवसर पर स्वयं सीता रावण को खद्योत सम और स्वयं को नलिनी अथवा उसको

---

1 उदार राघव ५।१०
2 रघुवीर चरित २।३-४
3 प्रतिमा २।८ ४।४
4 प्रसन्नराघव ५।१ के बाद ९०
5 मानस २।१११
6 रामायण मञ्जरी। अयोध्या। ७२७, ७३२ ७३५
7 रामचरित ६।२६
8 उदारराघव ७।१९
9 प्रतिमा २।१
10 रा० मञ्जरी। अरण्य।८१४
11 महाभारत। वन। २७८।१६
12 प्रसन्नराघव ५।४६
13 रघुवीरचरित ३।२७

राक्षस और स्वयं को पुरोडाश कहती हैं।[1] वहाँ जटायु रावण को म्लेच्छ और सीता को कपिला गाय कहता है। स्वयं मानसकार भी उनके लिए श्वान और मृगी के उपमान देते हैं।[2] इस उपमान-संग्रह से तुलसी की मौलिक प्रतिभा का पुष्ट प्रमाण मिल जाता है। इस सम्बन्ध में इतिहासकार स्मिथ कहते हैं कि 'उपमा कालिदासस्य' कह कर कालिदास की प्रशंसा की जाती है किन्तु उनकी सर्वोत्तम उपमाओं से भी 'मानस' की उपमायें अधिक समर्थ हैं।[3]

(२) उत्प्रेक्षा—उपमा के समान ही इस अलंकार का भी बड़ी समर्थता के साथ 'मानस' में प्रयोग किया गया है। संस्कृत-साहित्य में 'प्रसन्नराघव' के राम 'जनक-वाटिका' में सीता की नूपुर-ध्वनि सुनकर वहाँ उसके लिए 'राजहंस-शिंजित' की उत्प्रेक्षा करते हैं वहाँ 'मानस' के राम उसको 'विश्वविजयी मदन की दुन्दुभि' बतलाते हैं।[4] इसी प्रकार सीता के प्रथम दर्शन करने पर 'प्रसन्नराघव' के राम उनके लिये 'कामकौतुक-मंगलकलशदीपिका'[6] और 'मैथिली-कल्याण' के राम सौन्दर्य-सर्वस्व के तादात्म्य दर्शन[7] की सम्भावना करते हैं किन्तु 'मानस' के राम की उत्प्रेक्षायें इस प्रसंग में सर्वश्रेष्ठ हैं। वे कहते हैं —

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि दिखाई।
सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छविगृह दीपशिखा जनु बरई॥ १।२३०

'कैकयी-भर्त्सना' प्रसंग में भी संस्कृत-साहित्य में कैकयी के लिए अनेक उत्प्रेक्षाएं दृष्टिगोचर होती हैं। रामायण-मञ्जरी में उसको भुजाभिभूत कालसर्प और किल्विष-निर्मित[8] उदारराघव में मरणविपत्ती, मूर्तापविष्ट मृत्युदूती काल प्रसुप्त कालरात्रि और दर्पप्रविष्ट भद्रकाली[9] तथा राघवीय में कालभुजंगी[10] कहा गया है, किन्तु 'मानस' में उसके लिये 'सरोष भुजंग भामिनि', 'रोष तरवारि' 'रोषतरंगिनी' 'जागृत समसान' और 'सनेह कठोरता'[11] की समर्थ सम्भावनायें की गई हैं। उनसे जिस समर्थ चित्र का निर्माण होता है वह संस्कृत की उत्प्रेक्षाओं से कदापि सम्भव नहीं है।

(३) रूपक—'मानस' के अलंकारों में रूपक का सर्वोपरि स्थान है। वस्तुतः तुलसी रूपकों के राजा हैं। उनके सभी भेदों के निरूपण में उनकी सर्वाधिक रुचि है। सांग और परम्परित रूपकों से तो उनको इतना मोह हो गया है कि कुछ

---

१ मानस ३।२८–२९
२ मानस ३।२९
३ वी०ए० स्मिथ—अकबर दी ग्रेट मुगल—पृष्ठ ४२०
४ प्रसन्नराघव २।१६ के बाद
५ मानस १।२३०
६ प्रसन्नराघव २।७
७ मैथिली कल्याण १।२०,२२
८ रा० मञ्जरी। अयोध्या ।७२०,७२४
९ उदार राघव ४।१४,१७,१८
१० राघवीय। ५।१८
११ मानस २।२९,३१,३४,३५,४१

विद्वान् इसे 'एक बड़ी परम्परा का अनुसरण मानते हैं।'[1] वस्तुतः लम्बे-लम्बे सांग रूपकों का बहुत बड़ी मात्रा में, जैसा सफल निर्वाह 'मानस' में किया गया है, वैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता है। रामचरित और मानस, रामकथा और सरयू, विज्ञान और दीप, रामभक्ति और चिन्तामणि तथा मानसिक भाव और रोग के सुदीर्घ रूपक अति प्रसिद्ध हैं।[2] लघुरूपकों में सन्त-समाज और तीर्थराज, तीर्थराज और राजा, भरतप्रेम और समुद्र, कैकेयी-कुमति और बढ़ई, सम्पत्ति और चकवी, रामागमन और सुराज, जनक-सेना और करुणा नदी, काम और राजा, नारी और मकरंद, जय और रथ तथा रामप्रताप और सूर्य आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है।[3] संस्कृत-साहित्य में यद्यपि रूपकों का बहुत मान है फिर भी उनमें अधिक अंगों तक सादृश्य-विधान का सफल निर्वाह कहीं नहीं प्राप्त होता है। 'मानस' में रूपक योजना के प्रति तुलसी अत्यधिक आकृष्ट दिखलाई पड़ते हैं। इस दिशा में उन्होंने अनेकानेक अंगों का बड़ी दूर तक अनुकूल निर्वाह प्रस्तुत किया है।

तुलसी के रूपकों में मात्रा की अधिकता के साथ-साथ गुणों की भी अपनी विशिष्टता है जो अपेक्षित चित्र विधान में सर्वथा सक्षम है। उदाहरणार्थ दो रूपक यहाँ दिये जा रहे हैं। 'रामचरित' में कैकेयी-सांपिनी और कालभुजंगी के रूपक के साथ 'मानस' का यह सांग रूपक तुलनीय है —

'कैकेयीव कुटिलकुटिलगतिर्भुजगा कालपवनविहसिता ॥
काल भयी समय सुदीर्घनिहित हृदयरोषदमनि कालभुजंगी ॥ १।१८

मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई।
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई ॥ २।२५

यही नहीं इस प्रसंग में 'मानस' की यह रूपक माला भी दर्शनीय है —

बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली ॥
भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाजु ॥२।२८
आगें दीखि जरत रिस भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी ॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी सान बनाई ॥
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ॥२।३१
अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भवँर कूबरी बचन प्रचारा ॥

---

1 डा० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पाँचवाँ संस्करण पृ० १४४
2 मानस १।३६–४१, ११४१, ७।११७–११८ १२० १२१–१२२
3 मानस १।२–३ १।१०५,२०६–२१०, २१२,३१४,३१५–३३१ २०४–२०६, ३।३७–३८, २।७४, ६।८०,७।३१

राक्षस और स्वयं को पुरोडाश कहती है।[1] वहीं जटायु रावण को श्वान और सीता को कपिला गाय कहता है। स्वयं मानसकार भी उनके लिए व्याघ्र और मृगी के उपमान देते हैं।[2] इस उपमान-संग्रह से तुलसी की मौलिक प्रतिभा का पुष्ट प्रमाण मिल जाता है। इस सम्बन्ध में इतिहासकार स्मिथ कहते हैं कि 'उपमा कालिदासस्य' कह कर कालिदास की प्रशंसा की जाती है किन्तु उनकी सर्वोत्तम उपमाओं से भी 'मानस' की उपमायें अधिक समर्थ हैं।[3]

(५) उत्प्रेक्षा—उपमा के समान ही इस अलंकार का भी बड़ी सफलता के साथ 'मानस' में प्रयोग किया गया है। संस्कृत-साहित्य में 'प्रसन्नराघव' के राम 'जनक-वाटिका' में सीता की नूपुर-ध्वनि सुनकर जहाँ उसके लिए 'राजहंस-शिंजित' की उत्प्रेक्षा करते हैं, वहीं 'मानस' के राम उसको 'विश्वविजयी मदन की दुन्दुभि' बतलाते हैं।[5] इसी प्रकार सीता के प्रथम दर्शन करने पर 'प्रसन्नराघव' के राम उनके लिये 'कामक्रीड़ा मदनकलमीदीपिका'[6] और 'मैथिली-कल्याण' के राम 'सौन्दर्य-सर्वस्व के तादात्म्य दर्शन'[7] की सम्भावना करते हैं किन्तु 'मानस' के राम की उत्प्रेक्षायें इस प्रसंग में सर्वश्रेष्ठ हैं। वे कहते हैं —

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि दिखाई।
सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई॥ १।२३०

'कैकयी-भर्त्सना' प्रसंग में भी संस्कृत-साहित्य में कैकयी के लिए अनेक उत्प्रेक्षाएं दृष्टिगोचर होती हैं। रामायण-मञ्जरी में उसको मुखाभिमुख कालसर्प और किल्बिष-निधि,[8] उदारराघव में धर्मजलधी, पृथ्वीविष्ट मृत्युरी काल प्रयुक्त कालरात्रि और मर्मप्रविष्ट शलाका[9] तथा राघवीय में कालभुजंगी[10] कहा गया है किन्तु 'मानस' में उसके लिये सरोष भुजंग भामिनि, 'दीप तमकारि', 'रोषतरंगिनी बाढ़त बखान' और 'सतेह कठोरता'[11] की समान सम्भावनायें की गई हैं। उनसे जिस समर्थ बिम्ब का निर्माण होता है वह संस्कृत की उत्प्रेक्षाओं से कदापि सम्भव नहीं है।

(६) रूपक—'मानस' के अलंकारों में रूपक का सर्वोपरि स्थान है। वस्तुतः तुलसी रूपकों के राजा हैं। उनके सभी भेदों के निरूपण में उनकी सर्वाधिक रुचि है। सांग और परम्परित रूपकों से तो उनको इतना मोह हो गया है कि रूप

---

१ मानस ३।२८-२९
२ मानस ३।२९
३ वी०ए० स्मिथ—अकबर दी ग्रेट मुगल—पृष्ठ ४२०
४ प्रसन्नराघव २।१ के बाद
५ मानस १।२३०
६ प्रसन्नराघव २।७
७ मैथिली कल्याण १।२०-२२
८ रा० मञ्जरी। अयोध्या ।७६०,७६४
९ उदार राघव ७।५४,५०,५८
१० राघवीय। २।१८
११ मानस २।२५,११,१४,१९ ४१

विद्वान् उसे 'एक नई परम्परा का अनुसरण मानते हैं।'[1] वस्तुतः लम्बे-लम्बे सांग रूपकों का बहुत बड़ी मात्रा में, जैसा सफल निर्वाह 'मानस' में किया गया है, वैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता है। रामचरित और मानस, रामकथा और सरयू, विज्ञान और दीप, रामभक्ति और चिन्तामणि तथा मानसिक भाव और रोग के सुदीर्घ रूपक अति प्रसिद्ध हैं।[2] लघुरूपकों में सन्त-समाज और तीर्थराज, तीर्थराज और राजा, भरतयश और चन्द्रमा, कैकयी-कुमत और बढ़ई, सम्पत्ति और चकवी रामागमन और सुराज, जनक-सेना और करुणा नदी काम और राजा नारी और वसन्त, धर्म और रथ तथा रामप्रताप और सूर्य आदि का महत्वपूर्ण स्थान है।[3] संस्कृत-साहित्य में यद्यपि रूपकों का बहुत मान है, फिर भी उनमें अधिक अंगों तक सादृश्य-विधान का सफल निर्वाह कहीं नहीं प्राप्त होता है। 'मानस' में रूपक योजना के प्रति तुलसी अत्यधिक आकृष्ट दिखलाई पड़ते हैं। इस दिशा में उन्होंने अनेकानेक अंगों का बड़ी दूर तक अनुकूल निर्वाह प्रस्तुत किया है।

तुलसी के रूपकों में मात्रा की अधिकता के साथ-साथ गुणों की भी अपनी विशिष्टता है जो अपेक्षित चित्र-विधान में सर्वथा सक्षम है। उदाहरणार्थ दो रूपक यहाँ दिये जा रहे हैं। 'रामचरित' में कैकयी-वापी और रामभुजंगी के रूपक के साथ 'मानस' का यह सांग रूपक तुलनीय है —

कैकेयीन्द्र दुहितुर्भवनतापुरसूता वरयुक्तिरसना ॥
वाक् मयी तदन सूर्छेर्ऽतिरम दाहनरैऽग्रमति रामभुजगी ॥ ३।१८

मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई।
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई ॥ २।२५

यहीं नहीं इस प्रसंग में मानस की यह रूपक माला भी दर्शनीय है —

बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली ॥
भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकर बाजु ॥२।२८

आगें दीखि जरत रिस भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी ॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरीं सान बनाई ॥
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ॥२।३१

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भवँर कूबरी बचन प्रचारा ॥

---

1 डा० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पाँचवां संस्करण पृ० १४५
2 मानस १।१९–३१ ३६ ४१, ७।११७–११८,१२०,१२१–१२२
3 मानस १।१२–३,११।०५ २०९–२१० २१२,२१६,२१८–२३१,२७२–२७६, ३।३०–३८, ३।४४ ६।८०,७।३१

रावण और स्वयं को पुरोडाश कहती है।[1] वहाँ जटायु रावण को श्येन और सीता को कपिला गाय कहता है। स्वयं मानसकार भी उनके लिए श्वान और मृगी के उपमान देते हैं।[2] इस उपमान-संग्रह से तुलसी की मौलिक प्रतिभा का पुष्ट प्रमाण मिल जाता है। इस सम्बन्ध में इतिहासकार स्मिथ कहते हैं कि 'उपमा कालिदासस्य कह कर कालिदास की प्रशंसा की जाती है किन्तु उनकी सर्वोत्तम उपमाओं से भी 'मानस' की उपमायें अधिक समर्थ हैं।[3]

(२) उत्प्रेक्षा—उपमा के समान ही इस अलंकार का भी बड़ी समर्थता के साथ मानस में प्रयोग किया गया है। संस्कृत-साहित्य में 'प्रसन्नराघव' के राम जनक-वाटिका में सीता की नूपुर-ध्वनि सुनकर वहाँ उसके लिए राजहंस-विचित की उत्प्रेक्षा करते हैं वहाँ 'मानस' के राम उसको विश्वविजयी मदन की दुन्दुभि बतलाते हैं।[4] इसी प्रकार सीता के प्रथम दर्शन करने पर 'प्रसन्नराघव' के राम उनके लिये 'कामक्रीडा मणिमयकलशीदीपिका'[6] और 'मैथिली-कल्याण' के राम 'सौन्दर्य-सर्वस्व के तारतम्य दर्शन'[7] की सम्भावना करते हैं किन्तु 'मानस' के राम की उत्प्रेक्षायें इस प्रसंग में सर्वश्रेष्ठ हैं। वे कहते हैं—

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि दिखाई।
सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई॥ १।२३०

कैकेयी-वरयाचना' प्रसंग में भी संस्कृत-साहित्य में कैकेयी के लिए अनेक उत्प्रेक्षाएं दृष्टिगोचर होती हैं। रामायण-मञ्जरी में उसको भुजाभिभूत कालसिक्त और किल्बिष-निर्मित,[8] उदारराघव में मर्मवेधयष्टी, मूर्ध्नोपविष्ट मृत्युदूती काल प्रयुक्त कालरात्रि और मर्मप्रविष्ट करकाली[9] तथा रामगीत में कालभुजंगी[10] कहा गया है, किन्तु 'मानस' में उसके लिये 'सरोष भुजंग-भामिनि, रोष तरवारि', 'रोषतरंगिनी' 'जागृत मसान' और 'बरेहु कठोरता'[11] की समान सम्भावनायें की गई हैं। उनसे जिस समर्थ चित्र का निर्माण होता है वह संस्कृत की उत्प्रेक्षाओं से कदापि सम्भव नहीं है।

(३) रूपक—'मानस' के अलंकारों में रूपक का सर्वोपरि स्थान है। वस्तुतः तुलसी रूपकों के राजा हैं। उनके सभी भेदों के निरूपण में उनकी सर्वाधिक रुचि है। सांग और परम्परित रूपकों से तो उनको इतना मोह हो गया है कि कुछ

---

१ मानस ३।२८-२९
२ मानस ३।२९
३ वी०ए० स्मिथ–अकबर दी ग्रेट मुगल–पृष्ठ ४२०
४ प्रसन्नराघव २।१६ के बाद
५ मानस १।२३०
६ प्रसन्नराघव २।७
७ मैथिली कल्याण १।२०,२२
८ रा० मञ्जरी । अयोध्या ।७२०,७२४
९ उदार राघव ४।१४,१७,१८
१० रामगीत । ५।१८
११ मानस २।२५,३३,३४,३६,४१

विद्वान् इसे 'एक नयी परम्परा का अनुसरण मानते हैं।'[1] वस्तुतः सम्पूर्ण-सांगोपांग रूपकों का बहुत बड़ी मात्रा में, जैसा सफल निर्वाह 'मानस' में किया गया है, वैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता है। रामचरित और मानस, रामकथा और सरयू, विज्ञान और दीप, रामभक्ति और चिन्तामणि तथा मानसिक भाव और रोग के सुदीर्घ रूपक अति प्रसिद्ध हैं।[2] लघुरूपकों में सन्त-समाज और तीर्थराज, तीर्थराज और राजा, भरतप्रेम और चन्द्रमा, कैकयी-कुमत और बढ़ई, सम्पत्ति और चकवी, रामाश्रम और सुराज, जनक-सेना और करुणा नदी, काम और राजा, नारी और महावत, धर्म और रथ तथा रामप्रताप और सूर्य आदि का महत्वपूर्ण स्थान है।[3] संस्कृत-साहित्य में यद्यपि रूपकों का बहुत मान है, फिर भी उनमें अधिक अंशों तक सादृश्य-विधान का सफल चित्रण नहीं नहीं प्राप्त होता है। 'मानस' में रूपक योजना के प्रति तुलसी अत्यधिक आकृष्ट दिखाई पड़ते हैं। इस दिशा में उन्होंने अनेकानेक अंशों का बड़ी दूर तक अनुकूल निर्वाह प्रस्तुत किया है।

तुलसी के रूपकों में मात्रा की अधिकता के साथ-साथ गुणों की भी अपनी विशिष्टता है जो अपेक्षित चित्र विधान में सर्वथा सक्षम है। उदाहरणार्थ दो रूपक यहाँ दिये जा रहे हैं। 'रामगीत' में कैकयी-नागी और कालभुजंगी के रूपक के साथ 'मानस' का यह सक्षम रूपक तुलनीय है —

'कैकेय्या दुहितुर्मुखपद्मात्सुता वरयुग्मविषधरा ॥
वाक्सर्पी तदनु पूर्वपवित्र दाशरथेरपि कालभुजंगी ॥' ३।१८
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई।
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई ॥ २।२५

यहीं नहीं इस प्रसंग में 'मानस' की यह रूपक-माला भी दर्शनीय है —

बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली ॥
भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाजु ॥२।२८
आगें दीखि जरत रिस भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी ॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी सान बनाई ॥
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ॥२।३१
अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा ॥

---

1 डा० रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास पाँचवाँ संस्करण पृ० १४५
2 मानस १।३६–४३, ३।४३, ७।११७–११८,१२० १२१–१२२
3 मानस १।२–३,१।१०५,२।०९–२१०, २१२,२१५ २१४–२३१,२७२–२७५, ३।३७–३८, ३।४४, ६।८०,७।३१

राक्षस और स्वर्ग को पुरोडाश कहती है।[1] वहाँ जटायु रावण को म्लेच्छ और सीता को कपिला गाय कहता है। स्वयं मानसकार भी उनके लिए व्याघ्र और मृगी के उपमान देते हैं।[2] इस उपमान-संग्रह से तुलसी की मौलिक प्रतिभा का पुष्ट प्रमाण मिल जाता है। इस सम्बन्ध में इतिहासकार स्मिथ कहते हैं कि 'उपमा कालिदासस्य' कह कर कालिदास की प्रशंसा की जाती है किन्तु उनकी सर्वोत्तम उपमाओं से भी 'मानस' की उपमायें अधिक समर्थ हैं।[3]

(५) उत्प्रेक्षा—उपमा के समान ही इस अलंकार का भी बड़ी समर्थता के साथ 'मानस' में प्रयोग किया गया है। संस्कृत-साहित्य में 'प्रसन्नराघव' के राम 'जनक-वाटिका' में सीता की नूपुर-ध्वनि सुनकर वहाँ उसके लिए 'राजहंस-लिखित' की उत्प्रेक्षा करते हैं वहाँ 'मानस' के राम उसको 'विश्वविजयी मदन की दुन्दुभि' बतलाते हैं।[4] इसी प्रकार सीता के प्रथम दर्शन करने पर 'प्रसन्नराघव' के राम उनके लिये 'कामक्रीडा भवनकनकदीपिका'[5] और 'मैथिली-कल्याण' के राम 'सौन्दर्य-सर्वस्व के तादात्म्य दर्शन'[6] की सम्भावना करते हैं किन्तु 'मानस' के राम की उत्प्रेक्षायें इस प्रसंग में सर्वश्रेष्ठ हैं। वे कहते हैं —

> जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि दिखाई।
> सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छबिगृह दीपसिखा जनु बरई॥ १।२३०

'कैकयी-वरयाचना' प्रसंग में भी संस्कृत-साहित्य में कैकयी के लिए अनेक उत्प्रेक्षाएं दृष्टिगोचर होती हैं। रामायण-मञ्जरी में उसको भूताभिभूत कालक्षिप्त और किल्विष निमित[8] उत्तररामचरित में मणवल्लनम्ती मूर्छोपविष्ट मृत्युदूती काल प्रयुक्त कालरात्रि और सर्गप्रविष्ट महाकाली[9] तथा राघवीय में कालभुजंगी[10] कहा गया है, किन्तु 'मानस' में उसके लिये सरोष भुजंग-भामिनि, रोष तरंगिनि' 'रोपतरंगिनी' बाढ़त स्मशान' और 'सदेह कठोरता'[11] की उत्तम सम्भावनायें की गई हैं। उनसे जिस समर्थ चित्र का निर्माण होता है वह संस्कृत की उत्प्रेक्षाओं से कदापि सम्भव नहीं है।

(६) रूपक—'मानस' के अलंकारों में रूपक का सर्वोपरि स्थान है। वस्तुतः तुलसी रूपकों के राजा हैं। उनके सभी भेदों के निरूपण में उनकी सर्वाधिक रुचि है। साँग और परम्परित रूपकों से तो उनको इतना मोह हो गया है कि कुछ

---

१ मानस ३।२८–२९
२ मानस ३।२९
३ वी०ए० स्मिथ—अकबर दी ग्रेट मुगल—पृष्ठ ४२०
४ प्रसन्नराघव २।६ के बाद
५ प्रसन्नराघव २।७
५ मानस १।२३०
७ मैथिली कल्याण १।२०,२२
८ रा० मञ्जरी। अयोध्या।७५०-७५४
९ उदार राघव ७।१४,१७ १८
१० राघवीय। ४।१८
११ मानस २।२४ ३१ ३४ ३६ ४१

विद्वान् उसे एक नई परम्परा का अनुसरण मानते हैं।[1] वस्तुतः सांग-सांग रूपकों का बहुत बड़ी मात्रा में, जैसा सफल निर्वाह 'मानस' में किया गया है, वैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता है। रामचरित और मानस, रामकथा और सरयू, विज्ञान और दीप, रामभक्ति और चिन्तामणि तथा मानसिक भाव और रोग के सुदीर्घ रूपक अति प्रसिद्ध हैं।[2] लघुरूपकों में सन्त-समाज और तीर्थराज, तीर्थराज और राजा, भरतयश और चन्द्रमा, कैकेयी-कुमत और बढ़ई, सम्पत्ति और चकवी, रामायण और सुराज, जनक-सेना और करुणा नदी, काम और राजा, नारी और बसन्त, यम और रथ तथा रामप्रताप और सूर्य आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है।[3] संस्कृत-साहित्य में यद्यपि रूपकों का बहुत मान है फिर भी उनमें अधिक अंगों तक सादृश्य-विधान का सफल निर्वाह कहीं नहीं प्राप्त होता है। 'मानस' में रूपक-योजना के प्रति तुलसी अत्यधिक आकृष्ट दिखलाई पड़ते हैं। इस दिशा में उन्होंने अनेकानेक अंगों का बड़ी दूर तक अनुकूल निर्वाह प्रस्तुत किया है।

तुलसी के रूपकों में भाषा की प्रांजलता के साथ-साथ गुणों की भी अपनी विशिष्टता है या अपेक्षित चित्र विधान में सर्वथा सक्षम है। उदाहरणार्थ दो रूपक यहाँ दिये जा रहे हैं। 'रामगीत' में कैकयी-पापी और कालभुजंगी के रूपक के साथ 'मानस' का यह सांगम रूपक तुलनीय है —

'कैकेयेन्द्र दुहितुर्मुखदर्वीदुरुक्ता वरयुगविषदंष्ट्रा ॥
वाङ्मयी तमथ मूर्छयतिस्म ज्ञानरेखमपि कालभुजंगी ॥ २।१८
मानहुँ सरोष भुजंग भामिनि बिषम भाँति निहारई।
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई ॥ २।२५

यही नहीं इस प्रसंग में 'मानस' की यह रूपक-माला भी दर्शनीय है —

बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहँग कुलह जनु खोली ॥
भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकर बाजु ॥२।२८
आगें दीखि जरत रिस भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी ॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी सान बनाई ॥
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ॥२।३१
अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भंवर कूबरी बचन प्रचारा ॥

---

१ डा० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पाँचवाँ संस्करण, पृ० १४५

२ मानस १।३५–३६, ३६ ४३, ७।११७–११८ १२० १२१–१२२

३ मानस १।२–३,१।१०५ २०१–२१०, २१२,२१५,२१५–२३६,२०५–२०६, ३।१७–१९, ३।४४, ६।८०,७।३१

वाहत भुजरूप तव मुसा । भली विपति वारिधि अनुकूला ॥२।१४

इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'मानस' के रूपक अत्यधिक समर्थ और चित्र-विधायक हैं। परशुराम के समरयज्ञ के इस रूपक में भी चित्रांकन की विशेषता द्रष्टव्य है—

चाप स्रुवा सर आहुति जानू । कोप मोर अति घोर कृसानू ॥
समिधि सेन चतुरंग सुहाई । महा महीप भए पसु आई ॥
मैं एहि परसु काटि बलि दीन्हे । समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे ॥१।२८३

इस प्रसंग के सम्बन्ध में प्रसन्नराघव[1] अनर्घराघव[2], बालरामायण[3] और हनुमन्नाटक[4] के तत्सम रूपकों में केवल जटिल समास-योजना के साथ निरंग रूपक की ही प्रभुता है। सांगरूपकों के अतिरिक्त परम्परित रूपकों में भी तुलसी ने जिस विशिष्टता का प्रदर्शन किया है वह संस्कृत साहित्य में दुर्लभ है।

(७) अन्य अलङ्कार—संस्कृत के आचार्यों ने अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन के साथ अलंकारों की संख्या का बहुत बड़ा विस्तार निर्धारित किया है। उनके भेदोपभेदों की संख्या तो अगण्य है। वस्तुत ये सभी अलंकार साम्य-मूलक, वैषम्य-मूलक और अनेकार्थ-मूलक-इन चारों वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं। साम्य-मूलक अलंकारों में उपर्युक्त उपमादि के अतिरिक्त, अपह्नुति उत्प्रेक्षा सन्देह भ्रान्तिमान्, अन्योक्ति, प्रतीप, अतिशयोक्ति, स्मरण और अर्थान्तरन्यास आदि वैषम्यमूलक में व्यतिरेक, विभावना असंगति विशेषोक्ति, विषम, तद्गुण, मीलित और व्याघात आदि वस्तुमूलक में यथासंख्य सहोक्ति पर्याय दीपक परिकर, परिकरांकुर सार एकावली आदि और अनेकार्थमूलक में विरोधाभास परिसंख्या व्याजोक्ति और श्लेष आदि अलंकार समाविष्ट हो जाते हैं। 'मानस में इनके अतिरिक्त अन्यान्य अनेक अलंकारों के भी उदाहरण बड़ी सरलता से मिल जाते हैं। संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध अलंकारों के साथ 'मानस' के अलंकारों की तुलना करने से 'मानसकार' की प्रौढ़ कल्पनाशक्ति और विस्मयचमत्कार-विधायिनी अद्वितीय प्रतिभा का भी परिचय प्राप्त हो जाता है। विस्तार-भय के कारण यहाँ कुछ थोड़े से ही अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

(८) उल्लेख—सीता-स्वयंवर-सभा में राम के दर्शन से प्रभावित दर्शकों की भावना में इसका श्रेष्ठ चित्रण मिलता है—

जिन्ह के रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥
देखहिं रूप महा रनधीरा । मनहुँ बीर रसु धरें सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा । तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा ॥

---

१ प्रसन्नराघव ४।११-१४ २ अनर्घराघव ४।२२ १७ ४४
३ बाल रामायण ४।६५ ४ हनुमन्नाटक १।११
५ मानस १।२४६, २७, २४१, २४०

पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई॥
नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप॥१।२४१
बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥
हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता॥१।२४२

इस प्रसंग में 'भागवत' का 'उल्लेख' भी दर्शनीय है—

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरो, स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान ।
गोपानां स्वजनो सतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रो शिशु ॥
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्वं परं योगिनाम ।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रज ॥१०।४३।१७

मानस के उल्लेख पर 'भागवत' का प्रभाव अवश्य है किन्तु 'मानस' के सामने वह निष्प्रभवत् लगता है। इसके अतिरिक्त 'मानस' की कल्पना में जो पुष्टता प्रौढ़ता और विस्तार है वह 'भागवत' में नहीं है। 'भागवत' पर आधारित होने के कारण ही उसको हीन[1] मानने की बात समझ में नहीं आती है।

(१) अतिशयोक्ति—सीता-सौन्दर्य-वर्णन में तुलसी ने इस अलंकार का उत्कृष्ट निरूपण किया है—

सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदम्बिका रूप गुन खानी॥
जो छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मन्दरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
एहि बिधि उपजी लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय सम तूल॥१।२४७

इस सम्बन्ध में संस्कृत के कवियों की ये कल्पनायें भी तुलनीय हैं—

एतां यथा दृष्टवतनमायताक्षी संसारसारनिचयेन विधाय वेधा ।
साक्षे दिदृक्षा मनसा परिरब्धसारमाराद् स मां किरति येन घनैः मिताक्षी ॥[2]

— — —

सुधासुधीमोल्लसदिन्दुभासो मधाम्बुराम्भोजमृणालिकानाम् ।
रम्भामभीक्ष्ण्यांपरीरसाम्नो तस्यास्तनु सारसमाहृति सा[3] ॥

— — —

---

१ डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास—पृष्ठ ३४१
२ बालरामायण १।११ ३ रामचरित ५।११

याता ध्याननिमीलिताक्षनिकरः कैश्चित्सरस्तीरके ।
पुष्ट्वेमां तपसस्य एव नियतं मङ्गलमायामभवात् ॥
यद् ग्मीलितदृष्टिदृष्टममुना स्वाप्नेतदीयं वपु
क्व ध्यानं क्व तप क्व चास्य नियम क्व ब्रह्मचर्यैरिति ॥[1]

इन सभी अतिशयोक्तियों से 'मानस' की अतिशयोक्ति रूपक एवं व्यतिरेक से पुष्ट होने के कारण अधिक चमत्कारपूर्ण है।

(१०) स्मरण—सुग्रीव से मिलने के पश्चात् उससे सीता का पट प्राप्त करके राम को उनके स्मरण से बड़ा शोक होता है। यहाँ मानसकार' ने आलंकारिक चमत्कार के साथ राम के स्वाभाविक गाम्भीर्य का भी बड़ा अच्छा समन्वय किया है—

मांगा राम तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥४।५

संस्कृत के साहित्यकार इस प्रसंग में राम के 'रामत्व' को ही भूल गए, इसीलिए 'हनुमन्नाटक' के राम के इस अवसर पर अनेक विचित्र उद्भावनायें करते हैं—

रे रे पत्र प्रणयकेलिषु कण्ठपाश' क्रीडापरिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते ।
शय्या निशीथसमये जनकात्मजाया प्राप्तं मया विधिवशादिदमुत्तरीयम् ॥[2]

'रामायणमञ्जरी' के राम तो विलाप करके मूर्छित ही हो जाते हैं—

राघवोऽपि तदादाय विन्यस्य निबिडं हृदि ।
क्व प्रियेति विलप्योच्चैर्निपपात महीतले ॥
चिरेण संज्ञामासाद्य बाष्पसंरुद्धलोचन ॥[3]

यही दशा 'राघवीय' के राम के भी हो जाती है—

आदायामुष्यापरावीक्षमीदं प्रत्युद्दीप्तस्फीतविश्लेषवेग
हा देवीति व्याहृतावोक्तिरर्थं रायूर्नासो मोमुहीतिस्म राम ॥[4]

इसी प्रकार अशोकवाटिका में 'राम-मुद्रिका' की प्राप्ति के पश्चात् सीता के 'स्मरण' का जो मर्यादापूर्ण वर्णन 'मानस' में मिलता है वह संस्कृत के ग्रन्थों में नहीं है—

तब देखी मुद्रिका मनोहर। रामनाम अंकित अति सुन्दर।
चकित चितव मुदरी पहचानी। हरष विषाद हृदय अकुलानी।
जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रची न जाई ॥५।१३

'प्रसन्नराघव' की सीता उस मुद्रिका के लिए दूसरी सीता की कल्पना करती है—

या गौरापि मनोरमरामचन्द्रहस्ताङ्गुलिप्रणयिनी सुमणा सुवृत्ता ॥
अन्येव सा जनकराजसुता कथं नु शंकामुपागतवती मणिमुद्रिकेयम् ॥६।१८

---

1 राघव पाण्डवीय ३।११ 2 हनुमन्नाटक ३।१
3 रा० मञ्जरी । किष्किन्धा । १४-१५
4 राघवीय १०।६६

'रामायण-मंजरी' में वे उसको 'राम' ही समझ कर प्रसन्न होती है—

सा ददर्श शोकार्ता हर्षबाष्पाप्लुतस्तनी ।
अमूर्तविविधालोकं पुलकाङ्कुरिताकृति ।। सुन्दर ११८

'आश्चर्यचूडामणि' की सीता के मन में इन दोनों भावों के अतिरिक्त आलिंगन आदि की अन्य अनेक कल्पनायें भी जागृत होती हैं—

स्वं लोचनमनस्यामृतं, इदं रजनीषु रत्नदीप इदं वरदा संकल्पविकल्पादर्श । अंगुलीयक ! त्वमप्यार्यपुत्रेण कान्तिना गृहीतोऽसि स्वमप्यहमिव रागवशीकृत । अपि चानुभीष्ट-प्रदानेन मामिति विप्रदार्यपुत्रम् ॥६।१४, १० के बाद ।

'राघवीय' की सीता आलिंगित होने की ही नहीं 'अंकोपविष्ट' होने तक की कल्पना करने लगती है—

मुदा तदादाय विदेहपुत्री मुहुः प्रमोदाश्रुभिरार्द्रयन्ती ।
आलिंगनवृत्तस्तुसदृशं प्रतीकं विलोपयुक्तं प्रियमेव मेने ।
अगाद चैनं मुदिते हनूमन् ददासि मे जीवितमद्य नाम्यत् ॥
संकोचविप्राप्ति नरेन्द्रसूनोरंकोपविष्टेव सुनिश्चिताऽस्मि ॥११।१४-१६

(१०) सन्देह—वन में राम-लक्ष्मण को देख कर हनुमान के 'सन्देह' का 'मानस' में बड़ा अच्छा निरूपण मिलता है—

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ । नर नारायन की तुम्ह दोऊ ॥
जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार ।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार ॥४।१

रामायणमञ्जरी का 'सन्देह' इस प्रसंग में द्रष्टव्य है—

मूर्धाभ्यस्मती योऽस्मि समारोप्य विविच्यते ।
युवां परं यदि वने नरनारायणावुभौ ॥ किष्किन्धा ।९

राघवीय के हनुमान भी ऐसा ही 'सन्देह' व्यक्त करते हैं—

मूर्खश्चक्रवती किं युवामुतोऽथवाऽपि विष्णू किमु मायावतीणौं ॥१०।१७

किन्तु 'मानस' के दोहे में जो चमत्कार है वह इनमें कहीं भी नहीं है।

(११) अत्युक्ति—'मानस' के इस समुद्रवर्णन में 'ऐश्वर्यस्तुति' से अधिक चमत्कार दिखाई पड़ता है—

प्रभु प्रताप बड़वानल भारी । सोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी ॥
तव रिपु नारि रुदन जल धारा । भरेउ बहोरि भयउ तेहिं खारा ॥५।१

जबकि हनुमन्नाटक के तत्सम वर्णन में यह विशेषता नहीं है।

राम स्वकरस्थचापच्युतशरशतसमालोलोकितः ।
सर्वे वारिधयस्तेऽपि रिपुवधूनेत्राम्बुभिः पूरिताः ॥१४।८१

(१२) दीपक—'पूर्णिमा-राघव-मुक्ता' में इस अलंकार का अच्छा निरूपण

किया गया है। यहाँ तुलसी ने वस्तु की अपेक्षा अपने उद्देश्य का अधिक ध्यान रखते हुये 'सत्कर्म' का भी सम्बन्ध निर्वाह कर दिया है—

राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ॥
संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा।
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥३।२१

यहाँ राजा आदि सभी कर्ताओं का केवल 'नासहिं' क्रिया के साथ सम्बन्ध विहित है। 'रामायण मञ्जरी' में भी इसी प्रसंग में यही अलंकार है, किन्तु न तो वहाँ पर्याप्त विस्तार है और न उचित निर्वाह ही है —

'भूपति' विनयक्षीणमविज्ञातसमीचयम।
भाम्यं विरज्यनारीव न संपद्भजते चिरम॥
दुर्दर्शनं व्यसनिनं त्यजन्ति नृपतिं प्रजा।
पतिं वृद्धमिवेर्ष्यालुं कामिन्यो नवयौवना॥ अरण्य ११६,११८

(११) व्यतिरेक— मानस' के सीता-सौन्दर्य-वर्णन में इस अलंकार का बड़ा समर्थ प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। यहाँ सीता को चन्द्रमा और लक्ष्मी से भी अधिक उत्कृष्ट बतलाया गया है —

"— — ——— — —— । सीय बदन सम हिमकर नाहीं॥
जनमु सिंधु पुनि बन्धु बिषु दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंक॥ १।२३७
घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई॥
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही॥ १।२३८

— —

गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बन्धु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही॥
जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥ १।२४७

संस्कृत के अनेक ग्रन्थों में इस प्रसंग में यह अलंकार प्राप्त होता है, किन्तु वहाँ न तो अपेक्षित गौरव है और न मार्मिक चमत्कार ही है। प्रसन्नराघव की यह उत्तम उक्ति दर्शनीय है —

राजीव त्वमसि मुधा न सुधाकरस्त्वमस्याः साम्यं परमस्य कुतो मुखस्य।
यद्वे दृशोस्तु सदृशं कतमः कुरङ्गस्तत्तस्य सामपि किं जगदज्जनाम॥१।१६

इस दिशा में 'हनुमन्नाटक' का यह प्रसंग भी तुलनीय है—

अवर्ज्य बनान्ते सरसीरुहाणि मृणालमालां च पृथूर्वयाय ।
एणीदृशस्तेऽन्यतमो न मैमीमंगं भुजगादिपतिर्जुगोप ॥
स्वर्णं सुवर्णं दहने स्वदेहं विलोप कान्तिं तव दन्तपंक्तिम् ।
विलोक्य मुग्धे मणिबीजपूर्णं फलं विदीर्णं ननु दाडिमस्य ॥ २।२४-२५

रामायणमञ्जरी की निम्नांकित उक्तियाँ भी इस सम्बन्ध में दृष्टव्य हैं.—

अयशोगणस्य चाथित दण्डस्य च मनोमुच ।
भाषा एवं निमिता गुण कविवरसंजीवनोपधि ॥अरण्य ।७६२

इसी प्रसंग में 'बालरामायण' की इन पंक्तियों की भी तुलना की जा सकती है —

इन्दुः क्षिप्त इवाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्मृगीणामिव ।
प्रम्लानारुणिमेव विद्रुमलता श्यामेव हेमप्रभा ।
पारुष्यं कलया च कोकिलवधूकण्ठेष्विव प्रस्तुतं ।
सीतायाः पुरतश्च हन्त शिखिनां बर्हाः सगर्हा इव ॥ १।४२

(१४) पर्यायोक्त—राम-जटायु-संवाद में 'पर्यायोक्त' अलंकार का यह चित्रण वस्तुतः प्रशंसनीय है —

सीता हरन, तात जनि कहेउ पिता सन जाइ ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ॥ ३।३१

यहाँ दशरथ रावण-मिलन के संकेत से रावण के स्वर्गगमन का ही पर्याय से वर्णन किया गया है। इसके निम्नांकित मूल श्लोक के अनावश्यक विस्तार को त्याग कर तुलसी ने सारग्रहण में अपनी विशेष प्रतिभा का परिचय दिया है —

'न भ्रातरेवमिमां वपुर्हृतिकथां तातान्तिके मा कृथा ।
रामोऽहं यदि तद्दिनैः कतिपयैर्व्रीडानमत्कन्धरः
सार्धं बन्धुजनेन सेन्द्रविजयी वक्ता स्वयं रावण ॥ हनु० ।५।११

(१५) सहोक्ति— राम-धनुर्भंग' के प्रकरण में इस अलंकार का निम्नांकित उदाहरण प्राप्त होता है —

सब कर संसउ अरु अग्यानू । मंद महीपन्ह कर अभिमानू ॥
भृगुपति केरि गरब गरुआई । सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई ॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा । रानिन्ह कर दारुन दुख दावा ॥
संभु चाप बड़ बोहितु पाई । चढ़े जाइ सब संगु बनाई ॥ १।२६०

यहाँ पर 'संगु' शब्द के प्रभाव से 'सहोक्ति' अलंकार है और सब वस्तुओं के एक-धर्म-कथन' से 'तुल्ययोगिता' भी दृष्टव्य है। इसके मूल संस्कृत-श्लोक में केवल 'सहोक्ति' है,—

उत्क्षिप्तं सह कौशिकस्य पुलकैः सार्धं मुखैर्नामितं ।
भूपानां जनकस्य संशयधिया सार्धं समास्फालितम् ।
वैदेहीमनसा समं च सहसाकृष्टं ततो भार्गव—
प्रौढाहंकृतिकन्दलेन च सहं तद्भग्नमैशं धनुः ॥ हनु० १।२१

(१६) परिकर—इस अलंकार में साभिप्राय विशेषणों की अपेक्षा होती है—

'सुनत श्रवन बारिधि बंधाना । दस मुख बोलि उठा अकुलाना ॥

बांध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस ।

सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस ॥ ६।५

यहाँ समुद्र के १० पर्याय साभिप्राय दिए गए हैं । 'महानाटक' के इस तत्सम वर्णन में भी यही अलंकार है —

'श्रुत्वा सागरबंधनं दशशिरा सर्वैर्मुखैरेकदा

पूर्वपृच्छति वाचिकं सचकितं भीत्याकुल संभ्रमात् ।

बद्धं सत्य पयोनिधिर्जलनिधि कीलालधिस्तोयधि

पाथोधिर्जलधि पयोधिरुदधिर्वारांनिधिर्वारिधि ॥ महानाटक ७।११

यहीं पर 'लंकादाह के समय पानी की पुकार करता हुआ'[1] और 'सेतुबन्ध' सुनकर समुद्र को धिक्कारता'[2] हुआ रावण फिर दो बार समुद्र के १० १० नामों का उच्चारण करता है । इन १० नामों में १६ नामों की पुनरावृत्तिमात्र है । तुलसी ने इस विरसता से बचने के लिए ही नये प्रचलित पर्यायों के साथ केवल एक बार इस अलंकार का प्रयोग किया है ।

(१७) परिकरांकुर—इस अलंकार में साभिप्राय विशेष्य का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । सीता-कृत अशोक-प्रार्थना में अशोक शब्द के प्रयोग में इसकी मार्मिकता स्पष्ट है —

सुनहु विनय मम विटप असोका । सत्यनाम करु हरु मम सोका । ५।१२

प्रसन्नराघव के निम्नांकित श्लोक से यह पंक्ति प्रभावित अवश्य है किन्तु यहाँ यह विशेषता नहीं मिलती है ।

कुरु सकरुणं चेतः श्रीमदशोकवनस्पते

दहनकणिकामेकां तावन्मम प्रकटीकुरु ॥ ६।१२

(१८) अप्रस्तुत प्रशंसा—अप्रस्तुत की उक्ति से प्रस्तुत विषय का स्पष्टीकरण करना इस अलंकार का लक्षण है । रावण के प्रति सीता की इस भर्त्सना में उपयुक्त अप्रस्तुत की योजना की गई है —

'सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा । कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ॥ ५।९

इसके मूल श्लोक में भी यही अलंकार है किन्तु उसमें 'मानस' के 'सुनु दसमुख' जैसी सामर्थ्य नहीं है —

'अपि खद्योत मालाभिः समुन्मीलति पद्मिनी ॥ प्रसन्न० ६।२८ के बाद

(१९) परिसंख्या—'रामराज्य-वर्णन' में इसका एकमात्र उदाहरण मिलता है —

---

१ महानाटक ५।६६ २ महानाटक ७।१२

सरड अगिन कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिय अस रामचन्द्र के राज ॥ ७।२२

'पद्मपुराण' के इसी प्रसंग में इस अलंकार का प्राचुर्य है किन्तु तुलसी क्लिष्ट कल्पना वाले ऐसे अलंकारों के प्रति अधिक रुचि नहीं दिखलाते हैं —

सदम्भा निम्नगा यत्र न यत्र जनता क्वचित्।
कुलान्येव कुलीनानि वर्णानां न धनानि च ॥
यत्र परशुकृष्णरासम्यग्जनराजिषु।
भावनेषु मार्गण वर्णविरक्तोपरोमण ॥
हानहानिर्नवैदेव तीक्ष्णा एव हि कण्टकाः।
चापेषु गुणविश्लेषो बन्धोक्तिः पुस्तके दृढा ॥ पातास । २।११ ४१

(२०) सार—उत्तरोत्तर उत्कर्ष में इस अलंकार की स्थिति मानी जाती है। तुलसी ने यहाँ राम के मुख से अपने भक्त की सर्वाधिक प्रियता प्रतिपादित की है —

सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सबते अधिक मनुज मोहि भाए।
तिन्हमँह द्विजद्विजमँह श्रुतिधारी। तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी ॥
तिन्हमँह प्रिय विरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी ॥
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ॥ ७।८६

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में भी इस प्रसंग में यही अलंकार है किन्तु वहाँ भक्तों से भी अधिक शंकर को प्रिय बतला कर समस्त वर्णन की प्रेरणा और उपयोगिता का विस्मरण कर दिया गया है जब कि तुलसी ने चमत्कार के साथ-साथ अपने विशिष्ट उद्देश्य का भी सामंजस्य प्रस्तुत किया है —

सर्वेप्रियमाणेषु ब्राह्मणाश्च मम प्रियाः।
ब्राह्मणाश्च प्रिया लक्ष्मी सततं वसति स्थिता ॥
तयोरधिका प्रिया राधा प्रिया भक्तास्तयोरधिका
तयोरधिकं शंकरो मे नास्ति मे शंकरात्प्रियः ॥ श्रीकृष्णजन्म।
उत्तरार्ध। ७२।८९ ९१

(२१) भाव शबलता—इसमें अनेक भाव परस्पर मिश्रित होकर किसी एक मुख्य भाव के अंगीभूत हो जाते हैं —

कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरइ सुरारी ॥
प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदय बसति बैदेही ॥
एहि के हृदय बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है ॥६।९९

यहाँ मति वितर्क असूया स्मृति और चिन्ता आदि भाव सीता के प्रति त्रिजटा के 'सद्भाव' के अंग हो गए हैं। संस्कृत ग्रन्थों के तत्सम वर्णनों में भी यही चमत्कार है, किन्तु सीता के आश्वासन की दृष्टि से 'मानस' में जो उसका महत्व है, वह अन्यत्र नहीं है

अयं मायामृगमृदुहृदयपीठो रघुपतिः शिरश्छेदासक्तो न दशवदनस्य व्यथयति ।
अयं टाक्ततापहृति मुहुमुर्चैरंसमुखः किरीटस्मिन्नैवी जनकपतिपुत्री निवसति ॥
प्रसन्नराघव । ७।४९

— —

यो रामो न जघान वक्षसि रणे तं रावणं सायकः
स भेद्यो विषमायुः बहिरमुखमम्पापार्श्वभिलाषर ।
हृदयस्य प्रतिवासरं वसति सा तस्यास्त्वहं राघवो
मय्यास्ते भुवनावली विलसिता द्वीपैः समं सप्तभिः ॥ हनु० ।१४।२९

(२२) निष्कर्ष—गोस्वामीजी की अलंकारपटुता का तुलनात्मक उत्कर्ष प्रस्तुत करने के लिए यहाँ अधिकतर उपमा वर्णनों को ही आधार बनाया गया है । इससे यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि अलंकारों के प्रयोग में तुलसी उन ग्रंथों से प्रभावित अथवा उपकृत हैं । वस्तुतः बात यह है कि संस्कृत के ग्रंथों में वर्णनों में अन्य अलंकार भी पाए जाते हैं, जबकि तुलसी ने केवल उपयुक्त अलंकार का ही चुनाव किया है और उसी को आवश्यक महत्व दिया है । वे अच्छी तरह से जानते हैं कि भाव रस गुण आदि की उत्कर्ष-व्यंजना के लिए कौन कौन से अलंकार अधिक समर्थ होते हैं । इसीलिए उनकी अलंकार योजना की सबसे बड़ी विशेषता यही दिखलाई पड़ती है कि उन्होंने अलंकारों को आवश्यक रूप में प्रयुक्त नहीं किया है अपितु सादृश्यविधान गुणरूप-वर्णन उक्ति-वैचित्र्य और चमत्कार-चित्रण के साथ साथ उन्होंने उन अलंकारों में मर्यादा उपयुक्तता और सोद्देश्यता का भी प्रतिभा सम्पन्न निर्वाह किया है । अपने समस्त प्रबन्ध विस्तार में उन्होंने प्रसंगानुकूलता पर विशेष बल देते हुए केवल समर्थ अलंकारों को ही उचित प्रश्रय दिया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार गोस्वामी जी की इस अद्भुत विशेषता का कारण है उनकी अपूर्व प्रबन्धपटुता जिसके बल से उन्होंने अपनी प्रबन्ध-धारा के साथ अभ्यन्तर प्रकरण प्राप्त वस्तुओं को ही लेकर अलंकारों को इस सफाई से मिलाया है कि जोड़ मालूम नहीं पड़ता ।[1] वे पुनः कहते हैं कि वस्तुतः अलंकारों की योजना उन्होंने ऐसे मार्मिक ढंग से की है कि वे सर्वत्र भावों या तथ्यों की व्यंजना को प्रस्फुटित करते हुए पाए जाते हैं अपनी अलग चमक दमक दिखलाते हुए नहीं ।[2]

अलंकारों के सम्बन्ध में विद्वानों की सदा से यही मान्यता रही है कि उनका उसी प्रयोग किया जावे जब उनसे भाव अथवा वस्तु के अधिकतम उत्कर्ष की अभिव्यक्ति हो सके क्योंकि पांडित्य-प्रदर्शन के मोह में इस तत्व की उपेक्षा करने के कारण कवियों को न तो कभी अधिक यश मिला है और न मिल सकता है । गोस्वामीजी इस तथ्य से भी परिचित थे कि अधिक अलंकृत काव्य जनसाधारण के लिये न तो सुगम होते हैं और न प्रशंसनीय इसीलिए उन्होंने अपने 'मानस' में केवल उन्हीं

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास—सप्तम संस्करण पृ० १११
२ " हिन्दी साहित्य का इतिहास—पंचम संस्करण, पृ० १४२

स्थलों पर अलंकारों का प्रयोग किया है, वहाँ वे प्रसंगानुकूलता के साथ-साथ भावोत्कर्ष के भी विधायक सिद्ध हुए हैं। इस दृष्टि से सरकत कवियों की तुलना उनकी अलंकार-योजना अधिक प्रशस्त और महत्त्वपूर्ण है।

५ शैली विवेचन

(१) शैली का अर्थ—प्रत्येक साहित्यकार अपने साहित्य में अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों के अधिकाधिक भाग को विविध माध्यमों से अनुप्रविष्ट करा देना चाहता है। प्रेषणीयता के विचार से वह उसको इतना सरस स्पष्ट और सुबोध बना देने का प्रयत्न करता है कि उसके मन का चित्र अपनी समस्त सूक्ष्मतम रेखाओं और रंगीनियों के साथ प्रत्येक पाठक अथवा श्रोता के मन में भी ज्यों का त्यों अंकित हो सके। इस प्रक्रिया में उस कृति के साथ कृतिकार के व्यक्तित्व का इतना सघन सम्मिश्रण हो जाता है कि प्रत्येक शब्द सप्राण होकर अपने जनक (साहित्यकार) का यशोगान करने लगता है। व्यक्तित्व के इस प्रकार के अन्तर्गत व्यक्तित्व, आकृति प्रकृति, प्रतिभा कल्पना निरीक्षणशक्ति विवेचन चातुरी व्यवहारकुशलता प्रेषण-पटुता एवं सर्वांगीण प्रभावशीलता आदि-आदि की समस्त विशेषता समन्वित होती है जिसका समर्थ प्रतिबिम्ब उसकी प्रत्येक कृति में सुलभ हो जाता है। शैली को 'व्यक्ति' ही समझने की मान्यता में यही रहस्य छिपा हुआ है।

प्रत्येक कृति में दो अनिवार्य तत्व होते हैं—अनुभूति और अभिव्यक्ति। अनुभूति उसकी मूलभूत वस्तु होती है और अभिव्यक्ति उसकी शैली। ये दोनों अन्योन्याश्रित रहती हैं अतः वस्तुभेद से शैली भेद हो जाना बहुत स्वाभाविक है। वस्तु का पात्र और रस के साथ भी अविच्छिन्न सम्बन्ध होता है, क्योंकि पात्र उसके प्रचारक हैं और रस उसकी आत्मा है, अतः पात्र भेद और रस भेद से भी शैली अनेक रूप हो जाया करते हैं। शैली को इस अनेकरूपता का परिचय उसकी भाषा से प्राप्त होता है क्योंकि वही उसकी माध्यम अथवा वाहिका होती है। भाषा शब्द और अर्थ गुम्फित होते हैं। गुण अलंकार शब्दों के धर्म कहलाते हैं अतः और भी विशिष्टता से उसका विशिष्ट रूप भी दर्शनीय होता है। 'मानस' के निर्माण में तुलसी का ध्यान आरम्भ से ही शैली के तत्वों की ओर केन्द्रित जान पड़ता है। प्रारम्भिक श्लोक में ही 'वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि' में वर्ण अर्थ रस तथा छन्द का साभिप्राय स्मरण करना और अपने भाषा निबन्ध के 'अतिमंजुल' रूप की घोषणा करना इस दिशा में उनकी सचेष्टता का परिचायक है।

वस्तु-दृष्टि से मानस पर नाना पुराणनिगमागम रामायण तथा अन्य साहित्य का प्रभाव स्वयं 'मानसकार' मानते हैं। पुराणों से उन्होंने अवतार और आध्यात्मिक वर्णन श्रोता वक्ता परम्परा अलौकिक कार्यों का अतिरंजनापूर्ण वर्णन तथा कथा के माहात्म्य और अधिकारियों के निर्देश आदि का ग्रहण किया है अतः उनमें पौराणिक शैली के स्पष्ट दर्शन हो जाते हैं। निगमागमों के आधार पर उन्होंने

विभिन्न स्तुतियों, तर्कों और दार्शनिक तत्वों का सरस प्रतिपादन किया है अत उन स्थलों में स्तुति-शैली तार्किक शैली और दार्शनिक शैली का मधुर सम्मिश्रण मिलता है। रामायणों में 'वाल्मीकि रामायण' से उन्होंने मूल कथा के विविध वर्णन और अध्यात्मरामायण से भक्ति और दर्शन के भी विभिन्न अंशों का स्वीकरण किया है अत वहाँ उस प्रकार की शैली की विशेषता भी दर्शनीय है। अन्य साहित्य में वे गीता के दर्शन से भी अत्यधिक प्रभावित हैं। अत आवश्यक प्रसंगों में उन्होंने उसको भी महत्त्वपूर्ण स्थान दे दिया है। महाकाव्यों की शैली से प्रभावित होकर उन्होंने ग्रंथारम्भ में वन्दना खलनिन्दा और सज्जन प्रशंसा आदि का वर्णन किया है तथा अन्यत्र प्रकृति-वर्णन विवाह-वर्णन युद्ध-वर्णन आदि में मानव-जीवन से सम्बन्ध विभिन्न व्यापारों का भी उन्होंने बड़ी कुशलता से निर्वाह दिखलाया है। नाटकों में प्रसन्न राघव एवं हनुमन्नाटक अथवा महानाटक आदि से आकृष्ट होकर उन्होंने पुष्पवाटिका मिलन परशुराम-मिलन सीता रावण-संवाद और अंगद रावण-संवाद आदि प्रसंगों में नाटकीय शैली का भी सरस समन्वय किया है। नीति-वर्णन में भर्तृहरिशतक चाणक्यनीति शुक्रनीति हितोपदेश पञ्चतन्त्र आदि के अनुसार 'मानस' में उपदेशक शैली का भी रोचक निरूपण मिलता है। इस प्रकार वस्तुभेद से 'मानस' में विभिन्न शैलियों का अच्छा परिचय सुलभ हो जाता है। डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार 'रामचरित-मानस' में गोस्वामीजी ने पुराण नाटक और महाकाव्य तीनों ही शैली की विशेषताओं का समन्वय कर दिया है।—पुराण के समान उसका प्रारम्भ है— इसके साथ ही साथ घटना-संघटन और क्रमिक विकास महाकाव्य का सा है।— संवादों की सजीवता चरित्र का सूक्ष्म चित्रण वार्तालाप का चोखापन आदि नाटकीयता के लक्षण हैं।[1]

वस्तु के अतिरिक्त पात्रों की दृष्टि से भी 'मानस' की शैली के अनेक रूप मिलते हैं। देवता और राक्षस मुनि और नागरिक राजा और सेवक, विद्वान और अशिक्षित रानी और दासी आदि सभी पात्रों के विचारों के अभिव्यक्तीकरण में मानसकार ने स्वाभाविकता का सफल चित्रण किया है। इस पात्रानुकूल शैली के माध्यम से साहित्यकार विभिन्न पात्रों की वाणियों को उन्हीं के मूल स्वर में उपस्थित करता है और इस प्रकार उनको अनुवाद की कृत्रिमता एवं दुरूहता से बचाकर एक नैसर्गिकता एवं मौलिकता से सम्पन्न बना देता है। इस दिशा में तुलसी अनुपम और अद्वितीय हैं। 'मानस के निम्न संवाद इसके प्रमाण हैं। एक ओर 'भरत वसिष्ठ-संवाद' में जहाँ गुरुता और विद्वता के दर्शन होते हैं—

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं ॥
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। सबु पायउँ रज पावनि पूजें ॥

---

१ डा० भगीरथ मिश्र—तुलसीरसायन—पृष्ठ ९०

राखत राउर नामु जसु सब अभिमत दातार ।
फल अनुगामी महिप मनि मन अभिलाषु तुम्हार ॥२।३१

वहीं दूसरी ओर ग्रामीणों के संवाद में उसकी ग्राम्यता भी स्पष्ट है—

नाथ जहाँ लगि तहँ पहुँचाई । फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नाई ॥२।११२

इतना ही नहीं यहाँ वर्ग-विशेष की बोलियों को भी महत्त्व प्राप्त हुआ है । इस सम्बन्ध में गुह का यह संवाद दृष्टव्य है—

तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई । बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ॥
एहि प्रतिपालउँ सबु परिवारू । नहिं जानउँ कछु अउर कबारू ॥२।१००

यहाँ घरनी बाट परइ उड़ाई और कबारू आदि शब्द विचारणीय हैं । इसी वर्ग की भाषा में कैकयी और मन्थरा के संवादों में उनके स्तर का अन्तर भी दर्शनीय है—

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहुँ तो पर कोपु न मोही ॥
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥

— — —

फोरै जोगु कपारु अभागा । भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा ॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती । नाहिं त मौन रहब दिनु राती ॥
जारै जोगु सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥२।१५, १६

वस्तु और पात्र के अनुकूल शैली का विधान फिर भी कुछ प्रयत्न-साध्य है किन्तु रसानुकूलता के निर्वाह में ही कवि की वास्तविक कला-कुशलता और हृदय प्रवणता की परीक्षा होती है । संस्कृत के काव्य-शास्त्रियों ने 'पद-संघटना' को रीति बतलाते हुए उसको 'रसादि की उपकारिका' माना है । यह 'रीति' इस प्रकार शैली के बहुत निकट हो जाती है किन्तु उसमें व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के स्थान पर प्रान्तगत वैशिष्ट्य को प्रधानता दे दी गई है और इसी दृष्टिकोण से उसके वैदर्भी गौडी पांचाली और लाटी आदि चार भेद किए गए हैं ।[1] वर्तमान परिस्थितियों में इन भौगोलिक विशेषताओं का उतना महत्त्व नहीं रह गया है क्योंकि आज तो व्यक्तित्व के विस्फोट की इतनी अधिक दिशाएँ हो गई हैं कि उनमें ही शैली की खोज कभी-कभी एक समस्या हो जाती है ।

रस भेद से शैली की विभिन्नता में यह स्मरणीय है कि इन सभी रसों के स्थायी भावों में 'मानव' के मूल दो भावों सुख और दुःख का ही विस्तार प्रतीत होता है । रति हास, उत्साह और विस्मय यदि सुख के विकास हैं तो शोक, क्रोध भय और जुगुप्सा दुःख की देन हैं । इन भावों के उपयुक्त रसों में मानव मन की यथार्थ स्थितियों के यथावत् चित्रण में ही कवि की सफलता मानी जाती

१ साहित्यदर्पण ९।१-२

है। 'मानस' में इस दृष्टिकोण से विचार करने पर रामजन्म, पुष्पवाटिका मिलन, राम-विवाह और रामाभिषेक आदि सुखमूलक प्रसंग हैं तथा रामनिर्वासन दशरथ मरण सीता-हरण और लक्ष्मण-मूर्च्छा आदि दुःखमूलक प्रसंग हैं। इन सभी प्रसंगों में तुलसी का मन अधिक रमा है और वह पाठकों को भी उतना ही रमा सका है। संस्कृत के ग्रन्थों में इन प्रसंगों को न तो आवश्यक महत्व प्राप्त हुआ है और न तत्सम वर्णनों में ही कवि के उस उल्लास का चित्रण है, जो मानस में सरलता से दृष्टिगोचर हो जाता है।

रस-निष्पत्ति की प्रक्रिया में दो क्रमिक स्थितियाँ होती हैं। पूर्व स्थिति में आलम्बन की प्रेरणा से आश्रय, अनुकूल भावों का स्वयं अनुभव करता है और उत्तर स्थिति में वह उनका अनुभव भी कराता है। प्रथम स्थिति में 'ध्यानरस' होता है और द्वितीय स्थिति में 'वर्णन रस'। तुलसी ने 'ध्यान रस' का निरूपण इस प्रकार किया है—

> प्रश्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई ॥
> हर हियँ रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए ॥
> श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानन्द अमित सुख पावा ॥
> मगन ध्यानरस दण्डजुग पुनि मन बाहर कीन्ह।
> रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ॥१।१११

यह स्थिति केवल दो दण्ड (क्षण) तक ही रहती है जिसमें आश्रय या तो मौन रहता है या अस्फुट बोलता है। उसके पश्चात् उस स्थिति का वर्णन करते समय वह उसके साम्य और साहचर्य की अनेक तद्रूप कल्पनाओं एवं उद्भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है जिसके विभिन्न प्रकारों का नाम ही अलंकार है। अलंकारों के अतिरिक्त इस रससिद्ध शैली में माधुर्यादि गुणों की योजना का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। उसके समन्वय से वहाँ एक चमत्कारकता का स्वतः प्रादुर्भाव हो जाता है। 'मानस' के इस मधुर वर्णन में इन सभी तथ्यों का सामञ्जस्य दर्शनीय है—

> *कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥*
> *मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही ॥*
> *अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥*

> दखि सीय सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा ॥१।२३०

यहाँ रसनिष्पत्ति की पूर्वोक्त दोनों क्रमिक स्थितियाँ हैं, अलंकार भी मन में बसे हुए चित्र को स्पष्ट कर रहे हैं और गुणानुरूप वर्ण-साम्य तथा ध्वनि-साम्य दोनों ही अनुरणनात्मकता के साथ-साथ हृदय में एक मीठी गुदगुदी को भी उत्पन्न कर रहे हैं। कठोर वर्णनों में भी 'मानसकार' की ओजस्वी प्रतिभा सर्वत्र जागृत रही है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

> देखिअहि चाह नगरिह के ठट्टा। अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा ॥

धावहिं गनहिं न अवघट घाटा। पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा॥
कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं॥६।४१

इन दोनों प्रकार के वर्णनों में क्रमशः माधुर्य और ओज गुण के अतिरिक्त प्रसाद गुण की विशेषता और वर्णविन्यासात्मकता भी द्रष्टव्य है।

प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से 'मानस' में 'दोहा चौपाई' शैली की प्रमुखता है। तुलसी के समय में 'चन्द' की छप्पय-शैली, सूर की गीतशैली, कबीर की दोहा-शैली, भाटों की कवित्त-सवैया-शैली और जायसी की दोहा चौपाई-शैली विशेष रूप से प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकी थी। इनमें से प्रबन्ध काव्यों का निर्माण केवल छप्पय और दोहा चौपाई-शैली में ही उपलब्ध था। 'पउमचरिउ' आदि अपभ्रंश के चरित शैली के अनेक महाकाव्यों में भी इस दोहा चौपाई-शैली को प्रमुखता मिली थी, जो तत्कालीन कवियों के लिए एक आकर्षण की वस्तु थी। अतः तुलसी ने 'मानस' के निर्माण में महाकाव्यत्व के विचार से दोहा-चौपाई-शैली को ही प्रमुखता दी।

(२) संस्कृत काव्यों की शैली और 'मानस'—'मानस' की शैली के साथ संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों की शैलियों की तुलना करने से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं कि एक तो उनमें वस्तु और पात्र से अधिक रस की अनुकूलता का विशेष ध्यान रखने का प्रयत्न किया गया है। शास्त्रीय मान्यताओं के अनुसार उनमें वर्णना त्मकता की प्रधानता होने से आलंकारिक शैली को भी स्वाभाविक प्रश्रय मिल गया है। जिसमें गुणयोजना का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। दूसरे उनमें पौराणिक, दार्शनिक और उपदेशक शैली के अभाव में उनका शुद्ध काव्यरूप अधिक निखर उठा है जो कि 'मानस' में उपर्युक्त शैलीत्रय के प्रभाव से कहीं-कहीं कुछ दब सा गया है। जहाँ तक नाटकों की शैली का सम्बन्ध है उनमें वीर रस की प्रमुखता होने से ओजपूर्ण-शैली का अधिक निरूपण हुआ है। प्रसन्नराघव, मैथिलीकल्याण और उन्मत्तराघव आदि नाटकों में माधुर्यपूर्ण शैली का अच्छा विकास दृष्टिगोचर होता है। केवल भवभूति के महावीरचरित और उत्तर रामचरित दोनों नाटकों में क्रमशः ओज और माधुर्य से सम्पन्न शैलियों का बड़ा स्वाभाविक समावेश किया गया है। यदि उनकी इस द्विविध शक्ति के दर्शन एकत्र हो सकते तो सम्भवतः तुलसी के साथ तुलना के लिए उनका नाम—संकोच के साथ ही सही—ग्रहण कर लिया जाता।

(३) निष्कर्ष—शैली की इन विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि गोस्वामीजी ने 'अतिसंतुलता' के सम्पादन के लिए ही 'मानस' में विभिन्न शैलियों का सरस और सौन्दर्य समन्वय किया है। अपने इस मौलिक प्रयास में उन्होंने अभूतपूर्व सफलता भी प्राप्त की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में हम कह सकते हैं कि गोस्वामीजी अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के

साहित्य-क्षेत्र में प्रथम पद के अधिकारी हुए हैं। सारांश यह है कि हिन्दी काव्य की सब प्रकार की रचना-शैलियों के ऊपर गोस्वामीजी ने अपना ऊँचा आसन प्रतिष्ठित किया है। यह उच्चता और किसी को प्राप्त नहीं है।'[1]

६ काव्य स्वरूप-विवेचन

(१) मानस का महाकाव्यत्व— रामचरितमानस एक 'महाकाव्य' है। शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार[2] उसमें वस्तु, पात्र रस और विविध वर्णनों का उचित सामञ्जस्य है। 'मानस' में 'सर्गबन्ध' की योजना 'आर्ष' है और वह 'वाल्मीकि रामायण' से प्रभावित है। उसके नायक मर्यादा-पुरुषोत्तम राम हैं जो 'धीरोदात्त' नायक के वर्णित गुणों से भी अधिक गुणों से सुसम्पन्न हैं। उसमें 'शान्तरस' अंगीरस है और अन्य रस भी यथास्थान नियोजित हुए हैं। नाटक की समस्त 'सन्धियाँ' भी उसमें विधिवत् प्राप्त होती हैं। उसका कथानक प्रसिद्ध और ऐतिहासिक है। 'धर्मार्थ-काम-मोक्ष' आदि का भी उसमें आद्योपान्त निरूपण किया गया है। प्रंबारम्भ में देवताओं की वन्दना भी नियमानुसार है। इसके अतिरिक्त महाकाव्य के अन्य लक्षणों में खलनिन्दा सज्जन-प्रशंसा ऋतु प्रकृति संयोग वियोग युद्ध, विवाह और पुत्रोदय आदि के भी विस्तृत वर्णन वहाँ सहज सुलभ हैं। नायक के नाम पर उसका 'नामकरण' भी शास्त्रोक्त नियमों के अनुकूल ही है। महाकाव्य के अन्याय स्फुट लक्षण भी उसके स्वरूप पर घटित किए जा सकते हैं।

इस प्रकार मानस का 'महाकाव्यत्व' सर्वथा सुनिश्चित है। फिर भी कुछ विद्वान् उसे दूसरे प्रकार का काव्य समझते हैं। डा० श्रीकृष्णलाल के अनुसार 'मानस 'महाकाव्य नहीं बल्कि पुराण है उसमें काव्यात्मकता भी है अत उसे 'पुराण काव्य कहा जा सकता है।'[3] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार से मानस एक 'चरितकाव्य' है। वे कहते हैं कि 'हिन्दी में चरित काव्य बहुत थोड़े हैं। ब्रजभाषा में तो कोई ऐसा चरितकाव्य नहीं जिसने जनता के बीच प्रसिद्धि प्राप्ति की हो। चरितकाव्य में अवधी भाषा को ही सफलता प्राप्त हुई और अवधी भाषा के सर्वश्रेष्ठ रत्न हैं रामचरितमानस और पद्मावत। उनके अनुसार प्रबन्ध काव्यों में समस्त जीवन को प्रस्तुत करने वाले काव्य दो प्रकार के हो सकते हैं—व्यक्ति-प्रधान और घटना-प्रधान। इस दृष्टि से संस्कृत काव्यों पर विचार करते हुए वे कहते हैं कि प्रथम प्रकार के प्रबन्धों को हम व्यक्ति-प्रधान कह सकते हैं जिसके अन्तर्गत

---

१ आ० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पञ्चम संस्करण

२ साहित्य दर्पण ६।३१५-३२२ / पृष्ठ ३३४, ३३७

३ डा० श्रीकृष्णलाल—मानस दर्शन पृष्ठ १४७

४ जायसी ग्रन्थावली—सं० आ० रामचन्द्र शुक्ल—चतुर्थ संस्करण भूमिका भाग पृष्ठ २०१

रघुवंश बुद्ध-चरित विक्रमांक-देव-चरित आदि हैं। दूसरे प्रकार के घटना प्रधान प्रबन्धों के अन्तर्गत कुमारसम्भव किरातार्जुनीय शिशुपाल-वध आदि हैं।" वही पर 'मानस' को 'घटनाप्रधान' प्रबन्ध काव्य बतलाते हुए वे कहते हैं कि प्रत्येक घटनाप्रधान प्रबन्ध काव्य का एक कार्य' होता है जिसके लिए घटनाओं का सारा आयोजन होता है जैसे रामचरित में रावण-वध।' इसके साथ ही वे ग्रन्थ 'मानस' के महाकाव्यत्व से भी सहमत हैं। तुलसी के काव्यों के सब्जेक्टिव और आब्जेक्टिव रूपों पर निर्णय देते हुए वे कहते हैं कि रामचरित मानस के सम्बन्ध में तो यह प्रश्न हो ही नहीं सकता है, क्योंकि वह एक प्रबन्ध काव्य या महाकाव्य है। प्रबन्धकाव्य सदा बाह्यार्थ-निरूपक (आब्जेक्टिव) होता है।'

डा० शम्भूनाथ सिंह के अनुसार सम्पूर्ण जीवनवृत्त के वर्णन कथात्मकता और वस्तुवर्णन की दृष्टि से 'रामचरितमानस में शास्त्रीय महाकाव्य और चरित काव्य दोनों का समन्वय हुआ है।" उनके मत में पौराणिक कथावस्तु अलौकिक नायक साहसिक और रोमांचक तत्व प्रेम वीरता और वैराग्य की भावनाओं धार्मिकता, प्रबन्ध रूढ़ियों और दोहा चौपाई वाली छन्द-योजना आदि तत्वों की दृष्टि से मानस' अपभ्रंश के चरितकाव्यों की परम्परा में आता है किन्तु उसमें शास्त्रीय महाकाव्यों के अनुसार घटनाओं तथा प्रसंगों का भी अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया गया है। मानस के महाकाव्यत्व का सविशेष प्रतिपादन करने के अतिरिक्त डा० राजपति दीक्षित उसमें एपिक की भी सभी विशेषतायें बतलाते हैं। वे कहते हैं कि मानस महाकाव्य के प्राय सभी लक्षणों से सम्पन्न है। उसको पाश्चात्य एपिक' के अर्थों से देख कर भी श्लाघ्य ही कहना होगा। 'एपिक' के दोनों भेदों—अर्थात् 'आथेण्टिक एपिक' तथा 'लिटरेरी एपिक' की विशेषतायें मानस में वर्तमान हैं। तभी तो इसमें श्रोताओं को संगीत-लहरी का अमित आनन्द प्राप्त होता है साथ ही सहृदयों को साहित्य का।' मानस' को लोकदृष्टि से देखने वाले उसे लोक-महाकाव्य मानते हैं।' इसी प्रकार डा० रामरतन भटनागर के दृष्टिकोण से मानस के संवादों को नाटकीय ढंग से सुनियोजित देख कर यदि कोई उसको नाटककाव्य भी मानने लगे तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

वस्तुतः मानस का 'काव्यस्वरूप' उतना उलझा हुआ नहीं है जितना गूढ़ समझा गया है। यह बात अवश्य है कि मानस में महाकाव्य के शास्त्रोक्त

१-२ वही पृष्ठ ७१
३ डा० रामचन्द्र शुक्ल—गो० तुलसीदास—पंचम संस्करण पृष्ठ ७१
४ डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृष्ठ ४६०
५ डा० राजपति दीक्षित—तुलसीदास और उनका युग—पृष्ठ ३१३-३१६
६ श्री चन्द्रभान—रामचरितमानस में लोकवार्ता—पृष्ठ १८६
७ डा० रामरतन भटनागर—तुलसी साहित्य की भूमिका—पृष्ठ १३१

लक्षणों के अतिरिक्त और भी बहुत सी विशेषतायें हैं। राम के चरित्र-चित्रण में यह कहा जा चुका है कि यद्यपि वे 'धीरोदात्त नायक' हैं फिर भी उनमें उस नायक के वर्णित प्रसिद्ध गुणों से भी बढ़ कर अन्य अनेक गुण प्राप्त होते हैं। यहाँ पर यह भी स्मरणीय है कि 'लक्ष्य-लक्षण-न्याय' के अनुसार समर्थ महाकवि जिन लक्ष्यग्रंथों का निर्माण करते हैं उन्हीं के आधार पर काव्य-शास्त्रज्ञ अपने शास्त्रीय लक्षण निर्धारित कर लेते हैं। नये कवि अधिकतर इन्हीं लक्षणों से प्रेरित होकर अपने काव्य का सृजन करते रहते हैं किन्तु उनमें जो विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न होते हैं, वे लक्षबन्धनों में न बंध कर अपनी काव्यशक्ति के स्वतन्त्र उन्मेष का ऐसा परिचय देते हैं कि काव्यशास्त्रियों को अपने लक्षणों में तदनुसार परिवर्तन करने के लिए विवश हो जाना पड़ता है। इस प्रकार यह क्रम अविराम गति से चला करता है। हिन्दी में ऐसे नवीन मौलिक ग्रन्थों के अभाव के कारण, आज हमें संस्कृत के लक्षण-ग्रंथों पर ही अधिकतर निर्भर रहना पड़ता है जिसका कुपरिणाम यह भी हो सकता है कि 'महाकाव्यत्व' के लिये कम से कम आठ सर्गों को अनिवार्यता मान लेने पर किसी को 'मानस' की सप्तकाण्ड-योजना भी दूषित जान पड़े। श्री के० एस० रामास्वामी शास्त्री शिरोमणि के अनुसार 'लक्षण-ग्रन्थों पर आधारित काव्य उन लक्ष्य ग्रन्थों की तुलना में कुछ हलके भी होते हैं जिन्हें देखकर वे लक्षण-ग्रंथ बनाये गये थे। वे इसे भी सत्य मानते हैं कि कवि के स्वतन्त्र चिन्तन में वे लक्षण-ग्रंथ बाधक ही सिद्ध होते हैं इसीलिए महाकवि उनके बन्धनों से दूर रह कर अपनी प्रतिभा एवं कल्पना का प्रशस्त निरूपण करते हैं।'[1]

उपर्युक्त विवेचन का यही तात्पर्य है कि मानस में पुराणों एवं चरित काव्यों आदि की शैलीगत विशेषताओं को देखकर उसके 'महाकाव्यत्व का विस्मरण कर देना उपयुक्त नहीं है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि किसी भी काव्य के महाकाव्यत्व के लिए एवरक्राम्बी जहाँ केवल वस्तु के गौरव को महत्व देते हैं[2] और कवीन्द्र रवीन्द्र 'नायक के गौरव का प्रतिपादन करते हैं'[3] वहाँ 'मानस' के निर्माण में 'मानसकार' ने वस्तु और नायक ही नहीं अपितु रस प्रकृति चित्रण जीवन-दर्शन, समाज निरूपण और आचार वर्णन आदि सभी तत्वों का जो 'महतो महीयान्' रूप प्रस्तुत किया है वह इस बात का प्रमाण है कि उनके सभी प्रयत्न 'मानस' के महाकाव्यत्व की सिद्धि के लिए तत्पर हैं। डा० रामकुमार वर्मा के विचार से भी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' की कथा एक महाकाव्य के दृष्टिकोण से लिखी है जिसमें जीवन के समस्त अंग पूर्ण रूप से प्रदर्शित किये गये हैं।[4]

---

१ रामचरित (अभिनन्द)-सं० श्री के० एस० रामास्वामी शास्त्री शिरोमणि-भूमिका भाग, पृष्ठ २१
२ एबरक्राम्बी-दी एपिक-पृष्ठ ५१
१ श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर-मेघनाद-वध (हिन्दी अनुवाद)-भूमिका, पृ० ११८
४ डा० रामकुमार वर्मा-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ४७०

संस्कृत के महाकाव्यों के साथ 'मानस' की तुलना करने से उसमें अनेक विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं। 'रघुवंश' में राम-कथा ही मुख्य वर्ण्यवस्तु नहीं है। वहाँ इक्ष्वाकुवंशी अन्य राजाओं की परम्परा में ही राम के भी अभ्युदय और स्वर्गगमन का संक्षिप्त वर्णन कर दिया गया है। इसीलिये कथा की गति के अधिक संवेग होने के कारण सीमित क्षेत्र में महाकाव्यत्व के संकुचित स्वरूप पर विचार करना वहाँ उपयुक्त नहीं है। रामायणमञ्जरी तो वाल्मीकि रामायण का मौलिक सारभाग है। उसमें वर्णनात्मकता की प्रमुखता है एक ही छन्द (अनुष्टुप) का आद्यन्त प्रयोग है तथा भावाभिव्यञ्जन का अन्य सभी दिशाओं में व्यापक अनुकरण है। कवि की मौलिक उद्भावनाओं के अभाव में महाकाव्य की सप्राण रसवत्ता की उपलब्धि उसमें नहीं होती है। 'जानकी-हरण' उत्कृष्ट महाकाव्य है। उसके लेखक का दृष्टिकोण भी एकांकी है। उसमें उन्मुक्त शृङ्गार वर्णन को अनावश्यक प्रश्रय मिल गया है। यद्यपि महाकाव्य के अनेक लक्षणों का उसमें कुशल निर्वाह दिखलाई पड़ता है तो भी अपने अभावों एवं दोषों से ग्रस्त होने के कारण उसमें मानस की सी व्यापकता एवं सुरुचि-सम्पन्नता के दर्शन नहीं होते हैं। 'उदारराघव' भी उत्कृष्ट महाकाव्य है। उसमें वर्णनों के विस्तार में अनुपात का अभाव भी चिन्तनीय है। वहाँ कुछ प्रसंगों में यद्यपि नवीन उद्भावनाओं के दर्शन होते हैं किन्तु उनमें औचित्य और आनुकूल्य का उतना ध्यान नहीं रखा गया है। अभिनन्द के 'रामचरित' में कथावस्तु यों तो कम है किन्तु उसका अनावश्यक विस्तार है। उसमें राम के 'वर्षा-प्रवास' के पूर्व की कथा के अभाव में भी इस वर्णन को ४० सर्गों में समाहित किया गया है जिससे कुछ महत्त्व के प्रसंगों को भी अपेक्षाकृत अधिक स्थान मिल गया है। यदि 'महाकाव्य' का अर्थ महान् विस्तार वाला काव्य हो तो सम्भवतः रामचरित के अतिरिक्त अन्य महाकाव्य अपने पद से वंचित हो जायेंगे। इस महाकाव्य में भी शास्त्रीय लक्षणों का बड़ी तत्परता से पालन किया गया है किन्तु केवल उन्हीं से ही उसके महाकाव्य की सिद्धि नहीं हो पाई है। 'रघुवीरचरित' महाकाव्य में भी एक तो वस्तु की न्यूनता है क्योंकि उसका आरम्भ राम-वन प्रवास से होता है दूसरे उसके कवि के सम्बन्ध में भी कोई निश्चय नहीं है और अन्त में उसमें भी महाकाव्योचित वैभव के दर्शन नहीं होते हैं। 'भट्टिकाव्य' में व्याकरण दृष्टि की प्रधानता होने से उसका स्वरूप ही बहुत कुछ परिवर्तित हो गया है। वहाँ कवि का ध्यान महाकाव्य के समग्र प्रभाव के निरूपण की ओर नहीं है यद्यपि शास्त्रोक्त लक्षणों के अनुसरण में वह अवश्य जागरूक है। केवल 'रामगीत' ही ऐसा महाकाव्य है जो अनेक दृष्टियों से 'मानस' से बहुत कुछ समानता रखता है। उसका मानुषवत् चरित्र-चित्रण रस निर्वाह प्रकृतिवर्णन समाज निरूपण, संस्कार विवेचन तथा अन्यान्य प्रसंगों का वर्णन एवं विश्लेषण भी मानस के वर्णन के बहुत निकट है। शास्त्रीय विशेषताओं का सर्वांग में सामंजस्य भी वहाँ प्राप्त हो जाता है, किन्तु बहिरंग दृष्टि से इतना सब होने पर भी वह 'मानस' के अन्तरंग की

विम्मता का स्पर्श भी नहीं कर सका है।

संस्कृत के महाकाव्यों में एक सामान्य दोष यह भी है कि वहाँ अनेक कवि बड़े गर्व के साथ अपने पाण्डित्य प्रदर्शन का प्रयत्न करते हैं जिसके फलस्वरूप उनकी भाषा, कल्पना और शैली सभी कुछ केवल विशिष्ट वर्ग के लिए ही उपादेय रह जाती है। इसके अतिरिक्त वे महाकवि अधिकतर राज-सम्मान पाने के कारण जनसाधारण के सम्पर्क से शून्य रहते थे जिसके कारण उनकी कृति के समस्त चित्रणों का सम्बन्ध भी समाज के केवल श्रीमन्त-वर्ग से ही मेल खाता है। इस प्रकार अतिसंकुचित क्षेत्र से ही उन महाकाव्यों का सम्बन्ध रह जाने के कारण वे न तो लोकप्रिय हो सके और न जीवन्त रूप में प्रतिष्ठित ही हो सके। इनके अतिरिक्त विदेशी महाकाव्यों की तुलना में भी मानस की सर्वोत्कृष्टता प्रतिपादित करते हुए डा० राजपति दीक्षित कहते हैं कि 'यही नहीं हम सिर उठाकर यह भी कह सकते हैं कि तुलसी के महाकाव्य में जैसी आदर्श और उन्नायक चरित्र-कल्पना है वैसी न मिल्टन के पैरा डाइज् लास्ट' में है, न स्पेन्सर की 'फेयरी क्वीन' में है और न दांते की डिवाइना कामेडिया में। साम्प्रदायिक और सांस्कृतिक समन्वय की जो जटिल समस्या तुलसी के सामने थी वह इन पाश्चात्य एपिक्स' के रचयिताओं के समक्ष नहीं थी।'[1]

(२) निष्कर्ष—सारांश यह है कि 'मानस' महानता के मूल में उसका एक निजी गौरव है। उसकी प्रसिद्धि उसमें समाविष्ट राममक्ति आदर्श चरित्र-चित्रण नीतिविदग्धोपदेश लोकधर्म और समाजधर्म के आदर्श निर्वाह एवं पौराणिक तथा परिपाटी के कारण ही नहीं है अपितु एक महाकाव्य के नाते से भी है। इन सभी तत्वों के योग से उसका जो अमिट प्रभाव और संस्कार उसके पाठक अथवा श्रोता पर पड़ता है वही उसकी लोकप्रियता का प्रमुख कारण है। उसकी सर्वोत्कृष्टता इसी बात से सिद्ध होती है कि संस्कृत के अनेक महाकाव्य मिलकर भी उसकी गुरुता एवं प्रतिष्ठा की समानता नहीं कर सकते हैं। केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व-साहित्य में भी इसीलिये उसका सर्वोच्च स्थान है।

७ छन्द विवेचन

(१) छन्दों की उपयुक्तता—'मानस' को छन्दोबद्ध करने के लिये गोस्वामी जी ने दोहा और चौपाई को मूल आधार चुना है। इसके साथ ही उन्होंने अनेक मात्रिक एवं वार्णिक छन्दों को भी यथास्थान निबद्ध किया है। इस समस्त छन्द योजना में उनका ध्यान कथा के प्रवाह प्रभाव और सौन्दर्य की ओर ही एकाग्र रहा है। उन्होंने केवल चुने हुए छन्दों का चुने हुए स्थलों पर ही प्रयोग करके अपनी आदर्श छन्दोरचनापटुता का सरल परिचय दिया है।

(२) मात्रिक छन्द—दोहा और चौपाई के अतिरिक्त 'मानस' में सोरठा हरिगीतिका, त्रिभंगी, चौपैया और तोमर आदि मात्रिक छन्दों का विशेष प्रयोग

---

१ डा० राजपति दीक्षित-तुलसीदास और उनका युग-पृष्ठ ३१६-३१७

किया गया है। इन सभी ग्रन्थों में कथा के प्रवाह की दृष्टि से चौपाई का सबसे महत्वपूर्ण उपयोग मिलता है। इस दिशा में अपभ्रंश के काव्यों और हिन्दी के 'पद्मावत' आदि में चौपाई की प्रसंगानुकूलता से तुलसी अवश्य प्रभावित जान पड़ते हैं। उन्होंने कथा के अतिरिक्त नीति राजनीति भक्ति, दर्शन आदि के सिद्धान्तों का भी चौपाई में बड़ी सफलता के साथ निरूपण किया है।

दोहा और सोरठा मानस के कथाप्रवाह के विश्रामस्थल हैं जहाँ पाठक को चिन्तन और मनन का भी उपयुक्त अवसर मिल जाता है। अधिकतर आठ अर्धालियों के पश्चात् ही दोहा अथवा सोरठा अथवा दोनों के युग्म का प्रयोग हुआ है किन्तु अनेक स्थलों पर जहाँ इस क्रम का निर्वाह नहीं दिखलाई पड़ता है, वहाँ यह 'किया पुष्प' से लेकर २ १ ७ ९ २२ और १७[2] तक पहुँच गई है। विषम संख्या मिले ऐसे स्थलों में पं० विजयानन्द त्रिपाठी के अनुसार अन्तिम अर्धाली को पूरी चौपाई मान लेना चाहिए। वे कहते हैं कि जहाँ ११ अर्धालियों के बाद दोहा आया है वहाँ ६ चौपाइयाँ मानना ही न्याय है।[3] इसके अतिरिक्त यहाँ यह भी स्मरणीय है कि जहाँ यह संख्या कम है वहाँ चौपाई के स्थान पर अन्य विषयानुकूल छन्दों को प्राथमिकता दी गई है अन्यत्र अधिकता खास स्थलों में प्रसंग अथवा वर्णन की पूर्णता की दृष्टि से ही चौपाइयों का अभीष्ट विस्तार किया गया है। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि एक तो गोस्वामी जी छन्दों से अधिक वस्तु को उचित महत्व देते हैं और दूसरे छन्दों के संकुचित बन्धनों से वे कहीं भी विवश नहीं होते हैं। डा० शम्भुनाथ सिंह के अनुसार कहा जा सकता है कि सच बात तो यह है कि तुलसी ने छन्द संगीत लय और भावाभिव्यंजना को ही अधिक महत्व दिया है पिंगल शास्त्र के नियमों की अवहेलना की यदि वह लोक-विहित हो उन्होंने अधिक चिन्ता नहीं की है। यह कवि की स्वतन्त्र प्रवृत्ति का फल है कि उसकी चौपाइयों में सहज और सरल प्रवाह दिखाई पड़ता है।[4] इसके अतिरिक्त चौपाइयों के प्रयोग में डा० पुत्तूलाल शुक्ल के अनुसार तुलसी की एक विशेषता और परिलक्षित होती है कि उन्होंने उनमें १६ मात्राओं वाले दिक्पाल पादाकुलक पज्झटिका सिंह अरिल्ल मत्तसमक विश्लोक चन्द्रावकुलक विदुंग आदि मात्रिक छन्दों तथा तोटक विद्युन्माला दोधक चन्द्रोद्धवपति भुजंगप्रयात मौक्तिकदाम, सुरक्षित स्थापना और इन्द्रवज्रा आदि अनेक वृत्तों की विशेषताओं को भी समाहित कर लिया है[5] जिसके फलस्वरूप चौपाई के किसी चरण में तोटक किसी में

---

१ मानस १।१८६ १।२०,७।११ १०१ १०२ १०८

२ मानस १।१२ ४।७ ७।१२१

३ पं० विजयानन्द त्रिपाठी—मानस-प्रसंग द्वितीय भाग पृ० ४१

४ डा० शम्भुनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृष्ठ ३११

५ डा० पुत्तूलाल शुक्ल—आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना—पृष्ठ ११७, २१९-२१

विद्युन्माला किसी में स्वागता और किसी में दोधक आदि का चतुर्था चमत्कार भी दिखलाई पड़ जाता है। कहीं दो चरणों में एक छन्द है तो शेष दो चरणों में दूसरा है। इससे तुलसी के विस्तृत छन्दज्ञान एवं समन्वय शक्ति का भी परिचय मिल जाता है।

उपर्युक्त तीन छन्दों के पश्चात् हरिगीतिका' तुलसी का सर्वप्रिय छन्द है। 'मानस' में यह सबसे अधिक—१४० बार—प्रयुक्त हुआ है। चौपाइयों के द्वारा प्रस्तुत भाव प्रभाव एवं दृश्य विधान को सर्वाङ्गपूर्ण और रंगीन बनाने में हरिगीतिका' का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके प्रयोग में प्रसंगनिर्वाह का भी विशेष ध्यान रखा गया है इसीलिये उसकी प्रथम पंक्ति का आरम्भ सदैव उसके पूर्वप्रयुक्त अर्धाली के उत्तरार्ध की पुनरावृत्ति से ही किया है, यथा

भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगल करनी॥

मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की॥ १।१०

तुलसी की छन्दयोजना का सर्वश्रेष्ठ रूप अयोध्याकाण्ड में दृष्टिगोचर होता है जहाँ प्रत्येक ८ अर्धालियों के पश्चात् एक दोहा नियमित रूप से मिल जाता है और ऐसे प्रत्येक २५वें दोहे के स्थान में एक हरिगीतिका' और सोरठा' का प्रयोग किया गया है किन्तु ११ वें दोहे पर लघुवयस तापस प्रसंग' से यह क्रम कुछ व्यवहित हो गया है। शिव-विवाह राम-विवाह रामस्तुति और रावण-युद्ध के वर्णन में इस छन्द का क्रमशः अधिक प्रयोग किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि उत्साह एवं उल्लास के चित्रण के लिए तुलसी ने इस छन्द को एक सबल माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक काण्ड की समाप्ति पर भी इस छन्द का अनिवार्य प्रयोग इसी प्रवृत्ति का सूचक है। मानस रूपक' में जहाँ तुलसी ने चौपाई दोहा और सोरठा के साथ छन्द को भी 'बहुरंग कमल' निरूपित किया है, वहाँ छन्द शब्द से उनका अभिप्राय, इसी हरिगीतिका' छन्द से ही जान पड़ता है।[1]

जहाँ तक त्रिभंगी आदि शेष तीनों छन्दों का सम्बन्ध है उनमें से पाँचों त्रिभंगियों[2] भी में से सात चौबैयों' और तेरह में से आठ तोमरों' का प्रयोग केवल स्तुति में किया गया है। शेष दो चौबैयों से[3] रावण के अत्याचार तथा देवताओं की विवशता और पन्द्रह तोमरों[4] से चार एवं रावण के युद्ध का रोचक निरूपण किया गया है। उपर्युक्त तीनों छन्दों में प्रथम दो में दसवीं एवं अठारवीं मात्राओं के पश्चात यति होती हैं जबकि अन्तिम छन्द केवल बारह मात्राओं का होता है। इस प्रकार स्वल्प विरामों के साथ इन छन्दों के उच्चारण किए जाने से

---

१ मानस १।३७   २ मानस १।१९२।१ २११।१-४
३ " १।१८५।१-४, १६२।१ २ ४ ४ ६।११३।१-८
५ ' १।१८३ १८४   ६ ३।२०,६।१०१

इनमें भावावेग को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने की अपूर्व सामर्थ्य पाई जाती है। विशेषतः जब मानव हृदय इतना आनन्द मग्न अथवा आतंकग्रस्त होता है कि वह रुक रुक कर छोटे छोटे वाक्यों में अपने विचार व्यक्त करने लगता है, उस समय भावों की इस सूक्ष्म प्रतिच्छवि से सुपरिचित महाकवि ऐसे ही अनूठे छन्दों का प्रयोग किया करते हैं।

(१) वार्णिक छन्द— मानस में प्रयुक्त सभी वार्णिक वृत्त संस्कृत के हैं। उनमें इन्द्रवज्रा 'वंशस्थ' और मालिनी' का एक बार वसन्त-तिलका रथोद्धता' और स्रग्धरा' का दो बार अनुष्टुप' का सात बार भुजंगप्रयात' का आठ बार, शार्दूलविक्रीडित' का दस बार प्रमाणिका' का तेरह बार और तोटक[11] का इक्कीस बार प्रयोग किया गया है। इनमें सर्वाधिक प्रयुक्त तोटक छन्द में चार सगणों के फलस्वरूप सोलह मात्रायें होने से चौपाई के समान ही लयात्मकता होती है। सम्भवतः इसी दृष्टिकोण से उसमें न तो संस्कृत भाषा का प्रयोग मिलता है और न विशुद्ध स्तुति-वर्णन तक ही उसको सीमित रखा गया है जबकि शेष सभी वर्णवृत्तों में उपर्युक्त दोनों विशेषताएं सर्वत्र दिखलाई पड़ती हैं।

मानस' के इन्हीं छन्दों के साथ संस्कृत-साहित्य के छन्दों की तुलना की जा सकती है। काव्य शास्त्रीय नियमों के आधार पर संस्कृत के ग्रंथों में प्रत्येक सर्ग में केवल एक ही छन्द का प्रयोग किया जाता है और केवल अन्त में सर्ग-परिवर्तन की सूचना के निमित्त उसमें परिवर्तन कर दिया जाता है। वहाँ सर्गबद्धता के लिये इन छन्दों में से अनुष्टुप इन्द्रवज्रा वंशस्थ रथोद्धता तथा वसन्त-तिलका और सर्गान्त के लिये मालिनी भुजंग प्रयात शार्दूल विक्रीडित तथा स्रग्धरा आदि का ही अधिकतर व्यवहार किया जाता है। शेष तोटक और प्रमाणिका छन्दों का बहुत कम प्रयोग दिखाई पड़ता है।

वस्तुवर्णन की दृष्टि से संस्कृत साहित्य में इन छन्दों में बड़ा वैविध्य प्राप्त होता है। रामायणमञ्जरी में सभी काण्डों में एक मात्र अनुष्टुप का ही आलम्ब

१ मानस २।१ श्लोक १
३ ३।१ " १
५ ७।१ " २ १
६ ६।१ " १,७।१ श्लोक १
८ " ७।१०८ श्लोक १–८
९ " १।१ " ६ २।१ श्लोक १ ३।१ श्लोक १–२ ४।१ श्लोक १–२
३।१ " १,६।१ " २ तथा ७।१३० श्लोक १–२
१० मानस ३।४ श्लोक १–१२ ७।१२२ श्लोक १
११ मानस ६।११।१–११,७।१४।१–१० १०२।१–५,१०२।१–५

२ मानस २।१ श्लोक २
४ १।१ ७ २।१ श्लोक २
७ " १।१ " १–५ ६।१ श्लोक १ ७।१०८ श्लोक १

प्रयोग किया गया है केवल अन्त में 'रामाभिषेक' के वर्णन में लगभग १० 'इन्द्रवज्रा' और दो 'वसन्त-तिलका' एवं एक मालिनी' के वर्णन होते हैं।[1] 'मानस' में जिस प्रकार केवल दोहों और चौपाइयों से ही सभी भावों के समर्थ प्रकाशन में तुलसी अद्भुत क्षमता के दर्शन किए जा सकते हैं उसी प्रकार वहाँ भी सभी प्रसंगों में अनुष्टुप् की अद्वितीय शक्ति का परिचय मिल जाता है। महाभारत और समस्त पुराणों में भी इसी छन्द की प्रमविष्णुता दर्शनीय है। रघुवंश राघवीय रामचरित उदारराघव जानकी हरण आदि महाकाव्यों में भी अधिकांश सर्गों के कलेवर केवल इसी छन्द से निर्मित हुए हैं। वस्तुतः यह संस्कृत का मूल छन्द अथवा श्लोक है इसलिए श्लोक' शब्द इसका पर्यायवाची ही बन गया है।

इन्द्रवज्रा आदि छन्दों में भी गति के अभाव के कारण एक स्वच्छन्द प्रवाह ममता दृष्टिगोचर होती है अतः वस्तु के अनवरुद्ध और सवेग वर्णन में इनकी उपयोगिता स्वयं-सिद्ध है। सम्भवतः इसीलिए संस्कृत के महाकाव्यों में अनुष्टप के पश्चात् इन छन्दों का बहुलता से प्रयोग प्राप्त होता है। मालिनी शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा छन्दों में क्रमशः अधिक वर्णों एवं यतियों का समावेश होने से विस्तृत चित्रणों अथवा विश्राम के स्थलों में ही इनका स्मरण किया जाता है। 'मानस में इन तीनों छन्दों के प्रयोग में गोस्वामीजी ने अपनी विशिष्ट निपुणता का परिचय दिया है। उन्होंने बालकाण्ड' को छोड़कर आदि के चार काण्डों का आरम्भ शार्दूल विक्रीडित से और अंतिम दोनों काण्डों का आरम्भ स्रग्धरा से किया है। इनमें प्रथम दो से शिव की और अन्तिम चार से राम की वन्दना प्रस्तुत की गई है। एक मात्र मालिनी छन्द का प्रयोग हनुमान की वन्दना में किया गया है। इस प्रकार इन छन्दों के सरस एवं सुमधुर प्रवाह से उन्होंने एक तो ग्रन्थ के समस्त वातावरण को एक दिव्यता एवं पवित्रता प्रदान की है और दूसरे केवल स्तुति को ही इन छन्दों का वर्ण्य विषय बनाकर उनकी एकोद्देश्यता भी स्पष्ट कर दी है।

कला की दृष्टि से तुलसीदासजी छन्द-शास्त्र के बहुत बड़े विद्वान हैं। उन्होंने अपने विभिन्न ग्रन्थों में छन्द-शास्त्र सम्बन्धी अपने विस्तृत ज्ञान का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिचय दिया है। दोहा कवित्त सवैया बरवै मंगल सोहर गीत आदि अनेक छन्दों को लेकर उन्होंने स्वतन्त्र काव्यों का प्रणयन भी किया है। उनका विशाल साहित्य इस दिशा में उनके पाण्डित्य का विशेष परिचायक है। छन्दों की रसानुकूलता के वे बहुत बड़े मर्म। है और साथ ही मानव-स्वभाव के भी अद्वितीय पारखी हैं। इसीलिए मानस' के हृदयस्पर्शी स्थलों में उन्होंने भाव और प्रसंग के अनुरूप ही ललित और रसप्रवण छन्दों के विधान में अपनी अद्वितीय प्रतिभा का मौलिक उत्कर्ष प्रतिष्ठित किया है।

---

१ रा० मञ्जरी। संकेतर।१४१ १६१

संगीत की दृष्टि से भी 'मानस' के छन्दों में मन को रमाने की अपूर्व शक्ति है। संस्कृत के वार्णिक वृत्तों के सस्वर पाठ अथवा गायन से जहाँ एक आन्तरिक आह्लाद उपलब्ध होता है वहाँ दोहा, चौपाई, सोरठा और हरिगीतिका आदि से भी एक सप्राण संगीत की मधुर निष्पत्ति होती है। छन्दों की संगीतात्मकता पर विचार करते हुए श्री सुमित्रानन्दन पंत कहते हैं कि 'कविता हमारे प्राणों का संगीत है। छन्द हृत्कम्पन है तथा कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान हो जाता है। अपने उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन छन्द ही में बहने लगता है उसमें एक प्रकार की सम्पूर्णता, स्वरैक्य और संयम आ जाता है।'[1] 'मानस' की चौपाइयों की संगीतात्मक प्रभावमयता का एक और रहस्य है कि उनमें हिन्दी और संस्कृत के विविध छन्दों का सरस समावेश हो गया है जिससे वे हमारे मन के अनेकानेक भावों को समान रूप से उद्दीप्त करने में पूर्ण सक्षम हैं। श्री बेंडेर के अनुसार कवि जब किसी ऐसे सुन्दर छन्द का चयन कर लेता है, तो उसे अभिव्यक्ति में बड़ी सहायता मिलती है क्योंकि उसके द्वारा रूप और भाव का विकास सहज हो जाता है।'[2] चौपाइयों के इसी महत्व का प्रतिपादन करते हुए डा० राजपति दीक्षित कहते हैं कि 'चौपाइयों में प्रयुक्त स्वरों और व्यंजनों का नाद श्रुति में ऐसा उत्तम आरोह या अवरोह है कि वे गायकों के लिए भी उपकारक सिद्ध होती हैं। फलतः हारमोनियम, सितार, ढोल, झांझ आदि बाजों के साथ प्रायः लोग इन्हें उत्साहपूर्वक गाते भी हैं। इनका संगीतत्व स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति न करनी चाहिए, क्योंकि गोस्वामीजी ने अनेक स्थलों पर अपने को रामचरित का गायक भी कहा है।'[3]

यह 'मानस' की अद्भुत संगीतात्मकता का ही प्रभाव है कि कभी-कभी संगीत के विशेष ज्ञान अथवा साधन के अभाव में भी अनेक 'मानस प्रेमियों' को 'रामभक्ति' इतना विह्वल कर देती है कि वे स्वेच्छा से ही नवीन रागों का सृजन कर लिया करते हैं। अनेक रामभक्तों का यह भी विश्वास है कि 'मानस' के पाठ अथवा गायन से अभीष्ट कार्य की सिद्धि होती है। फलतः अनेक उत्सवों पर 'मानस' के जो एकाह्निक, नवाह्निक अथवा मासिक पारायण आयोजित किए जाते हैं उनमें सामूहिक रूप से 'मानस' का सस्वर गायन भी किया जाता है। संगीत में जिस प्रकार किसी एक विशिष्ट 'टेक' की बार-बार आवृत्ति की जाती है उसी प्रकार इन पारायणों में भी प्रत्येक दोहे के पश्चात 'मानस' की किसी एक विशेष अर्धाली को संपुट के नाम से टेक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है और उसको

---

१ श्री सुमित्रानन्दन पंत—पल्लव-प्रवेश, पृष्ठ २१
२ श्री एन०आर० बेंडेर—रेटोरिक एण्ड प्रोसोडी पृष्ठ १२०
३ डा० राजपति दीक्षित—तुलसीदास और उनका युग पृष्ठ ३०४

विशेष ध्वन्यात्मकता के साथ बारम्बार दुहराया भी जाता है। ये 'अर्धालियाँ' 'मानस' में विभिन्न रामभक्तों की स्तुतियों से चुन ली जाती हैं। पाठकर्ता के विभिन्न उद्देश्यों के अनुसार इनका वर्गीकरण भी प्राप्त होता है। क्रमशः विशेष कार्यसिद्धि के लिए विशेष 'सम्पुट' को ही अपनाने का परामर्श दिया जाता है। इन संपुटों की पुनरावृत्ति का लक्ष्य 'उद्देश्य-विशेष के सतत् स्मरण के अतिरिक्त विश्राम' और 'मान्य पाठकर्ता का परिवर्तन भी होता है ताकि वह पारायण' निश्चित समय तक अविराम गति से चलता रहे। ऐसे अवसरों पर 'मानस' के रामजन्म राम-विवाह और रामाभिषेक के प्रसंगों को बड़े समारोह के साथ विभिन्न वाद्ययन्त्रों की सहायता से गाया भी जाता है। इससे पता चलता है कि उल्लासपूर्ण प्रसंगों की आयोजना में गोस्वामी जी ने संगीतात्मकता का कितना विशेष ध्यान रखा है। इस प्रकार मानस' में गीतिकाव्य के भी विभिन्न तत्वों का सरस समन्वय सहज सुलभ है।

(४) निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि यद्यपि गोस्वामी जी ने मानस' में अपने छन्द-शास्त्रीय ज्ञान का सरस परिचय दिया है तो भी वे उसके बन्धनों के आगे कहीं भी नतमस्तक नहीं हुए हैं। उन्होंने विभिन्न छन्दों के सामंजस्य से चौपाई छन्द को इतना सुपुष्ट बना दिया है कि वह प्रत्येक भाव के वहन और ज्ञापन में पूर्ण समर्थ हो गया है। संस्कृत के छन्दों का अधिकतर वन्दनाओं में प्रयोग करके उन्होंने मानस' में एक विशिष्ट वातावरण का निर्माण भी किया है। कला और संगीत की दृष्टि से भी उनकी छन्द-योजना में एक प्रशस्त प्रौढ़ता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'मानस की छन्द योजना में गोस्वामी जी को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

८ भाषा–विवेचन

गोस्वामीजी ने मानस की भाषा को सर्वत्र भाषा के नाम से ही अभिहित किया है।[1] भाषा' शब्द से उनका तात्पर्य संस्कृतेतर लोक भाषा से रहा है इसी लिये 'प्राकृत आदि के लिये भी उन्होंने साधारणतया भाषा' शब्द का ही प्रयोग कर दिया है।[2] उनके समय में 'अवधी और 'ब्रज दोनों भाषायें साहित्यिक रूप में प्रतिष्ठित थीं। उन दोनों पर उनका समान अधिकार भी दिखलाई पड़ता है। अवधी में रामचरित मानस' और 'ब्रज में कवितावली गीतावली और विनय पत्रिका आदि ग्रन्थों का निर्माण उनके इस भाषा पाण्डित्य का स्पष्ट परिचायक है। मानस' के निर्माण के लिए तुलसी ने अवधी को दो कारणों से प्राथमिकता दी

१ मानस १ २८, ११२, ११२ १४६ २१६, १४२ २।७२ १०७ ११७ १९७ २०५, २६१, ३।११, ४।७ ५।२७ १४ ४० ७।१८,११ ८४
२ मानस १।१ श्लोक ७ १।६ १४ १५ ११ ७।११० श्लोक १
३ मानस १।१४

होंगे एक तो वे 'महाकाव्य' की रचना के लिए 'अवधी' की परम्परा एवं उपयुक्तता से सुपरिचित थे और दूसरे उनके 'कथानायक राम' का जन्म-सम्बन्ध भी अवध प्रान्त से था।

रचना की दृष्टि से 'रामचरित मानस' की भाषा पश्चिमी अवधी के अधिकांश रूपों को रखती हुई भी प्रधानतः 'बैसवाड़ी अवधी' है। परम्परा और भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण दोनों ही इस निर्णय का समर्थन करते हैं।[1] तुलसी के सामने ठेठ अवधी का प्रचलन था किन्तु उनकी समन्वयकारी प्रतिभा ने उसके 'ठेठपन' को स्वीकार नहीं किया फलतः 'मानस' में उस अवधी लोकभाषा के दर्शन होते हैं जिसमें अवधी के अतिरिक्त अनेक प्रान्तीय भाषाओं विभाषाओं तथा बोलियों के प्रचलित शब्दों का बड़ी सफलता के साथ प्रयोग किया गया है। इतना ही नहीं उसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के अतिरिक्त अरबी और फारसी के भी बहु संख्यक शब्दों का महत्वपूर्ण योगदान है। डा० बलदेवप्रसाद मिश्र के अनुसार गोस्वामीजी के मन में भी लोक भाषा के सम्बन्ध में ऐसी ही कुछ धारणा थी, इसीलिए उनके रामकथा काव्य में हम न केवल विपुल शब्दावली ही पाते हैं किन्तु विपुल प्रयोगावली के भी दर्शन कर सकते हैं।[2] 'जायसी की भाषा के साथ तुलसी की भाषा की तुलना करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि 'जायसी की भाषा और तुलसी की भाषा में यही बड़ा अन्तर है कि जायसी की पहुँच अवधी में प्रचलित लोक भाषा के भीतर बहते हुए माधुर्य तक ही थी पर गोस्वामी जी की पहुँच दीर्घ संस्कृत-काव्य-परम्परा द्वारा परिपक्व चाशनी के भंडागार तक भी पूरी पूरी थी। तुलसीदास जी में ठेठ अवधी की मधुरता भी प्रसंग के अनुसार जगह जगह पर मिलती है। सारांश यह है कि तुलसीदास जी का दोनों प्रकार की भाषाओं पर आधिपत्य था और जायसी का एक प्रकार की भाषा पर।'[3]

'मानस' के समस्त भाषा पटल में मूलतः संस्कृत की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। प्रत्येक काण्ड के आदि के श्लोकों में तथा अनेक स्तवनाओं में संस्कृत का ही एकाधिकार है। इसके अतिरिक्त उनकी अवधी भाषा में भी संस्कृत के अति ललित पदों और सामासिक शब्दों का बहुत बड़ी मात्रा में प्रयोग मिलता है। संस्कृत की रचना में गोस्वामीजी की अद्भुत सामर्थ्य देखकर यह विश्वास होता है कि वे यदि चाहते तो संस्कृत में भी 'मानस' का निर्माण सफलतापूर्वक कर सकते थे। डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव के अनुसार अभिव्यक्ति के विचार से तो तुलसी प्रचलित जन भाषा के पक्षपाती थे, किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से वे—संस्कृत भाषा के प्रति अगाध आदर रखने वाले थे। अतएव उन्होंने अपनी रचनाओं के अन्तर्गत संस्कृत की

१ डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव—तुलसीदास की भाषा पृष्ठ ६६१
२ डा० बलदेवप्रसाद मिश्र—मानस में रामकथा—पृष्ठ ८४-८५
३ जायसी ग्रन्थावली की भूमिका—सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संस्करण पृ० ११७

शब्दावली को भी पर्याप्त मात्रा में स्थान दिया। जनभाषा के प्रति अपनी आस्था रखना और संस्कृत के प्रति श्रद्धाभाव का साथ-साथ पूर्ण निर्वाह करना, तुलसी जैसे लोकनायक का ही काम था।[1] इस सम्बन्ध में डा० राजपति दीक्षित कहते हैं कि सच्चे महाकवि की भांति गोस्वामीजी अपने सामयिक जनसामान्य की भाषा से पूर्णतया अभिज्ञ थे और उसकी प्राचीन परम्परा से संबद्ध भाषाओं का भी उन्हें परिज्ञान था।[2] इसीलिए उनकी भाषा में वाल्मीकि की स्वाभाविकता व्यास की समास-शक्ति भारवि का अर्थ-गौरव, बाण का सालंकार कालिदास की प्रसादिकता चन्द की अनेकरूपता कबीर की ओजस्विता जायसी की ठेठपनता और सूर की माधुरी मर्यादित एवं समन्वित रूप में विद्यमान है।[3]

यह पहले ही कहा जा चुका है कि मानसकार ने मानस के निर्माण में 'नानापुराणनिगमागम और वाल्मीकि रामायण आदि की सम्मति को स्वीकार किया है अतः मानस' की इस संस्कृत-सम्पन्नता का यही सबसे बड़ा कारण सिद्ध होता है। 'मानस' के भाषा-विधान के स्वस्थ तुलनात्मक अध्ययन से ही, उस पर पड़े हुए संस्कृत काव्यों के प्रभाव का भी स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है। वस्तुतः तुलसी ने अपने मानस' में वाल्मीकि-रामायण अध्यात्म रामायण महाभारत भागवत पद्मपुराण शिवपुराण अनेक उपनिषद् प्रसन्नराघव हनुमन्नाटक तथा विविध नीति-ग्रन्थों से बहुत कुछ तो ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है और समन्वित स्थलों पर उन्होंने उनसे भाव तथा अर्थ का भी निस्संकोच संकर्षण किया है। सम्प्रार्थ के इस ग्रहण में तुलसी भावों की अभिव्यक्ति की तीव्रता से ही अधिक प्रेरित हुए हैं। उन्होंने केवल उन्हीं प्रसंगों में ही यह ग्रहण किया है, जहाँ उनके विचार से अन्यथा अभिव्यक्ति में अभीप्सित सफलता की प्राप्ति सम्भव नहीं थी।

(१) शब्द ग्रहण—आचार्य राजशेखर ने काव्यमीमांसा' में पद पाद अर्थ वृत्त और प्रबन्ध के भेद से शब्दहरण के पांच भेद स्थिर किये हैं। तुलसी के संदर्भ में यह हरण शब्द ठीक नहीं है क्योंकि उन्होंने अपने स्रोतों का पहले ही नामोल्लेख कर दिया है अतः इसे ग्रहण कहना ही उचित होगा। इस ग्रहण में 'पद से संज्ञा अथवा क्रिया' के पद पाद से श्लोक का चतुर्थ भाग 'अर्थ से उसका अर्थमात्र वृत्त से उसका छन्द और प्रबन्ध' से उसका कथानक अभिप्रेत है। 'प्रबन्ध ग्रहण' के सम्बन्ध में पिछले अध्यायों में विस्तार से विचार किया जा चुका है अतः यहाँ पर पाद अर्थ और वृत्त के ही ग्रहण का विवेचन अपेक्षित है।

---

१ डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव—तुलसीदास की भाषा पृष्ठ ९
२ डा० राजपति दीक्षित—तुलसीदास और उनका युग-पृष्ठ ४१६
३ डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव—तुलसीदास की भाषा—पृष्ठ ३४५
४ काव्य मीमांसा-पं० केदारनाथ शर्मा-पृष्ठ ११६

(१) तात त्वं निज तेजसैव गमित स्वर्गं व्रज स्वस्ति ते । हनु० ३।१६

— — —

तात कर्म निज ते गति पाई ॥ ३।३१

(२) हा राम हा रमण हा जगदेक वीर, हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम् ।
हनुमन्नाटक ४।१४

— — —

हा जगदेकबीर रघुराया । केहिं अपराध बिसारेहु दाया ॥ ३।२८

(३) मा भैषी पुत्रि सीते व्रजति मम पुरी नैव दूरं दुरात्मा ॥ हनु० ४।१०

— — —

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा । करिहौं जातुधान कर नासा ॥ ३।२९

(४) किं जल्पितेन बहुना सुमुखि त्वदर्थे स्वाम्युज्झितस्यपि शिरांसि पुनर्दशास्य ।
प्रसन्नराघव ६।१८

— — —

कहु रावन सुनु सुमुखि सयानी ॥ ५।९

(५) किं गंगाऽपि नदी गज सुरगजोऽप्युच्चैः श्रवाः किं हय ।
किं रम्भाऽप्यबला कृतं किमु युगं कामोऽपि धन्वी नु किम् ॥
महानाटक ७।११

— — —

राम मनुज कस रे सठ बंगा । धन्वी कामु नदी पुनि गंगा ॥ ६।२६

(६) उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥ गीता ७।१८

— — —

रामभगत जग चारि प्रकारा । सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥ १।२२

(७) शमी शम्यतु रम्योऽम्यमुमी भूमी निषेदतुः ॥ महाभारत । वन ।२८०।११
गिरे समी ताकी मति तहाँ ॥ ४।८

(८) गाधवारिचरास्तापमविन्दन् शरदर्कजम् ।
यथा दरिद्रकृपण कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥ भागवत १०।२०।१७

— — —

जल संकोच बिकल भइँ मीना । अबुध कुटुम्बी जिमि धन हीना ॥ ४।१६

(४) विभक्तियुक्त तद्भव—विभिन्न संस्कृत-ग्रंथों से 'मानस' में ऐसे अनेक पद भी गृहीत हुए हैं जिनमें विभक्तियाँ तो हैं किन्तु उनका रूप भाषा की प्रकृति के अनुसार परिवर्तित हो गया है। निम्न उदाहरणों के रेखांकित पदों में इसका स्वरूप दर्शनीय है —

(१) परदारापहरणे न श्रुता या दशानन ।
दृष्टा दूतपरिवादे साधोस्ते धर्मशीलता ॥ हनु० ८।२२

— — —

कहु कपि धर्मसीलता तोरी । हमहु सुनी कृत परतिय चोरी ॥ ६।२२

(२) जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥ भागवत २।३।२०

— — —

जो न करइ राम गुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ॥ १।११२

(३) नृदेहमाद्यं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥
भागवत । ११।२०।१७

— — —

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो । सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा । दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ ॥ ७।४४

(५) विभक्ति हीन तत्सम—'मानस' की चौपाइयों में संस्कृत के अनेक पदों को विभक्ति से हीन करके उनके मूल रूपों में स्वीकृत कर लिया गया है। प्रस्तुत उदाहरणों में रेखांकित पद इसी दृष्टिकोण से द्रष्टव्य हैं —

(१) अथ विश्वमयात सा वपु तत्पापा निजमासदत् परम् ॥ रामगीत १।२४

— — —

जोग आगि तेहिं निज पद दीन्हा ॥ मानस १।२०९

(२) जन्मान्तरकृतात्पापात् गुरुतीर्थं प्रयापयेत ।
संसार तारणायैव अनघं तीर्थमुत्तमम् ॥ पद्म । भूमि । १२१।२१

— — —

मुदमंगल मय संत समाजू । जो जग जंगम तीरथ राजू ॥ १।२

(३) रे रे रक्ष त्वं दारुण रघुकुलतिलकदारापहरण प्रयासि ॥ हनु० ३।१०

— — —

गीधराज सुनि आरत बानी । रघुकुल-तिलक नारि पहचानी ॥ ३।२८

(४) सुग्रीवाङ्गदनलो ज्योतिर्नलोपेन्द्रो लिखिष्यते ।
मुख्या परे यदि मने नरनारायणमयो ॥ रा० मञ्जरी । किष्किन्धा ।९

— — —

की तुम्ह तीन देव महँ कोऊ । नरनारायन की तुम्ह दोऊ ॥ ४।१

(५) हृते सामान्यरूपेण मुक्ति प्राप सर्वोत्तमः ॥ पद्म । उत्तर । २४२।२६९

... ...

नीच देह तजि धरि हरि रूपा ॥ ६।१२

(६) संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ गीता । २।३४

... ...

संभावित कहँ अपजस लाहू । मरन कोटि सम दारुन दाहू ॥ २।९५

(७) राम स्त्रीविरहेण हारितवपुस्तद्बन्धुना लक्ष्मण ।
सुग्रीवोऽप्यवधस्य मेरुकतया निर्मूलतरुद्रुम ॥ हनु० ८।६

... ...

तब प्रभु नारि बिरह बलहीना । अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥
तुम सुग्रीव कूल द्रुम दोऊ । ... ... ॥ ६।३१

(८) साऽब्रवीत्सत्यसंधस्य कृतज्ञस्य महीपतेः ।
तव वंशापहरणं मुग्धतामवधारितम ॥ रा० मञ्जरी । अयोध्या । ७४१

... ...

... ... । सत्यसंध तुम रघुकुल माहीं ।
देन कहेउ अब जनि बरु देहू । तजहु सत्य जग अपजस लेहू ॥ मानस २।३०

(६) विभक्तिहीन पदप्रयोग—इसमें संस्कृत के पदों की विभक्तियों के त्याग के पश्चात् 'भाषा' में उनके प्रचलित रूप को प्रमुखता दी गई है। रेखांकित पदों में यह विशेषता दर्शनीय है।

(१) आसन्नुत्पलवालिन्य कुमुद्योऽनुपुष्पवती ।
पुंसो यथा स्वदृग्भस्य देह द्रविण सम्पदः ॥ भागवत १०।२०।१०

... ...

कुमुदनी मरि बसी तारई । बस मोन्द्र मन जस चोराई ॥ ४।१४

(२) पुत्रकेभ्यो बुधि केवलायां निपेतुषीं लोमहृद्योदरीणाम ॥
रघुवीरचरित १२।७४

... ...

इहतनु सीय भइ एक बेधी । जपति हृदय रघुपति गुनस्रेनी ॥ २।८

(३) अपि मुखमुखमाम्यो वाणिमात्रे स्वकीये ।
परमणितिपरितोषं यान्तिसन्तः कियन्तः ॥ प्रसन्नराघव १।१९

... ...

निज कबित्त केहि लाग न नीका । सरस होउ अथवा अति फीका ।
जे परभनिति सुनत हरषाहीं । ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं ॥ १।८

(४) मस्माके मुर्भ त्रारासममिदं मुध्यत्समुर्वीमुजाम ।
मस्माकं भवतां पुनर्नवमुर्न यज्ञोपवीतं बलम् ॥ प्रसन्नराघव ४।२२

... ...

देव एकगुन धनुष हमारे । नवगुन परम पुनीत तुम्हारे ॥ १।२८२

(५) समविभक्तिहीन तत्सम—संस्कृत के अनेक विभक्तिहीन मौल पदों को भी 'मानस' में ज्यों का त्यों समाविष्ट कर लिया गया है। रेखांकित पदों में यह प्रवृत्ति सरलता से देखी जा सकती है —

(१) नमयति धनुरेतं मत्तवारोपमेन् ।
त्रिभुवन जयलक्ष्मी जानकी तत्त्ववारा ॥ हनु० १।१८

... ...

सोइ पुरारिकोदण्ड कठोरा । राज समाज आजु जेइ तोरा ॥
त्रिभुवनजय समेत बैदेही । बिनहि बिचारि बरै हठि तेही ॥ १।२५०

(२) हेलोत्तंभितवारिधि कपिकुलं सार्थं स रामो महान् ॥ हनु० ६।१

... ...

जेहि जलनाथ बँधायउ हेला ॥ ६।३७

(७) समविभक्तिहीन तद्भव—इसमें पूर्वोक्त विभक्तिहीन पदों को तद्भव रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस विचार से रेखांकित पद उदाहरणीय हैं—

(१) पयःफेन निभा शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदा ॥ भागवत
१।११।२६ ७।१।११

... ...

सुभग सुरभि पयफेन समाना ।
कोमल कलित सुपेती नाना ॥ २।९१

(२) चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ पद्म । पाताल ।१।१४

... ...

नाना भाँति राम अवतारा । रामायन सतकोटि अपारा ॥ १।३३

(३) जरद्भूतिविषदाविव सदृश तस्तु न दृश्यते ।
चतुर्थीचन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका ॥ प्रसन्नराघव ७।१

... ...

जो आपन चाहइ कल्याना । सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना ।
सो परनारि लिलार गोसाईं । तजउ चउथि के चंद की नाईं ॥ ५।३८

(४) आसूर्यावरणोदरेषुरस्ति ते पादद्वौर्त्ति कथा प्रकीयसी ॥
आसत्तांमि तव पादपंकजं भावदारादुचकोरनु का मिता ॥ महानाटक १।४२

... ...

चरन कमल रज कहुँ सब कहई । मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई ॥२।१००

(५) यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ गीता १२।१७

– –

त्यागहि कर्म शुभाशुभ दायक । भजहि मोहि सुरनर मुनि नायक ॥७।४१

(६) हा तातोऽसि पुलस्त्यसद्वंश तिलक शीतल वैमलिनम् ॥ प्रसन्नराघव ७।१

– – –

रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका । तेहि ससिमहुँ जनि होहु कलंका ॥
५।२३

(८) विभक्त्योज्झित तत्सम—इसमें संस्कृत के विभक्तिहीन पदों को ज्यों का त्यों ग्रहण करके उनमें भाषा की विभक्तियाँ जोड़ दी जाती हैं । इस सम्बन्ध में निम्न रेखांकित उदाहरण दर्शनीय है –

(१) गो केशामरवाहिनीपतिमहावज्रचपेटोत्करैः ।
तन्मुष्टिभिरंगसंगरगतस्तत्स्कन्धं तप्यते ॥ हनु० ८।४९

– – –

जाको फल पावहिगो आगे । बानर भालु चपेटन्हि लागे ॥ ६।६२

यहाँ 'बानर' में समविभक्तिहीन तद्भव और 'फल' में विभक्तियुक्त तद्भव भी उदाहरणीय है ।

(९) विभक्त्योज्झित तद्भव—इसके अन्तर्गत विभक्तिहीन पदों को तद्भव रूप में स्वीकार करके फिर उनमें पूर्वोक्त प्रकार से विभक्तियों का योग कर दिया जाता है –

(१) मयूखनखरत्रुटत्तिमिरकुम्भिकुम्भस्थलो ज्ज्वलतरलतारकाकपटकीर्णमुक्तागणः ।
पुरन्दरहरिद्दरीकुहरगर्भसुप्तोत्थित तुषारकरकेसरी गगन काननं गाहते ॥
प्रसन्नराघव ७।६१

– – –

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी । परम प्रताप तेज बल रासी ॥
मत्त नाग तम कुम्भ बिदारी । ससि केसरी गगन बन चारी ॥
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा । निसि सुन्दरी केर सिंगारा ॥ ६।१२

यहाँ 'केसरी' में विभक्तियुक्त तत्सम 'गगन' में समविभक्तिहीन तत्सम और 'मुकुताहल' में समविभक्तिहीन तद्भव भी दर्शनीय हैं ।

यहाँ 'पद-ग्रहण' के ये बहुत थोड़े से उदाहरण दिये गये हैं । कुछ ही अधिक प्रयत्न से इनके बृहत् विस्तार के भी दर्शन किए जा सकते हैं । रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार खोजने से संस्कृत ग्रन्थों में रामचरित मानस के बहुत से दोहों सोरठों,

ग्रन्थों और चौपाइयों के मूल मिल जायेंगे। यह देखकर महान् आश्चर्य होता है कि तुलसीदास ने संस्कृत ग्रंथों का कैसा सूक्ष्म अध्ययन किया था। उन्होंने 'मानस' में वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, भागवत, प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक आदि से अधिक सहायता ली है। इसके सिवा संस्कृत के दोसौ से अधिक ग्रंथों के श्लोकों को भी चुन चुन कर उनका रूपान्तर 'मानस' में भर दिया है। कहीं एक चौपाई के भाव किसी एक पुराण से तो उसके आगे की चौपाई के भाव किसी दूसरे पुराण के हैं। उससे भी आगे की चौपाई में किसी नाटक या नीति-ग्रन्थ के भाव हैं। ऐसे स्थानों पर तुलसी के मस्तिष्क की महिमा देखते बनती है। मानों संस्कृत के दो ढाईसौ ग्रन्थों के हजारों श्लोकों पर उनका एक सम्राट् की तरह अधिकार था और वे जिसे जहां चाहते थे उसे वहीं बुला लेते थे।'[1]

(१०) पाद ग्रहण—तुलसी ने 'मानस' की चौपाइयों में अनेक श्लोकों के पादों को भी समाविष्ट कर लिया है। यह ग्रहण यद्यपि अधिकतर 'तद्भव' रूप में ही हुआ है और उसमें कहीं कहीं बीच में अन्य शब्द भी आ गये हैं तो भी 'पाद' के समग्र स्वभाव की एकता से उसकी प्रभविष्णुता समान है। तुलसी ने इसमें कहीं प्रथम, कहीं द्वितीय कहीं तृतीय और कहीं चतुर्थ के अतिरिक्त कहीं कहीं डेढ़ पादों तक का ग्रहण कर लिया है। निम्नलिखित रेखांकित 'पादों' में यह ग्रहण द्रष्टव्य है—

(१) कमठपृष्ठकठोरमिदं धनुर्मधुरमूर्तिरसौ रघुनन्दनः ।
कथमधिज्यमनेन विधीयतामहह तात पणस्तव दारुणः ॥ हनु० १।६

... ...

कमठ पीठ पबि कूट कठोरा । नृप समाज महुँ सिव धनु तोरा ॥ १।२५७
अहह तात दारुनि हठ ठानी । ... ... ॥ १।२५८

(२) यायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ॥ प्रतिमा ३।२४

... ...

अवध तहाँ जहँ राम निवासू । तहँइ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ॥ २।७४

(३) कस्मात्कस्माद्व्यतिकरमिमं पृच्छतु को भवेदं
को जानीते निभृतमुभयोरावयो स्नेहसारम् ।
जानात्येकं शशधरमुखि प्रेमतत्त्वं मनो मे
त्वामेवैतच्चिरमनुगतं तत्प्रिये किं करोमि ॥ प्रसन्नराघव ५।४४

... ...

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ॥ ५।१५

---

१ पं० रामनरेश त्रिपाठी—तुलसी और उनका काव्य—पृष्ठ १४२

(४) कुरु सकर्णं चेतः श्रीमदशोकवनस्पते
बहुलकलिकामेकां शाखामम प्रकटीकुरु ।
ननु विरहिणां संतापाय स्फुटीकुरुषे यथा-
त्यवकिसलयश्रेणीव्याजाज्ज्वलाज्वलितावलिम् ॥ प्रसन्नराघव ६।११
सुनहु बिनय मम बिटप असोका । सत्य नाम करु हरु मम सोका ॥
नूतन किसलय अनल समाना । देहि अगिनि जनि करहि निदाना ॥ ५।१२

(५) हिमांशुश्चण्डांशुर्भवति सरसी दावदहन सरिन्नीचोपात कुपितफणिनिश्वासपवन
गता मल्ली वल्ली कुवलयवनं कुन्तदहनं मम त्वद्विश्लेषात्सुमुखि विपरीतं जगदिदम्
प्रसन्नराघव ६।४१

... ...

कहेउ राम बियोग तव सीता । मो कहुं सकल भए बिपरीता ॥
नूतन बिपिन कुंत बन सरिता । बारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥
जेहि तरु रहे करत तेइ पीरा । उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ॥ ५।१५

(६) सोमवंश्य जिरो बिप्रा सुतमानवबन्दिनः ।
गायकाश्च सगुर्नेमुः शुभमाना मुहुः ॥ भागवत १०।५।५

... ...

मागध सूत बन्दिगन गायक । पावन गुन गावहिं रघुनायक ॥१।१९४

(७) श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदानंददायिनीम् ।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणीं सर्व देहिनाम् ॥ रामतापनीयोपनिषद् ३।१२

... ...

उद्भवस्थिति संहारकारिणी क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करी सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम ॥ १।१ श्लोक ५

'पाद ग्रहण' के इस अध्ययन से पता चलता है कि तुलसी ने कहीं-कहीं डेढ़ पाद, दो अथवा ढाई पदों का भी ग्रहण कर लिया है किन्तु ऐसे दो या दो से अधिक पद क्रमबद्ध न होने के कारण अर्थग्रहण की सीमा में नहीं आते हैं।

(११) अर्थ-ग्रहण—पाद ही नहीं कहीं-कहीं गोस्वामीजी ने समस्त श्लोक के पूर्वार्ध अथवा उत्तरार्ध का भी ग्रहण कर लिया है —

(१) शाखामृगस्य शाखाया शाखां गन्तुं पराक्रम ।
यत्पुनर्लंघितोऽम्भोधिः प्रभावोऽयंप्रभो तव ॥ हनु० ६।१४

... ...

साखा मृग के बड़ि मनुसाई । साखा ते साखा पर जाई ॥ ५।३१

(२) यदन्तरं वायस वैनतेययोर्यदन्तरं सिंहशृगालयोर्वने ।
खद्योतमार्तण्डयोर्यदन्तरं तदन्तरं ते रघुनन्दनस्य च ॥ महानाटक ५।४७

तुम्हहि रघुपतिहि अन्तर कैसा । खलु खद्योत दिनकरहि जैसा ॥६।१९

(३) ये मज्जन्ति निमज्जयन्ति च परांस्ते प्रस्तरा दुस्तरे ।
वार्धौ वीर तरन्ति वानरभटान् सन्तारयन्तेऽपि च ।
नैते ग्रावगुणा न वारिधिगुणा नो वानराणां गुणा
श्रीमद्दाशरथेः प्रतापमहिमारम्भ सम्प्रजृम्भते ॥ हनु० ७।१९

महिमा यह न जलधि कै बरनी । पाहन गुन न कपिन्ह कै करनी ॥
श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान ॥ ६।३

(४) छान्दसीमाम्बुदे व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभि ।
अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ॥ भागवत १०।२०।४

फूले कमल सोह सर कैसा । निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा ॥४।१७

(१२) पादत्रयग्रहण—दो पादों के अतिरिक्त तुलसी ने कहीं-कहीं श्लोकों के तीन पादों तक का ग्रहण कर लिया है —

(१) मुनिमार्गस्य मध्ये तु विरेचे नगरं महत् ।
शतयोजन विस्तारमद्भुतं सुमनोहरम् ॥ शिवपुराण । ७४ । १५

बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं सत जोजन बिस्तार ।
श्रीनिवास पुर तें अधिक रचना बिबिध प्रकार ॥ १।१२९

(२) वाटीशालरसो ध्वनी नृपतयः सर्वे समभ्यागता
कन्यायाः कलधौतकोमलरुचेः कीर्तेश्च लाभः परः ।
नाकृष्टं न च टङ्कितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः
केनापीदमहो महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम् ॥ हनु० १।१०

— — । काहु न संकर चाप चढ़ावा ।
रहा चढ़ाउब तोरब भाई । तिलभर भूमि न सकेउ छुड़ाई ॥
अब जनि कोउ माखै भट मानी । बीर बिहीन मही मैं जानी ॥ १।२५२

(१३) शब्द ग्रहण— ऊपर विवेचन से अभी यह कहा जा चुका है कि गोस्वामीजी ने अपनी चौपाइयों में संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक शब्दों का समन्वय

कर लिया है। अतः जहाँ उन्होंने वस्तु के साथ-साथ उसके रूप का भी ग्रहण कर लिया है वहाँ उसका चमत्कार और अधिक बढ़ गया है। निम्न उदाहरणों में स्थापत्यरूप' का चौपाई में समावेश दर्शनीय है —

(१) त्रासयन्नमरविन्दवनानि त्रासयन्नममितो भुवनानि ।
पासयन्नमम कोककुलानि ज्योतिषां पतिमहं महामि ॥ प्रसन्न० १।१

उयउ अरुन अवलोकहु ताता । पंकज कोक लोक सुख दाता ॥ १।२१८

(२) राघवेण विधुनापि किमार्य क्षीमयैव ममितो हरचाप ॥
दूरमुन्नमति यस्य समन्तादम्बरेऽपि पमिती गुणघोष ॥ प्रसन्न० १।४१

तेहि छन मध्य राम धनु तोरा । भरे भुवन धुनि घोर कठोरा ॥ १।२६१

(१४) निष्कर्ष—गोस्वामीजी का अध्ययन बड़ा विशाल था अतः उन्होंने अपने 'मानस' को 'मतिमंजुल' बनाने के लिए संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों से अनेक पदों, भावों, अर्थखण्डों तथा छन्दों का केवल उपयुक्त स्थलों में ही ग्रहण करके उनका सदुपयोग किया। इस ग्रहण में उन्होंने अभिव्यक्ति की पूर्णता और सुष्ठुता के साथ साथ औचित्य मर्यादा और लोकहितता का भी सविशेष ध्यान रखा है। इससे उनकी बहुज्ञता, मर्मज्ञता और पाचनशक्ति का भी समर्थ परिचय प्राप्त हो जाता है।

अर्थ-योजना

अभी पिछले अध्याय में तुलसी के 'शब्दग्रहण' का विवेचन किया जा चुका है। अब यहाँ उनके 'अर्थ-ग्रहण' पर विचार अपेक्षित है। महाकवि कालिदास शब्द और अर्थ को 'संपृक्त'[1] बतलाते हैं, किन्तु गोस्वामीजी उन्हें 'जल और वीचि के समान भिन्नाभिन्न'[2] मानते हैं। 'अर्थबोध' में व्यवहार पर बल देते हुए प्रसाद भी कहते हैं कि शब्दों में भिन्न प्रयोग से एक स्वतन्त्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति होती है। समीप के शब्द भी उस शब्द विशेष के नवीन अर्थ का द्योतन करने में सहायक होते हैं। भाषा के निर्माण में शब्दों के व्यवहार का बहुत हाथ होता है। अर्थबोध व्यवहार पर निर्भर करता है।[3] वस्तुतः शब्द और अर्थ का यह सम्बन्ध अनिर्वचनीय है। शब्द से अर्थ के स्फुरण की प्रक्रिया भी बड़ी विचित्र है। शब्द एक ओर जहाँ अर्थ का जनक है वहाँ दूसरी ओर वह भाव का जन्य भी है क्योंकि सर्वप्रथम हमारे मन में किसी एक भाव का उदय होता है और जब वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए हमें पूर्ण विकल कर देता है तब हम उपयुक्त शब्द का चुनाव करते हैं और उसकी समस्त शक्तियों से, अभिप्रेत अर्थ के व्यक्तीकरण की अपेक्षा रखते हैं। फिर भी कुछ कमी रह जाने पर हम अपने शारीरिक अनुभावों से उसकी पूर्ति करते हैं। इस प्रक्रिया में वही शब्द अत्यधिक उपयुक्त माना जाता है जिसका अर्थ 'मूल भाव' के अधिक समीप पहुँच सके। भाषा-वैज्ञानिक नियमों के अनुसार शब्दों के अर्थों में अनेक कारणों से उत्कर्ष अपकर्ष, परिवर्तन एवं परिवर्धन आदि भी हुआ करते हैं। गोस्वामीजी ने अपने अर्थ-ग्रहण में इन सभी स्थितियों का विशेष ध्यान रखा है। अपने काव्य के महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिए जहाँ उन्होंने संस्कृत काव्यों से उपयुक्त शब्दों का निस्संकोच ग्रहण किया है, वहाँ अनुपयुक्त शब्दों को विशेष अर्थ द्योतन में असमर्थ देखकर उन्होंने केवल मूल भाव का ही ग्रहण किया है और अपनी उपयुक्त शब्द योजना से उसको सम्पूर्ण अर्थों में व्यक्त करने का सफल प्रयत्न भी किया है। इनके अतिरिक्त उन्होंने अनेक पूर्व अर्थों का अनुकूल संस्कार भी किया

---

१ रघुवंश १।१ २ मानस १।१८

३ श्रीजयशंकरप्रसाद-काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध—तृतीय संस्करण पृ० १२४

है । अनेक स्थलों पर उन्होंने अन्यान्य ग्रंथों के विभिन्न अर्थों का केवल छाया-ग्रहण भी किया है और अन्यत्र उनके विस्तारों में भी चमत्कारपूर्ण वैशिष्ट्य प्रस्तुत कर दिया है ।

आचार्य राजशेखर ने अपने ग्रन्थ 'काव्यमीमांसा' में इस अर्थ-ग्रहण पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया है । आचार्य वामन और आनन्द-वर्धन भी इस दिशा में विशेष प्रयत्नशील रहे हैं । वामन अर्थ के 'अयोनि' तथा 'अन्यच्छायायोनि' दो भेद मानते हैं[1] और आनन्दवर्धन 'अन्यच्छायायोनि' के प्रतिबिम्बवत् आलेख्यप्रख्यवत् तथा तुल्यदेहिवत् आदि तीन भेद भी करते हैं ।[2] राजशेखर अर्थ के अन्ययोनि, निह्नुत योनि और अयोनि—ये तीन प्रकार बतलाते हैं । इनमें से 'अयोनि' अथवा 'मौलिक' अर्थ यहाँ विवेचनीय नहीं है । 'अन्य-योनि' के 'प्रतिबिम्बकल्प' तथा 'आलेख्यप्रख्य' दो भेद किए जाते हैं और निह्नुतयोनि के भी 'तुल्यदेहितुल्य' तथा 'परपुरप्रवेश सदृश' दो भेद बतलाये गये हैं । इन चारों भेदों में से प्रत्येक के पुन ८ प्रकार होने से यह 'अर्थग्रहण' के सब मिला कर ३२ प्रकार माने गये हैं ।[3] प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं भेदोपभेदों के परिवेश में मानस के अर्थग्रहण का विवेचन किया जा रहा है ।

(१) प्रतिबिम्बकल्प—जहाँ वाक्य-विन्यास में भेद होने पर भी अर्थ में पूर्णतया अभेद होता है वहाँ 'प्रतिबिम्बकल्प' अर्थ ग्रहण माना जाता है । राजशेखर के मत से यह 'ग्रहण' अकवित्वदायी और परिहरणीय होता है । इसके व्यस्तक खण्ड तैलबिन्दु, नटनेपथ्य छन्दोविनिमय हेतुव्यत्यय संक्रान्तक सम्पुट आदि आठ भेद किए जाते हैं । विस्तार भय से यहाँ प्रत्येक भेद के अधिक उदाहरण प्रस्तुत नहीं किए जा रहे हैं ।

(२) व्यस्तक—इसमें पूर्व 'अर्थ' को पर और पर 'अर्थ' को पूर्व कर दिया जाता है —

(१) इक्ष्वाकवो नैव वदन्त्यसत्यं प्राणेषु गच्छत्स्वपि पार्थिवेन्द्राः ॥ उदार० ४।४९

— —

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहुँ बरु बचन न जाई ॥ २।२८

'मानस' में 'बचनजाय' को पूर्व से पर और 'प्रानजाय' को पर से पूर्व किया गया है शेष अर्थ समान है ।

(२) रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ॥ हनु० १।१८

— —

तात तुम्हारि मातु बैदेही । पिता राम सब भाँति सनेही ॥ २।७४

यहाँ भी 'पिता' को पूर्व से पर और 'माता' को पर से पूर्व कर दिया गया है ।

---

१ काव्यालंकार सूत्र १।२।७ २ ध्वन्यालोक ४।१२

३ काव्यमीमांसा—सं० केदारनाथ शर्मा—पृष्ठ १२४ १६०,१६८ १७४,१८१

(१) प्रतिजज्ञे महावीरो निधनं सबलस्य सः ॥ रामकीय ७।७१

...

निसिचर हीन करौं महि भुज उठाय पन कीन्ह ॥ ३।९

इसमें भी 'प्रतिज्ञा' को पूर्व से पर और राक्षसवध को पर से पूर्व कर दिया गया है। शेष अर्थ में पूर्ण समानता है।

(३) समास—इसमें विस्तृत वर्णन को संक्षिप्त कर दिया जाता है।

तां स्प्रष्टुमिच्छसि कथं मोहान्मां त्यक्तजीवित ।

सिंहामिषवसारातें मृग्ममात्रस्य जम्बुक ॥

रामस्य विप्रिये कस्त्वं मत्तेभस्येव गर्दभ ।

वायुवेगस्येव मशक सुपर्णस्येव वायस ॥

रा० मंजरी । अरण्य ८१४, ८१७

... ...

जिमि हरि बधुहि छुद्र सस चाहा । भयेसि काल बस निसिचर नाहा ॥ ३।२८

यहाँ चार उपमाओं के विस्तार के स्थान पर केवल एक उपमा को संक्षेप में प्रयुक्त किया गया है। इसी प्रकार 'जलन्धर-वर्णन' में जो 'पद्मपुराण'[१] में २६ अध्यायों में है, किन्तु 'मानस'[२] में केवल ७ पंक्तियों में है 'अश्वत्थामा वर्णन में जो 'उत्तर राघव'[३] में ४० श्लोकों में है, किन्तु मानस'[४] में आधी पंक्ति में है और विराध वर्णन' में जो 'रामायण मञ्जरी'[५] में २४ श्लोकों में है, किन्तु 'मानस'[६] में केवल २ पंक्तियों में है समास का ही प्रभाव समझना चाहिए।

(४) व्यास विन्दु—यह पूर्वोक्त 'समास' के विपरीत है। इसमें संक्षिप्त अर्थ को विस्तार दिया जाता है। 'मानस' में इसके भी अनेक उदाहरण हैं। मनुशतरूपा' कथा 'पद्मपुराण' में केवल ५ पंक्तियों में है, किन्तु 'मानस' में वह लगभग १०० पंक्तियों में है। 'रामविवाह-वर्णन अनेक ग्रंथों में केवल एक या दो पंक्तियों में है, जबकि 'मानस' में उसे लगभग १०० पंक्तियाँ मिली हैं।[७] इसी प्रकार 'रावण अंगद संवाद'[८] भी 'मानस' में अति विस्तृत है जबकि मूल ग्रन्थों में उसका संकेत भी नहीं है।

(५) नटनेपथ्य—भाषा-परिवर्तन इस अर्थपहरण' की एक मात्र विशेषता है। इस दृष्टि से संस्कृत के ग्रंथों से प्रभावित 'मानस' के सभी अंश इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। प्रस्तुत अध्याय में उदाहृत समस्त उद्धरणों में उसकी छाया देखी जा सकती है।

---

१ पद्म । उत्तर । ३ ११ ८८ १०७ अध्याय
२ मानस १।१२३ १२४
३ उत्तरराघव १।६६ १०५
४ " २।१२५
५ रा० मञ्जरी । अरण्य । १६० १८१
६ " ३।७
७ पद्म । उत्तर । २४२।११५
८ " १।१४२ १५२
९ मानस १।२८६ ३६१
१० " मानस ६।१७-३५

(५) छन्दोविनिमय—इस 'छन्दपरिवर्तन' का महत्त्व है। संस्कृत-ग्र. में जहाँ अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है, वहाँ 'मानस' में अधिकतर दोहों चौपाइयों को ही प्रमुखता मिली है अतः 'पूर्वग्रहण' के कुछ उदाहरणों को छोड़ प्रस्तुत समस्त उदहरणों में उसका भी प्रभाव सहज सुलभ है।

(६) हेतुव्यत्यय—इसमें 'हेतुपरिवर्तन' पर बल दिया जाता है —

(१) अथ विप्रसमाप सा वपुः शापशान्ता निजमाश्रयत् पदम्॥ राघवीय ३।

– –

दीन जानि तेहिं निज पद दीन्हा॥ १।२०६

श्लोक में 'निज-पद प्राप्ति' के लिये 'शाप-शान्ति' का उल्लेख है, पर 'मानस' उसके स्थान पर 'दीनता' का संकेत किया गया है।

(२) तात! त्वं निज तेजसैव गमितः स्वर्गं व्रज स्वस्ति ते॥ हनु० ४।१६

– –

तात कर्म निज तें गति पाई॥ ३।३१

यहाँ भी 'तेज' के स्थान पर 'कर्म' के वर्णन से हेतुपरिवर्तन स्पष्ट है।

(३) सर्वत्रातिप्रसन्नानि सलिलानि तथा भवत्।
जाते सर्वपते विष्णौ मनांसीव सुमेधसाम्॥ विष्णुपुराण ५।१०।११
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥ ४।१६

यहाँ पर हृदय की निर्मलता के लिए 'विष्णुज्ञान' के स्थान पर 'मदमोह' के नाश का वर्णन किया गया है।

(७) संक्रान्तक—कहीं देखी गई बात का कहीं वर्णन करना संक्रान्तक होता है —

(१) बाणस्य बाहुविकटैः परिपीड्यमानं नैवं धनुश्चलति किंचिदपीन्दुमौलेः।
कामातुरस्य वचसामिव संविधानैरभ्यर्थितं प्रकृतिचारु मनः सतीनाम्॥
प्रसन्नराघव १।२६

– –

भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरै न टारा॥
डगै न संभु सरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे॥ १।२५१

श्लोक में बाण के प्रसंग में प्राप्त धनुष की अचलता का उल्लेख 'मानस' में 'भूप सहसदस' के प्रसंग में कर दिया गया है।

(२) मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः॥
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ गीता ९।३२

– –

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥ मानस ७।८७

'गीता' में जिस मोक्ष लाभ का वर्णन स्त्री वैश्य और शूद्रों के प्रसंग में किया गया है, 'मानस' में वही पुरुष नारि के प्रसंग में मिलता है।

(३) निश्चलाम्बुरभूत्तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ॥ भागवत । १०।२०।४०

—— ——

सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ॥ ४।१४

'भागवत' में समुद्र की निश्चलता का उल्लेख 'शरद्' के प्रसंग में है, किन्तु 'मानस' में वह 'वर्षा' के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है।

(४) गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद् विमुक्तो ज्ञानबन्धनात् ।
प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ भागवत ८।४।६

—— ——

गीध देह तजि धरि हरि रूपा । भूषन बहु पट पीत अनूपा ॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी । ॥ ३।३२

'भागवत' में जो 'हरि रूप' का धारण गजेन्द्र के प्रसंग में है वह 'मानस' में जटायु के सम्बन्ध से वर्णित हुआ है।

(८) सम्पुट—दो भिन्न श्लोकों के भावों का एकीकरण सम्पुट कहलाता है—

(१) मार्गा बभूवुः सन्दिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः ।
नाभ्यस्यमाना श्रुतयो द्विजैः कालहता इव ॥ भागवत १०।२०।१६
जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे ।
पाषण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥ भागवत १०।२०।२३

—— ——

हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ ।
जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ ॥ ४।१४

यहाँ प्रथम श्लोक में 'तृणों से मार्गलोप और द्वितीय में 'पाखण्डवाद' का ग्रहण करके उनको एक ही दोहे में निबद्ध कर दिया गया है।

(२) खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ।
सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥ भागवत १०।२०।४३
सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः ।
यथा त्यक्तैषणाः शान्ता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ॥ भागवत १०।२०।३५

——

बिनु घन निर्मल सोह अकासा । हरिजन इव परिहरि सब आसा ॥ ४।१६

(३) अचिरमुनिमुक्तस्नाता निर्दम्यार्वाणि प्ररोहिरे ।
वर्षदत्ता यथाश्रिताः स्वपिण्डान् काल आगते । भागवत १०।२०।४१
व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम् ।
शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाशुभम् ॥ भागवत १०।२०।३४

—— ——

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि ॥ ४।१६

——

इन दोनों उदाहरणों में भागवत के प्रथम श्लोक के पूर्वार्द्ध और द्वितीय श्लोक के उत्तरार्द्ध का प्रभाव 'मानस' की पंक्तियों पर स्पष्ट है।

(९) आतेस्मप्रस्य—जहाँ समान वर्ग होते हुए भी कुछ ऐसा संस्कार कर दिया जाता है कि वह वस्तु एकदम भिन्न जान पड़ने लगती है वहाँ आतेस्म प्रस्य होता है। उसके समक्रम, विभूषण-लोप अनुक्रम विशेषोक्ति उत्संग, नरमे पम्य, एकपरिकार्य और प्रत्यापत्ति नाम से आठ भेद किए जाते हैं।

(१०) समक्रम—समान क्रम से अर्थ का संक्रमण 'समक्रम' कहलाता है। यह पूर्वोक्त 'संक्रमक' से मिलता है किन्तु इसमें 'क्रमपालन' की विशेषता होती है—

(१) दृष्टविरं नयनमुखमा नैकमुग्मानि देवा
स्त्रीभ्यसीनि त्रिपुर विजयी पद्मसद्माप्तवृष्टी।
वपुपद्कं द्विगुणमुदितं षाकरिंक सवसम्।
नीरजोत्कार्य स च सुरपति दृष्टवान् कालिपुत्रम्॥ बाल० ८।१

... ...

संकर राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥
निरखि राम छवि बिधि हरषाने। आठइ नयन जानि पछताने॥
सुरसेनप उर बहुत उछाहू। बिधिते डेवढ़ लोचन लाहू॥
रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतमश्रापु परम हित माना॥

यहाँ पर शिव ब्रह्मा कार्तिकेय और इन्द्र के 'दर्शन' का समान क्रम से वर्णन है। श्लोक में जहाँ केवल उल्लास का संकेत है, वहाँ 'मानस' में भिन्न भावनाओं के वर्णन से एक विशेष चमत्कार प्रस्तुत किया गया है।

(२) खद्योतमार्तण्डयोर्यदन्तरं तदन्तरं ते रघुसत्तमस्य॥ महानाटक ३।४७

... ...

तुम्हहिं रघुपतिहि अन्तर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा॥६।१
यहाँ खद्योत और सूर्य का क्रम-निर्वाह भी है और 'खलु' शब्द से एक निश्चय व्यक्त करके उस कथन पर बल दे दिया गया है।

(११) विभूषण-लोप—इसमें असंकृत उक्ति को अनलंकृत रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

(१) मायारचं समधिकतमं नमस्यसख्यो गम्भीरकास जलदध्वनिरज्जयत्यं।
बाणैरपातयतहो ज्वलिपावकोद्देशती मेघ मन्दरगिरौ पवितेव चक्र॥
हनु० १३।४

... ...

मेघनाद माया रचित रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जेउ प्रलय पयोद जिमि भइ अति कटकहि त्रास॥
पुनि रघुपति से जूझइ लागा। सर छाँड़इ होइ लागहिं नागा॥
व्यालपास बस भये खरारी। ... ... ॥ ६।७२-७३

श्लोक के असंस्कृत भाग को 'मानस' में अलंकृत रूप में स्थान दिया गया है।

(९) ममप्रमापुरीणकराक्षकरवाल कालभुजंग । तदिदानीमपि दशकंठभुजासेप
मेयवमनुमानीहि ॥ प्रसन्नराघव ६।२१ के बाद

सीता तैं मम कृत अपमाना । कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना ।
नाहिं त सपदि मानु मम बानी । सुमुखि होति न त जीवन हानी ॥५।१०

यहाँ श्लोक के रूपक चमत्कार के स्थान पर 'मानस' में सादी उक्ति से काम लिया गया है।

(१०) व्युत्क्रम—विपरीत क्रम से 'अर्थग्रहण' को व्युत्क्रम कहते हैं।

(१) पृथ्वि स्थिरा भव भुजंगम धारयैनां त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः ।
दिक्कुञ्जराः कुरुत तत्त्रितये दिधीर्षां राम करोति हरकार्मुकमाततज्यम् ॥
हनु० १।२१

दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला । धरहु धरनि धरि धीर न डोला ।
राम चहहिं संकर धनु तोरा । होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥ १।२६०

श्लोक में भुजंगम कूर्मराज और दिक्कुंजर का क्रम है और 'मानस' में दिक्कुंजर, कूर्मराज और भुजंगम का अतः यहाँ व्युत्क्रम स्पष्ट है। चौपाई के चतुर्थ पाद से अर्थ का उत्कर्ष भी बढ़ गया है।

(२) कर्णौ पिधाय निरियादपदत्त ईशे धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने ।
छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः ॥
भागवत ४।४।१७

संत संभु श्रीपति अपबादा । सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा ॥
काटिअ तासु जीभ जो बसाई । श्रवन मूदि न त चलिअ पराई ॥ १।६४

भागवत में 'कान मूँदना' पहले और 'जीभ काटना' बाद में है किन्तु 'मानस' में यह क्रम विपरीत है। साथ ही श्लोक में केवल 'संकर' से अभिप्राय है, जबकि 'मानस' में संत और श्रीपति भी सम्मिलित हैं।

(११) विशेषोक्ति—सामान्य बात को विशेष रूप से कहना ही विशेषोक्ति है।

(१) सर्वत्र सुहृदः सन्ति सन्ति सम्बन्धबान्धवाः ।
अभिप्रायपरेऽस्य दुर्लभः स सहोदरः ॥ रा० मंजरी । युद्ध।२१५

सुत बित नारि भवन परिवारा । होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता । मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ॥६।६१

यहाँ सामान्य उक्ति को भगवान से सम्बन्धित करके विशेष प्रकार से कहने के कारण 'विशेषोक्ति' स्पष्ट है।

(२) वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
गीता २।२२

... ...

जो तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरइ, नर परिहरइ पुरान॥ ७।१०९

यहाँ 'गीता का सामान्य सिद्धान्त 'मानस' में काकभुशुण्डि से सम्बद्ध होने के फलस्वरूप विशेष' हो गया है।

(२४) जब स-गौण अर्थ को मुख्यता प्रदान करना ही 'प्रत्यंश' कहलाता है–

(१) परिमितमहिमानं सुरमेनं समुद्रं, क्षितिधरकटकानि कोऽप्यमुद्दीर्य गर्वं।
अकथितमहिमानः सन्ति दुष्प्रापपारा रघुपतिभुजास्ते विश्वति
सिन्धुराजाः॥ हनु० ८।११

मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा॥ ६।२८

'श्लोक' में 'सिन्धु' शब्द गौण है 'मानस' में वह मुख्यतया प्रयुक्त है।

(२) मौर्वी धनुस्तनुरियं च बिभर्ति मौञ्जी बाणा-कुशाश्च विलसन्ति करे सितायाः।
धारोज्ज्वल-परशुरेष कमण्डलुश्च तद्वीरशान्तरसयो किमयं विकारः॥
प्रसन्नराघव ४।१२

... ...

कटि मुनि बसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठार कल काँधे।
सांत बेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनि तनु जनु बीर रसु आयउ जहँ सब भूप॥ १।२६८

'श्लोक' में 'वीर रस' शब्द गौण है किन्तु 'मानस' में वह मुख्य है।

(२५) नट-नेपथ्य—एक ही अर्थ को उक्तिवश 'अन्यथा' कर देने से 'नट नैपथ्य' हो जाता है।

(१) संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥ गीता २।३४

... ...

संभावित कहुँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥ २।९५

यहाँ 'मरणातिरेक' को 'मरण कोटि सम' कह देने से 'नटनैपथ्य' है।

(२) अपि नृपमुपयान्तो जानिमार्गे स्वकीयं।
परिभवितुं दोषं नास्ति धन्यः कियन्तः॥ प्रसन्न० १।१९

... ...

निज कवित केहि लाग न नीका । सरस होउ अथवा अति फीका ॥
जे परभनिति सुनत हरषाहीं । ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं ॥१।८

'श्लोक' के अभिप्राय को 'मानस' में अन्यथा व्यक्त कर दिया गया है ।

(१) एकोनाहत्य सर्वैक राक्षमहिषीरत्यपरा च मन्दोदरी ।
सेवार्थं विनियुज्यते च सकलं लंकाधिपत्याय ते ॥ महानाटक ३।४२

... ...

कहु रावन सुनु सुमुखि सयानी । मंदोदरी आदि सब रानी ।
तव अनुचरी करउँ पन मोरा । एक बार बिलोकु मम ओरा ॥५।९

यहाँ 'सेवा-विनियोग' के लिए ही 'अनुचरी-करण' का अन्यथा प्रयोग किया गया है ।

(१४) एक परिकार्य—अलंकार के समान रहने पर भी यदि अलंकार्य में भेद हो जाय तो 'एक परिकार्य' कहलाता है ।

(१) अनेन चान्द्री नवनीरदाभो चकोरवन्मां मुदितं करोति ॥प्रसन्न० २।११

... ...

सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥१।२३०

यहाँ अलंकार का अभेद है श्लोक में अलंकार्य 'राम' हैं किन्तु 'मानस' में 'नयन', अतः उसका भेद स्पष्ट है ।

(२) अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तरः ।
तिमिंगिलगिलोऽप्यस्ति तद्गिलोऽप्यस्ति राघव ॥ हनु० ८।४७

... ...

देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा । प्रगट भए सब जलचर बृंदा ॥
मकर नक्र नाना झष ब्याला । सत जोजन तन परम बिसाला ॥
अइसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं । एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं ॥६।४

यहाँ अलंकार समान होने पर भी श्लोक में अलंकार्य 'राम' हैं किन्तु मानस में कोई महामत्स्य है ।

(१५) प्रत्यापत्ति—विकृत अर्थ को प्रकृत करना 'प्रत्यापत्ति' कहलाता है ।

(१) आजातदेवं जयाकर मुग्धे प्रेमतरं मनो मे
त्वामेवैकामीश्वरमनुगतं तत्प्रिये किंकरोमि ॥ प्रसन्न० १।४४

... ...

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एकु मनु मोरा ।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ॥५।१५

यहाँ 'श्लोक' की अन्तिम पंक्ति में 'निर्बलता' की भावना है किन्तु 'मानस' में सबलता का संकेत है ।

(१६) तुल्यदेहितुल्य- अप्ययोनि के दोनों भेदों—प्रतिबिम्बकरण और 'आलेख्यकरण' के ओजाहरण निरूपण के पश्चात् अब त्रिदुत योनि के 'तुल्यदेहितुल्य

तथा परपुरप्रवेश-सदृश' दो भेदों में से सर्वप्रथम 'तुल्यदेहितुल्य' का विवेचन किया जा रहा है। उसके भी निम्नलिखित आठ भेद होते हैं—यथा विषयपरिवर्त, द्वन्द्व विच्छित्ति, रत्नमाला, संख्योल्लेख, चूलिका, विधानापहार, माणिक्यपुञ्ज और कन्द।

(१७) विषय-परिवर्त—एक ही वस्तु को विषयान्तर से अन्य रूप प्राप्त करा देना इसकी विशेषता है।

(१) यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ गीता ।४।७-८

— —

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥१।१२१

यहाँ 'अवतार वर्णन' तो समान है, किन्तु 'कृष्णावतार' में 'साधु-परित्राण' तथा 'दुष्टविनाश' का उल्लेख है, जब कि 'मानस' में 'असुरवध' और 'सुरस्थापन' का वर्णन है जिससे 'वस्तुभेद' हो गया है।

(१८) द्वन्द्वविच्छित्ति—दो रूपों में वर्णित वस्तु को एक निश्चित रूप देना ही 'द्वन्द्वविच्छित्ति' कहलाता है—

(१) यथास्पृष्टं न वास्पृष्टं कार्मुकं पुरवैरिणः।
भग्नप्रायमवेदेतद्यमपराधं करोमि किम्॥ प्रसन्नराघव ४।२१

— —

छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करउँ अभिमाना॥१।२८१
यहाँ श्लोक के दोनों सन्देहों को एक निश्चय में परिणत किया गया है।

(१९) रत्नमाला—किसी कवि के पूर्व वर्णित अर्थ को प्रकारान्तर से कहना 'रत्नमाला' कहा जाता है।

(१) आस्तां मस्तकहोम विस्मयकथा पौलस्त्य विस्तारिणी।
देहं किं न निपातयन्ति दहने वैकल्यभीता स्त्रियः॥ हनु० ८।५९

— —

सुनु मतिमन्द देहि अब पूरा। काटे सीस कि होइहि सूरा॥
इन्द्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा॥
जरहिं पतंग बिमोह बस, — — ॥६।२९
यहाँ 'विधवा के देहपात' के स्थान पर 'इन्द्रजाली' के शीर्ष (?) और पतंग के

विनोद का वर्णन कर दिया गया है।

(२०) संख्योल्लेख—संख्या में अन्यथा वर्णन करना ही संख्योल्लेख है।

(१) भीष्मश्रीमि त्रिपुरविजयी पञ्चषड्भाष्टदृष्टी ॥ बालरामायण ८।९

संकर राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥
निरखि राम छबि बिधि हरषाने। आठइ नयन जानि पछिताने ॥१।३१७

यहाँ श्लोक में शंकर के ३ नेत्र वर्णित हैं, किन्तु 'मानस' में १५, अतः यहाँ 'संख्योल्लेख' है।

(२१) चूलिका—समाप्त अर्थ-योजना के पश्चात् कुछ विशेष अर्थ की योजना ही 'चूलिका' कहलाती है—

(१) राम ! त्वत्तरणप्रतापदहन ज्वालावली शोषिता।
सर्वे वारिनयस्ततो रिपुवधू नेत्राम्बुभिः पूरिता ॥ हनु० १४।८३

प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। सोखेउ प्रथम पयोनिधि बारी॥
तव रिपु नारि रुदन जलधारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहिं खारा ॥६।१

यहाँ सब समान होने पर भी 'समुद्र की क्षारता' के उल्लेख से एक विशेषता है।

(२२) विधानापहार—निषेध का विधान रूप से उल्लेख करना इसकी मुख्यता है—

(१) विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः।
घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥भागवत १०।६४।४१

सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता ॥३।३४

यहाँ श्लोक के 'निषेध' का 'मानस' में विधेयरूप स्पष्ट है।

(२३) माणिक्यपुञ्ज—अनेक अर्थों के एकत्र समाहार को 'माणिक्यपुञ्ज' कहते हैं।

१) मन्दोदरीमपि विभुर्जितराज्यमेतदप्युग्रवर्तं तव पराक्रमतो करोति।
किं जल्पितेन बहुना भुवनानि त्वदर्थे त्वामुन्मिदन्त्यपि निरानि पुनर्दशास्य ॥
प्रसन्नराघव ६।२८

एकोनात्र सर्वकर्त्तव्यमहीनीरसमता च मन्दोदरी
वैदग्धीविभिनुग्यते च सकलं त्वद्भावितस्वाप ते ॥महानाटक ९।७२

मन्वते स्वयं नयनेषरमयमापरम्यासमावमकरोपमयसमरीमय।
सर्वस्वमेव तव मुग्धविदासकरस्य मानमहे यदि तथापि निर्वाहिं प्रतार ॥
का० पुराणानि ४।२१

कहु रावन सुनु सुमुखि सयानी। मन्दोदरी आदि सब रानी॥
तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥५।९

यहाँ प्रथम श्लोक से रावण के अनुनय और सीता के प्रति सम्बोधन, द्वितीय से मन्दोदरी के त्याग और तृतीय से समस्त अन्तःपुर के अनुचरीकरण एवं सीता की कृपा की आकांक्षा आदि का 'मानस' की एक ही चौपाई में समाहार कर दिया गया है।

(२४) कल्प—इसमें एक मूलसूत्र अर्थ का अनेक प्रकार से विस्तार किया जाता है।

(१) मधुरविधुरमिश्रा सृष्टयो हा विधातुः। प्रसन्न० २।२८

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सजीवनु माहुरु मीचू॥
जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार॥ १।६

(२५) परपुरप्रवेशसदृश—जहाँ विषयभेद होने पर भी सादृश्य की अधिकता से अभेद भान पड़ता हो, वहाँ 'परपुरप्रवेशसदृश' नामक 'अर्थग्रहण' माना जाता है। उसके भी हुड्युद्ध, प्रतिकञ्चुक, वस्तुसञ्चार, धातुवाद, सत्कार, जीवंजीवक, भावमुद्रा और तद्विरोधी आदि आठ भेद माने जाते हैं।

(२६) हुड्युद्ध—किसी उक्ति को युक्तिपूर्वक विपरीत कर देना 'हुड्युद्ध' कहलाता है—

(१) ह्यायातोऽपि पुलस्त्यवंशतिलकप्रीत्यनु त्रैलोक्यम् ॥ प्रसन्न० ७।१
रिषि पुलस्त्य जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥५।२१

इसमें श्लोक के 'निश्चय' को मानस में 'सम्भावना' में परिवर्तित किया गया है।

(२७) प्रतिकंचुक—किसी वस्तु को प्रकारान्तर से बदल देना ही 'प्रतिकंचुक' है—

(१) पथिपथिकवधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना।
कुवलयदलनीलः को ममार्गोऽतवेति॥
स्मितविकसितवक्त्रं व्रीडविभ्रान्तनेत्रम्।
मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता॥ हनु० ३।१५

सीय समीप ग्रामतिय जाहीं। पूँछत अति सनेहँ सकुचाहीं॥

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे॥

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी । पियतन चितइ भौंह करि बाँकी ॥
खंजनमंजु तिरीछे नयननि । निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि ॥
२।११६-११७

यहाँ पर श्लोक में वर्णित स्मित वीडादि को 'मानस' में दूसरे प्रकार से वर्णित किया गया है और यहाँ उपमान के सम्मेलन से एक विशेषता भी है।

(२८) वस्तुसम्भार—इसमें केवल 'उपमान' का परिवर्तन कर दिया जाता है।

(१) राम श्रीरामचन्द्रस्य पीठीपि वैदेहीधिरोहित ॥प्रसन्न० २।७

छबि गृह दीप सिखा जनु बरई ॥१।२३०

यहाँ दोनों स्थलों में सीता 'उपमेय' हैं, किन्तु उनके उपमान बदल गए हैं।

(२) इमामङ्केन व्यपदेशमौरवागमहीप्रमुदारमितु स्थितीहृते ॥ राघवीय ४।३२

बालमराल कि मन्दर लेहीं ॥१।२५६

यहाँ 'राम' उपमेय हैं किन्तु श्लोक में उनके लिए 'बालगज' की उपमा है जबकि 'मानस' में 'बालमराल' की। अतः परिवर्तन स्पष्ट है।

(२९) धातुवाद—शब्दालंकार को अर्थालंकार में बदलना 'धातुवाद' कहलाता है—

(१) अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ गीता ११।४५

जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहूँ न समाइ ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवन बिधि जाइ ॥७।८०

इसमें गीता के 'अनुप्रास' को मानस में अतिशयोक्ति का रूप दे दिया गया है।

(३०) उत्कार—वर्णित वस्तु को उत्कर्ष के साथ वर्णन करने से 'उत्कार' होता है—

(१) हा तातं स जटायुरेष जरणा क्लिष्टो वधं वाञ्छति ॥हनु० ४।९

जाना बरत जटायू एहा । मम करतीरथ छाँड़िहि देहा ॥३।२९

यहाँ 'वध की घटना' को 'करतीर्थ' में देहत्याग कह कर उसका उत्कर्ष बढ़ा दिया गया है।

(२) यन्नाम काश्यां मणिकर्णिकायां मुमूर्षतो श्रोत्रपुटे महेशः ।
ददाति मुक्त्यै करुणाम्बुराशिं तं रामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥ विष्णुपद्म ११९

महामन्त्र जोइ जपत महेसू । कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ॥१।१९

यहाँ 'राम नाम' के लिये 'महामन्त्र' का उत्कृष्ट प्रयोग किया गया है।

(११) भीर्णोद्योतक—इसमें आरम्भ में समान, किन्तु अन्त में भिन्न अर्थ योजना की जाती है—

(१) भूभृत जनककन्या लभिया पुत्कमेते दशवदनभुजानां कुण्ठिता यत्र शक्तिः।
नमयति धनुरैशं यस्तदारोपणेन त्रिभुवनजयलक्ष्मीजानकी तस्य दारा॥
हनु० १।१८

...

बोले बन्दी बचन बर सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल॥
नृप भुजबलु बिधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू॥
रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गवँहिं सिधारे॥
सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही॥१।२४९-५०

यहाँ आदि में समानता होने पर भी अन्त में धनुष के आरोपण के स्थान पर उसके भंग और बिना विचार हठवरण के उल्लेख से भिन्नता स्पष्ट है।

(२) या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेऽपि शंकरात्।
दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे॥ हनु० ७।१४

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि, सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥५।४९

यहाँ दोहे के चतुर्थ चरण में 'सकुचि' शब्द से भिन्नता के दर्शन होते हैं।

(१२) भावमुद्रा—प्राचीन कवि के अभिप्राय को निबद्ध करना 'भावमुद्रा' है।

(१) साम्राज्यमीशस्य सत्यस्य इक्ष्वाकस्य महीपते।
तवचरतापहरणं पुण्यतामवशविपरम॥ रा० मंजरी। अयोध्या ७४९

... ...

... ... । सत्यसंध तुम रघुकुल माहीं॥
देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू॥२।३०

यहाँ पर प्राचीन कवि के अभिप्राय का चित्रण है।

(२) हा राम हा रमण हा जगदेकवीर।
हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम्॥ प्रसन्न० ३।४२

... ...

हा जगदेक बीर रघुराया। केहिं अपराध बिसारेहु दाया। ३।२९

यहाँ 'उपेक्षा' के स्थान पर 'दया-विस्मरण' के संकेत से भावसाम्य स्पष्ट है।

(३) राम स्त्रीविरहेण हारितवपुस्तद्विप्रमत्तया लक्ष्मण
सुग्रीवोपमतस्यमेरकतया निर्मूलदूनद्रुमः।

मध्ये कस्य विभीषण स च रिपो कारुण्यरम्याकृति-
संक्रान्तकविठंकपाककपटुर्वध्यो ममैक कपि ॥ हनु० ८।१६

… …

तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद । मो सन भिरिहि कवन जोधा बद ॥
तव प्रभु नारि बिरह बलहीना । अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ । अनुज हमार भीरु अति सोऊ ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा । सो कि होइ अब समरारूढ़ा ॥
सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला । है कपि एक महा बलसीला ॥
आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा । … … … ॥ ६।२३

ाँ पर भी प्राचीन कवि के अभिप्राय का स्पष्ट रूप से ग्रहण किया गया है ।

(२१) तद्विरोधी—यह 'भावमुद्रा' का विरोधी है । इसमें पूर्व कवि के
ाव के विरुद्ध भाव का निरूपण किया जाता है —

(१) मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनाम् ॥ भागवत १०।४३।१७

… …

बिदुषन प्रभु बिराटमय दीसा । … … ॥ मानस १।२४२
ागवत के भगवान् अविद्वानों के लिए विराट् हैं, किन्तु 'मानस' के भगवान् विद्वानों
 लिए विराट् हैं, अतः विरोध स्पष्ट है ।

(२) सा तद्वचनमाज्ञाय सर्वाभरणभूषिता ।
दधौ विमानमध्येव बिभ्रतीरूपमुत्तमम् ॥
विविक्ते पतिमासाद्य हसन्तीव शुचिस्मिता ।
प्रणयं व्यंजयन्तीव मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥ महाभारत । वन ।
२७७।१६–२०

… …

बहुबिधि चेरहि आदरु देई । कोप भवन गवनी कैकेई ॥
कोप समाजु साजि सब सोई । … … ॥ २।२३
भूमि सयन पटु मोट पुराना । दिए डारि तन भूषन नाना ॥ २।२५
कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी । बोली बचन मधुर हँसि गोरी ॥ २।२७

'महाभारत' की कैकेयी वरयाचना के लिए सर्वाभरणभूषित होती है, जबकि
'मानस' की कैकयी निराभरण होकर कोप भवन की शरण लेती है अतः पूर्वकवि
के भाव का विरोध स्पष्ट है ।

(१) श्रीपुरुषोत्तमस्य रामचन्द्रस्य प्रसादात् निर्विघ्नाहि प्राणवल्लभस्य
सुग्रीवस्य बधः पीडे मदिरापायीति मन्दमाना तारा दिदिक्षुरवारमारम राम
श्रीरम्यांरामरमाकांतत्री विरुपमाचार । हनु० ५।२० के बाद

सुनत बालि क्रोधातुर धावा । गहि कर चरन नारि समुझावा ।।४।७

नाना बिधि बिलाप कर तारा । छूटे केस न देह सँभारा ।।

तारा बिकल देखि रघुराया । दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया ।। ४।११

'हनुमन्नाटक' की तारा सुग्रीव-पत्नी है अतः वह बालिवध के लिए उत्सुक है, किन्तु 'मानस' की तारा बालि-पत्नी है इसीलिए उसकी मृत्यु पर विविध विलाप करती है । इस प्रकार यहाँ विरोधी भाव का ग्रहण स्पष्ट है ।

यहाँ विस्तारभय से बहुत कम उदाहरण दिए गए हैं । इसका समस्त विस्तार तो एक स्वतन्त्र ग्रंथ की अपेक्षा रखता है ।

'अर्थग्रहण' के इन उपर्युक्त ३२ प्रकारों में उनके त्याग अथवा संग्रह का विचार राजशेखर के मत से सिद्ध कवि के विवेक पर ही निर्भर होता है क्योंकि अन्ततोगत्वा यह एक प्रकार की चोरी ही है ।[1] अवन्ति-सुन्दरी के विचार से अप्रसिद्ध अप्रतिष्ठ अप्रचलित अमधुर अनाकलभाषायुक्त मृतप्रबंधक विदेशी कविकृत और अज्ञातमूल काव्य से शब्दार्थग्रहण कर लेना चोरी नहीं है ।[2] वस्तुतः सभी कवि दूसरे कवियों की अलौकिक कल्पनाओं से प्रभावित होते हैं और उनका विभिन्न अर्थों में सफल एवं सरस प्रयोग भी करते हैं । उनकी मौलिकता केवल इसी बात में होती है कि उनके उस ग्रहण के मूलस्रोत को कोई पहचान न सके । राजशेखर ने ऐसे कवियों के परिवर्तक आच्छादक और संवर्गक आदि प्रकार भी निश्चित किए हैं ।[3] इनके अतिरिक्त अर्थग्रहण' के उपर्युक्त चारों भेदों के आधार भी उन्होंने क्रमशः भ्रामक चुम्बक कर्षक और द्रावक आदि नामों से कवियों का वर्गीकरण किया है ।[4] इनमें से उन्होंने 'भ्रामक' कवि की प्रशंसा नहीं की है क्योंकि उनके अनुसार ऐसा कवि अन्य कवि की रचना को अपनी रचना कह कर पाठकों को भ्रम में डाल देता है । उसके अतिरिक्त उन्होंने 'चुम्बक' आदि कवियों की प्रतिभा के प्रति बहुत सम्मान भी प्रकट किया है ।

इस पृष्ठभूमि के संदर्भ में यह ज्ञातव्य है कि तुलसी ने 'नाना पुराण निगमागम' 'रामायण' एवं 'क्वचिदन्यतोऽपि' के रूप में अपने मानस के स्रोतों को सर्वप्रथम सुस्पष्ट व्यक्त कर दिया है अतः उनके सम्बन्ध में इन स्रोतों का शोधन उनके विशाल अध्ययन और मनन का ही परिचायक है । इन प्रभावित स्थलों में तथा अन्यत्र भी उन्होंने अपने विवेक एवं प्रातिभ ज्ञान का जो मौलिक प्रमाण प्रस्तुत किया है वह उन्हें वस्तुतः 'चिन्तामणि' कवि की कोटि में प्रतिष्ठित करता है । राजशेखर के अनुसार चिन्तामणि कवि की परिभाषा इस प्रकार है —

---

१ काव्यमीमांसा—सं० केदारनाथ शर्मा पृष्ठ १७९

२ वही, पृष्ठ १८०   ३ वही, पृष्ठ १८१

४ वही पृष्ठ १२७–१२८

'विन्यासयं यस्य रसैकसूतिरेदेति विश्वाकृतिरर्थसार्थः ।
अदृष्टपूर्वो निपुणैः पुराणैः कविः स विश्वामित्रद्वितीयः ॥'[1]

निष्कर्ष—इस विवेचन से यह प्रमाणित होता है कि गोस्वामी जी का अध्ययन सुविस्तृत था। उन्होंने विविध ग्रन्थों से मधु संचय करके अपने 'मानस' को सुपुष्ट बनाने में अनुपम सफलता प्राप्त की है। वस्तुतः उनके सामने एक ही दृष्टिकोण था मानस को सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित करना। इसी की सिद्धि के लिए उन्होंने अपने आधार ग्रन्थों से 'मानस' के विविध स्थलों में अनेक पदार्थों का विसर्जन ग्रहण किया और जहाँ उन्होंने अर्थ की व्यंजना में उनको अशक्त अथवा अपर्याप्त पाया वहाँ उन्होंने उसी युग भाव से अपग्रहण करके अपनी समर्थ और परिपुष्ट भाषा में उसको सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की। इस प्रकार संस्कृत के अनेक ग्रंथों की तुलना में उनके 'मानस' का अर्थगौरव वस्तुतः सर्वश्रेष्ठ है।

१ काव्य मीमांसा—पं० केदारनाथ शर्मा पृष्ठ ११८

सिद्धान्त-विवेचन

मानव-जीवन के सर्वाङ्गीण सफल निर्वाह के लिए कुछ विशेष सिद्धान्तों का पालन करना अनिवार्य हो जाता है। उसके लिये साधारण मनुष्य को अनुकरण-शील होना है, बहुत कुछ तो महापुरुषों के सिद्धान्तों को अपनाने की चेष्टा करता है और कुछ पूरक सिद्धान्तों को वह स्वयं बना लेता है किन्तु असाधारण मनुष्य अपनी विशेष प्रतिभा के बल पर जीवन की नई सुनहली दिशाओं को स्वतः खोज लेते हैं और महापुरुष पद प्राप्त करते हैं। इस सम्बन्ध में प्रत्येक महाकवि का उत्तरदा यित्व दुहरा होता है, एक तो वह उन महापुरुषों के सिद्धान्तों को स्थायी रूप देकर जन-साधारण तक पहुंचाता है और दूसरे स्वयं महापुरुष होने के नाते वह अपने नवीन सिद्धान्त का भी प्रतिपादन करता है। गोस्वामी तुलसीदास ने नाना पुराण आदि की चर्चा के साथ क्वचिदन्यतोऽपि की जो चर्चा की है, मह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने अपने और पराये सिद्धान्तों को मिला कर ही अपने काव्य का कलेवर रचा है। दर्शन, समाज आदि के संपर्क से ही नहीं वरन् काव्य आदि के सम्बन्ध में भी उनकी यही नीति रही है। यहाँ पहले उनके काव्य सिद्धान्तों की विवेचना प्रस्तुत की जाती है।

(१) काव्य-सिद्धान्त—गोस्वामी जी की सबसे बड़ी विशेषता उनकी नम्रोक्ति है। इसीलिए प्रत्येक सिद्धान्त के प्रतिपादन के पूर्व वे अपनी स्वल्पज्ञता ही नहीं सिद्धान्त अज्ञता का उल्लेख करने लगते हैं। 'मानस' जैसे विरल महत्व के काव्य के निर्माण में समर्थ होने पर भी वे यही कहते हैं —

'कवि न होउँ नहिं बचन प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू।।
कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।।'[१]

किन्तु उन्होंने 'कोरे कागद' पर वस्तुतः जो 'सत्य' लिखा है वह सर्व-विदित है। उनकी यह नम्रता जो उनकी भक्ति-भावना के कारण कुसुमी निखर उठी है, यह भी स्पष्ट करती है कि मानस'के निर्माण में उनका प्रयत्न काव्यगत विशेषताओं का प्रदर्शन नहीं है वरन् 'स्वान्तः सुखाय'[२] 'अथवा' स्वान्तस्तमःशान्तये'[३] ही है। उनका

१ मानस १।९ 　　　　२ मानस १।१ श्लोक ७
३ " ७।१३० श्लोक १

यह 'स्वान्त' भी व्यक्तिनिष्ठ अथवा दर्पयोग्य नहीं है, अपितु वह समस्तजगत को ही 'सियाराम मय' मान कर उसके चरणों में नतमस्तक होने वाला है।[1]

एक ओर तो तुलसी का यह नम्ररूप है और दूसरी ओर संस्कृत के अधिकांश महाकवियों का गर्वपूर्ण आत्मविज्ञापन दृष्टिगोचर होता है, जिसमें वे अपनी व्यक्तिगत एवं स्वकाव्यगत सभी विशेषताओं का गिन गिन कर विस्तार से उल्लेख करते हैं। इससे आलोचक को उनके विषय में इदमित्थम् का शीघ्र बोध हो जाता है और वह केवल उनकी 'शक्ति' और 'कृति' के सामंजस्य के विवेचन-मात्र से अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है किन्तु मध्यकालीन कवियों के सिद्धान्तों का स्पष्ट रूप पा लेना धैर्य के साथ-साथ लगन की भी अपेक्षा रखता है।

गोस्वामीजी के द्वारा निरूपित काव्य सिद्धान्तों में काव्य के लक्षण हेतु, प्रयोजन और प्रतिपाद्य वस्तु आदि की दृष्टि से विचार करने पर उनकी भक्ति-भावना का एक विशेष आग्रह मिल जाता है। इसकी पृष्ठभूमि में ही उनकी मान्यताओं का विवेचन अधिक न्यायसंगत होगा।

(२) काव्य के लक्षण—गोस्वामीजी के अनुसार 'सुरसरि' की तरह सबका हित करने वाला काव्य ही वस्तुतः काव्य कहलाने का अधिकारी होता है —

"कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥"[2]

उनके मत से ऐसे सरस काव्य का सभी विद्वान सम्मान करते हैं और शत्रु भी सहज बैर भाव भूल कर उसकी प्रशंसा करने लगते हैं।[3] रामभक्ति के परिवेश में काव्य की परिभाषा करते हुए वे यहाँ तक कह देते हैं कि गुणविहीन सर्वगुणहीन काव्य भी रामभक्ति की योजना से विद्वानों के द्वारा समादृत हो जाता है जबकि इसके अभाव में गुणविहीन सत्काव्य भी विधुवदना पूर्ण-अलंकृता, किन्तु निर्वसना नारी के समान अशोभन ही लगता है। अपनी कृति के सम्बन्ध में भी वे यही विश्वास प्रगट करते हैं कि वह रसहीन होने पर भी 'रामप्रताप' से 'सर्वरसमय' हो जायगी। इस प्रकार मम्मट की काव्य परिभाषा 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि'[5] उनके आग्रह से 'तददोषावपि शब्दार्थौ निर्गुणावनलंकृती वरं राम-भक्ति परौ' हो सकती है और विश्वनाथ की परिभाषा की 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'[6] के स्थान पर 'वाक्यं रामभक्ति रसात्मकं काव्यम्' होना चाहिये।

संस्कृत के साहित्यकारों ने भी काव्य के सम्बन्ध में अनेक विचार व्यक्त किये हैं। 'अग्निपुराण' के अनुसार काव्य का लक्षण इस प्रकार है —

काव्यं स्फुटदलंकारं गुणवद् दोषवर्जितम्।
योनिर्वेदश्च लोकश्च सिद्धमन्नादयोनिजम्॥[7]

---

१ मानस १।८ — २ ३ मानस १।१४
४ " १।१० — ५ काव्यप्रकाश १।१
६ साहित्यदर्पण १।१ — ७ अग्नि। ३३७।७

'अद्भुतदर्पणकार' के मत में काव्य आत्मानन्दैकसाक्षी और प्रतिव्यक्ति 'अन्यादृश' चमत्कार प्रदर्शन करने वाला होता है।[1] वे कविता को सुधारसपूर्ण चन्द्रप्रभा के समान कह कर लोक के ताप और तम के हरण में भी समर्थ मानते हैं।[2] 'बाल रामायण' नाटक के आरम्भ में ही सरस्वती वन्दना के अवसर पर कवि राजशेखर 'वाणीगुम्फ के लक्षण बतलाते हुए उसे प्रसाद-गुण का पात्र' 'सूक्ति' से विभक्त श्रुतिपेय आद्य स्वादुरस' 'विद्यानिधान अर्धशरीरधारी और कविकुलसेवित' कहते हैं।[3] उनके अनुसार यह सत् काव्य केवल सुकवियों की रसना में ही निवास करता है।[4] मुरारि कवि के अनुसार किसी सुकवि के द्वारा अनेक शास्त्रों के मनन के पश्चात् जो सारभूत अक्षराकार 'वाग्गुम्फ' प्रस्तुत किया जाता है वही काव्य है।[5]

काव्य के इन समस्त लक्षणों में उसके बाह्यरूप का ही अविस्तर विश्लेषण किया गया है। 'मानस के समान उसकी सर्वजनोपयोगिता एवं प्रभविष्णुता का संकेत वहाँ नहीं है। यों तो तुलसी ने भी काव्य की विशेषताओं का निरूपण करते हुए शब्द, अर्थ अलंकार छन्द भाव रस और दोष आदि की विविधताओं का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त काव्य में जहाँ तक शब्दार्थ की स्थिति का प्रश्न है, यद्यपि उसके लिये महाकवि कालिदास की संपृक्त भावना[6] को स्वीकार करते हुए भी उसको 'भिन्नाभिन्न' अत अविवेच्य ही बतलाया है। इस प्रकार काव्य लक्षण के निरूपण में गोस्वामीजी अपना एक विशेष दृष्टिकोण रखते हुए उसके शिवं पक्ष पर अधिक बल देते हैं।

(२) काव्य के हेतु—गोस्वामीजी ने अपने 'मानस' में काव्य के उद्भव का बड़ा सरस और आलंकारिक निरूपण किया है —

हृदय सिन्धु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥
जौं बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू॥ १।११

इसमें वे कवि की सहृदयता बुद्धि की ग्रहण शक्ति शारदा की कृपा और विचारों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं। इसके अतिरिक्त काव्य-निर्माण के लिए वे 'विमलमति को सबसे बड़ा कारण मानते हैं[8] और उसे भी केवल हरिकृपा से ही प्राप्य बतलाते हैं। वे रामप्रताप,[9] शिवकृपा और हरगौरी प्रसाद[10] को भी काव्य रचना का हेतु मानते हैं। अन्तिम मान्यता में वे 'वायुपुराण'[11] से प्रभावित जान पड़ते हैं जिसके अनुसार शिव को अर्थ और पार्वती को शब्द का नियामक माना

१ अद्भुत दर्पण १।२
२ अद्भुत दर्पण १०।११
३ बालरामायण १।१
४ बालरामायण १।७
५ अनर्घराघव १।५
६ रघुवंश १।१
७ मानस १।१८
८ मानस १।१४
९ मानस १।१०
१० मानस १।१५
११ रघुवंश १।१ (मल्लिनाथ टीका)

जाता है। इसके अतिरिक्त वे ग्रंथारम्भ में शब्द, अर्थ, रस और छन्द की विधायिका के रूप में सरस्वती की स्तुति भी करते हैं किन्तु उनको भी वे अन्तर्यामी राम के हाथों की कठपुतली बतला कर राम को उसका सूत्रधार मानते हैं। वे पुनः कहते हैं कि राम जिस कवि पर सदा सप्रेम कृपा करते हैं उसके हृदय प्रदेश को सरस्वती के लावण्यनृत्य का रंगमंच बना देते हैं।[1] इस प्रकार तुलसी इस क्षेत्र में भी रामभक्ति की ही सर्वोपरि स्थिति प्रमाणित करते हैं।

काव्यप्रकाशकार के अनुसार शक्ति, लोकशास्त्र काव्यादि के अवेक्षण से प्राप्त निपुणता और काव्यज्ञ विद्वानों की शिक्षा पर आधारित अभ्यास आदि तीनों कारणों के सम्मिलित केवल सम्मिलित प्रयास से ही काव्य का उद्भव होता है।[2] यहाँ शक्ति से तात्पर्य 'प्रातिभ ज्ञान' से है जो जन्मजात होता है। इसे कवि के लिए अलौकिक चमत्कार या ईश्वरीय वरदान कह सकते हैं। यही काव्य निर्माण में मुख्य हेतु है। इसीलिये कहा जाता है कि कवि उत्पन्न होते हैं बनाये नहीं जाते। कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः में कवि के 'स्वयंभूत्व' का यही तात्पर्य है। अग्निपुराण के अनुसार भी कवित्व के लिये शक्ति व्युत्पत्ति तथा विवेक अनिवार्य है किन्तु वहाँ उनको उत्तरोत्तर दुर्लभ बतलाया गया है और समस्त शास्त्रों के परिशीलन के अभाव में उस कवित्व को भी असिद्ध माना गया है।[3] भागवत के मत में अन्तर्हृदय में कवि की प्रसन्नता और व्यवसायबुद्धिता ही सत्काव्य के निर्माण में समर्थ होती है। 'जयानक' के विचार से कवि की सफलता का रहस्य उसकी 'अविच्छिन्नविचारपूर्ण' अद्वितीय दृष्टि है जो काव्य-जगत् के स्रष्टा में बृहस्पति के शिष्य सहस्रनेत्र इन्द्र से भी अधिक व्याप्त है।[4] 'कुवलयमाला' के अनुसार काव्य रचना की एकमात्र विशेषता उसकी नवीनता होती है जो अवगत बातों से अपूर्वत्व की अपेक्षा रखती है।[6] भक्तिवाद के दृष्टिकोण से सरस्वती के प्रवर्तन का मूल कारण केवल कवि-हृदय की विशदता है।

इन सब कारणों के सन्दर्भ में 'मानसकार' के कारण में उनकी भक्तिपूर्ण सोद्देश्यता स्पष्ट है। रामचरित के निर्माण में वे पूर्व-कवियों की वन्दना को भी एक सबसे बड़ा कारण मानते हैं और इसीलिए वे व्यास तथा वाल्मीकि आदि सभी कवियों की वन्दना भी करते हैं। महाकवि कालिदास,[9] मुरारि[10] और जयदेव[11] आदि भी इसी दृष्टिकोण से अपने पूर्व कवियों का उपकार मानते हैं एवं उनकी प्रशंसा करते

---

१ मानस १।१०५
२ काव्यप्रकाश १।३
३ अग्निपुराण ३३७।३, ४
४ भागवत २।२।३
५ पृथ्वीराज विजय १।११
६ कुवलयमाला १।५
७ रामचरित १।५।८
८ मानस १।१३।१४
९ रघुवंश १।४
१० अनर्घराघव १।८
११ प्रसन्नराघव १।१२

है। जयदेव के मत से तो ब्रह्मलोक से मर्त्यलोक तक आने में, सरस्वती को जो श्रम हुआ है उसका अपहार केवल रामायण-वर्णन से ही हो सकता है।[1] तुलसी भी उसका समर्थन करते हुए कहते हैं —

'भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई ॥
राम चरित सर बिनु अन्हवाए। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएं ॥ १।११

(४) काव्य के प्रयोजन—मम्मट ने काव्य के प्रयोजनों का इस प्रकार विस्तार से निरूपण किया है —

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥ १।२

इससे स्पष्ट है कि वे काव्य का सर्वप्रथम प्रयोजन 'यश' मानते हैं। गोस्वामीजी स्वयं तो यश नहीं चाहते हैं किन्तु वे साधु-समाज में अपनी कृति का सम्मान अवश्य चाहते हैं और उससे लिये वे रामकथा के पूर्व कवियों से वरदान याचना भी करते हैं क्योंकि उनके अनुसार विद्वान् लोग जिस प्रबंध का आदर नहीं करते हैं उसके निर्माण में कवि का परिश्रम व्यर्थ ही रहता है।[2] वे नम्रतावश अपने काव्य को 'बालवचन' कह कर सज्जनों से अपनी ढिठाई के लिये क्षमा भी माँगते हैं और यह विश्वास भी व्यक्त करते हैं कि उनके काव्य से विद्वान् लोग उसी प्रकार प्रसन्न होंगे जैसे शिशु की तुतली भाषा से माता पिता प्रसन्न होते हैं।[3] उनकी यह भी मान्यता है कि प्रत्येक कवि को अपना काव्य—सरस अथवा नीरस—बहुत प्रिय लगता है, किन्तु दूसरे की कृति से प्रसन्न होने वाले महापुरुष विरले ही होते हैं।[4] महाकवि जयदेव की भी यही धारणा है।[5] गोस्वामीजी यह भी समझते हैं कि कूर कुटिल कुविचारी और 'परदूषन भूषन धारी' खल लोग उनके काव्य का परिहास अवश्य करेंगे किन्तु वे उसकी चिन्ता तक नहीं करते हैं प्रत्युत वे उस आलोचना को हितकर ही बतलाते हैं।[6] संस्कृत के कवि ऐसे काव्यदूषक आलोचकों से अत्यधिक खिन्न जान पड़ते हैं। जयानक[7] के अनुसार 'कवित्व और पण्डितत्व सरस्वती नदी के दो तट हैं जिनमें एक ओर अमृत है और दूसरी ओर विष —

कवित्वपाण्डित्यतटद्वयेन सरस्वती सिन्धुरिव प्रवृत्ता ।
एकत्र पेयूषमयो रसोऽस्मत्यत्र मात्सर्यविषात्मकोऽस्याः ॥

'राघवपाण्डवीयकार आलोचकों को काव्य रस के अनभिज्ञ शास्त्रावगाहन में आलसी शास्त्रशक्ति से अनभिज्ञ परगुणों में मूढ़ और विदग्धगोष्ठी से अपरिचित बतलाकर

---

१ प्रसन्न राघव १।११ — २ मानस १।१४
३ मानस १।८ — ४ " १।८
५ प्रसन्नराघव १।११ — ६ " १।८
७ पृथ्वीराज विजय १।११

पर उनको काव्य-परीक्षा में नितान्त असमर्थ मानते हैं।[1] जयदेव[2] और राजशेखर[3] भी ऐसे काव्य-निन्दकों को उपेक्षणीय मानते हैं। इन सभी उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक कवि अपने काव्ययश के प्रति पूर्ण उत्सुक और सतर्क रहता है। इस दिशा में दर्पहीन कवि जहाँ अपने आलोचकों से अधिक क्षुब्ध हो जाते हैं वहाँ नम्र कवि अपने मधुर आचरण से उनको अनुकूल भी बना लेते हैं।

'यश' के अतिरिक्त दूसरा प्रयोजन 'अर्थप्राप्ति' है जिसका तनिक तुलसी से कोई भी सम्बन्ध नहीं है, यद्यपि संस्कृत के अनेक साहित्यकारों का यही प्रमुख लक्ष्य रहा है। जहाँ तक 'व्यवहार-ज्ञान' का सम्बन्ध है वह अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण प्रयोजन माना गया है। 'मानस' में वर्णित नीति और राजनीति आदि के सिद्धान्तों का इस दृष्टिकोण से जो विशिष्ट स्थान है उसका विवेचन आगे किया जायगा।

काव्य के अन्य प्रयोजन 'शिवेतरक्षति' का अभिप्राय कवि के निजी 'पापनाश' से है। भले ही सूर्यादि की स्तुति से मयूर कवि शापमुक्त हुआ हो[4] किन्तु कोई भी *उदारचेता महाकवि ऐसी स्वार्थबुद्धि से काव्य का निर्माण नहीं करता है।* उसका स्थान विशाल एवं असीम होता है। वह समस्त भाव-जगत का एकमात्र प्रजापति होता है और उसमें प्रभु के विराट् स्वरूप की तरह वह सर्वव्यापी और सबव्याप्य होता है। उसकी महान् आत्मा का यह अद्भुत प्रसार ही उसके काव्य को सर्वजनोपयोगी और सर्वलोकप्रिय बना देता है। साहित्य के मूल में 'सहित' के भाव के विद्यमान होने का यही सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है।

'मानस' के निर्माण में तुलसी का ध्यान 'कलिमलहरण'[5] की ओर अवश्य है। यही उनकी अभिप्रेत शिवेतरक्षति है। तुलसी के मत से 'कलि' समस्त अमंगलों का मूल है। अपने 'कलियुग वर्णन'[6] में उन्होंने इसका विस्तार से निरूपण किया है। भागवत,[7] पद्म[8] 'विष्णु'[9] आदि समस्त पुराणों में इसका मूल-रूप देखा जा सकता है। इन पुराणों में कलियुग की सर्वत्र निन्दा की गई है जबकि तुलसी ने राम-नाम के *अद्भुत प्रभाव का वर्णन करते हुए उसकी प्रशंसा ही की है* और इस प्रकार उन्होंने अपने ग्रंथ के मूल प्रयोजन 'मंगल विधान' को भी स्पष्टतया व्यक्त कर दिया है। 'मानस' को पुण्य, पापहर और शिवकर कहने में उनका यही तात्पर्य है।[10]

सद्यःपरनिर्वृति भी काव्य का एक विशिष्ट प्रयोजन है जिसका प्रत्येक पाठक के साथ प्रायः संबंध होता है। इसी के अभाव में इतिहास आदि को काव्य

---

१ राघवपाण्डवीय (कविराज) १।४०
२ प्रसन्नराघव १।२०
३ बालरामायण १।१२
४ काव्यप्रकाश-पं० वामनाचार्य *पंचम संस्करण—पृष्ठ ८*
५ मानस १।१०
६ मानस ७।९७-१०१
७ भागवत १२।२ व ३ अध्याय
८ पद्म। पाताल ६६ अध्याय
९ विष्णु ६।१ अध्याय
१० मानस ७।१३० श्लोक २

नहीं माना जाता है। उसकी व्याख्या करते समय मम्मट ने उसको 'सकल प्रयोजन मौलिभूत, रसास्वादन-समुद्भूत विगलितवेद्यान्तर आनन्द' माना है।[1] यह वस्तुत काव्य का सर्वोत्कृष्ट प्रयोजन है क्योंकि इसी के अन्तर्गत रसास्वादन होता है और उस समय सहृदय रसिक क्षण-मात्र के लिए अपने चतुर्दिक वातावरण को भूल कर ब्रह्मानन्द सहोदर काव्यानन्द में निमग्न हो जाता है। आ॰ रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'रसदशा में अपनी पृथक सत्ता की भावना का परिहार होता है अर्थात् काव्य में प्रस्तुत विषय को हम अपने व्यक्तित्व से सम्बद्ध रूप में नहीं देखते अपनी योग क्षेम-वासना की उपाधि से ग्रस्त हृदय के द्वारा ग्रहण नहीं करते बल्कि निर्विशेष, शुद्ध और मुक्त हृदय द्वारा ग्रहण करते हैं। यही रस का लोकोत्तरत्व अथवा ब्रह्मानन्द-सहोदरत्व कहा जाता है।'[2] मानस[3] में भक्तिभाव की प्रधानता होने से समग्र सर्वत्र ही ऐसे सरस प्रसंगों का आयोजन किया गया है जिनमें पूर्णनिमग्न और आत्मविभोर होने का पर्याप्त अवकाश है।

मम्मट के द्वारा वर्णित अन्तिम काव्य प्रयोजन 'कान्तासंमित-तयोपदेश' का तात्पर्य है सरस और निर्दम्भ आग्रह। अधिकारी-वर्ग गुरुजन और मित्रमण्डल के उपदेशों में यह विशेषता नहीं होती है क्योंकि उनमें क्रमशः कुछ भय नीरसता और अकर्तव्यकारिता स्पष्टतया रहती ही है जो कान्ता के उपदेशों में नहीं होती। काव्य में भी कोई विवशता नहीं होती है क्योंकि वहाँ कवि अनेकानेक स्थितियों और परिस्थितियों का ऐसा मार्मिक चित्रण करता है जिससे कर्तव्याकर्तव्य भावना भी स्वयं निर्मित हो जाया करती है। उससे पाठकों को सद्ग्रहण और असत्याग की प्रेरणा अवश्य मिलती है और उसके पीछे कवि का भावपूर्ण आग्रह भी स्पष्ट होता है किन्तु वहाँ कोई बल-प्रयोग नहीं रहता है। इसी दृष्टिकोण से 'कान्तोपदेश' और 'कम्पुटदेश' की तुलना की जाती है। मानस[4] में इन सम्बन्ध में अपूर्व क्षमता है। अन्य संस्कृत-ग्रन्थ भी इस उद्देश्य से महत्त्वपूर्ण हैं।

इन प्रयोजनों के अतिरिक्त 'मानसकार' ने वाणी की सुफलता' और पवित्रता की प्राप्ति का भी उल्लेख किया है तथा विभिन्न प्रसंगों में कथामाहात्म्य का वर्णन करते हुए उन्होंने अन्य प्रयोजनों का भी यथास्थान संकेत कर दिया है। संस्कृत के ग्रन्थों में भी उसी प्रकार काव्य के नहीं, किन्तु राम-काव्य के अनेक प्रयोजनों का विस्तार से वर्णन मिलता है।

(५) काव्य का प्रतिपाद्य—वर्तमान युग में तृणकीट से लेकर आकाश कुसुम तक सब कुछ काव्य का वर्ण्य विषय बन गया है। क्यों न हो कवि परिभू होता है और स्वयंभू भी। हिन्दी-कविता के आदिकाल में कलाप्रिय अथवा कलहप्रिय राजा

१ काव्यप्रकाश—आ॰ वामनाचार्य—पाँचवां संस्करण—पृष्ठ ८१
२ आ॰ रामचन्द्र शुक्ल—चिन्तामणि—द्वितीय भाग—पृष्ठ ११९
३ मानस १।११ ४ मानस १।१११

के समर अथवा समर का ही अतिरंजित वर्णन, उनके वृत्तिभोगी चारणों के द्वारा किया जाता था। उस समय काव्य के प्रतिपाद्य की सीमा यही थी। भक्तिकाल में, जब वे राजा और उनके चारण अतीत के ध्वंसावशेष रह गये, तब निरीह जनता का नेतृत्व सन्त महात्माओं के हाथों में स्वतः आ गया था, जिसे उन्होंने बड़े उत्तरदायित्व के साथ निबाहा। चारण युग तक राजाओं में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा की जाती थी। तुलसी भी राजाओं की इस विशेषता का उल्लेख करते हैं किन्तु राम को सर्वशिरोमणि और पुरुषसिंह से सम्पृक्त कह कर, वे राजाओं की न्यूनता का भी निरूपण करते हैं।[1] वस्तुतः मनुष्य मनुष्य ही है अतः उसमें प्राकृतिक सदोषता और अपूर्णता रहती ही है, अतः स्वार्थवश या भयवश एवं प्राकृत-जन' का गुणगान करना काव्यकला का अपमान करना है और अपनी कवित्वशक्ति को कलुषित करना है। इस दिशा में तुलसी का स्पष्ट मत है कि इस कुत्सित कार्य से स्वयं सरस्वती का भी महान् पश्चात्ताप हो जाता है —

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ॥१।११

और इसीलिये उनके मत में अनेक कविकोविद केवल भगवान् का ही कलिमलहारी यशोगान करते हैं। इसी हरियश के प्रतिपादन के कारण ही व्यास आदि कवियों के प्रति 'मानसकार' अपनी श्रद्धाभावना व्यक्त करते हैं।[2] हरिकथा की विशेषता बतलाते हुए वे अपने प्रतिपाद्य को भी स्पष्ट करते हैं —

जेहि महँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ॥७।६१

तुलसी इस सम्बन्ध में भागवतकार से प्रभावित प्रतीत होते हैं जो कवियों के द्वारा 'धनदुर्मदान्ध व्यक्तियों को' सेवित देख कर अत्यन्त क्षुब्ध होते हैं और उनसे साभिप्राय यह पूछते भी हैं —

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां,
नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन्।
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्
कस्माद् भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ॥२।२।५

इसके साथ ही वे उन कवियों से हरिगुणगान के लिये आग्रह भी करते हैं, जिससे उनको मोक्षलाभ भी हो सके।[3]

हरिचरित अथवा रामचरित को अपने अपने काव्य का प्रतिपाद्य बना लेने में बलदेव के अनुसार कवियों का कोई दैन्य नहीं है। उनके मत से यह दोष राम के पुण्यजनों का है जिन्होंने इनसे (राम से) दूर रहने का अपराध किया है।[4] वे कहते हैं कि राम-यश-वर्णन के अभाव में कवियों की सारी कविता ही व्यर्था है अथवा वही शरीरोत्तर आभरण को समर्पित पुष्पों के समान इसका अधिक हर्ष भी है

---

१ मानस १।२८ २ मानस १।१४
३ भागवत २।२।६ ४ मङ्गलपाठ १।१२

सकती है जितना न तो ब्रह्म-विद्या से मिल सकता है और न राजधर्मों से ही ।[1] मुरारि के विचार से रामचरित-वर्णन में कवियों के सामने एक विवशता भी है कि यदि क्षुण्ण और घुष्ट' मानकर 'रामचरित' को छोड़ भी दिया जाय तो फिर दूसरा कोई महापुरुष ऐसा है ही नहीं जिसके यशोगान से वे उपकृत हो सकें ।[2] हनुमन्नाटककार के अनुसार भी रामचरित कल्याण-निधान कलिमलमथन पावनातिपावन, मुमुक्षु पाथेय और धर्मद्रुम-बीज होने के साथ साथ कविवरों की वाणी का एकमात्र विश्राम स्थल है ।[3] राजशेखर के मत से 'रामचरित' का वर्णन कवियों के लिए अनिर्वचनीय कामधेनु के समान है । संस्कृत के अनेक ग्रंथों में रामचरित के महत्व से सम्बद्ध ऐसी विविध सूक्तियां सहज सुलभ हैं ।

(६) निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने काव्य सिद्धान्तों के निरूपण में तुलसी ने समन्वयवादिता का चमत्कार दिखाते हुए भी, उसमें एक नवीनता एवं मौलिकता के सम्पादन का सफल प्रयास किया है । इसके साथ ही उन्होंने रामभक्ति को भी मूल कारण के रूप में सर्वत्र प्रस्तुत किया है । उनकी मान्यताएं उनके गम्भीर काव्यज्ञान का प्रमाण देती हैं जिसका परिचय उन्होंने 'मानस' के अतिरिक्त अन्य कृतियों में भी दिया है ।

(७) दर्शन सिद्धान्त—यह तो अन्यत्र कहा ही जा चुका है कि गोस्वामी जी मूलतः भक्त हैं अतः उनके दार्शनिक सिद्धान्तों में भी उनकी भक्ति-भावना का ही प्रभाव प्रमुख है । अनेक विद्वानों ने 'मानस' में उनके इस तत्व-चिन्तन पर अद्वैतवाद या विशिष्टाद्वैतवाद आदि की छाया के दर्शन किये हैं । उन्होंने अपनी मान्यता और विचार-सरणि के अनुरोध से ही उन्हें किसी न किसी दार्शनिक पद्धति का समर्थक ठहराया है । यह सम्भव है कि 'मानस' की कुछ उक्तियों से उनको ऐसी भ्रान्ति हो गई हो किन्तु समस्त ग्रन्थ के आद्योपान्त मनन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी पर किसी वाद मत अथवा सम्प्रदाय का प्रभाव नहीं है । ईश्वर, जीव, जगत और माया के स्वरूपों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों के विवेचन में तुलसी के विचार स्पष्ट सरल और असंदिग्ध हैं । उनमें दार्शनिकों की सी दुर्बोधता दुरूहता एवं दुराग्रहशीलता नहीं है । यह अवश्य है कि उनके सिद्धान्तों में विभिन्न दर्शनों से सम्बन्धित विविध तत्व यत्र-तत्र मिल जाते हैं किन्तु उनके युक्तियुक्त समन्वय एवं मौलिक प्रतिपादन में तुलसी की विशेषता है । इसके अतिरिक्त वे सुबोधता, व्यावहारिकता तथा लोकोपयोगिता का भी सर्वत्र बराबर ध्यान रखते हैं ताकि वे गूढ़ सिद्धान्त केवल सिद्धान्त ही न रहें अपितु सर्व-सामान्य व्यक्ति भी उनसे लाभान्वित हो सके । दर्शन और भक्तिशास्त्र के ज्ञान एवं क्रिया दोनों पक्षों के परस्पर तरल

१ प्रसन्नराघव १।११ २१ — २ अनर्घराघव १।६

३ हनुमन्नाटक १।१ — ४ बालरामायण १।६

५ डा० राजपति दीक्षित—तुलसीदास और उनका युग-पृष्ठ २०४

सार्वजनीय के लिये उनका उपयुक्त दृष्टिकोण वस्तुतः अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यहाँ दार्शनिक ग्रन्थों के मत के साथ तुलसी के मत की तुलना करना अपना विषय नहीं है किन्तु अपने आलोच्य ग्रंथों के परिवेश में ही उसका अध्ययन अभीष्ट है।

(८) ईश्वर का स्वरूप—गोस्वामी जी के अनुसार ईश्वर अथवा ब्रह्म के अगुण और सगुण दो स्वरूप हैं जो अकथ, अगाध अनादि और अनूप हैं। उनमें अगुण ब्रह्म एक, व्यापक अविनाशी और सच्चिदानन्द है। पुनश्च यही अगुण ब्रह्म भक्तों के हित के लिए देहधारण करके सगुण हो जाता है। अपनी इस मान्यता को बारम्बार दुहराते हुए तुलसी अगुण और सगुण का अभेद प्रतिपादित करते हैं और उसे वेदों से समर्थित भी बतलाते हैं —

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥१।११६[1]

अगुण और सगुण की एकता की तुलना के लिए वे काष्ठ में पहले छिपी हुई और फिर प्रकट होने वाली अग्नि की समानता का उदाहरण देते हैं।[2] 'भागवतकार' भी उनके इस दृष्टान्त का समर्थन करते हैं।[3] तुलसी 'जल हिमोपम' न्याय से भी अपने पक्ष का पोषण करते हैं[4] तथा निर्गुण की अपेक्षा सगुण के सौभाग्यशिव की प्रशंसा भी करते हैं[5] —

फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा॥ ४।१७

'भागवत' में 'सर' के स्थान पर आकाश और 'कमल' के स्थान पर सवितृत जलद का उल्लेख है। शेष वर्णन समान है —

तान्नीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः।
अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ॥१०।२०।४

इन दोनों दृष्टान्तों में सौन्दर्य की दृष्टि से 'मानस' का पक्ष प्रबल है। कहाँ उत्फुल्ल कमल और कहाँ गरजते चमकते काले बादल। औचित्य की दृष्टि से भी 'मानस' की उपमा न्यायसंगत है क्योंकि कमल तो सरोवर का विकास है, जबकि बादल आकाश के आवरण हैं।

(९) निर्गुण ब्रह्म और राम—तुलसी ने राम को निर्गुण ब्रह्म का सगुण रूप मानकर विभिन्न प्रसंगों में उनके अभेद का निरूपण किया है। पार्वती को उपदेश देते हुए शिव,[6] गुरु को समझाते हुए सामन्त,[7] इन्द्र को शान्त करते हुए बृहस्पति,[8] अंगद को उत्साहित करते हुए जाम्बवान्,[9] रावण को समझाते हुए माल्यवान का प्रसंग

१ मानस १।११६
२ भागवत ३।१०।१६
३ मानस १।११६
४ मानस ११६
५ मानस २।६१
६ मानस २।१११
७ मानस ४।२६

करते हुए विभीषण[1] और गरुड़ के सम्मोह को दूर करते हुए काकभुशुण्डि[2] आदि सभी इसी का समर्थन करते हैं। उपर्युक्त प्रसंगों में निर्गुण ब्रह्म की विविध विशेषताओं को बतलाते हुए राम को भी परमानन्द प्रसिद्ध पुरुष अविगत अलख अनादि अनूप, अशेष एकरस, अज महाकाश भगवान सच्चिदानन्द अमोघशक्ति, गिरातीत सर्वदर्शी, निर्मम, निराकार नित्य निरंजन, सर्वान्तर्यामी और अविनाशी माना गया है।

(१०) निर्गुण की सगुणता के कारण इस निर्गुण ब्रह्म के सगुण होने के कारणों में भक्तों के हित का उल्लेख किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त धर्म-रक्षा असुर-विनाश विप्र, धेनु पृथ्वी सुर आदि के त्राण सज्जन-पीड़ा-हरण, श्रुति रक्षा एवं स्वयश विस्तार आदि का भी वर्णन मिलता है।[3] इस विषय में तुलसी गीता[4] और भागवत[5] से बहुत प्रभावित हैं।

(११) सगुणब्रह्म की विशेषतायें—निर्गुण ब्रह्म के सगुण होते ही उसमें गुणजन्य समस्त विशेषतायें प्रादुर्भूत हो जाती हैं, जिसके कारण वह अनाम, अरूप, अकर्ता और विश्व-व्यापक ब्रह्म सनाम सरूप कर्ता और एकदेशनिष्ठ हो जाता है। उसका यह नाम रूपगुणधाम आदि भी असाधारण और परम महत्वशाली होता है। राम-नाम के माहात्म्य का विस्तृत वर्णन करते हुए तुलसी उसको निर्गुण तथा सगुण ब्रह्म से भी अधिक उत्कृष्ट बतलाते हैं और उसके गुणगान में स्वयं राम को भी असमर्थ कहते हैं —

कहौं कहां लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई ॥१।२६

इसके अनुसार योगी, साधक आर्त और ज्ञानी सभी प्रकार के भक्त राम-नाम के जप से ही कृतकार्य होते हैं।[6] भागवतोक्त नवधाभक्ति में श्रवण कीर्तन, स्मरण और वन्दन का ईश्वर के नाम से विशेष सम्बन्ध है। मानस[7] में भी राम के द्वारा शबरी के प्रति वर्णित नवधाभक्ति में चतुर्थ और पंचम भक्ति का मुख्य आधार यही है। जहाँ तक ईश्वर के रूप का सम्बन्ध है उसके निरूपण में कविवर अपनी समस्त प्रतिभा का प्रयोग करते रहे हैं। राम के लिये 'रामु काम सत कोटि सुभग तन'[8] तक कह देना उनके लिये एक साधारण बात है। भागवत की नवधाभक्ति के पादसेवन, अर्चन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन[9] आदि भक्ति के शेष प्रकार ईश्वर के रूप ध्यान से ही सम्भव हैं।

---

१ मानस ५।४६ — २ मानस ७।७२
३ मानस १।१२१ — ४ गीता ४।७-८
५ भागवत ८।२४।५, ६।२४।२६ १०।३३।२७ १०।५०।९ १०
६ मानस १।२२ — ७ मानस ३।३५ ३६
८ मानस ७।९१ — ९ भागवत ७।५।२३

ईश्वर के गुण अथवा चरित्र वस्तुतः बड़े आश्चर्यजनक होते हैं जिनके तात्त्विक परिचय के अभाव में बड़े-बड़े सुर और मुनि आदि भी भ्रान्त हो जाते हैं क्योंकि वह ईश्वर सदा स्वतन्त्र होते हुए भी नट की तरह कपटाचरण करता है —

नट इव कपट चरित कर नाना । सदा स्वतन्त्र एक भगवाना ॥
चरित राम के सगुन भवानी । तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी ॥६।७३-७४

इसीलिये निर्गुण रूप को तुलसी सगुण से भी अधिक सुगम बतलाते हैं —

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ ।७।७३

'मानस' में सती पार्वती भरद्वाज कौशल्या गरुड़ और काकभुशुण्डि आदि अनेक पात्रों के भ्रम तुलसी के उपर्युक्त विचार की पुष्टि करते हैं। इनमें से सती कौशल्या और काकभुशुण्डि को निरस्त करने के लिए 'मानस' में विराट-दर्शन की योजना मिलती है जबकि पार्वती भरद्वाज और गरुड़ क्रमशः शिव याज्ञवल्क्य और काकभुशुण्डि के सदुपदेश से स्वयमेव स्वस्थ-चित्त हो जाते हैं। 'मानस' की कथा इन्हीं तीन संवादों की देन है, जिनका एकमात्र लक्ष्य यही है कि राम के नरचरित को देखकर उनके ईश्वरत्व में किसी को भी कोई सन्देह न होना चाहिए। इस प्रकार तुलसी के मत से ब्रह्म के सगुण चरित में निरस्त न होने के लिये निर्गुण ज्ञान की पृष्ठभूमि आवश्यक है जिसके फलस्वरूप विद्वानों को उसमें सुख प्राप्त होता है, जब कि अविद्वान मोहग्रस्त हो जाते हैं —

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे । जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥१।१२७

'भागवतकार' भी इस सम्बन्ध में अविज्ञों की दशा का संकेत करते हैं —

तमयं मन्यते लोको ह्यसंगमपि संगिनम् ।
आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ॥ १।११।३७

गीता में भी इस सिद्धान्त का समर्थन दृष्टव्य है —

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ गीता । ९।११

इस मोह का एकमात्र कारण 'रामचरित' ही है क्योंकि निर्गुण ब्रह्म को जिन शक्तियों की हम कल्पना करते हैं अथवा कर सकते हैं उन सबको हम सगुण ब्रह्म में पूर्णरूपा आरोपित भी करते हैं और उनको प्रतिफलित भी देखना चाहते हैं किन्तु सगुण रूप अपनी सीमाबद्धता के कारण जो आचरण करता है वह हमारी उक्त धारणा के अनुकूल सिद्ध नहीं होता है। इसीलिये राम के विरही रूप से भरद्वाज, सती और पार्वती को 'नागपाश में उनको बद्ध देखकर गरुड़ को' और उनको प्राकृत शिशुभाव में काकभुशुण्डि' को मोह हुआ था।

---

१ मानस १।४६।२१।१०८ २ मानस ७।२७
३ मानस ७।७३

इसी भ्रम के निराकरण के लिये 'मानस' में अनेक स्थलों पर विद्वानों के मुख से राम के 'निर्गुण-सगुण-विशिष्ट' रूप की ही वन्दना प्रस्तुत की गई है। सनक राम की स्तुति करते हुए उन्हें 'निर्गुण और गुण राशि'[1] सुतीक्ष्ण उनको 'निर्गुण सगुण विषम सम रूप'[2] जटायु उनको 'निर्गुन सगुन गुन प्रेरक'[3] शिव उनको 'अगुन सगुन गुन मन्दिर' और वेद उनको 'जय सगुन निर्गुन रूप'[4] कहते हैं। 'भागवत' के ब्रह्मा[5] तथा प्रह्लाद[6] भी भगवान की ऐसी ही स्तुति करते हैं। स्वयं भगवान भी इसमें अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं —

प्रीतोऽहमस्तु भद्रते लोकानां विजयेच्छया।
यदस्तोषीद् गमर्य निर्गुणं चानुवर्णयन् ॥ ३।९।३१[7]

'मानस' के राम भी भक्त को परामर्श देते हुए अपनी इस विशिष्टता का निरूपण करते हैं —

जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि ॥ ७।८५[8]

यहाँ तक राम की विशिष्टता का प्रश्न है, सगुण ब्रह्म की एक देश-निष्ठता का उल्लेख किया जा चुका है। सालोक्यमुक्ति का यही अभिप्राय है कि जीव ईश्वर के लोक में पहुँच जाय 'मानस' के राम अपने द्वारा मारे गये विराध 'बालि' 'कुम्भकर्ण' और 'रावण' को 'निजधाम' देते हैं। ताटका और मारीचि को निज पद देने में भी उनका यही तात्पर्य है। इसके अतिरिक्त उनके कृपापात्रों में जटायु और शबरी भी हरिधाम' प्राप्त करते हैं। केवल धर्मग को 'बकुण्ठ लाभ' होता है। 'मानस' के राम बैकुण्ठ की प्रशंसा करते हुए भी अवधपुरी को उससे अधिक प्रिय बतलाते हैं।[9] वे उसको त्रिविध ताप और भवरोग के नाश में समर्थ बतला कर प्रणाम भी करते हैं।[10] अवध के प्रति इतना आकर्षण दिखलाने के बाद भी वे उसको 'मम धामदापुरी' कह कर अन्यत्र संकेत करते हैं —

अतिप्रिय मोहि यहाँ के बासी। ममधामदा पुरी सुख रासी ॥ ७।४

वस्तुतः तुलसीदास राम को 'विश्वव्यापी' ही निरूपित करना चाहते हैं अतएव वे उन्हें कहीं भी सीमाबद्ध नहीं करते हैं। इसीलिए 'रामावतार' की प्रार्थना के समय देवगण जब बैकुण्ठ अथवा क्षीरसागर जाना चाहते हैं तब 'मानस' के शिव 'हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना'[11] कह कर उनको वहीं ईश्वर की स्तुति करने का परामर्श देते हैं। इतना ही नहीं वहाँ स्तुति करने पर ईश्वर को

१ मानस १।४१
२ मानस ३।११
३ मानस ६।१२
४ मानस ६।११२
५ मानस ७।१३
६ भागवत २।६।१०
७ भागवत ६।१।४८
८ मानस ७।४
९ मानस ७।४
१० मानस १८५

वहीं पर प्रकट होने और देवताओं को सान्त्वना देते हुए भी दिखलाया गया है। 'भागवत' में भी 'देवासुर-संग्राम' में देवताओं की प्रार्थना पर उनकी रक्षा के लिए भगवान् के प्रकट होने का वर्णन मिलता है।[1] मानस के राम भी सुग्रीवादि को विदा करते हुए स्वयं को भगवान् बतला कर अपनी विश्वव्यापकता का संकेत करते हैं। राम-धाम के सम्बन्ध में शबरी प्रसंग में केवल इतना संकेत मिलता है कि वहाँ पहुँच कर जीव आवागमन से सर्वथा मुक्त हो जाता है –

'तजि जोग पावक देह हरि-पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे ॥' ३।३

गीता में भी भगवान् कृष्ण अपने धाम की इसी विशेषता का स्पष्ट उल्लेख करते हैं –

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ १५।६

सगुण ब्रह्म की इसी विश्वव्यापकता को ध्यान में रख कर उसके विराट स्वरूप की कल्पना की जाती है। मानस में रावण को समझाती हुई मंदोदरी राम के उस रूप का अति विस्तृत चित्रण करती है।[2] इस विराट वर्णन में भी तुलसी भागवत से प्रभावित जान पड़ते हैं। गीता के विराट वर्णन में निर्गुणत्व और विष्णुत्व का सामञ्जस्य किया गया है[4] जबकि मानस के विराट वर्णनों में विष्णु सामान्य देवता के रूप में ही चित्रित मिलते हैं क्योंकि यहाँ सगुण राम का तादात्म्य विष्णु के साथ नहीं वरन् निर्गुण ब्रह्म के साथ ही किया गया है। वहाँ तो सती विष्णु को राम की सत्ता और कल्पना में लीन देखती हैं।[5] काकभुशुण्डि भी राम के उदर में 'विराट' का दर्शन करते हुए प्रत्येक लोक में विष्णु आदि को पृथक् देखते हैं। वे देवताओं के साथ राम के महतोमहीयान् रूप की तुलना करते हुए उनको उनके 'कोटि-कोटि गुणित' से भी अधिक समर्थ बतलाते हैं।[6] इस प्रकार निर्गुण ब्रह्म के विषय में समान होते हुए भी गोस्वामीजी सगुण-निरूपण में राम को निर्गुण ब्रह्म का ही प्रतिरूप मानते हैं। वे उन दोनों के बीच में विष्णु के माध्यम को स्वीकार नहीं करते हैं जबकि समग्र संस्कृत साहित्य में निर्गुण ब्रह्म से विष्णु और फिर विष्णु से राम का विकास क्रम प्रतिष्ठित किया गया है जिसके फलस्वरूप वहाँ राम का स्वतन्त्र व्यक्तित्व विष्णुत्व के भार से दब सा गया है किन्तु मानस में राम अपने प्रभाव में सहज अतिविष्णु रूप में ही प्रतिष्ठित किए गए हैं जो निर्गुण का ही पर्याय है।

(१२) जीव का स्वरूप—हम सभी 'जीव' हैं अतः उसके स्वरूप अथवा तत्त्व को समझ लेने के लिए हमारे मन में स्वाभाविक जिज्ञासा उत्पन्न होती है। जीव को

---

१ भागवत ८।१०।२७–२९
२ मानस ७।१६
३ मानस ६।१४–१५
४ भागवत २।१।२६, १०।६३।३४–३६
५ गीता ११।१९–३०
६ मानस १।५४
७ मानस ७।८१।१२

विवेचना दर्शन-शास्त्र का मुख्य आधार है क्योंकि उसी के सम्बन्ध में परमात्मा माया एवं जगत् की प्रमविष्णुता का अध्ययन किया जाता है। इस मार्ग में इत्थमित्थं कहना सरल है किन्तु 'इदमित्थमेव' कहने का साहस न तो कोई कर सका है और न उसकी सम्भावना ही है।

गोस्वामी जी ने राम के मुख से ही जीव की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है–

(१३) जीव की परिभाषा–'माया ईस न आपु कहुँ जान कहिय सो जीव ॥३।१५ उनके मत से माया ईश्वर और स्वयं को न जान सकने वाला ही जीव कहलाता है। उसके स्वरूप पर विचार करते हुए गोस्वामी जी उसको नित्य अविनाशी चेतन अमल और सहज सुखराशि बतलाते हैं।[1] उनके अनुसार हर्ष विषाद ज्ञान विज्ञान अभिमान आदि जीव के धर्म हैं।[2] गीता के अनुसार भी जीवात्मा नित्य अविनाशी अजर अमर अज अच्छेद्य महान् व सर्वगत और सनातन है।[3] वह देह में स्थित होने पर भी अलिप्त और अकर्ता रहता है।[4] वह आत्मा सत्त्व रज तम आदि प्रकृति के गुणों से देह में आबद्ध हो जाता है और उन गुणों का अतिक्रमण करने पर ही वह जन्म मृत्यु, जरा आदि के दुखों से विमुक्त हो जाता है।[5]

भागवत के अनुसार भी वह आत्मा अनादि निर्गुण, प्रकृति पर और स्वयं ज्योति है।[6] वह प्रकृति के गुणों से अभिप्त अविकारी और अकर्ता है। देह के माध्यम से एक लोक से दूसरे लोक में जाकर वह कर्म भोग करता है उसका तिरोभाव मरण है और आविर्भाव ही जन्म है।

(१४) जगत् का स्वरूप–गोस्वामी जी के अनुसार यह चराचर जगत् बुदबुदोपम दुःखदायी अधम अनादि असार नश्वर है।[9] भागवत के अनुसार भी यही संसार असार दुःखमय विमोहक क्षणभंगुर स्वप्नवत् बहुकल्पित आद्यन्तहीन अविद्यमान होने पर भी भासमान और वैकारिक है।[10] गीता' में शुक्ल और कृष्ण भेद से इस संसार की दो शाश्वत गतियों का उल्लेख मिलता है जिनमें एक से उसकी अनावृत्ति और दूसरे से आवृत्ति होती है।[11] यहां पंचभूत मन बुद्धि और अहंकार के रूप में स्थित ईश्वर की अपरा अष्टधा प्रकृति से विश्व की सृष्टि मानी गई है।[12] पद्म पुराण के अनुसार भी यह जगत् प्रपंच असत्य महाघोर नाना-दुःख-समन्वित असार

---

१ मानस ७।११ ७।४४ ११७	२ मानस १।११६
३ गीता २।१८–२६	४ गीता १३।३१–३२
५ गीता १४।५, २०	६ भागवत ३।२६।३
७ भागवत ३।२७।१	८ भागवत ३।३१।४३–४४
९ मानस १।६,११८ २।२८२ ६।७७ ८०	१० भागवत ११।२८।१७ ११–१२
११ गीता ८।२६	१२ गीता ७।४–५

और दुःखमोहमय है ।[१] 'अविरुद्धवाद' में भी संसार को दुःखधाम कहा गया है ।[२] 'रामचरित' के मत में भी यह संसार मायाम्लहीन, स्वप्न विवर्तवत और पंचतत्व निर्मित है और उसको 'गन्धर्व नगर' के समान 'बहुविभ्रमयुक्त' माना गया है ।[३] 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' तो संसार को और संसार की समस्त वस्तुओं को कृत्रिम अनित्य स्वप्नवत और 'जलबुद्बुद' के समान क्षणभंगुर बतलाता है ।[४]

(१५) माया का स्वरूप—गोस्वामीजी के अनुसार 'मैं अरु मोर तोर तैं' की भावना ही माया है । उसका प्रसार वहाँ तक है, जहाँ तक मन की गति है । इसके विद्या और अविद्या दो भेद होते हैं जिनमें से प्रथम से सृष्टि का निर्माण होता है और द्वितीय से जीव का बन्धन होता है ।[५] यहाँ माया को बड़ा प्रबल और दुस्तर माना गया है । इसी की सत्ता से रज्जु में सर्प के समान असत्य भी सत्य के रूप में भासित होता है ।[६] इसके भय से ब्रह्मा और शिव आदि सभी डरते हैं । उसका परिवार बहुत बड़ा और प्रबल है । उसमें मोह, काम, तृष्णा, क्रोध, लोभ, मद, प्रभुता, मान, यौवन-ज्वर, ममता, मत्सर, शोक और चिन्ता आदि की प्रमुखता है ।[८]

'गीता' में माया को दैवी, गुणमयी, दुरत्यय और आत्मज्ञानहारिणी कहा गया है ।[९] 'भागवत' के अनुसार माया की मोहकता बड़ी प्रबल है । वहाँ भी उसको दुस्तर गुणमयी और अनेकरूप धारिणी कहा गया है । उसके कारण ही असत्यरूप स्वप्नाभ और 'पुनः पुनः' संसार को सत्यवत् बतलाया गया है ।[१०] ब्रह्मपुराण के अनुसार भी माया मोह-कारिणी तथा स्वप्नवत् अथवा इन्द्रजालवत् दृश्यमान है ।[११] 'पद्मपुराण' भी माया को 'सर्वमोहिनी' बतलाता है ।[१२] 'भट्टिकाव्य' में माया की शक्ति बतलाते हुए उसको पर्वतों की उच्चता, समुद्र की अगाधता, वायु की चंचलता, दाहकता एवं सूर्यकिरणों की उष्णता का भी मूल कारण माना गया है ।[१३] 'रामचरित' में संसार के समस्त सम्बन्धों को मायाजन्य कह कर उनके प्रति अनासक्त रहने का परामर्श दिया गया है ।[१४]

ईश्वर, जीव, जगत् और माया के स्वरूपों का यह विवेचन तब तक अपूर्ण है, जब तक उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर विस्तारपूर्वक विचार न किया जाय । वस्तुतः ये सब परस्पर सापेक्ष हैं और उनके स्वरूप का वास्तविक निरूपण उनके सम्बन्ध-ज्ञान के मूल में ही है । संस्कृत के विद्वानों ने ईश्वरादि के इन सम्बन्धों का बहुत

१ पद्मपुराण । उत्तर ।१६६।७१, १६६।१२ — २ बुद्धिरूपम् ३।१९
३ रामचरित ३।१०२-११६
४ ब्रह्मवैवर्त । ब्रह्म । ७।१६ गणपति । ३३।१७ — ५ मानस ३।१५
६ मानस १।२१ ७।११८ — ७ मानस ६।११ ७।१०,१२ ७१
८ मानस ७।७१ — ९ गीता ७।१४-१५
१० भागवत ३।१८।४, ८।१३।३६-४० १०।१४।२२ — ११ ब्रह्म ।२२८।३०
१२ पद्म । उत्तर ।२४३।४१ — १३ भट्टिकाव्य १३।६
१४ रामचरित ३१।१४४

ही सूक्ष्म और गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है। उस दिशा में गोस्वामीजी गीता और भागवत आदि के बड़े आभारी हैं किन्तु उनका विशिष्ट दृष्टिकोण मुख्यतया भक्ति-प्रतिपादन की ओर रहा है। इसीलिए उन्होंने इन सम्बन्धों के विवेचन में सर्वत्र आवश्यक समन्वय का भी प्रदर्शन किया है।

(१६) ईश्वर और जीव–गोस्वामी जी ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। उनके अनुसार ईश्वर एक अखंडज्ञानवान् और स्ववश है, जब कि जीव अनेक खंडित-ज्ञानवान् और परवश है।[1] ईश्वर और जीव दोनों को अविनाशी कहते हुए वे जीव को ईश्वर का अंश और उनके आधीन भी बतलाते हैं।[2] गीता से भी इस सिद्धान्त का समर्थन हो जाता है।[3] भागवत के अनुसार मृत्यु के पश्चात् जीव फिर ईश्वर में मिल जाता है। इसके लिए वे 'घटाकाश' का तर्क भी प्रस्तुत करते हैं.—

घटे भिन्ने यथाऽऽकाश आकाशः स्याद् यथा पुरा।
एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म सम्पद्यते पुनः ।। १२।५।५

यहाँ ब्रह्म और जीव के 'अंशीअंश' सम्बन्ध का भी प्रतिपादन करते हुए एक प्रसंग में कृष्ण को भी "ईश्वरांश" कहा गया है जब कि अन्यत्र उनको ईश्वर तथा अन्य अवतारों को उनका अंश बतलाया गया है।[5] इसके अतिरिक्त यहाँ जीव को ईश्वर का वशीभूत मानकर, उसकी तुलना खिलौने के साथ की गयी है।[6] नृसिंह चम्पू' के अनुसार कुहरे में अदृष्ट वस्तु के समान ईश्वर को जीव हृदय रूप में नहीं देख पाता है।[7]

(१७) ईश्वर और जगत्–तुलसी के अनुसार यह संसार भी ईश्वराधीन है।[8] ईश्वर को जान लेने पर यह संसार-सम्बन्धी भ्रम स्वप्न की तरह समाप्त हो जाता है।[9] उनके मत में इस संसार का निर्माता ईश्वर है इसीलिए वह सब पर समान भाव से दया करता है[10] —

अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबर दाया ।। ७।८७

गीता से भी इस सिद्धान्त का समर्थन होता है —

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ।। ९।४

संसार-समुद्र के रूपक के द्वारा तुलसी ईश्वर और जगत् के सम्बन्ध की सरस विवेचना करते हैं। वे कहते हैं कि इस संसार-समुद्र में मानव शरीर बेड़ा है ईश्वर

---

१ मानस ७।७८
२ मानस ७।११७ १।२६१
३ गीता १५।७
४ भागवत १२।४।३१, १०।११।३७
५ भागवत १।३।२८
६ भागवत १०।८२।२१
७ नृसिंहचम्पू ३।१८
८ मानस २।२४४ १।११८
९ मानस १।११२
१० मानस ७।८७

कुरा अनुकूल मात्र है और मदगुरु कर्णधार है।[1] इस उक्ति में वे भागवत से अधिक प्रभावित है।[2] 'भागवत के मत से यह संसार ईश्वर में उसी प्रकार प्रोत है जिस प्रकार तन्तुओं में पट समाया रहता है।[3] संसार निर्माण में ईश्वर विनोद मात्र ही कारण है। वही ईश्वर इस संसार का सृजन रक्षण एवं नाश करता है। वस्तुत यह संसार ईश्वर के गुणों या कठपुतली के समान ही है।[4] स्वामीजी के मत मे इस संसार और ईश्वर में प्रकाश्यप्रकाशक और दृश्य ' सम्बन्ध है[5] जब कि भागवतकार के अनुसार इन दोनों मे पूर्ण भेद भाव है।

(१८) ईश्वर और माया —तुलसी के अनुसार निर्गुण ईश्वर माया का प्रेरक न्तु वह उसको ऐसा आच्छादित कर लेती है कि वह दिखलाई नहीं पडता है।[6] माया ईश्वर से डरती है और उसके भृकुटि–विलास पर नाचती भी है।[7] निर्गुण र के अतिरिक्त सगुण ईश्वर राम के साथ भी माया के उन्हीं सम्बन्धों की रक्षा करते हुये बाबाजी भी कहते हैं कि राम मायातीत है[8] माया उनकी दासी और ज्ञान होने पर उसका अस्तित्व नहीं रहता है इसके साथ ही राम की कृपा बिना उससे मुक्ति नहीं मिलती है।[9] उन्हीं की कृपा से अविद्या माया और के परिवार से भी छुटकारा मिल सकता है।[10] राम और ईश्वर के तादात्म्य उपरान्त तुलसी उन्हीं के सम्बन्ध से सीता और माया की भी अभेदता प्रतिपादित ते है।[11] ब्रह्मपुराण के अनुसार वह माया साक्षात् हरिपत्नी है अत हरि के तिरिक्त कोई दूसरा उसका ज्ञान न हो सकता है।[12] पद्मपुराण म सीता को 'विद्या वा जगन्माता, लक्ष्मी पार्वती ब्रह्माणी तथा समस्त स्त्रीलिंग का प्रतिरूप बत या गया है और उनके इस मायारूप से संसार के मोहग्रस्त होने का भी उल्लेख या गया है।[13] मानस म जिस प्रकार राम को विष्णु-पुरुष बतलाया गया है ी प्रकार वहाँ सीता को भी लक्ष्मी आदि से वंदित और पूजित जगदम्बा महा या के रूप में ही प्रतिष्ठित किया गया है।[14] गीता के भगवान् कृष्ण 'माया के ए 'मम माया' का प्रयोग करते है।[15] भागवत के अनुसार भी माया, भगवान एक अपनी विलक्षण है और वह मायाविकों को भी मोह लेती है। वहाँ ब्रह्मा

मानस ७।४४ — २ भागवत ११।१०।१७
मागवत १०।१२।१५ — ४ " १।१।११ ४।११।१७ २१
" ११६।७ — ६ मानस ३।१।१७ २।११२६
" ८।१।१० — ८ " ३।१२ १६
मानस १।२०० — १० " २।११७
१ " ७।७१ — १२ , १।१२
१ " १ १४८, १५२, २।१२६ — १४ ब्रह्म २२८।१०
१ पद्म । उत्तर २४३।२८ ४१ — १६ मानस ७।२४ २।२५२
० गीता ७।१४

शिव आदि को भी माया से मोहित बतलाया गया है।[1] 'मानस' में भी, माया के कारण ब्रह्मादि की विवशता का इसी प्रकार उल्लेख मिलता है।[2]

(१६) ईश्वर जीव जगत् और माया के सम्बन्ध —तुलसी के अनुसार ईश्वर से प्रेरित माया संसार की रचना करती है और उसी से वशीभूत होकर जीव 'भव कूप' में पड़ा रहता है।[3] वे पुनः कहते हैं कि सचराचर जगत् और जीव सब माया के वश में हैं और वह माया ईश्वर के वश में है। इसी माया के कारण ही जीव संसार में ८४ लाख योनियों में भटकता फिरता है। इस प्रकार ईश्वरांश होने पर भी वह जीव माया के वशीभूत होकर संसारी बन जाता है।[4] यह माया सदा ईश्वर और जीव के बीच में ही स्थिति रखती है।[5] उससे ही इस पंचभूत जगत् का सृजन पालन और विनाश होता है और उससे प्रेरित होकर ही जीव संसार में इतना भ्रान्त हो जाता है कि वह ईश्वर को भी नहीं पहचान पाता है।[6] गीता के मत में भी ईश्वर सब जीवों के हृदय में प्रतिष्ठित है और वह अपनी माया से उनको यन्त्रारूढ़ व्यक्तियों के समान भ्रमण कराता रहता है। माया के प्रभाव से ही जीव हतज्ञान होकर असुर भावों की ओर आकृष्ट हो जाता है।[8] ईश्वर की परा और अपरा प्रकृतियों का उल्लेख करके वहाँ उनको जगत् के उद्भवादि में समर्थ बतलाया गया है।[9] वहाँ भगवान् कृष्ण स्वयं को जगत् का माता धाता पितामह आदि घोषित करते हुए अपने शरीर में ही सचराचर जगत् की स्थिति दिखलाते हैं।[11] 'भागवत' में भी ईश्वर की माया को सचराचर विश्व को मोहिनी बतलाया गया है[12] जिससे वशीभूत होकर जीव ईश्वर को नहीं देख पाता है।[13] वहाँ ईश्वर को एक एवं अद्वितीय कह कर उसको अपनी माया से त्रिगुणात्मक जगत् का निर्माता और उसके बाद मध्य तथा अन्त में भी अनुप्रविष्ट एवं पृथक् स्थिति और नानात्व से भासमान बतलाया गया है —

'एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत् त्वमाद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च ।
सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥ ७।९।३०

वहाँ यह भी प्रतिपादित किया गया है कि जब जीव और ईश्वर की आराधना करने लगता है तब उसकी दृष्टि में माया का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता है और वह

---

१ भागवत १।६।१६
२ भागवत २।६।३१
३ मानस ७।६२
४ मानस २।११५
५ मानस १।१ श्लोक ६, ७।७८
६ मानस ७।११७
७ मानस २।१२६
८ मानस २।१२१
९ मानस ३।१५, ७।१०८, ४।२
१० गीता ७।१४ १५, १८।६१
११ गीता ७।४ ६
१२ गीता ९।१७ ११।७ ११ १० ४१
१३ भागवत १०।१।२५
१४ भागवत १०।२।२८
१५ भागवत ७।९।३०

स्वप्न के समान नष्ट हो जाती है ।[1] यहाँ पर ईश्वर को अपनी माया से समस्त जीवों के निर्माण में ही नहीं अपितु बन्धन और मोक्ष में भी समर्थ बतलाया गया है । इसके अतिरिक्त उसको उन जीवों से इतना निरपेक्ष भी दिखलाया गया है कि उसका जगत में कोई भी मित्र बन्धु ज्ञाति, स्व, अथवा शत्रु नहीं है ।[2] 'पद्मपुराण' में भी ईश्वर की माया से जीव के जगत में भटकते फिरने और उसी की कृपा से मुक्त होने का अनेक प्रसंगों में कथन किया गया है ।[3] 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में माया का महत्त्व वर्णन करते हुए यहाँ तक कहा गया कि मायेश ईश्वर भी उसकी सहायता के अभाव में जगत् का निर्माण नहीं कर सकते हैं । यहाँ संसार की स्त्रियों को प्रकृति (माया) का और पुरुषों को पुरुष (ब्रह्म) का अंश भी माना गया है –

'योषित: प्रकृतेरंशा: पुमांश पुरुषस्य च ।
मायया सृष्टिकाले च तद्विना न भवेद्भव ॥

गणपतिखण्ड ४०।१८

इस प्रकार ईश्वरादि के सम्बन्ध में विभिन्न ग्रन्थों में बड़ा विस्तृत विवेचन किया गया है । उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि गोस्वामी जी अपने सिद्धान्तों के प्रणयन में गीता एवं भागवत से अत्यधिक प्रभावित हैं । यद्यपि उनका विवेचन सर्वथा स्वतंत्र और मौलिक है । इस सम्बन्ध में अध्यात्म रामायण का महत्त्व भी नहीं भुलाया जा सकता है, किन्तु रामायण ग्रंथ होने के कारण यहाँ उसके साथ 'मानस' की तुलना नहीं की जा सकती है । डा० बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार 'तुलसी ने कोई नई बात कहने का दावा नहीं किया और जो कुछ कहा मति-सम्मत ही कहा । उनकी नवीनता — उपयुक्त विषय के संग्रह और अनुपयुक्त विषय के त्याग में थी । उन्होंने जो सिद्धान्त 'रामचरितमानस' द्वारा जनसाधारण के सामने रख दिये उन पर उन्हीं की अमिट छाप पड़ी हुई है । इसलिए यदि हम उन सिद्धान्तों के समूह को तुलसीमत कह दें तो किसी प्रकार का अनौचित्य न होगा ।[5] डा० माता प्रसाद गुप्त उपर्युक्त मत से असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि तुलसी ने जो कुछ 'अध्यात्म-रामायण' के सिद्धान्त रूप से लिया, प्राय: उसी का उन्होंने सर्वत्र विकास किया है ।[6] यह पहले ही कहा जा चुका है कि हम दार्शनिक सिद्धान्तों के विवेचन में तुलसी की दृष्टि सर्वत्र व्यावहारिकता की ओर अधिक रही है क्योंकि उनके माध्यम से राम-भक्ति का सरल और भावात्मक प्रतिपादन ही उनका मुख्य लक्ष्य रहा है । डा० रामदत्तसिंह शर्मा के अनुसार 'तुलसी — के लिए तो दृढ़ता पूर्वक यह कहा जा सकता है कि वे दार्शनिक नहीं थे भक्त थे । अत: उनकी दार्शनिक

---

१ भागवत ६।२।११७ २ भागवत ६।१७।२१ २१
३ पद्म । उत्तर २१४।१०० ४ ब्रह्मवैवर्त । गणपति ४०।१२८ २९
५ डा० बलदेव प्रसाद मिश्र – तुलसीदर्शन – पंचम संस्करण पृष्ठ ३२१
६ डा० माता प्रसाद गुप्त – तुलसीदास – द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ३८२

उक्तियाँ भी भक्ति के रस से सरस बन गई हैं।"[1] प्रो० बारान्निकोव भी यही कहते हैं कि 'तुलसी किसी दार्शनिक तत्त्व के प्रवर्तक या आधार न होकर प्रधानतया भक्त हैं।'[2] डा० शम्भूनाथ सिंह के विचार से मानस का तत्त्व-चिंतन शास्त्रीय ढंग का शुष्क और रसहीन नहीं है। — तुलसी कोरे कवि ही नहीं दार्शनिक भी हैं, किन्तु उन्होंने तत्त्वचिंतन को भी काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है।"[3] डा० मुन्शीराम शर्मा के मत में इस तत्त्व प्रतिपादन के फलस्वरूप मानस में तुलसी के कवि-रूप को कुछ क्षति भी पहुँची है। वे कहते हैं कि 'काव्य-क्षेत्र में गोस्वामी तुलसीदास पुण्य श्लोक राम की जीवन-गाथा को सर्वश्रेष्ठ स्थान देकर आगे बढ़ते हैं। काव्य उनके लिये साधन है, राम-गाथा साध्य। राम-गाथा में भी राम के ईश्वरत्व का प्रतिपादन प्रधान है काव्य सम्बन्धी अन्य बातें गौण। यह तथ्य उनके कवि-रूप को कुछ हीन कर देता है।

(२८) जीव के बन्धन के कारण — ईश्वर जीव आदि के स्वरूप और परस्पर सम्बन्धों के विवेचन के अतिरिक्त गोस्वामी जी ने जीव के बन्धन के कारणों और उसके मोक्ष के उपायों का भी विस्तृत वर्णन किया है। उनके अनुसार संसार के विविध व्यवहारों में ममत्व का अनुभव करना ही जीव के लिए सबसे बड़ा बन्धन है। काल कर्म और स्वभाव के गुणों से घिरा यह माया प्रेरित जीव सदा अशान्त रहता है और उसको माया के परिवार वाले मोह लोभ तृष्णा श्रीमद आदि भी अच्छी तरह झकझोर डालते हैं।[5] माया का यह स्वरूप यद्यपि असत्य है तो भी जीव अज्ञानवश उसको समझ नहीं पाता है।[6] यही तो उसका जीवत्व है। माया के प्रभाव से यह जीव तोता और बानर के समान स्वयंकृत बन्धनों में बंध जाता है।[7] गीता के अनुसार प्रकृतिजन्य सत्त्व रज और तम आदि तीनों गुण जीव के बन्धन के कारण हैं जिनमें से सत्त्व से ज्ञान, रज से कर्म और तम से प्रमाद तथा आलस्य की निष्पत्ति होती है।[8] वस्तुतः जो लोग प्रवृत्ति और निवृत्ति नहीं जानते हैं संसार को असत्य अनीश्वर और कामजन्य मानकर असत्य का दुराग्रह करते हैं और अपने अहं दर्प और बल आदि का प्रदर्शन करते हैं वे अनेक जन्मों तक आसुरी योनियों में उत्पन्न होते हैं और इस प्रकार सांसारिक बन्धनों में चिरकाल तक बंधे रहते हैं।[9]

'भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण अविद्या माया से बंधे हुए जीव को नित्यबद्ध

---

१ डा० सरनामसिंह शर्मा — हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव पृष्ठ १०६

२ तुलसीदास चिन्तन और कला — सं० डा० इन्द्रनाथ मदान पृष्ठ ११०

३ डा० शम्भूनाथ सिंह — हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृष्ठ ११४

४ डा० मुन्शीराम शर्मा — भारतीय साधना और सूर साहित्य पृष्ठ ४१४ ४१५

५ मानस ७।७१ ६ मानस ७।७८

७ मानस ७।११७ ८ गीता १४।५-८

९ गीता १६।७-२०

बतलाते हैं।[1] उनके अनुसार भी देहाधीन शरीर में गुणों के प्रभाव से आचरण करता हुआ जीव स्वयं को कर्त्ता मानने से ही निबद्ध हो जाता है।[2] प्रकृति के सत्त्वादि तीन गुणों से संयुक्त होकर ही अविद्वान् जीव संसार चक्र में फंस जाता है। वह सत्त्व के प्रभाव से ऋषियों तथा देवों, रज के प्रभाव से असुरों तथा मनुष्यों और तम के प्रभाव से भूतों एवं पक्षियों में जन्म लेकर भटकता फिरता है।[3] जब तक जीव काम क्रोधादि से आविष्ट होकर व्यवहार करता है और ईश्वर से अपने को पृथक् मान कर माया के द्वारा किये गये कार्यों में अपने को बस का दर्शन करता है तब तक वह संसार का अतिक्रमण नहीं कर पाता है तथा उसके मिथ्या अनुभूयमान दर्शों से भी सदा संतप्त और संक्षुब्ध रहता है।[4] इसी पार्थक्यज्ञान को जीव के बन्धन का मुख्य कारण मानते हुये भागवत के भगवान् पुनः कहते हैं कि परमात्मा और जीवात्मा के अभेद के विस्मरण से ही जीव संसार चक्र में उलझा जाता है और बारम्बार जन्म तथा मृत्यु को प्राप्त करता रहता है।[5]

(२१) जीव की मुक्ति के उपाय — तुलसी ने माया के द्वारा किए गये अज्ञान को जीव के बन्धन का जहाँ मुख्य कारण स्थिर किया है वहाँ उसकी मुक्ति के लिए भक्ति को सर्वश्रेष्ठ साधन भी बतलाया है। इसी दृष्टिकोण से उन्होंने जहाँ जहाँ माया और जीव के स्वभावों का उल्लेख किया है वहाँ-वहाँ भक्ति के मधुर प्रभाव का भी विस्तार से वर्णन कर दिया है। राम के 'विराट-दर्शन' में जहाँ कौशल्या जीव को नचाने वाली माया को देखती है, वहाँ साथ में ही उसको मुक्त करने वाली भक्ति के भी वे दर्शन करती हैं।[6] माया और भक्ति दोनों को एक ही नारी-वर्ग में समान भाव से परिगणित करके गोस्वामीजी पहले तो यह प्रतिपादित करते हैं कि नारी कभी नारी के रूप पर मोहित नहीं होती है इस लिये भक्ति पर माया का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता है। फिर वे उनका भेद भी स्पष्ट करते हैं कि भक्ति, जहाँ राम की प्रिया है वहाँ माया बेचारी केवल नर्तकी है इसीलिए राम की भक्ति के अनुकूल देख कर माया उससे भयभीत रहती है। इसी के फलस्वरूप वह प्रत्येक भक्त के दर्शनमात्र से लज्जित और संकुचित हो जाती है क्योंकि उसके ऊपर उसका कोई भी वश नहीं चल पाता है।[7] गीता में भी यह प्रतिपादित किया गया है कि जो ईश्वर की शरण में आते हैं वे इस माया को उत्तीर्ण कर लेते हैं।[8] इसके अतिरिक्त वहाँ सात्त्विकी बुद्धि को जीव के बन्धन और मोक्ष के ज्ञान में समर्थ माना गया है।[9] भागवत में कहा गया है कि जीव जब तक ईश्वर के चरणों की शरण में नहीं जाता है तब तक उसको भय शोक स्पृहा पराजय लोभ ममता दुराग्रह आदि से छुटकारा नहीं मिल सकता है।[10] यहीं पर सत्त्वादि गुणों तथा भागवत स्वयं

१ भागवत ११।११।४७ — २ भागवत ११।११।१०
३ भागवत ११।२२।५०-५१ — ४ भागवत ३।२५।१२
५ भागवत ६।१६।५७ — ६ मानस १।२०२
७ मानस ७।११६ — ८ गीता ७।१४
९ गीता १८।३० — १० भागवत ३।९।६

और सुषुप्ति आदि पदार्थों को बौद्धिक वृत्तियाँ बतलाकर आत्मा को उनसे असंबद्ध एवं विलक्षण निरूपित किया गया है और यह माना गया है कि जब वह त्रिगुणात्मक सृष्टि से असिप्त और तुरीय दशा में स्थिति होकर संसार की चिन्ता करना बंद कर देता है तभी वह मुक्त हो जाता है।[1] यहीं पर 'नित्य मुक्त जीव' की स्थितियों का विश्लेषण करते हुए 'विद्या माया का महत्त्व भी प्रतिपादित किया गया है —

'योऽविद्यया युक्त स तु नित्यबद्धो, विद्यामयो य स तु नित्यमुक्त' ॥

११।११।७

डा० सरनामसिंह शर्मा ने नित्य मुक्त और बद्ध के नाम से जीव के तीन भेद माने हैं। उनके अनुसार नित्य जीव वे हैं जो भगवत् पारिषद हैं। मुक्त जीव अनन्त ज्ञान, आनन्द एवं शक्ति से परिपूर्ण होकर भी ईश्वर से भिन्न रहते हैं। बद्ध जीव दो प्रकार के हैं —बुभुक्षु और मुमुक्षु। बुभुक्षु जीव भी दो प्रकार के हैं—अर्थ काम-पर और धर्म पर तथा मुमुक्षु जीव भी दो प्रकार के हैं-कैवल्य पर और भगवत्पर। कैवल्य-पर वे हैं जो माया-बन्धन से छूट जाते हैं और भगवत्पर जनों की भावना सदा नारायण में ही रहती है।[2]

'मानस' में भी हरिभक्त को प्रभावित करने में अविद्या को असमर्थ किन्तु विद्या को समर्थ बतलाया गया है क्योंकि उसके प्रभाव से भक्त की भेद-बुद्धि बढ़ती रहती है और उसका नाश नहीं हो पाता है।[3] 'गीता' में भगवान कृष्ण कहते हैं कि जो मुझे सर्वत्र देखता है तथा मुझमें सब कुछ देखता है उनके लिए न तो नष्ट होता हूं और न वह मेरे लिए नष्ट होता है। जीव के सर्वनाश के लिए विषया सक्ति, काम, क्रोध संमोह स्मृतिनाश और बुद्धिनाश को उत्तरोत्तर उत्तरदायी भी बतलाते हैं।[5] बुद्धि अथवा ज्ञान का इस प्रकार महत्त्व प्रतिपादित करने के पश्चात् वे चारों प्रकार के भक्तों में ज्ञानी को ही सर्वप्रिय बतलाते हैं।[6] तुलसी भी ज्ञानी को प्रभु का विशेष प्रिय कह कर उसके साथ नाम-जप' का महत्त्व भी प्रतिष्ठित कर देते हैं।[7] गीता में भगवान् कृष्ण अनन्य चिंतक (ज्ञानी) भक्त के योगक्षेम वहन के लिए स्वयं उत्तरदायित्व ग्रहण करते हैं और साथ ही सर्वस्व भगवदर्पण करने वाले जीव के भी मोक्ष का विधान बतलाते हैं।[8]

(२२) मुक्ति के साधन—कर्म ज्ञान और भक्ति, ये मुक्ति के तीन साधन माने जाते हैं। डा० मुंशीराम शर्मा कहते हैं कि 'जीव ज्ञान कर्म और भक्ति के सम न्वय द्वारा अपने को अहंता से असंपृक्त तथा चैतन्य से ओतप्रोत कर लेता है, वह

१ भागवत ११।११।१ १८-२६
२ डा० सरनामसिंह शर्मा—भक्ति दर्शन-पृष्ठ १२६-१३३
३ मानस ७।७९
४ गीता ६।३०
५ गीता २।६२-६३
६ गीता ७।१७
७ मानस १।२२
८ गीता ९।२७ २८

उस परम ज्योति के दर्शन करता है और जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।[1] डा० राधाकृष्णन के अनुसार "मुक्ति की उच्चतम स्थिति के सम्बन्ध में चाहे कितना मतभेद क्यों न हो किन्तु इतना निर्विवाद है कि वह जीव की सक्रिय स्वतन्त्र, और पूर्णावस्था है। वास्तव में इसका वर्णन भी नहीं किया जा सकता। यदि इसका वर्णन अपेक्षित है तो इसे दिव्य जीवन की स्थिति कह सकते हैं। आत्मा का ब्रह्म से उसी प्रकार तादात्म्य समझना चाहिए जैसे सूर्य की किरणों का सूर्य से 'व्यष्टि-संगीत' का विश्व-संगीत से होता है। यही तादात्म्य ही मुक्ति है।"[2] गोस्वामी जी ने उपर्युक्त तीनों साधनों को उचित विस्तार देते हुये भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ ठहराया है। डा० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार— 'हमारे जीवन की पूर्णता कर्म (धर्म) ज्ञान और भक्ति—तीनों के समन्वय में है। साधना किसी प्रकार की भी हो साधक की पूरी सत्ता के साथ होनी चाहिए—उसके किसी अंश का सर्वथा छोड़ कर नहीं।'[3]

भक्ति की विशेषता बतलाते हुए गोस्वामी जी कहते हैं कि जो 'परम-सयाने' हैं वे संसार को दुःखरूप मानकर भगवान् का भजन करते हैं और शुभाशुभ सभी प्रकार के कर्मों का परित्याग कर देते हैं। गीता में भी ऐसे ही 'शुभाशुभ परित्यागी' भक्त को भगवान् का प्रिय कहा गया है।[5] वहाँ तो उन कर्मों को बन्धन-स्वरूप बतलाकर उनके त्याग करने वाले जीव को स्थितप्रज्ञ भी माना गया है।[6] 'मानस' के अनुसार भी उन कर्मों को आत्मिक शुद्धि में [illegible] कहा गया है तथा उनके साध्य रूप में केवल भक्ति को ही निश्चय किया गया है। इस प्रकार गोस्वामीजी मोक्ष-लाभ के लिये जहाँ कर्मों की निस्सारता स्थापित करते हैं वहाँ सांसारिक प्रपंचों को उन कर्मों का परिणाम मानते हैं।[8] उनके मत में ये प्रपंच स्वयं स्वप्नवत् निस्सार हैं और उनका त्याग करने वाले परमार्थी जीव ही इस 'संसार-निशा' में सदैव जागरूक रहते हैं।[9] 'गीता' में भी इस भाव की पुष्टि दृष्टिगोचर होती है।[10] 'भागवत्' के अनुसार भी जीव की सुख दुःख जीवन मरण आदि समस्त गतियों के लिए ये कर्म ही उत्तरदायी हैं।[11] वहाँ पर कर्म ज्ञान और भक्ति तीनों योगों पर बड़े विस्तार से विवेचन करते हुए इनको उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण भी बतलाया गया है। कर्मों में अनासक्त के लिए ज्ञान आसक्त के लिए कर्म और सर्वसाधारण के लिए यहाँ भक्तियोग की प्रतिष्ठा भी की गई है। वहाँ कर्म की व्यवस्था वहीं तक मानी गई है जहाँ तक उनसे निर्वेद अथवा श्रद्धा का आविर्भाव होता है। इस प्रकार यहाँ

---

१ डा० मुन्शीराम शर्मा—प्रपन्नता—पृष्ठ ७१
२ डा० राधाकृष्णन—भारतीय दर्शन प्रथम भाग—पृष्ठ ३४१
३ डा० रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास—पृष्ठ १०८—१०९
४ मानस ७।४१ ५ गीता १२।१७
६ गीता २।५७।५८ ७ मानस ७।४२
८ मानस ५।९२ ९ मानस २।९३
१० गीता २।६९ ११ भागवत ११।१।६५

र्म को ज्ञान और भक्ति का साधन-मात्र कहा गया है।[1] इसके साथ ही वहाँ यह
ी स्पष्ट बतलाया गया है कि कर्म ज्ञान, तप ज्ञान, योग और वैराग्य आदि से
ी अप्राप्य पदार्थ भक्ति-योग' से सरलता से प्राप्त किए जा सकते हैं। भक्तों के
लिए तो स्वर्ग मोक्ष ईश्वरीय धाम आदि सभी कुछ सुलभ हैं, किन्तु वे भगवान्
के देने पर भी उनकी ओर आकृष्ट नहीं होते हैं।[2] भक्तियोग के भी सात्विक,
राजस और तामस आदि भेदों के लक्षणों का सविस्तार वर्णन करके वहाँ सात्विक
भाव की प्रशंसा की गई है और चतुर्विध मोक्षों को भी उसके सामने हीन बतलाया
गया है।[3]

जहाँ तक ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग का सम्बन्ध है तुलसी ने उनका विस्तार
से विवेचन किया है किन्तु वहाँ भी उनका आग्रह भक्ति की सर्वश्रेष्ठता की सिद्धि
के लिए ही है। उनके अनुसार ज्ञान और भक्ति में सांसारिक खेद के हरण में
समान सामर्थ्य होने पर भी एक मौलिक भेद है कि ज्ञान पुल्लिंग है और भक्ति
स्त्रीलिंग। अत ज्ञान पर माया का जो स्वाभाविक प्रभाव पड़ सकता है और
रहता है वह भक्ति पर नहीं पड़ता है क्योंकि वे दोनों तो एक ही (नारी) वर्ग की
हैं। वे कहते हैं कि ज्ञान का मार्ग वस्तुतः कृपाण की धार के समान तीक्ष्ण है वहाँ
चूकते ही सर्वनाश है और यदि वह निर्विघ्न सिद्ध भी हो जाय तो उसका बड़े से
बड़ा प्राप्य मोक्ष है जो भक्त को अनचाहे और बलपूर्वक यों ही सुलभ हो जाता
है, किन्तु वह उसकी दृढ़ उपेक्षा करके अपनी भक्ति में ही पूर्ण निमग्न रहता
है।[4] इसके अतिरिक्त गोस्वामीजी यह स्पष्ट करते हैं कि भक्ति तो स्वतन्त्र और
निरवलम्ब है और ज्ञान, विज्ञान आदि सब उसके (भक्ति के) आधीन हैं।[5] इसके
साथ ही वह ज्ञान अगम सविघ्न, दुःसाध्य निराधार, कष्टप्रद और दुर्लभ होने पर
भी भक्ति के अभाव में भगवान् को प्रिय नहीं है क्योंकि भक्ति के बिना ज्ञान,
कर्णधार के बिना जलयान के समान है। इतना ही नहीं भक्ति के अभाव में वह
ज्ञान अज्ञान ही है —

सोह न राम प्रेम बिन ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू॥ २।२७७
जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू॥ २।२९१

गोस्वामीजी ज्ञानी को प्रौढ़ पुत्र और भक्त को शिशु पुत्र की सरस उपमा
देकर कहते हैं कि शिशु के प्रति माता का स्वभावत अधिक प्रेम होता है क्योंकि
वह माता पर पूर्णतया आश्रित रहता है जब कि प्रौढ़ पुत्र स्वयं इतना समर्थ होता
है कि उसे माता की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसी प्रकार ज्ञानी

---

१ भागवत ११।२०।६-११
२ भागवत ११।२०।३२-३४
३ भागवत ३।२९।१२-१४
४ मानस ७।११५-११६
५ मानस ७।११६
६ मानस ३।१६
७ मानस ७।४५

की अपेक्षा भक्त के प्रति भगवान् का स्वाभाविक अधिक आकर्षण समझना चाहिए।[1]

(२३) भक्ति का स्वरूप—भक्ति की इस प्रकार सर्वोपरि प्रतिष्ठा करने के उपरान्त गोस्वामीजी उसके स्वरूप, साधन और अन्य विशेषताओं का भी महत्त्वपूर्ण निरूपण करते हैं। उनके मत से भक्ति वह साधन है जिससे भगवान् शीघ्र ही द्रवित हो जाते हैं। 'मानस' के राम स्वयं कहते हैं—

जाते बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥ ३।१६

वह भक्ति अत्यन्त दुर्लभ भी है, क्योंकि वह विरले साधक को ही प्राप्त होती है।[2] 'गीता' में भी इसी का समर्थन किया गया है।[3]

(२४) भक्ति के साधन—लक्ष्मण को भक्तियोग का उपदेश देते हुए 'मानस' के राम भक्ति के साधनों में ब्राह्मण-सेवा, वेदोक्त धर्मपालन, विषयवैराग्य आदि पर विशेष बल देते हैं।[4] अवधवासियों को समझाते हुए वे इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम 'नरदेह' का उल्लेख करते हैं। फिर उसके साथ हरिकृपा, गुरुकृपा, और सत्संगति का भी महत्त्वपूर्ण सहयोग बतलाते हैं। अन्त में अपने 'गुप्त मत' में वे 'शिव-कृपा' की अनिवार्यता का भी संकेत करते हैं—

'औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥ ७।४५

काकभुशुण्डि को अपना सिद्धान्त बतलाते हुए राम, भक्त की ही सर्वप्रियता का प्रतिपादन करते हैं। वे तो समस्त सृष्टि की तुलना में 'भक्तनीच' तक को अपना प्राणप्रिय बतलाते हैं।[5] 'भागवत' में भी जीवों की उत्तरोत्तर श्रेष्ठता का एक क्रम बतलाते हुए भक्त को ही सर्वश्रेष्ठ ठहराया गया है।[6]

'मानस' में प्रतिपादित अपने भक्ति-सिद्धान्त को गोस्वामी जी श्रुति-सिद्धान्त से समर्थित बतलाते हैं।[7] वे 'हरिभक्ति' को ही समस्त वैदिक साधनों का एक मात्र फल भी मानते हैं।[8] 'भागवत' में भी भक्ति की विशिष्टता का ऐसा ही उल्लेख प्राप्त होता है।[9]

भक्ति की इन विशेषताओं के अतिरिक्त गोस्वामी जी ने भक्ति के प्रकारों का भी मौलिक निरूपण किया है। 'मानस' के राम 'शबरी' से जिस 'नवधाभक्ति' का कथन करते हैं वह पूर्व प्रसिद्ध प्रकारों से सर्वथा विशिष्ट है। तुलसी की समन्वयात्मक प्रतिभा ने उसमें अन्य तत्त्वों का भी निपुणता से समावेश कर दिया है—

---

१ मानस—३।४३ २ मानस ७।५४

३ मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥ ७।३

४ मानस ३।१६ ५ मानस ७।८६

६ भागवत ३।२९।२८-३३ ७ मानस ७।१२२

८ मानस ७।१२६ ९ भागवत १०।१४।२४

'नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं । सावधान सुनु धरु मन माहीं ॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥
गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।
चौथि भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान ॥ ३।३५
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा । निरत निरंतर सज्जन धरमा ॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा । मोतें संत अधिक करि लेखा ॥
आठवँ जथालाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ॥
नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ॥
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे ।

भागवत में 'नवधाभक्ति' का वर्णन इस प्रकार है —

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ ७।५।२३

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' का वर्णन इससे कुछ भिन्न है:—

स्मरणं कीर्तनं नामगुणयो श्रवणं जप ।
तच्चपादद्वयध्यानं तत्पादसेवाभिवन्दनम् ॥
समर्पणं चात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम् ब्रह्म । ५।१५-१६

'पद्मपुराण' के परिगणन में कुछ और नवीनता है —

पुष्पर्शनोर्ध्वपुण्ड्रादि तच्चिन्हैरंकनं शुभम् ।
तद्गुरोर्मन्त्रपठनमर्चनं विधिना हरेः ॥
स्मरणं कीर्तनं विष्णोः सेवाच परमात्मनः ॥
प्रणामस्तस्य पुरतस्तद्भक्तानां च पूजनम् ॥
प्रपाप्ततीर्थसेवा च भक्तिर्नवविधा स्मृता ॥ पद्म । उत्तर । २२१
१३१-१३४

'नवधा भक्तियों' के इस तुलनात्मक निरूपण से यह कहना संभवतः अप्रासंगिक नहीं होगा कि 'मानस' की प्रथम सात भक्तियाँ 'अध्यात्म रामायण' से अवश्य प्रभावित हैं[1] किन्तु उसकी अष्टम और नवम् भक्ति का विस्तार सर्वथा मौलिक है। पुराणों के वर्णनों में जहाँ मूर्ति पूजा से सम्बद्ध साम्प्रदायिकता पर बल दिया गया है वहाँ गोस्वामी जी सर्वत्र सामाजिकता व्यावहारिकता तथा उपयोगिता को ही विशेष महत्व देते हैं। इसके अतिरिक्त उनकी नवधा भक्ति के ये सभी भेद स्वतन्त्र निरपेक्ष और समान समर्थ हैं तभी तो उनमें से किसी एक को भी वे भगवत्प्राप्ति के लिए सक्षम बतलाते हैं जबकि भागवतादि के वर्णनों में एक क्रमापेक्षा तथा अन्योन्याश्रय स्पष्ट है। नवधा भक्ति के अतिरिक्त 'मानस' में वाल्मीकि के द्वारा राम को

१ अध्यात्म रामायण । अरण्य ।१०।२२-२७

बतलाये गये १४ निकेतों में 'चतुर्दशधाभक्ति' के भी दर्शन हो जाते हैं। वस्तुतः यहाँ भक्तों के विभिन्न स्थान १४ प्रकार से निरूपित किए गए हैं जिन पर गीता का यथेष्ट प्रभाव है।[2] इस सन्दर्भ में 'अध्यात्म रामायण' का विस्मरण नहीं किया जा सकता है।[3]

भक्ति में आत्मसमर्पण निवेदन का जहाँ तक सम्बन्ध है वहाँ दास्य, सख्य और आत्म निवेदन सभी उल्लेख किया जा चुका है इनमें आत्म-निवेदन का सम्बन्ध माधुर्य-भाव से है क्योंकि उसी में सर्वात्मना समर्पण के दर्शन किए जा सकते हैं। इन भावों के अतिरिक्त वात्सल्य भाव की भी अपनी विशेषता है। मानस के दशरथ कौशल्या और जनक वात्सल्य भाव से सीता माधुर्य भाव से सुग्रीव और विभीषण सख्य भाव से तथा भरत लक्ष्मण और हनुमान् आदि दास्य-भाव से ही राम की उपासना करते हैं। तुलसी इन सब में दास्य भाव को ही महत्वपूर्ण बतला कर उसे प्राथमिकता देते हैं —

'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।।'७।११९

(२५) मुक्ति के प्रकार—इस प्रसंग में मुक्ति के प्रकारों का निरूपण भी अपेक्षणीय है। पुराणों में सालोक्य सारूप्य सामीप्य और सायुज्य आदि मुक्ति के चार प्रकार माने गए हैं। गोस्वामीजी ने मानस में जटायु के हरिरूप-धारण और हरिधाम गमन में सारूप्य एवं सालोक्य[4] रामेश्वर स्थापना के अवसर पर सायुज्य[5] तथा अवधपुरी प्रशंसा के प्रसंग में समीप्य[6] मुक्ति का संकेत कर दिया है। भागवत में सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य और सारूप्य के नाम से चतुर्धा मुक्तियों का वर्णन मिलता है।[7] ब्रह्मवैवर्तपुराण में इनके अतिरिक्त 'साम्य' और 'लीनता' दो अन्य भेद भी माने गये हैं।[8] गोस्वामीजी मुक्तियों की इस गणना के फेर में न पड़ कर सगुणोपासक भक्तों की महत्ता एवं विशिष्टता का ही संकेत करते हैं क्योंकि उनके अनुसार वे सबसे बड़ी मुक्ति का भी निरादर कर देते हैं।[9] पुराणों में भी भक्तों के द्वारा मुक्ति की अवहेलना करने का वर्णन प्राप्त होता है। वहीं ब्रह्मवैवर्तपुराण में मुक्ति के स्वरूप तथा भक्ति से उसकी हीनता के कारण का भी उल्लेख किया गया है कि मुक्ति का अर्थ है सिद्धि, अमरता और जरामृत्युहीनता आदि की उपलब्धि किन्तु ऐसी मुक्ति प्रभु-सेवा हीन होने के कारण भक्ति के समक्ष अति निकृष्ट है।[10]

(२६) निष्कर्ष—इन दार्शनिक सिद्धान्तों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राम के ईश्वरत्व और उनके प्रति दास्यभक्ति की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन ही गोस्वामीजी का मुख्य लक्ष्य है। इसके लिए वे अध्यात्मरामायण गीता भागवत तथा

---

१ मानस २।१२८-१३१
२ गीता १२।१३-२०
३ अध्यात्मरामायण। अयोध्या ।६।५४-६१
४ मानस ३।३२
५ मानस ६।३
६ मानस ७।४
७ भागवत ३।२९।१३
८ ब्रह्मवैवर्त। ब्रह्म ।६।१७
९ मानस ७।११९
१० ब्रह्मवैवर्त। प्रकृति ।३६।७३-७८

अन्य पुराणों से अनुकूल तत्वों का स्वीकरण करके, उनको अपनी विशिष्ट मौलिक प्रतिभा से एक सरल, सरस, सुबोध, नवीन व्यावहारिक और सर्वलोकोपयोगी रूप देकर प्रतिष्ठित करते हैं। इसी को 'तुलसी मत'[1] कह कर डा० बलदेव प्रसाद मिश्र उसकी महत्ता के तीन कारण बतलाते हैं—'एक उसमें बुद्धिवाद और हृदयवाद का सुन्दर सामंजस्य है, दूसरे वह सनातन हिन्दू धर्म का विशुद्धरूप है और तीसरे वह मानव धर्म है।'[1] डा० मनोरम मिश्र के अनुसार भी हम यह कह सकते हैं कि तुलसी के दार्शनिक विचार न साम्प्रदायिक हैं और न संकीर्ण। वे व्यापक और उदार हैं। जो बातें अनेक सम्प्रदायों में सभी को मान्य हैं तुलसी ने उन्हीं को ग्रहण किया है।'[2]

सच बात तो यही है कि गोस्वामीजी के ये सिद्धान्त कहीं भी गूढ़ अथवा उलझे हुए नहीं हैं उनमें एक तारतम्य एवं कार्यकारण-सम्बन्ध के सर्वत्र सुस्पष्ट दर्शन होते हैं जिससे कोई सामान्य व्यक्ति भी लाभान्वित होकर दास्यभाव से राम भक्ति की ओर अतिशीघ्र उन्मुख हो जाता है। मेरे विचार से 'मानस' की लोकप्रियता का यही सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण है।

(२७) धर्मशास्त्र सिद्धान्त—जीव और जगत् के आध्यात्मिक सम्बन्धों के विवेचन के अतिरिक्त गोस्वामीजी ने उनके सामाजिक सम्बन्धों का भी प्रशस्त वर्णन किया है। समाज में कुछ धर्म ऐसे होते हैं जिनका मानव-मात्र से सम्बन्ध वाञ्छनीय माना जाता है। 'मानवता' के नाम से हमारे नेत्रों के सामने मानव की सर्वोच्च उपलब्धियों का एक चित्र अंकित हो जाता है। वस्तुतः 'मानवता' मानव की पूर्णता और उसका स्वभाव मात्र ही है। इसीलिये सर्वोत्तम मानव को देवता मान लेने की परिपाटी प्रतिपादित की गई है। ईश्वर के विभिन्न मानवीय अवतारों में इसी दृष्टिकोण से मानवता की अद्वितीय प्रतिष्ठा दृष्टिगोचर होती है। वे इसीलिये आदर्श तथा अनुकरणीय माने जाते हैं।

प्राचीन कवियों और मुनियों ने चातुर्वर्ण्य के आधार पर समाज का वर्गीकरण करते हुए व्यक्ति के विभिन्न धर्मों का विशिष्ट निरूपण किया था। इसके अतिरिक्त 'आश्रम चतुष्ट' की दृष्टि से भी उन्होंने विभिन्न आश्रमों में मानव के आचार-व्यवहार के कुछ मानदण्ड स्थिर किए थे। वर्णाश्रम-धर्म के अतिरिक्त व्यक्ति के अनेक पद-धर्म भी होते हैं—पितृ-धर्म मातृ धर्म भ्रातृ-धर्म, पुत्र-धर्म, भगिनी धर्म और मित्र-धर्म आदि। मानस के पात्रों के चरित्र-चित्रण के साथ-साथ इन धर्मों का वर्णन किया जा चुका है अतः यहाँ पर मानवधर्म एवं वर्णाश्रम-धर्म का विवेचन अपेक्षित है। संस्कृत-साहित्य, विशेषकर पुराणों में इस सम्बन्ध में विस्तृत प्रतिपादन होने पर भी एक रूढ़िवाद के दर्शन होते हैं जबकि गोस्वामी जी ने इस दिशा में उपयुक्तता एवं उपयोगिता का ही विशेष ध्यान रखा है।

---

१ डा० बलदेव प्रसाद मिश्र-तुलसीदर्शन-पंचम संस्करण, पृष्ठ १२७ १२८ ११६,
२ डा० मनोरम मिश्र-तुलसीरसायन—पृष्ठ १२१ १४०

(२८) मानव धर्म—'मानसकार' ने संतों तथा भक्तों के लक्षणों के माध्यम से आदर्श मानव-धर्म का बड़े विस्तार से निरूपण किया है। उन्होंने इसमें मानव के अभ्युदय एवं निःश्रेयस से सम्बन्धित समस्त आवश्यक तत्त्वों का अद्वितीय दशा के साथ सामञ्जस्य प्रस्तुत कर दिया है। नारद के प्रश्न पर स्वयं राम संतों के लक्षण इस प्रकार बतलाते हैं—

'सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह के बस रहऊँ॥
षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुख धामा॥
अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मानद मदहीना। धीर धर्मगति परम प्रबीना॥
गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥
मुनि सुनु साधुन के गुन जेते। कहि न सकहि सारद श्रुति तेते॥ ३।४५-४६

इन लक्षणों में ईश्वराराधना के साथ-साथ लोक साधना के पोषक तत्त्वों का प्रचुरता से समन्वय दृष्टिगोचर होता है। 'धर्मरथ' के रूपक में भी तुलसी ने मानव के सर्वोच्च धर्मों का बड़ा सरस और आलंकारिक वर्णन प्रस्तुत किया है।[1] राम भक्त को ही सर्वत्र गुणों तथा धर्मपरायण आदि मान करके गोस्वामीजी भक्त के लक्षणों में भी मानवधर्म पर ही अधिक बल देते हैं। वाल्मीकि के द्वारा राम को बताए गए भक्तों के १४ निकेतों में भजन ध्यान गुणकथन, प्रसाद-ग्रहण तीर्थाटन जप होम विप्रसेवा आदि के अतिरिक्त वे पुण्योदय, कामादि-त्याग विश्व प्रेम परोपकार समस्त सत्यवादन परस्त्री में मातृ बोध परधन में विषबोध सहानुभूति, शीतिनपुण सज्जन-सेवा वैराग्य संतोष और निःस्वार्थ स्नेह आदि का विशिष्ट वर्णन करते हैं।[2] शबरी के प्रति निरूपित नवधाभक्ति के लक्षणों में भी वे इन्हीं धर्मों का विस्तार से वर्णन करते हैं। इस दिशा में वे 'गीता' से बहुत प्रभावित जान पड़ते हैं। वहां भक्तों के इन लक्षणों को 'धर्म्यामृत' के रूप में माना गया है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःख सुखः क्षमी॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥ १२।१३-१४
१८-२०

१ मानस ६।८०

२ मानस ३।१२८-१३१

'भागवत पुराण' के अन्तर्गत 'सार्ववर्णिक' और 'सर्वाश्रम प्रयुक्त' धर्मों के समन्वय में इसी 'मानव-धर्म' का एक सार्वदेशिक और सार्वकालिक रूप दृष्टिगोचर होता है —

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिक ॥
शौचमाचमनं स्नानं सन्ध्योपासनमार्जवम् ।
तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याभक्ष्यासंभाष्य वर्जनम् ॥
सर्वाश्रमप्रयुक्तोऽयं नियमः कुलनन्दन ॥ भागवत ।११।१७।२१,
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्काय संयमः ॥ १४—३१

वहीं पर ३० लक्षणों का एक अन्य विस्तृत 'मानवधर्म' बतलाया गया है[1] जिसमें भी भागवतकार सर्वभूतेषु मद्भावः पर विशेष बल देते हैं और उसके अनुयायी व्यक्ति के लिए वे बुधभक्त ज्ञान विज्ञान-सम्पन्न तथा भागवतोत्तम आदि विशेषणों का प्रयोग करते हैं। वस्तुतः विश्व के समस्त प्राणियों में सम-बुद्धि रखना महामानव, का सर्वप्रथम लक्षण है। समस्त संसार को सियाराम मय[2] जान कर प्रणाम करने वाले हमारे गोस्वामीजी स्वयं तो महामानव हैं ही, साथ में मानस' के सभी अध्येताओं के समक्ष वे सर्वोच्च मानवधर्म का एक अनुकरणीय आदर्श भी इसी प्रकार प्रस्तुत करते हैं।

(२९) वर्णाश्रमधर्म— मानव-धर्म के विवेचन के साथ ही तुलसी ने वर्णाश्रम' धर्म का भी सविस्तार वर्णन किया है। उन्होंने 'मानस' में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र आदि सभी वर्णों के विभिन्न कर्मों के विविध धर्मों का सरस उद्घाटन प्रस्तुत किया है। इसमें वे संस्कृत-साहित्य से भी बहुत प्रभावित जान पड़ते हैं।

(३०) ब्राह्मण धर्म—'मानस' में ब्राह्मणों के महत्त्व का अत्यधिक प्रतिपादन किया गया है। उसमें आरम्भ में ही नहीं अपितु अनेक प्रसंगों में भी ब्राह्मणों की पद-वन्दना की गई है।[3] उनको महान् तपस्वी मायाविध्वंसी सर्वथा पूज्य सर्वसमर्थ मंगलमूल और क्रुद्ध होने पर कोटिकुल-नाशक भी कहा गया है। उनका दर्शन शुभ शकुन है उनकी पूजा अतिशेय पुण्य है और उनकी सेवा 'हरितोषण व्रत' है[4]। ब्राह्मणों को यह महत्त्व उनके धर्माचरण की दृढ़ता के कारण ही प्राप्त होता है। इसी दृष्टिकोण से वेद विहीन धर्मत्यागी और विषयी ब्राह्मण को वहाँ शोचनीय भी माना गया है।[5] गीता में ब्राह्मण-धर्म का निरूपण इस प्रकार है —

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम ॥ १८।४२

---

१ भागवत ७।११।८–१२ २ मानस १।७—८
३ मानस १।२ १४, २।१ १०८ १२२, ३।१ ११०, ११९ ७।१२
४ मानस १।११६, २८३, २५४ ३।१२१ ५ मानस १।१०१ ७।४५,१०९
६ मानस ७।१२७, २।१७२

'भागवत' में भी इन्हीं धर्मों को ब्राह्मणोचित बतलाया गया है।[1] 'पद्म पुराण' में अतिथिपूजा, गुरुभक्ति, पितृश्राद्धादि कर्म और ईश्वरपूजा आदि का भी उल्लेख मिलता है।[2] 'अग्निपुराण' के अनुसार केवल यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह, अध्ययन और वेदाध्यापन आदि ही ब्राह्मणों के कर्म हैं।[3] सभी पुराणों में लगभग इन्हीं धर्मों को ब्राह्मण से सम्बद्ध निरूपित किया गया है। जहाँ तक ब्राह्मणों के महत्व का सम्बन्ध है, उसका भी वहाँ विस्तार से प्रतिपादन प्राप्त होता है। 'भागवत' में ब्राह्मण को सबसे श्रेष्ठ, सर्व-वेद-मय, ईश्वरांश, आदि गुरु, विशेष पूजित और दर्शन-मात्र से मुक्तिप्रद बतलाया गया है।[4] 'पद्मपुराण' में ब्राह्मण को जगत्पूज्य, जगद्गुरु, धर्ममूल, समस्त-संपत्ति-प्राप्ति-हेतु, समस्त-आपत्ति-धूमकेतु, और संसार-सागर-सेतु माना गया है। गोस्वामीजी भी ब्राह्मणों को जाति से ही पूज्य मानकर भागवत के अनुकरण पर[5] उनके शाप, ताडन और परुषवचन के प्रति भी सद्भाव रखने का परामर्श देते हैं।[6] इसके अतिरिक्त 'ब्राह्मणत्व' के निरूपण में वे केवल सिद्धान्त-कथन तक ही अपने को सीमित नहीं रखते हैं प्रत्युत उसके व्यावहारिक प्रतिपादन के महत्व की भी प्रतिष्ठा करते हैं।

(११) क्षत्रिय धर्म —गोस्वामीजी 'मानस' के खरदूषण प्रसंग में राम के मुख से क्षत्रिय-धर्म की प्रस्तावना इस प्रकार करते हैं —

हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतउँ न काहू॥ ३।१९

यहीं पर 'राम-परशुराम-सम्वाद' में कहा गया है कि क्षत्रिय होकर जो युद्ध से शंकित हो जाये वह कायर और कुलकलंक है। क्षत्रिय को तो सम्मुख अथवा अतिथि देव अथवा दनुज की भी कोई चिन्ता नहीं होती है वरन् वह तो मात्र मान पाकर काल से भी युद्ध करने के लिए सदा प्रस्तुत रहता है।[7] शरीर में शक्ति रहते हुए कोई भी क्षत्रिय कभी भी अप्रिय बात को सहन नहीं कर सकता है क्योंकि उसका 'रोष' बड़ा कठिन होता है।[8] इसके अतिरिक्त क्षत्रिय और राजा का अमर नाम कर प्रजा का पालन न करने वाले को बड़ा शोचनीय भी बतलाया गया है।[9]

'भागवत' के अनुसार तेज बल धृति शौर्य तितिक्षा औदार्य उद्यम स्थैर्य

---

१ भागवत ११।१७।१६
२ पद्म। क्रियायोगसार। १७।३६-४०
३ अग्नि।१५१।१-७
४ भागवत १०।८६।५३-५४, १२।१०।३०-३५
५ भागवत १०।६४।४१
६ मानस ३।३४
७ मानस १।२८४
८ मानस २।२२९,६।२१
९ मानस २।१७२
१० भागवत ११।१७।१७
११ गीता १८।४३

ब्रह्मण्यता और ऐश्वर्य आदि क्षत्रिय के स्वाभाविक धर्म बतलाए गए हैं।[1] 'गीता' में भी इसी मत की प्रतिष्ठा है।[2] 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में क्षत्रियों के लिए विप्रपूजा, ईश्वर पूजा, राज्यपालन, रण में निर्भयता, शरणागत-रक्षा शस्त्रास्त्र-निपुणता अंगचतुष्ट् पालन, दान तप आदि आवश्यक धर्म माने गए हैं।[3] 'अग्निपुराण' में उनके लिए ब्राह्मणधर्म के अतिरिक्त प्रजापालन और दुष्ट-निग्रह का विशेष विधान है।[4] 'रघुवंश' के मत में 'क्षत' से त्राण करना ही 'क्षत्रिय' शब्द का मुख्य अर्थ है।[5] संस्कृत के ग्रन्थों में रघुवंशियों के जो धर्म मिलते हैं उनमें उनके क्षत्रियत्व की ही प्रधानता है। 'महानाटक' के अनुसार रघुवंशी भिक्षा नहीं मांगते और शरणागत शत्रु की भी रक्षा करते हैं।[6] तुलसी ने 'मानस' में रघुवंशियों के अनेक धर्मों का भी विस्तृत वर्णन किया है।[7] ब्राह्मणों के प्रति क्षत्रियों के श्रद्धापूर्ण आचरण का उल्लेख भी अनेक ग्रन्थों में मिलता है। 'रघुवंश'[8] 'रामायणमंजरी'[9] आदि के राम परशुराम के प्रति इसीलिए अन्त तक नतमस्तक रहते हैं। 'मानस' में भी उनकी इस श्रद्धा का अनेक प्रसंगों में वर्णन मिलता है। 'कुन्दमाला' के राम कुलपति को ब्राह्मण जानकर उनके प्रणाम करने पर मर्यादालंघन से दुःखी होते हैं।[10] 'मानस' में रावण के उत्तम कुल[11] का संकेत तो मिलता है, किन्तु उसके ब्राह्मणत्व का उल्लेख कहीं भी नहीं है, क्योंकि 'पद्मपुराण' के राम रावणवध से प्राप्त 'ब्रह्महत्या' के पाप का प्रायश्चित भी करना चाहते हैं। वहां अगस्त्य उनको ईश्वरत्व के नाते पापपुण्य से परे बतलाते हैं किन्तु उनके अत्यधिक आग्रह पर अन्त में वे अश्वमेध यज्ञ की व्यवस्था भी दे देते हैं।[12]

'मानस' में न तो यह अतिचार है और न अनेक नाटकों के समान धर्म का ऐसा अतिक्रमण ही है कि राम अपने क्षत्रियत्व को तिलांजलि देकर परशुराम से युद्ध के लिए कटिबद्ध भी हो जायें। वहाँ तो क्षत्रियत्व के वास्तविक धर्म-सौन्दर्य का ही शुद्ध चित्रण है, जिसमें आदि से अन्त तक निष्ठा दृढ़ता और तत्परता की ही प्रधानता है।

(३२) वैश्यधर्म—'मानस' में वैश्यधर्म के वर्णन में उसी वैश्य को शोचनीय माना गया है जो धनवान होने पर भी कृपण हो और अतिथि-पूजा एवं शिवपूजा में तत्पर न हो।[13] 'गीता' में भी 'कृषि-गोरक्ष्य-वाणिज्य' को वैश्य के लिए स्वाभाविक कर्म कहा गया है।[14] अग्निपुराण में वैश्य के लिए ब्राह्मणधर्म के साथ-साथ उपयुक्त

---

१ भागवत ११।१७।१७
२ गीता १८।४३
३ ब्रह्मवैवर्त । श्री कृष्णजन्म ।८३।
४ अग्नि ।१६१।८
५ रघुवंश २।५३ ६।८।७३
६ महानाटक ६।२४, ७५
७ मानस २।२०४, ३।४३
८ रघुवंश ११।८४
९ रा० मंजरी । बाल ६१४
१० कुन्दमाला ३।११
११ मानस ६।२०
१२ पद्म । पाताल ।८।१०–१६,३१
१३ मानस ७।[illegible]
१४ गीता [illegible]

कृषि आदि की व्यवस्था है ।[1] 'भागवत' में वैश्य को 'वार्तावृत्ति ब्रह्मकुलानुग देवभक्त, गुरुभक्त, आस्तिक उद्यमशील नियमपोषक आदि कहा गया है ।[2] 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में वैश्यों के लिए वाणिज्य, कृषिपालन, विप्रदेवार्चन, दान तपस्या और गुरु-सेवन आदि अनिवार्य धर्म बतलाये गये हैं ।[3]

(३३) शूद्र धर्म—'मानस' में विप्र-अवमानी मुखर मानप्रिय और ज्ञानगर्वित शूद्र को शोचनीय माना गया है । 'गीता' के अनुसार शूद्र का स्वाभाविक कर्म परिचर्यात्मक है ।[5] 'अग्निपुराण' में उसके अतिरिक्त 'सर्वशिल्पाम्याप्त' का भी संकेत है ।[6] ब्रह्मवैवर्तपुराण' में केवल 'विप्रपूजा' को ही शूद्र का धर्म माना गया है । 'भागवत' में नमति, शौच, निश्छल सेवा अमन्त्रयज्ञ अस्तेय सत्य, गोविप्ररक्षा आदि की व्यवस्था भी दृष्टिगोचर होती है ।[8]

'मानस' में गुह आदि के आचरणों के वर्णन में शूद्र के धर्म के मधुर व्यावहारिक वर्णन हो जाते हैं । इसके अतिरिक्त वहाँ गुह के साथ राम भरत और वसिष्ठ आदि के प्रेमालिंगन का वर्णन करके गोस्वामीजी जाति-पाँति की कट्टरता ऊँच नीच और छुआ छूत आदि भावों की निस्सारता तो प्रतिपादित करते ही हैं साथ ही शूद्रों के प्रति भी अन्य वर्णों की कोमल व्यवहारपद्धति का निर्देश करके वे उस आदर्श मानव-धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं, जिसके फलस्वरूप ही सारे संसार को 'सिया राममय' जानकर 'विश्वप्रेम' की उदात्त भावना जागृत हो सकती है ।

(३४) आश्रम धर्म—प्राचीन आचार्यों ने मनुष्य की १०० वर्ष की आयु मानकर उसका समान चार भागों में विभाजन करते हुए ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास आदि चार आश्रमों की व्यवस्था निर्धारित की थी । उसका दृढ़तापूर्वक निर्वाह करने में ही जीवन का गौरव समझा जाता था । 'मानस' के सभी पात्र इस दिशा में आदर्श हैं ।

(३५) ब्रह्मचर्य आश्रम—इस आश्रम की मुख्य विशेषताएँ विद्याध्ययन, गुरु-आज्ञा पालन, ब्रह्मचर्य-पालन आदि हैं । इसके विपरीत आचरण करने वाले बटु को शोचनीय माना गया है ।[9] 'अग्निपुराण' में इसके अतिरिक्त व्रत सन्ध्योपासन तथा हिंसा परापवाद और अश्लीलता के त्याग आदि का भी उल्लेख मिलता है ।[10] 'पद्मपुराण'[11] और 'भागवत पुराण'[12] आदि सभी धार्मिक ग्रन्थों में इन्हीं धर्मों को अत्यधिक विस्तार प्राप्त हुआ है । इस दिशा में गोस्वामी जी की सारग्राहिणी प्रतिभा वस्तुतः प्रशंसनीय है ।

---

१ अग्नि । १५१।८-९
२ भागवत ७।११।१५,२१
३ ब्रह्मवैवर्त । श्री कृष्णजन्म ।८३।७४
४ मानस ३।१७२
५ गीता ।१८।४४
६ अग्नि ।१५१।९
७ ब्रह्मवैवर्त श्री कृष्णजन्म ८३।७५
८ भागवत ७।११।२४
९ मानस ३।१७१
१० अग्नि ।१५३।१२-१६
११ पद्म । सृष्टि १५।२८६,२९९
१२ भागवत ११।१७।२२-३८

(३६) गृहस्थ-आश्रम—सभी ग्रन्थों में इस आश्रम को सर्वश्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि इसके माध्यम से सभी आश्रमों का सकुशल निर्वाह होता है। इसमें कर्म-योग के सच्चे महत्त्व के दर्शन किए जा सकते हैं। ब्रह्मचारियों को भिक्षा दान देने और वानप्रस्थियों के योग-क्षेम के निर्वाह का ध्यान करने में ही इस आश्रम की महत्ता है। गोस्वामीजी धर्म-पथ-त्याग करने वाले गृहस्थों की निन्दा भी करते हैं।[1] ब्रह्मवैवर्तपुराण में गृहस्थों के लिए विप्र-पूजा देव पूजा और अतिथि पूजा का विशेष विधान है।[2] 'भागवत' में गृहस्थों को अपने-अपने वर्णों के धर्मों का पालन करते हुए गृह में भी अतिथि के समान अनासक्त रहने का परामर्श दिया गया है।[3] अग्निपुराण' में भी ऐसी ही व्यवस्था मिलती है।[4] 'पद्मपुराण' में गृहस्थों के लिए 'कुसूलधान्या', कुम्भीधान्या', 'अश्वस्तनी और कापोती' आदि चार वृत्तियाँ बतलाई गई हैं और उनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठता का संकेत करते हुए अपरिग्रह' की ही महत्ता स्थापित की गई है।[5] कपोत-वृत्ति' की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन महाकवि बिहारी ने भी किया है।[6]

(३७) वानप्रस्थाश्रम—'मानस' में अनेक ऋषियों मुनियों और उनके आश्रमों के वर्णन में इस 'आश्रम' के विशिष्ट आचारों का विस्तार से व्यावहारिक निरूपण मिलता है। गोस्वामीजी उन वैखानसों (वानप्रस्थियों) को शोचनीय मानते हैं जो तप का त्याग करके सदा भोगों में ही लिप्त रहते हैं। 'पद्मपुराण' में गृहस्थाश्रम की भिन्नता का निवारण करने के लिए ही तदुपरान्त वानप्रस्थाश्रम को सर्वोत्तम माना गया है। उसमें सत्य शौच तथा तप मिताहार, ईश्वरभक्ति, यज्ञ-कार्य और अतिथि-पूजा आदि का बड़ा महत्त्व बतलाया गया है।[7] भागवत, अग्निपुराण आदि में वानप्रस्थी के भोजन वस्त्र निवास तप, व्रत आदि की व्यवस्थाओं का भी बड़ा सूक्ष्म विवेचन मिलता है।[8] गोस्वामीजी बाह्याचारों को व्यर्थ मान कर वास्तविक मूलाचारों को ही प्रमुखता देते हैं, जिनके प्रभाव से ऋषियों के आश्रमों में एक शान्त एवं दिव्य वातावरण की स्वतः सृष्टि हो जाती है। मानस' की पुण्यात्मकता के निर्माण में इन आश्रमों का महत्त्वपूर्ण योग स्वयंसिद्ध है।

(३८) सन्यासाश्रम—इस आश्रम की मूल विशेषता संन्यास' में ही है। वानप्रस्थता तक तो सांसारिकता का कुछ न कुछ योग रहता ही है किन्तु इस आश्रम में संन्यासी सर्वस्वत्याग का एक श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत करता है। इसीलिए 'भागवत' में उसके धर्मों में निःसंगता, जितेन्द्रियता आत्मरति आदि का विशेष वर्णन किया

---

१ मानस २।१७१
२ ब्रह्मवैवर्त । श्रीकृष्णजन्म । ८३।१-९
३ भागवत ११।१७।१९-२१
४ अग्नि । १६७।
५ पद्म । सृष्टि । १९।१००—१०१
६ बिहारी-सतसई । ६११
७ मानस २।१७३
८ पद्म । सृष्टि । १९।११०-११५

गया है । वहाँ उसको भोजन, वास-सहवासादि से भी उदासीन बतलाया गया है ।[1] गोस्वामीजी उस सन्यासी की निन्दा करते हैं, जो 'विरतिविवेक' छोड़ कर सांसारिक प्रपंचों में लीन हो जाता है ।[2] अग्निपुराण में यति को उपेक्षी असंचयी, मानी समदर्शी और पाणिपात्री आदि कहा गया है ।[3] पद्मपुराण में उसकी 'उदासीनवृत्ति' का भी उल्लेख है ।

(३९) आश्रमापभ्रंश भागवत में इन चारों आश्रमों की विशेषताओं का एकत्र समाहार करते हुए विपरीत आचरण करने वालों को 'आश्रमापद' की संज्ञा दी गई है और उनकी कृपापूर्वक उपेक्षा करने का संकेत भी वहाँ किया गया है ।[5] गोस्वामीजी ने 'कलियुग-वर्णन' में 'बरन धरम नहिं आश्रम चारी' कह कर इन आश्रमापधर्मों को दुःखद स्थितियों का बड़ा करुण निरूपण किया है । इसके अतिरिक्त 'रामराज्य-वर्णन' में वे प्रजा के वर्णाश्रम-धर्म के पालन और उससे सुख प्राप्ति का भी सोत्साह वर्णन करते हैं —

> बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।
> चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग ॥ ७।२०

इस प्रकार उन्होंने दोनों स्थितियों का एक तुलनात्मक रूप प्रस्तुत कर दिया है ।

निष्कर्ष —गोस्वामीजी का धर्म-सिद्धान्त निरूपण पौराणिक वर्णनों से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है । उसमें 'मानसकार' की निजी प्रतिभा और अनुभूति की व्यापक छाप दृष्टिगोचर होती है । पुराणों में उपदेशात्मकता एवं नियामकता की प्रवृत्ति स्पष्ट जान पड़ती है, जबकि 'मानस' में व्यावहारिकता, ग्रहणीयता एवं अनुभूयमानता की सफल अभिव्यक्ति है ।

(४०) नीति-सिद्धान्त —धर्म सिद्धान्तों से पृथक नीति-सिद्धान्तों का निरूपण यह स्पष्ट करता है कि उन दोनों में एक मौलिक अन्तर है । सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर धर्म और नीति में कोई[7] तात्त्विक अन्तर नहीं है किन्तु स्थूल दृष्टि से दोनों में भेद की प्रतीति होती है । भेद-दृष्टि से नीति का क्षेत्र ऐहिक विस्तार है और धर्म का लोकोत्तर-विस्तार । नीति के समक्ष व्यक्ति का ऐहिक सुख रहता है जो अपनी परिधि में आचरण के केवल व्यावहारिक पक्ष को रखता है परन्तु धर्म की दृष्टि आचरण के पारलौकिक पक्ष पर लगी रहती है । दो उसका प्रसार वैयक्तिक आचरण में होकर हो रहता है । 'वस्तुतः उन दोनों शब्दों के अर्थ ही अपने अन्तर को व्यक्त करते हैं । धर्म का अर्थ है 'जिससे हम स्वयं को धारण करें' और नीति का अर्थ है जो हमें

१ भागवत ११।१८।२०—१२ २ मानस २।१७२
३ अग्नि । १६१।१—१० ४ पद्म । सृष्टि । १९।१४८—१६२
५ भागवत । ७।१५।३८—३९ ६ मानस ७।९८—१०२
७ डा० सत्यनारायण सिंह वर्मा—हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव—पृष्ठ ३१२

सी जाये। इससे धर्म की सनातनता और नीति की सामयिक उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है। यही कारण है कि अनेक अवसरों पर मनुष्य नीति से आकृष्ट होने पर भी धर्मदृष्टि के कारण वैसा आचरण नहीं कर पाता है। शत्रु को नीति के अनुसार शासन-योग्य मानते हुए भी महात्माओं का दयाधर्म इसीलिए क्षमा को ही प्राय निश्चित किया करता है। नीति-शास्त्रों की तुलना में धर्मशास्त्रों की महत्ता भी यही प्रतिपादित करती है कि धर्म-धर्म है और नीति नीति है तथा मानव के लिए अपने अपने अवसर पर दोनों की समान उपयोगिता है।

गोस्वामीजी के धर्म सिद्धांतों के निरूपण पर जिस प्रकार पुराण आदि अनेक धर्म ग्रंथों का प्रभाव परिलक्षित होता है, उसी प्रकार उनके नीति सिद्धांतों पर भी नीतिपरक विदुरनीति शुक्रनीति और चाणक्य-नीति आदि ग्रन्थों की भी कहीं-कहीं स्वाभाविक छाया दृष्टिगोचर होती है। इन नीति ग्रंथों के अतिरिक्त संस्कृत के अनेक काव्य-ग्रन्थों में भी उनके लेखकों के द्वारा विभिन्न प्रसंगों में बहुत सरस और आकर्षक नीति-वचनों का प्रयोग मिल जाता है। यहाँ पर केवल उनके साथ ही 'मानस' के सिद्धांतों की तुलना करना अपेक्षित है, क्योंकि उपर्युक्त प्रसिद्ध नीतिग्रंथ' अपनी विवेचना की परिधि में नहीं आते हैं।

(४१) नीतियों का वर्गीकरण—नीति का सम्बन्ध व्यक्ति के सामाजिक आचरण से होता है। समाज में अभी तक शासक और शासित दो वर्ग सदा से रहे हैं और उनके व्यवहारों में दृष्टिकोण के साथ-साथ लोभ का भी एक बहुत बड़ा अन्तर रहा है। अतः नीति के सामान्य नीति एवं राजनीति के रूप में दो भेद किए जा सकते हैं। समाज में रहते-रहते व्यक्ति के शत्रु मित्र और उदासीन तीन सम्बन्ध स्वतः स्थिर हो जाते हैं।[1] इनमें उदासीनों की वह चिन्ता नहीं करता है किन्तु शत्रु और मित्र के साथ वह निरपेक्ष भी नहीं रह सकता है। ये सम्बन्ध अन्योन्यापेक्षी हैं अतः परस्पर समान विकर्षण अथवा आकर्षण की माँग करते हैं जो मनःस्थ के विपर्यास के कारण सम्भव नहीं हो पाता है। अतएव यह आवश्यक नहीं है कि हम जिन्हें अपना मित्र या शत्रु समझें वे भी हमें बराबर वैसा ही समझते रहें अथवा जो हमें अपना मित्र या शत्रु मानें हम उनको भी उसी मात्रा में वैसा ही सदैव मानते रहें। फिर भी इतना अवश्य है कि कुछ व्यक्ति बहुतों के सदैव मित्र या शत्रु बने रहते हैं या हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों के स्वभाव की प्रशंसा अथवा निन्दा नीति की चर्चा बन जाती है।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जिनको समाज के लोग सदा सीस नवाते रहते हैं और वस्तुतः उनसे किसी का कोई व्यक्तिगत लगाव या अलगाव भी नहीं पाया जाता है किन्तु इसका यही कारण होता है कि वे सबके होते हैं भले ही वे हितकर हों अथवा अहितकर हों। ऐसे सज्जन अथवा असज्जन भी नीति के द्वारा श्रेय अथवा हेय माने जाते हैं। फिर इन सम्बन्धों में भिन्नता के

१ विनयपत्रिका। १२४ मानस २।११२

कारणों पर विचार करने से मित्र एवं सज्जन की परोपकार-वृत्ति के दर्शन होते हैं जिसका विवेचन भी नीति का एक अंग समझा जाता है। शत्रुता के कारणों में सम्पत्ति और काम प्रवृत्ति के कारण होने वाला वैमनस्य ही प्रमुख होता है, अतः उनकी निन्दा भी नीति शास्त्र में की जाती है। इनके अतिरिक्त कभी कभी साधनसम्पन्नता, होने पर भी व्यक्ति की परवशता दैव, अनिष्ट अथवा भाग्य के प्रति आक्रोश भी व्यक्त करती है। इस प्रकार सन्मित्र प्रशंसा कुमित्र-निन्दा, सज्जन-प्रशंसा असज्जन-निन्दा परोपकार-प्रशंसा सम्पत्ति-निन्दा काम-निन्दा (नारी-निन्दा भी) और भाग्यवाद आदि अनेक विषय नीति विवेचन के अन्तर्गत आ जाते हैं। गोस्वामीजी ने इस सम्बन्ध में 'मानस' में अपने विचारों में मौलिकता और अनुकारिता का यथावसर समन्वय किया है। संस्कृत साहित्य के साथ उसकी तुलना वस्तुतः बड़ी रोचक एवं आकर्षक है।

(४२) सन्मित्र प्रशंसा—गोस्वामी जी सन्मित्र की विशेषतायें इस प्रकार निर्धारित करते हैं—

'कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥'[5]

इस पर 'नीतिशतक' का प्रभाव स्पष्ट है।[1] 'भट्टिकाव्य' में मित्र की सर्व सोनृति' चाहने वाले को ही सच्चा मित्र कहा गया है।[2] 'रामायण मंजरी' में दुःख में विवेकशाली सुख में विनयशाली बिना कहे प्राप्त प्रेम से जो उपकारी और मित्र की चिन्ता में सदा व्याकुल रहने वाले मित्र को हृदय प्रिय और पुण्य प्राप्य माना गया है।[3] उत्तर रामचरित नाटक में विपत्ति में रक्षक व्यक्ति को ही सच्चा मित्र बतलाया गया है। गोस्वामीजी उन मित्र के दर्शन को पाप समझते हैं जो मित्र के दुःख से दुःखी न होता हो।[7] रामायणमंजरी में ऐसे व्यक्तियों के जन्म को ही व्यर्थ माना गया है।[6] अपने पहाड़ से दुःख को रजकण समझने वाले और मित्र के रज कण से दुःख को पहाड़ समझने वाले को ही गोस्वामीजी मित्रता के योग्य मानते हैं। 'रामायणमंजरीकार' इस के स्थान पर उपकार का प्रयोग करते हुए कहते हैं कि मित्र के स्वल्प उपकार को भी मेरु सा समझने वाला और अपकार को सर्वथा भूल जाने वाला ही सच्चा हितकारी मित्र है।[8] 'महावीर चरित' में 'मंत्री-महाव्रत' के लक्षण बतलाते हुए मित्र का प्राणों से भी उपकार करने उसके साथ द्रोह और छल न करने तथा उसको अपने समान ही मानने पर बल दिया गया है।[9] अद्भुत दर्शन के

१ नीतिशतक ७१
२ भट्टिकाव्य ११।२५
३ रा० मंजरी। किष्किन्धा। ४५, ६६
४ उत्तररामचरित नाटक १।५०
५ मानस ४।७
६ रा० मंजरी। किष्किन्धा। ६८
७ मानस ४।७
८ रा० मंजरी। किष्किन्धा ३१
९ महावीर चरित ३।५६

अनुसार हितकारी और गुणानुरोधी व्यक्ति को ही सच्चा मित्र मानना चाहिए।[1] 'रामायणमंजरी' के अनुसार मित्रता का पालन बड़ा कठिन है और यह एक बार टूट जाने पर फिर वैसी नहीं जुड़ती है।[2]

(४३) कुमित्र निन्दा—'मानस' के अनुसार कुमित्र की यह परिभाषा है—

आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई॥ ४।७॥

यह नीति 'चाणक्य नीति' से प्रभावित है।[3] 'दशावतार चरित' में कुमित्र को स्वार्थ के समय विनत और 'पर्याप्त तात्पर्यवान्' देखकर आश्चर्य व्यक्त किया गया है। वहाँ ऐसे कुमित्र के प्रेम को निरर्थक कहकर मत्स्य सर्प संध्या पद्मातपत्र करिणी-कर्ण विद्युत्, नृप-स्वभाव स्त्रीचित्त मदप-बुद्धि, अनैतिक सम्पत्ति और चारण-स्तुति के समान चंचल और अस्थिर भी माना गया है। इसके अतिरिक्त उसके साथ किए गए उपकार को वहाँ 'ऊसरों में खेती के समान' व्यर्थ बतलाया गया है क्योंकि ऐसा कुमित्र 'स्वरव्याघ्रमुखी तथा मित्र के दुःख में विरतप्रयत्न होता है।[4] रामायणमंजरी के अनुसार स्वार्थी और परार्थ में पराङ्मुख कुमित्र का जन्म ही निन्द्य है, उसके शव को पशु भी नहीं खाते हैं। वहाँ सर्प के साथ उसकी तुलना करते हुए श्लेष से उसको अनेक-छिद्र भोगी और कुटिल कहा गया है। उसको 'सर्वस्विनाशक' भी कहलाते हुए महापापियों से बढ़ कर माना गया है क्योंकि उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं होता है।[5]

(४४) सज्जन प्रशंसा—'मानस' में सज्जनों की वन्दना करते हुए उनको शत्रुओं और मित्रों—सब के प्रति समान चित वाला कहा गया है और इस सम्बन्ध में उनकी तुलना 'सुमनों' के साथ की गई है:

बन्दउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥१।३॥

'गीता' में भी 'समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः'[6] कहकर ऐसे महापुरुषों की प्रशंसा की गई है। 'मानस' में राम के मुख से संतों के लक्षण अनेक बार वर्णित किये गये हैं। 'मानव-धर्म' के प्रसंग में उनका बहुत कुछ उल्लेख किया जा चुका है। भागवत में संतों को अनपेक्ष प्रशान्त समदर्शी, निर्मम निरहंकार, निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह कहा गया है।[7] मानस में संतों एवं भक्तों में अभेद भी प्रतिपादित किया गया है और वहाँ सत्संग को ही 'प्रथम भक्ति' माना गया है।[8]

---

१ मधुप दर्पण ६।२ २ रा० मंजरी। किष्किन्धा ११०६–१०७
३ चाणक्यनीति २।५ ४ दशावतार चरित ७।१०२ १०८
५ रा०मंजरी। किष्किन्धा ६५ ६० ७२ ११२–११३ १०७, १२७
६ गीता १२।१८ ७ भागवत ११।२१।२७
८ मानस ३।३८ ११६ ३।७२ ४१ ७।१५
९ मानस ३।३६,३५

गीता' में भक्तों और 'स्थितिप्रज्ञों के लक्षण'[1] 'मानस' के संतों के लक्षणों से पूर्ण मेल रखते हैं। 'मानस' में सत्संग को बड़े सौभाग्य से प्राप्य और मोक्ष का द्वार बताया गया है।[2] 'भागवत' में सत्संग की तुलना में स्वर्ग तथा मोक्ष को भी अति तुच्छ कहा गया है।[3] 'अनघराघव' के अनुसार सज्जन स्व और पर' में कोई भेद नहीं मानते हैं और यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। वे तो स्वभाव से ही स्वाभाविक उदार, महात्मा और परोपकारी होते हैं। 'दशावतार चरित' में वह विवाद, विवेक में विमति, सत्य में शंका विनय में विकार गुणों में अपमान, दूषण में निषेध और धर्म में विरोध न करने वाले को ही संत माना गया है।[5] 'राघवीय' में सज्जनों को दाग् के भी गुणों से आकृष्ट कह कर उनकी कृपा को सर्व सिद्धिप्रद बतलाया गया है।[6] 'जानकीहरण' में भी सज्जन को दाग् पर भी प्रसादीक कहा गया है।[7] 'बालरामायण' में सज्जनों की कृपा को सैकड़ों प्रकार से 'सुभगा' कह कर उसकी प्रशंसा की गई है।[8] 'उन्मत्तराघव' के अनुसार परोपकार सहानुभूति दया आदि सज्जनों के स्वाभाविक गुण होते हैं।[9] 'महानाटक' में सज्जनों की 'प्रकृति-विकृति' को सर्वथा असम्भव कहा गया है क्योंकि वे स्वर्ण, इक्षुदण्ड और चन्दन के समान अन्त तक ज्यों के त्यों रहते हैं।[10] 'आश्चर्यचूड़ामणि' के अनुसार भी सज्जन लोग अन्त तक 'प्रथम भाव ही' रहते हैं।[11] 'रामायणमंजरी में सज्जनों के गुणों में विवेक, शम संतोष क्षमा, परोपकार विश्वजीवी स्नेहमयी दृष्टि आन्तरिक प्रेम और अमृतवर्षी वाणी आदि का उल्लेख किया गया है।[12] 'भागवत में सज्जनों को दर्शन-मात्र से ही पवित्र करने वाला कह कर उनको तीर्थों एवं देवताओं से भी महान बतलाया गया है।[13] 'राघवीय' में उनके सम्पर्क को मोक्ष का हेतु कहा गया है[14] जब कि 'मानस में उन संतों के दर्शन को पापनाशक भी बतलाया गया है।[15]

(४५) असज्जन-निन्दा सज्जन प्रशंसा' के साथ-साथ 'मानस' में असज्जन-निन्दा का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। असज्जनों को सभी स्थितियों में समर्थ मान कर 'मानसकार उनकी आदि में ही वन्दना भी करते हैं —

---

१ गीता १२।१३।१०, १३।५ १८।२१ २४ २ मानस ७।३१
३ भागवत ४।१०।१४ ४ अनर्घराघव ३।१२, १।६
५ दशावतारचरित ७।६१ ६ राघवीय ११।३६, १८।१
७ जानकीहरण ११८२ ८ बालरामायण ४।२८, ७।४०
९ उन्मत्तराघव ।४१ १० महानाटक ३।१८
११ आश्चर्यचूडामणि ३।३१ १२ रा०मंजरी। बाल ।२१५-२२१
१३ भागवत १०।८०।११, ४८।३१ १४ राघवीय १०।१७
१५ मानस ४।१७

बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिषाद बसेरें॥
हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥
जे पर दोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्ह के मन माखी॥
तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा॥
उदय केत सम हित सबही के।

॥ १।४

इसके साथ ही वे उनकी विशिष्ट शक्ति की प्रशंसा भी करते हैं कि वे असज्जन शेष के समान हजारमुखों से पृथुराज के समान हजार कानों से और इन्द्र के समान हजार आँखों से दूसरों के दोषों को कहते, सुनते और देखते हैं।[1] 'पद्मपुराण' के अनुसार भी खललोग 'परकर्मकथन' में पंचानन पर-गुण श्रवण में विपन्न और परदोष-श्रवण में 'सतरूप' हो जाते हैं।[2] भरत के प्रश्न पर 'मानस' के राम असन्तों के स्वभाव का अति विस्तृत वर्णन करते हुए उन्हें राक्षसों के समान बताते हैं।[3] 'भागवत' में असन्तों को शिश्नोदर-पर कह कर उनकी संगति को निन्दित माना गया है।[4] 'जानकीहरण' में ऐसे असज्जनों को 'पशुतुल्य' अथवा 'पशुओं से भी 'अधमीतर' कहा गया है।[5] पद्मपुराण की 'लक्ष्मी' कहती है कि जहाँ ऐसे दुष्ट रहते हैं, वहीं मेरा दृढ़ निवास है।[6] अनर्घराघव के अनुसार दुष्टों के पास यदि गुण और विद्या भी हो तो वह उनकी दुष्टता ही बढ़ाती है। गोस्वामीजी भी उसका समर्थन करते हैं।[8] रामायण-मंजरी में असज्जन को कालकूट के समान मस्तक गुर्वंश पाप-संक्रम परिपन्थी प्राणापपाती आदि कह कर उसकी निन्दा की गई है। वहाँ दुर्जन कुत्ते की पूँछ, बाम और ऊँट की गर्दन को सदा कुटिल कह कर मंत्रोपधि आदि से भी उनकी सिधाई को असम्भव बतलाया गया है।[9] ऐसे खलों की प्रीति को गोस्वामी जी विद्युत के समान अस्थिर मानते हैं।[10] 'विष्णुपुराण कार' भी इसमें उनसे सहमत हैं।[11] हनुमन्नाटक में खल जन-मैत्री को नदी लक्ष्मी, अनुमितपति सुकुमार स्त्री के समान अस्थिर योवन माना गया है।[12]

(४६) सज्जन-असज्जन-तुलना —'मानस' में सज्जनों और असज्जनों की विशेषताओं की तुलना भी विस्तार से की गई है और उनके गुणों को अकथनीय बतलाया गया है —

---

१ मानस १।४
२ पद्म। क्रियायोगसागर ११।१०३-१०४
३ मानस ७।३९-४०
४ भागवत ११।२६।३
५ जानकीहरण ७।८८-९९
६ पद्म। उत्तर।११६।१४
७ अनर्घराघव ४।१२
८ मानस ७।१०६
९ रा०मंजरी। बाल। ६६२ ७२१ लंका ३३३
१० मानस ४।१४
११ हनुमन्नाटक ३।१९
११ विष्णुपुराण ३।६।४२

बंदउँ संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥
भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती॥ १।५

जानकीहरण में सज्जन को जहाँ निष्कारण कृपा-शील कहा गया है, वहीं पर सज्जन को निष्कारण वैरशील भी माना गया है।[1] वहाँ सज्जन को स्वभावतः परोपकारी और असज्जन को 'मित्रद्रोहसमष्ट' तक बतलाया गया है।[2] गोस्वामी जी की मान्यता है कि असज्जन भी सज्जनसंसर्ग से सुधर सकता है, किन्तु उसका दुःस्वभाव नहीं मिट पाता है।[3] 'जयानक' के मत से सज्जन और असज्जन के मेल में, सज्जन तो असज्जन हो सकता है, किन्तु असज्जन कभी भी सज्जन नहीं बन सकता है जैसे लहसुन और चन्दन के योग में चन्दन भले ही निर्गन्ध हो जाये, किन्तु लहसुन सुगन्धित नहीं हो सकता है।[4] इसके अतिरिक्त वे कहते हैं कि सज्जन तो स्वच्छ दर्पण के समान होते हैं, जिसमें असज्जन लोग अपने दुर्गुणों का प्रतिबिम्ब देखकर ही उनकी निन्दा किया करते हैं।[5] राघवीयचार का भी यही विश्वास है कि बड़े से बड़ा सज्जन असज्जन के सम्पर्क से कलंकित हो जाता है। इसके लिए वे कलंक के द्वारा चन्द्रमा के दूषित होने का उदाहरण देते हैं।[6] 'आश्चर्य चूड़ामणि' में कहा गया है कि दुष्टों का स्वभाव परिवर्तन असाध्य ही होता है। 'पद्मपुराण' का मत है कि नीच के संग से महान् व्यक्ति को कष्ट ही मिलता है। इस सम्बन्ध में वहाँ प्रतों के संग से शिव के दुःख का संकेत किया गया है।[8] इसी प्रसंग में हनुमन्नाटक में रावण के कारण ही समुद्र के बन्धन का उदाहरण मिलता है।[9]

महात्मा का सबसे बड़ा लक्षण बतलाते हुए 'पद्मपुराण' में कहा गया है कि उसके मन वचन और कर्म में एकता होती है जब कि दुरात्मा में अनेकता होती है। वहाँ सज्जनों और असज्जनों की एक समान विलक्षणता भी बतलाई गई है कि वे अपने स्वभाव को कभी नहीं छोड़ते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि दुष्ट लोग अकारण ही सज्जनों को कष्ट देते हैं जैसे व्याध और धीवर, क्रमशः मृगों एवं मत्स्यों का निरपराध ही वध किया करते हैं, जब कि सज्जन लोग दूसरों के उदय से प्रसन्न होते हैं जैसे मोर बादल के उदय से नाचने लगता है और वे अपने उदय से दूसरों को प्रसन्न भी करते हैं जैसे चन्द्रमा कमुदों को विकसित कर देता है।[10]

---

१ जानकीहरण १।८२ | २ जानकीहरण ४।१५
३ मानस १।७ | ४ पृथ्वीराज विजय १।२१
५ पृथ्वीराज विजय १।१६ | ६ राघवीय १६।८०
७ आश्चर्यचूड़ामणि १।४ | ८ पद्म। क्रियायोगसार १६।१०२
९ हनुमन्नाटक १३।११ | १० पद्म। क्रियायोगसार ।२०७ उत्तर २१५।१६ ४६

(४७) परोपकार-प्रशंसा —गोस्वामी जी परोपकार को सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते हैं और उसको वेद-पुराण आदि का निर्णय कहते हैं। वे इसीलिए परोपकारी की प्रशंसा भी करते हैं।[1] 'भागवत' में परोपकार का बड़ा महत्त्व बतलाते हुए वृक्षों की ओर संकेत किया गया है जो अपने पत्र पुष्प फल आदि सर्वस्व से जनता का हित-साधन करते हैं।[2] जानकीहरण के अनुसार परोपकारी व्यक्ति के पास सम्पत्तियाँ स्वयमेव चली आती हैं।[3] रामायणमंजरी में परहितोद्यम को महात्माओं का अनिवार्य धर्म कहा गया है।[4] उदारराघव की भी यही मान्यता है।[5] 'अनर्घराघव में परोपकारियों की एक विशिष्ट परिपाटी बतलाई गई है कि वे दूसरों के माध्यम से ही लोक-सेवा करते हैं क्योंकि वे स्वयं कुछ भी नहीं चाहते, जैसे समुद्र बादलों के माध्यम से रसवृष्टि करता है और सूर्य चन्द्र के माध्यम से प्रकाश करता है।[6]

(४८) सम्पत्ति-निन्दा— गोस्वामी जी गृह परिवार और धन के साथ सम्पत्ति को भी रामभक्ति का बाधक मानकर निस्सार बतलाते हैं। कलियुग वर्णन में वे सम्पत्ति की स्पष्टतः निन्दा करते हैं। भागवत में भी धन को इस लोक में तापकारी और परलोक में नरकगामी कहा गया है। वहाँ उसके साधन उसके रक्षण और व्यय आदि को बड़ा कष्टकर माना गया है। धन के सम्बन्ध में वहाँ चोरी हिंसा झूठ दम्भ काम क्रोध गर्व मद भेद वैर अविश्वास और स्पर्धा आदि १५ अनर्थ बतलाकर भागवतकार उसके दूर से ही त्याग को सर्व-श्रेयस्कर कहते हैं। उनके अनुसार जब एक तुच्छ कौड़ी के लोभ से ही माता पिता भाई स्त्री और मित्र आदि सभी लोग शत्रु हो जाते हैं तो फिर इस अनर्थमूल अर्थ में कोई आसक्ति नहीं करनी चाहिए।[8] 'आनन्दरामायण' के अनुसार लक्ष्मी दुराराध्य होने के साथ-साथ पथभ्रष्ट करने वाली भी होती है।[9] 'रामगीत' में लक्ष्मी को वृद्ध पुरुष में गणिका के प्रेम के समान अपचार, कुरता आदि से भी अग्राह्य कहा गया है।[10] 'रामायणमंजरी' में भी सम्पत्ति और वेश्या की समानता वर्णित की गई है।[11] दशावतार चरित में भी लक्ष्मी को वेश्या के समान चंचला बतलाया गया है। वहाँ उसकी तुलना विद्युत के साथ भी की गई है।[12] 'रामगीतकार' की भी यही मान्यता है।[13] 'अनर्घराघव' के अनुसार लक्ष्मी

---

१ मानस ७।४१ ११८४ | २ भागवत १०।२२।३१।३५
३ जानकीहरण ७।१५ | ४ रा०मंजरी। बाल। ६६५
५ उदारराघव ।४१ | ६ अनर्घराघव १।३७
७ मानस ४।७ ७।१२८-१०१ | ८ भागवत ११।२३।१८-२१
९ आनन्दरामायण १।२४ | १० रामगीत ३।१९
११ रा०मंजरी।अयोध्या।१८२।सुन्दर।१६० | १२ दशावतारचरित ७।१८० २११
१३ रामगीत १३।२१

समुद्र मथन (जड़) से उत्पन्न हुई है, इसीलिए वह सदा नीचातिनीच के पास ही जाती है। यहाँ लक्ष्मी को धनिकों और निर्धनों के बीच की 'खाई' कह कर उसकी निन्दा की गई है।[1]

(४६) सम्पत्ति प्रशंसा–रामायण-मंजरी रामचरित आदि कुछ ग्रंथों में सम्पत्ति का महत्व भी बतलाया गया है। 'रामचरित' के अनुसार संसार में धन का ही महत्व है। अतः निर्धन को निष्प्राण ही समझना चाहिए।[2] 'रामायणमंजरी' के मत में भी संसार में धन ही सब कुछ है क्योंकि संसार की सारी क्रियाएं वेश्या की तरह धनाधीन हैं। दरिद्र का कोई काम नहीं बनता है जबकि धनी के सब मनोरथ शीघ्र सफल हो जाते हैं। धनवान को ही यहाँ शीलवान् कुलवान और यशस्वी कहा गया है और यश, शेष ज्ञान, रूप आयु, प्रज्ञा कुल आदि को धन के आधीन किन्तु धन को स्वाधीन बतलाया गया है।[3] धन को प्राणों का प्राण कह कर यहाँ यह भी सिद्ध किया गया है कि निर्धन व्यक्तियों को मृतक समझ कर ही उनके मित्र और बन्धु-बान्धव त्याग देते हैं। उदारराघव में राज्य से अर्थ अर्थ से धर्म तथा काम और उनसे मुक्ति को साध्य बतला कर, निर्धन व्यक्ति को सर्वथा अयोग्य ठहराया गया है।[4]

इन सभी उक्तियों से यह स्मरणीय है कि वे सब भरत से सम्बद्ध हैं जो राम के राज्य त्याग से खिन्न हैं और अवसर मिलने पर उनमें अपना क्षोभ व्यक्त करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त इन ग्रन्थों के कवि राज्याश्रयी और धनवैभवशाली हैं जो धन के महत्त्व को भूल नहीं पाते हैं। दूसरी ओर मानस के सदृश तथा कवि स्वामी राम-भक्त, अतः विरक्त हैं और इसी दृष्टिकोण से वे धन-सम्पत्ति के प्रति अपनी उपेक्षा ही व्यक्त करते हैं।

(५०) काम निन्दा–इस ओर संत कवियों की विशेष अभिरुचि रही है और वे इसे अपने काव्य का अविच्छिन्न अंग मानकर इसका सदा वर्णन करते रहे हैं। गोस्वामीजी ने 'शिव तारका' के प्रसंग में काम के आगमन और प्रभाव का बड़ा रोचक चित्रण किया है —

कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू॥
ब्रह्मचर्ज व्रत संजम नाना। धीरज धरम ग्यान बिग्याना॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटकु सबु भागा॥ १।८४

इसके पश्चात् वे जगत की काम परवशता का उल्लेख करके वे केवल जगत् की दुर्दशा को अनुमेय ही रखते हैं।[6] यहाँ काम के समक्ष विवेक की पराजय का आलंकारिक रूप प्रस्तुत करते हुए वे उसके दुष्प्रभाव से मानव को सचेत भी

---

१ अनर्घराघव ७।४१ ४२ २ रामचरित १७।४९
३ रा०मंजरी। लंका।१०८४ १०८६ १०८७ ४ रा०मंजरी। लंका। १०९०
५ उदारराघव ९।१२ ६ मानस १।८५

करना चाहते हैं। राम-सेना की भीषणता का उल्लेख करते हुए मानस के राम उससे अप्रभावित व्यक्ति को ही महापुरुष बतलाते हैं।—

लछिमन देखहु काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह के जग लीका ॥३।३८

'भागवतकार' का मत है कि कामोपभोग से काम शान्त नहीं होता है किन्तु घी से अग्नि के समान वह पुष्टतर होता रहता है।[1] 'रामायण मंजरी' में काम को मज्जासत्ता का परशु मदरवग्र का मेघ और मोहनिशा का अन्धकार कहा गया है।[2] वहाँ काम को इतना बलवान माना गया है कि मृत्यु काल में भी जीवों को प्रभावित कर लेता है।[3] 'उदारराघव' के मत में कामी 'वस्तु-हानि' को नहीं सोचता है। 'राघवीय' में भी कहा गया है कि काम के बाण बड़ों से बड़ों को भी नहीं छोड़ते हैं क्योंकि काम के सामने विवेक टिक ही नहीं सकता है।[5] 'प्रिसम्भाव' भी इसका समर्थन करता है।[6] 'आश्चर्यचूडामणि' में विवेक के स्थान पर 'गुण संग्रह' का उल्लेख है। शेष कथन समान है। 'महानाटक' में मनुष्य को तभी तक विशिष्ट बतलाया गया है जब तक वह कामग्रसित नहीं होता है।[8] 'उन्मत्तराघव' में काम और राजा के रूपक में वसन्त को उसका अमात्य, दक्षिण पवन को सेनापति और भ्रमर को अनुचर के रूप में माना गया है।[9] 'बालरामायण' नाटक में काम अद्वितीय शक्ति की वंदना भी गई है—

कर्पूर इवदग्धोऽपि शक्तिमान यो जने जने ॥
नम मृ मारवीजाय तस्मै कुसुम-धन्वने ॥ १।११

(२१) नारी-निन्दा—तुलसी ने नारी को काम का अद्वितीय परम बल कह कर इसी सन्दर्भ में उसकी विस्तार से निन्दा की है —

एहि के एक परम बल नारी। तेहि ते उबर सुभट सोइ भारी ॥३।३७

— — —

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥ ३।४३

नारी और विविध ऋतुओं के रूपक में भी उन्होंने नारी को सब दुखों की खान माना है।[10] नारी की गति को अज्ञेय और सर्वसमर्थ बतलाते हुए वे उसकी भर्त्सना भी करते हैं —

निज प्रतिबिम्बु बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई ॥
काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ। २।४७

---

१ भागवत ९।१९।१४ — २ रा० मञ्जरी। बाल।१०४
३ रा०मंजरी। अरण्य।६६० — ४ उदारराघव ३।९०
५ राघवीय ३।७१ ७।२६ — ६ प्रिसम्भाव २।११
७ आश्चर्यचूडामणि ४।११ — ८ महानाटक २।४६
९ उन्मत्तराघव।५ — १० मानस ३।४४

वे नारी में 'साहस, अनृत, चपलता, माया, भय, अविवेक, अशौच और अदया' आदि आठ अवगुणों की निरन्तर स्थिति भी मानते हैं।[1] 'आनन्दमंजूषामणि-सार' के मत में अविवेक, मधुरभाषिता, कामासक्ति और अस्थिरता आदि केवल नारी में ही अवगुण होते हैं।[2] गोस्वामीजी कहीं तो ढोल, गँवार, शूद्र और पशु के साथ-साथ नारी को भी ताड़ना-योग्य बतलाते हैं और कहीं शास्त्र अथवा राजा के समान उसको वश के अयोग्य भी मानते हैं।[3] 'शूर्पणखा प्रसंग' में तो वे इस दिशा में पराकाष्ठा ही प्रस्तुत कर देते हैं।[4]

नारी के प्रति 'मानसकार' का इतना रोषपूर्ण दृष्टिकोण 'मानस' जैसे ग्रंथ के संदर्भ में स्पष्टतः अरुचिकर है। यद्यपि इस 'नारी-निन्दा अभियान' में वे अकेले नहीं हैं, क्योंकि अनेक पुराणों में तो इससे भी अधिक 'तीव्रता' का प्रदर्शन किया गया है[5], संभवतः 'मानस' के 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' होने के कारण ही वे ऐसे भाव प्रदर्शन से स्वयं को रोक नहीं सके हैं।

'भागवत' के अनुसार नारियाँ वृक-हृदया, अकरुण, क्रूर, दुर्मर्ष एवं प्रिय साहस होती हैं। वे थोड़े से धन के लिए पति तथा भाई की भी हत्या कर सकती हैं।[6] 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' के अनुसार वे अविश्वसनीय, भ्रमकाया, मोक्षमार्ग की अर्गला और नरक की बीजरूप हैं।[7] 'रामायण मंजरी' में स्त्रियों को असाधारण विभ्रमित विलास में अभिन्न बताया और कठिनता से संभालने योग्य माना गया है। वहीं उनके केवल ओठों में ही—न कि हृदय में—राग की स्थिति बतलाई गई है और उनको रोषकारिणी, क्रूर दर्शिनी, धन रागिणी तथा भोगानुरागिणी भी माना गया है। उनके लिए वहीं यह भी कहा गया है कि वे अबला होने पर भी दृढ़ दुराग्रह वाली, कोमल होने पर भी कुटिलाशया और मित्रों तथा भाइयों में वैमनस्य की जननी होती हैं।[8] 'कुवलयकोश' में भी स्त्रियों को नदियों के समान नीचगामिनी और स्वेच्छाचारिणी बतलाया गया है।[9] 'राजनीति' के मत में ऐसी चंचल स्त्रियों का कदापि विश्वास नहीं करना चाहिए।[10]

इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि गोस्वामीजी ने काम के संदर्भ में ही नारी की भर्त्सना की है। इस दिशा में वे पौराणिक मान्यताओं एवं आत्यन्तिक वैराग्य की विभिन्न प्रतिक्रियाओं से विवश जान पड़ते हैं। वैसे उन्होंने नारी जाति की

---

१ मानस ६।१६ २ आनन्दमंजूषामणि ३।१०
३ मानस ५।५९, ३।१७ ४ मानस ३।१७
५ पद्म। सृष्टि। २४। १०, १८-३३ भागवत ९।१४।३७ पद्म। भूमि। ३३।१७-२० ब्रह्मवैवर्त। श्री कृष्णजन्म। ८६।१२
६ भागवत ६।१८।४२ ४०
७ ब्रह्मवैवर्त। श्री कृष्णजन्म। उत्तरार्द्ध। ७२।२१
८ रा०मंजरी। अरण्य १।६१ ८७१ ८८२ ८८०
९ कुवलयकोश ११५ १० राजनीति ११।३१

पर्याप्त प्रशंसा भी की है और उनके धर्मों का विस्तार से वर्णन करते हुए उन्होंने अनेक आदर्श नारी-पात्रों का महनीय चरित्र-चित्रण भी किया है।

(१२) नारी धर्म—गोस्वामीजी ने सीता—अनसूया संवाद में नारी-धर्म का इस प्रकार विस्तृत निरूपण किया है —

'कह रिषिबधू सरस मृदु बानी। नारि धर्म कछु ब्याज बखानी॥
मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
बृद्ध रोगबस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥

इस वर्णन में वे 'शिवपुराण' से अत्यधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं —

'मितं ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य हि दातारं भर्तारं पूजयेत् सदा॥
क्लीबं वा दुःखस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव च॥ पातालखंड ।१।२४

भागवत' में भी 'पति-सेवा' को स्त्री का परम धर्म बतलाया गया है —

'भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया।
दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा॥
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी॥ १०।२९।२४-२५

'ब्रह्मवैवर्त'[1] और 'रामचरित'[2] में भी तत्सम वर्णनों के दर्शन होते हैं। 'ब्रह्मपुराण' में जैसे तैसे पति को भी स्त्री के लिए 'परमपूज्य' बतलाया गया है।[3] 'पद्मपुराण' के अनुसार स्त्री के लिए पति की आज्ञा के अतिरिक्त न तो कोई पृथक धर्म है, न व्रत है, और न उपवास है। वहीं उपवास आदि करने वाली स्त्री को पति की आयुहारिणी और अन्त में नरक-गामिनी भी कहा गया है।[4] 'रामायण मंजरी' में पति को ही पत्नी के कर, धन, कान्ति, सौभाग्य, सुख और जीवन का सर्वस्व माना गया है।[5] पति को स्त्री का देवता बतला कर यहाँ भी केवल 'पति सेवा' को ही परमव्रत कहा गया है।[6] 'रामगीत'[7] और 'राघव पाण्डवीय'[8] की भी यही मान्यता है। गोस्वामीजी ने इसी प्रसंग में पतिव्रता स्त्रियों के चार प्रकारों का उल्लेख भी किया है—

जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम पर पति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥

---

१ ब्रह्मवैवर्त । ब्रह्म ।६।७०-७१
२ रामचरित २।७।७२
३ ब्रह्म १०२।७
४ पद्म । सृष्टि ।४७।७५ ७७
५ रा०मंजरी । बाल । ८७४
६ रा०मंजरी । अरण्य ११६-११८
७ रामगीत ३।१७
८ राघवपांडवीय ३।२८

धर्म बिचारि समुझि कुल रहई । सो निकिष्ट तिय श्रुति अस कहई ।
बिनु अवसर भय तें रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ॥५॥

इस वर्णन में भी वे 'शिवपुराण' के अनुगामी हैं—

चतुर्विधास्ताः कथिता नार्यो देवि पतिव्रताः ।
उत्तमादि विभेदेन स्मरतां पापहारिकाः ॥
स्वप्नेऽपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम् ॥
नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता ॥
या पितृभ्रातृसुतवत् परं पश्यति सद्धिया ॥
मध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता ॥
बुद्ध्वा स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति न ॥
निकृष्टा कथिता सा हि सुचरित्रा च पार्वति ॥
पत्युः कुलस्य च भयाद् व्यभिचारं करोति न ॥
पतिव्रताऽधमा सा हि कथिता पूर्वसूरिभिः ॥ पार्वतीखण्ड ५४।७२-८०

ब्रह्मवैवर्तपुराण में स्त्रियों के—न कि पतिव्रताओं के—उत्तम, मध्यम और अधम तीन भेद किए गए हैं। उनमें से उत्तम को उपर्युक्त निकृष्ट तथा 'मध्यम' को अधम के समान कहा जा सकता है। अधम स्त्री को वहाँ परमदुष्टा अधर्मशीला दुःशीला दुर्मुखा कलहान्विता पतिनिन्दिका और स्वतन्त्रा बतलाया गया है।[1] 'पद्मपुराण' में पतिव्रता स्त्री के लक्षण विस्तार से वर्णित हुए हैं, किन्तु उनका वर्गीकरण नहीं किया गया है।[2]

'मानस' के सीता राम संवाद में दाम्पत्य-सम्बन्ध की विशेषताओं का मधुर चित्रण किया गया है —

'जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते । पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते ।
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू । पति बिहीन सबु सोक समाजू ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥ २।६५

'रामायणमंजरी' के अनुसार त्याग से हीन विभूति, सत्य से हीन भारती और प्रशम से हीन विद्या के समान ही पति से हीन पत्नी की दुर्दशा होती है। वहीं पर स्त्री के लिए पति को समस्त रत्नों का कल्पवृक्ष कहकर उसके अभाव में पिता बन्धु पुत्र और भ्राता आदि सभी को सर्वथा निष्फल बतलाया गया है।[3] ब्रह्मवैवर्तपुराण के मत में स्त्री के लिए पति ही बन्धु, गति, प्राण, सम्पत्ति धर्मार्थ-काम-मोक्ष-हेतु नारायण और सनातन ब्रह्म है। वह उसको सौ पुत्रों से भी बढ़ कर प्रिय होता है। वहाँ तीर्थस्नान, यज्ञदीक्षा, अनेक पुण्य व्रतनियम, देवार्चन उपवास और तप आदि को पति-सेवा के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं माना गया

---

१ ब्रह्मवैवर्त । श्रीकृष्णखण्ड । ८३।११ आ० २ पद्म । सृष्टि । ४९।२८-६१
३ रा०मंजरी । बाल । ८०१ किष्किंधा । १००

है ।[1] जानकीहरण' के अनुसार पति का अनुग्रह ही स्त्री का मण्डन और आभूषण है।[2]

उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोस्वामीजी वस्तुतः नारी निन्दक नहीं हैं किन्तु मूलतः काम प्रवृत्तियों की ही निन्दा करने के लिए वे विभिन्न प्रसंगों में 'नारी' को भी उसी दृष्टिकोण से देखने के लिये विवश हो गये हैं।

(५१) भाग्यवाद—जब संसार में किन्हीं अज्ञात और अवश कारणों से मनुष्य की अभीष्ट कार्यसिद्धि नहीं होती है—भले ही उसके लिये कितना भी प्रयत्न किया हो—तब वह विवश होकर भाग्यवादी बन जाता है। वह अपनी असफलता के लिए काल (समय) प्रकोप दैव-गति विधि-विधान ललाट-लिपि और ईश्वरेच्छा को दूषित ठहराकर आत्मा को सान्त्वना दे लेता है। पुनर्जन्मवादी इसके लिए अपने पूर्वजन्म के कर्मों के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है। यह क्रम फिर वहीं तक नहीं रुकता है। वह मनुष्य की समस्त लौकिक स्थिति एवं उन्नति अथवा अवनति के प्रति भी उत्तरदायी हो जाता है और परजन्म में पूर्ण ऐश्वर्य भोग के लिए, वह मनुष्य को वर्तमान-जन्म में भी सत्कर्मों—केवल सत्कर्मों—के प्रति प्रेरित तथा उत्साहित करता रहता है। 'भाग्यवाद या कर्मवाद' का एक तो यह श्लाघनीय पक्ष है। इस का एक दूसरा अश्लाघनीय पक्ष भी है कि मनुष्य अपने पूर्वजन्म के कर्मों से अपरिचित होने के फलस्वरूप सुख या संकट के अवसर पर उन्हीं की बड़ाई या दुहाई देने लगता है और निष्प्रयत्न भी हो जाता है।

गोस्वामीजी ने इस सम्बन्ध में मनुष्य की समस्त उपयुक्त भावनाओं का बड़े सम्मान के साथ विवेचन प्रस्तुत किया है। 'कर्मफल' के सम्बन्ध में 'मानस' के राम स्वयं कहते हैं। —

'काहु न कोउ तिन्ह कहुँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ करम फल दाता ॥ ७।४१

दशरथ[3] और कौशल्या भी काल, कर्म और ईश्वर के प्रभाव का समर्थन करते हैं। यहां सीता और राम तक को कर्मों से प्रभावित दिखलाया गया है—

सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू ॥ २।६१

इसके साथ ही संसार के सुख-दुःखादि सभी द्वन्द्वों को कर्मकृत मान कर वहां कर्मफलों की अवश्यंभोग्यता का भी संकेत किया गया है —

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥

कर्म के अतिरिक्त विधिगति की विषमता का भी वहां उल्लेख मिलता है।[4] इसी अर्थ में भावी की प्रबलता का भी अनेक स्थलों पर निरूपण किया गया है।[5] वहां ललाट-लिपि के भी प्रत्यक्ष दर्शन तक का उल्लेख रावण-अंगद-संवाद में मिलता है —

---

१ ब्रह्मवैवर्त । ब्रह्म ।।१।६१ १८ — २ जानकीहरण ८।४२

३ मानस २।७७ — ४ मानस २।२८२

५ मानस २।२८२ — ६ मानस १।१७१ १७४

करउ बिलोकेन्द्र सर्बहि कपाला। बिधि के अंक लिखे निज भाला ॥ ६।२६

ये सब 'भाग्यवाद' के विभिन्न रूप हैं। संस्कृत के ग्रन्थों में भी इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। 'भागवत' में काल, कर्म दैव, दिष्ट और ईश्वरेच्छा की प्रबलता तथा सर्वसमर्थता का विभिन्न प्रसंगों में वर्णन किया गया है।[1] विस्तार और पुनरुक्ति के भय से यहाँ अन्य पुराणों का संकेत न करके संस्कृत के विभिन्न काव्यों में भी प्राप्त उस प्रवृत्ति का विवेचन किया जा रहा है। 'रामायणमंजरी' में कर्म को ही मनुष्य के जन्म, विकास और विनाश का कारण माना गया है। वहाँ कर्म को मोह का जनक भी कहा गया है।[2] महानाटक में कर्म गति और विधाता-गति को बड़ा क्रूर बतलाया गया है।[3] 'रामचरित' में कर्मों के सामने पौरुष कुलीनता, चरित्र और नीति आदि को भी नितान्त दुर्बल कहा गया है।[4] वहीं पर ललाट लिपि के लोप में ईश्वर तक को असमर्थ माना गया है —

न लुम्पति ललाटस्थामीश्वरोऽप्यक्षरावलिम् ॥ ११।१२७

'रघुवीर चरित' में सीता-हरण और जटायु-मरण आदि में नियति की क्रीड़ा के ही दर्शन किये गये हैं।[5] 'रामचरित' में 'काल-बल' का उल्लेख करते हुए उसको संसार के भी जन्म, विकास और संहार में समर्थ बतलाया गया है तथा उसके सामने बड़े से बड़े देवताओं को भी विवश ठहराया गया है। उसके अनुकूल होने पर विश्व की अनुकूलता और प्रतिकूल होने पर उसकी प्रतिकूलता का भी वहाँ उल्लेख मिलता है।[6] 'रामायणमंजरी' के अनुसार विधि प्रतिकूलता में अमृत से भी मृत्यु, मित्र से भी शत्रु और प्रेम से भी कोप की सृष्टि बतलाई गई है —

'उदेति मृत्युः पीयूषात् विमल्यद्रिपुरे विधौ।
सुहृदः शत्रुतां यान्ति सविलासाधिपेयताम् ॥
भारापिताश्च कुप्यन्ति दैवोद्भूमितसम्पदाम् ॥ बाल। १८७-१८८

गोस्वामीजी इस सम्बन्ध में ईश्वर की अनुकूलता के प्रभाव का वर्णन करते हैं —

'गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही ॥ ५।५

'राघवीय' में ईश्वर की प्रतिकूलता में व्यक्ति को कर्म में भी असमर्थ कहा गया है। वहीं पर भक्तवत्सलता की अपरम्परावादिता का भी संकेत मिलता है। 'दशा-वतारचरित' में इसी प्रसंग में देव-गति की विशेषताओं का विस्तृत उल्लेख किया गया है और उसके सम्बन्ध में व्यक्ति की असामर्थ्य का निरूपण किया गया है।

---

१ भागवत १।११—४२, ३।८।११ ७।२।१६ ४०, १०।४।१८ ५।७।१८
२ रा० मंजरी। बाल।९७३ अरण्य ७।१ ३ महानाटक ४।६ ५।२६
४ रामचरित ११।१२५–१२६ ५ रघुवीर चरित ६।५०,६४
६ रामचरित ११।१११,१४१–१४३ ७ राघवीय ११।०,५।६४
८ दशावतारचरित ७।१११

'राजनीति' के अनुसार दैव के प्रतिकूल होने पर फिर आपत्तियाँ अकेले नहीं आती

वामे दैवे ह्यापद सानुबन्धा ॥ १०।१५

— — —

सुखानि दुःखानि च जीव लोके न सानुबन्धानि हि नापतन्ति ॥ २।११

'मानस' में 'दैव दैव' पुकारने वालों को आलसी कह कर इस अकर्मण्य प्रवृत्ति की भर्त्सना भी की गई है —

'नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा ॥
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ॥ ५।५१

'पूतोदर' में भी इसी भावना का समर्थन प्राप्त होता है।[1]

(१४) अन्य नीतियाँ — उपर्युक्त विशिष्ट नीतियों के अतिरिक्त 'मानस' में विभिन्न स्थलों पर अन्य अनेक आकर्षक नीति-वचनों के भी दर्शन हो जाते हैं। 'मानस' के इन वचनों ने जन-जीवन पर इतना अधिकार जमा रखा है कि समाज में अनुकूल अवसरों पर उनका बड़े आदर के साथ प्रमाण रूप में स्मरण एवं उपयोग किया जाता है। कुछ थोड़े से ही तुलनात्मक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

गोस्वामीजी संभावित (सम्मानित) व्यक्ति के अपयश को उसके लिए कोटि मरण-तुल्य मानते हैं —

संभावित कहुँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू ॥ २।९५

संस्कृत के अन्य ग्रंथों में भी इसका समर्थन मिलता है। 'गीता' के अनुसार अपयश को मृत्यु से भी बढ़ कर कहा गया है —

संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ २।३४

'अद्भुत दर्पण' में ऐसे जीवन को लज्जाजनक बतलाया गया है[2] और दशकुमारचरित में उसको हेय कहकर 'अनशन' का परामर्श दिया गया है।[3]

'पुरुष-परीक्षा' की तुलना 'मानस' में स्वर्णपरीक्षा से की गई है —

कसे कनकमनि पारखि पाएँ। पुरुष परिखिअहिं समयँ सुभाएँ ॥ २।२८३

रामायण मंजरी में इसके लिए कुल शील, गुण और कर्म के मानदण्ड हैं —

'यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते कुलेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥ बाल। १२७

'मानस' में आपत्तिकाल में धैर्य धर्म, मित्र और स्त्री की परीक्षा का विधान है —

आपद काल परिखिअहिं चारी। धीरज धरम मित्र अरु नारी ॥ ३।५

'रामायण मंजरी' में इसके स्थान पर सुहृद, विवेक, स्वर्ण और सज्जन आदि का उल्लेख मिलता है —

'सुहृदस्य विवेकस्य हेम्नः साधुजनस्य च।
उपयोगो विशेषेण ह्यापत्काले शरीरिणाम् ॥ लंका। ११३

---

१ पूतोदर ११५ २ अद्भुतदर्पण १।११
३ दशकुमारचरित ७।१७६,१४८

'मानस' में काम, क्रोध और लोभ को बड़ा प्रबल और क्षण में क्षोभकारी कह कर उनके त्याग का परामर्श दिया गया है —

'तात तीनि अति प्रबल खल, काम, क्रोध अरु लोभ ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ॥ ३।३८

— — —

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत ॥ ५।३८

गीता में उनको नरकद्वार और आत्मघाती कहा गया है —

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ १६।२१

गोस्वामीजी ने कल्याणार्थी के लिए 'परस्त्री-कामना' को सर्वथा निषिद्ध बतलाया है —

जो आपन चाहै कल्याना । सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना ॥
सो परनारि लिलार गोसाईं । तजउ चउथि के चंद कि नाईं ॥ ५।३८

इस व्यवस्था में वे महाभारत से प्रभावित हैं —

उपर्कमूर्तिमिवाद्भुतम् अदृश्यं यसु न दृश्यते ।
चतुर्थीचन्द्रमेवैव परस्त्रीभालपट्टिका ॥ ७।१

इसी प्रकार 'साधु-अवज्ञा' को भी 'मानस' में हानिकर बतलाया गया है —

साधु अवग्या तुरत भवानी । कर कल्यान अखिल कै हानी ॥ ५।४२

'भागवत' में उसका समर्थन दृष्टिगोचर होता है —

आयुः श्रियो यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥

सामान्य जन प्रवृत्ति को लेकर 'मानस' में कहा गया है कि परोपदेश में तो बहुत से लोग कुशल होते हैं, लेकिन उन पर आचरण करने वाले विरले ही हैं —

'पर उपदेस कुसल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥ ६।७८

'राघव पाण्डवीय' भी उसका अनुमोदन करता है —

भवन्ति सुलभास्तावत् परोपदेशेषु विचक्षणाः ॥ ७।२१

'मानस' के अंतिम दोहे में गोस्वामीजी राम की कामना करते हुए उनके प्रति अपने उस प्रगाढ़ प्रेम की कामना करते हैं जो नारी के प्रति कामी के मन में अथवा धन के प्रति लोभी के मन में हुआ करता है —

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥ ७।१३०

इस अभिव्यक्ति में नैतिक एवं अलौकिक भावों के समन्वय के लिए वे कुछ पुराणों से प्रभावित जान पड़ते हैं । 'विष्णुपुराण' में इस सम्बन्ध में अविवेकी की विषय-प्रीति का उदाहरण— गया है —

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥ १।२०।१९

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में इस दिशा में अनेक आकर्षक उपमान जुटाए गए हैं —

पुत्रे यथैकपुत्राणां वन्ध्यानां यथा हरौ ।
नेत्रे यथैकनेत्राणां तृषितानां यथा जले ॥
क्षुधितानां यथान्ने च कामुकानां यथा स्त्रियाम् ॥
यथा परस्वे चौराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥
विदुषां च यथा शास्त्रे वाणिज्ये वणिजां यथा ।
तथा शश्वन्मनः कान्ते साध्वीनां योषितां प्रभो ॥

प्रकृतिखंड । ४६।८२–८३

इस प्रकार 'मानस' में तुलसी के नीति-संग्रह को लेकर अनेक तुलनात्मक यथाप्रसंग प्रस्तुत किए जा सकते हैं । वस्तुतः उनके स्वतन्त्र शोध की आवश्यकता प्रतीत होती है ।

(२५) राजनीति सिद्धान्त —इन सिद्धान्तों में गोस्वामीजी ने राजनीति के सूक्ष्म तत्वों का व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया है । उनके मानस' में राजा और प्रजा के मधुर सम्बन्ध का विवेचन बड़े ही विस्तृत और आकर्षक रूप में प्राप्त होता है । संस्कृत ग्रन्थों में राजनीति का एक शास्त्र के रूप में ही अधिकतर निरूपण किया गया है वहाँ उसकी व्यावहारिकता और लोकोपयोगिता को उतना महत्व नहीं मिला है जो 'मानस' में सरलता से ही दृष्टिगोचर हो जाता है ।

(२६) राजा के कर्तव्य — प्राकृत महिपाल' के स्वभाव का वर्णन करते र गोस्वामीजी कहते हैं कि वह विनय और प्रीति को पहचानने वाला प्रजा के मी वर्गों से प्रशंसित ईश्वरांश साधु सुजान सुशील और परमकृपालु होता है । ह प्रजा की भणिति भक्ति, नति और मति को समझ कर सब का यथायोग्य म्मान भी करता है ।[1] 'रामायण-मंजरी' में आत्मरक्षक, धुमन्त्रीयुक्त, कोषराष्ट्र विवर्धक दुर्गपोषक भव्य सेना-सम्पन्न और उन्नित भूषित राजा को ही सर्वश्रेष्ठ ाना गया है ।[2] इसके अतिरिक्त वहाँ आज्ञाकारी मन्त्री, गुप्तचर और विद्वत्परिषद ादि से संयुक्त तथा धूर्तजन, काम लोभ उपरत पणव्यसन आदि से वियुक्त राजा ो ही वस्तुतः प्रशंसनीय कहा गया है ।[3] 'हनुमन्नाटक' में राजा और मालाकार की रस तुलना करते हुए राजा के कर्तव्यों में विरपायियों की स्थापना, मत्त सेवकों के 'मय, छोटों के उन्नयन दुष्टों के बहिष्करण सेवकों के दमन और अरमुच्चों के ानयन का विशेष परिगणन किया गया है ।[4] भट्टिकाव्य के अनुसार क्रिया-समा प, गूढ़मन्त्रसंपत्, देशकाल, विनयप्रतीकार और कार्यसिद्धि आदि पंचांगमन्त्र से सम्पन्न

मानस १।२८ — २ रा०मंजरी । अरण्य ।१८३
रा०मंजरी।अरण्य।१८३ १८६ — ४ हनुमन्नाटक ९।१२

राजा ही अपने उद्देश्य में सफल होता है, वहीं पर विजिगीषु राजा के लिए सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव आदि षड्गुणों के प्रयोग को अनिवार्य भी बतलाया गया है।[1] 'मानस' के राम राजाओं के कर्तव्यों का सूत्र-रूप में इस प्रकार निरूपण करते हैं —

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ॥२।३०६

यहाँ वे राम में राजा और सेवकों की ठीक वही स्थिति मानते हैं जो शरीर में मुख और कर पद-नयन आदि कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों की होती है। इससे वे राजा की आज्ञा-प्रधानता का भी प्रतिपादन करते हैं। इसके अतिरिक्त वे यहाँ यह भी कहना चाहते हैं कि राजा को कर पद और नयन से प्रजा का सेवक और मुख-मात्र से ही उसका शासक होना चाहिए। इसी प्रसंग में राजधर्म सर्वस्व का वर्णन करते हुए वे इसी बात को और स्पष्ट करते हैं :—

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥ २।३१५

राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई॥ २।३१५

उनके मत में राजा का एक मात्र यही धर्म है कि वह अपने राज्य के समस्त अंगों का ठीक उसी प्रकार उचित रूप से पालन पोषण करता रहे जिस प्रकार मुख अन्न आदि का रस ले शारीरिक अंगों को पुष्ट बनाता है। यहाँ वे राजा के द्वारा कर-ग्रहण और उसके देश समय व्यय का भी संकेत करते हैं।

पद्मपुराण में राजा और प्रजा में पिता-पुत्र सम्बन्ध की प्रतिष्ठा करके प्रजा के पुत्रवत् पालन को ही सर्वोत्तम राजधर्म माना गया है।[2] भागवत में भी प्रजापालन के धर्म को राजाओं के लिए आयु, श्री, बल और कीर्ति का विवर्धक माना गया। वहाँ दुष्ट आत्माओं तथा चोरों से प्रजा की रक्षा करने के लिए राजाओं से प्रार्थना भी की गई है। वहीं पर प्रजा का धर्म से पालन करने वाले और शील से रंजन करने वाले राजा की प्रशंसा तथा अधर्माचरण करने वाले राजा की निन्दा भी प्राप्त होती है। हिंसक दुःशील और अजितेन्द्रिय राजा को वहाँ प्रजा नाशक भी कहा गया है। इस प्रकार वर्णाश्रमों के प्रतिनिधि धार्मिकों के पालन, दुष्टों के शासन आदि को राजा का परमधर्म स्थिर किया गया है।[3] 'मानस' में भी उन राजाओं को नरक का अधिकारी माना गया है जिनके राज्य में प्रजा दुःखी रहती है। राजाओं की इस दुर्गति के लिए 'रामचरित' को ही उत्तरदायी समझकर तुलसी उनकी कड़ी निन्दा करते हैं।[4] रामाज्ञाप्रश्नावली के अनुसार यदि राजा ही धर्म-मर्यादा का

---

१ अग्निपुराण २३।२६ ६२-६६ २ पद्मपु. क्रियायोगसार।२१।६६

३ भागवत ११।१७।११ १६ ४।१४।१४-१७ १०।४९।१८-१९ १०।८९।२२

४ मानस २।७१ ५ मानस २।२२८ ...

उल्लंघन कर दे तो प्रजा का अशुभ नाश अवश्यंभावी होता है। ऐसे राजाओं को यहाँ 'भूभार' ही माना गया है।[1] 'महाभारत' के अनुसार उनसे प्रजा ही नहीं, अपितु नगर और देश तक नष्ट हो जाते हैं।[2]

दुष्ट राजाओं की विशेषताओं का भी अनेक ग्रन्थों में विस्तार से वर्णन मिलता है कि वे पहली बार तो बात सुनते ही नहीं दूसरी बार वे मुँह टेढ़ा कर लेते हैं और तीसरी बार उनकी भौंहें चढ़ जाती हैं।[3] उनके लिए तो पुत्र का वध और पितृ-भ्रातृ आदि का निर्वासन एक कुल-परम्परा है।[4] 'दशावतार चरित' में राजाओं को मदन मतंग, वंचकों से घिरा हुआ अत्यन्त क्रोधी तीक्ष्णवादी शत्रुद्वेषी और असत्सुहृद् कहा गया है।[5]

(५७) मन्त्रियों के कर्तव्य —मन्त्रियों के सम्बन्ध में गोस्वामीजी कहते हैं कि यदि वे भयवश राजा से केवल प्रिय वचन बोलते हैं, तो उस राजा का शीघ्र ही नाश हो जाता है —

'सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगही नास॥ ।५।३७

'रामायण मंजरी' के अनुसार पापी स्वेच्छाचारी और अनीति के समर्थक मन्त्री राजा के शत्रु ही होते हैं।[6] 'कुन्दमाला' में अत्याचारी राजा को ठीक उसी तरह रोकना मन्त्रियों का प्रथम कर्तव्य बतलाया गया है जैसे बादल तापकारी सूर्य को ढक लेते हैं।[7] कुसमय में राजा का साथ छोड़ कर भाग जाने वाले मन्त्रियों को 'रामचरित' में तृणवत् त्याज्य माना गया है।[8] 'बालरामायण' में मन्त्रियों का जीवन बहुत ही कष्टपूर्ण चित्रित किया गया है क्योंकि अपने राजाओं के स्वेच्छाचारों के कुपरिणामों का उनको बराबर प्रतिकार करना पड़ता है।[9] यहीं पर कवि के साथ मन्त्री की तुलना करते हुए उसको पर-सुख से सुखी और पर-दुःख से दुःखी भी बतलाया गया है —

सुखिनः परसौख्येन परदुःखेन दुःखिताः।
जायन्ते कपयः काव्ये नयतन्त्रे च मन्त्रिणः॥ ५।१

'अद्भुत दर्पण' में मन्त्री के दुःखमय जीवन की अनेक दुःस्थितियों का विस्तृत चित्रण किया गया है।[10] 'भट्टिकाव्य' के अनुसार राज्य में मन्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है और उन्हीं के मन्त्र से समस्त राज्यकार्य सिद्ध होते हैं।[11] 'हनुमन्नाटक' में

---

१ रा०मंजरी । अरण्य ।२७६ ४०६
२ महाभारत । वन । २८३।११
३ अद्भुतदर्पण । ३।१२
४ अद्भुतदर्पण ३।१२
५ दशावचरित १।२०३
६ रा०मंजरी । लंका । ७६५
७ कुन्दमाला ३।७
८ रामचरित २८।२१
९ बालरामायण १।२५
१० अद्भुतदर्पण २।४
११ भट्टिकाव्य १२।१४

मन्त्रियों के ऐहिक, आमुष्मिक और ऐहिकामुष्मिक तीन भेद करके उनके वर्गों का शास्त्रीय ढंग पर बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है।

(४८) षड्गुण-वर्णन —संस्कृत के अनेक ग्रन्थों विशेषकर भट्टिकाव्य[1] रामायणमंजरी,[2] रामचरित[3] आदि में प्रसिद्ध षड्गुणों[4] का भी बड़ा विस्तृत शास्त्रीय विवेचन मिलता है जो मानस में प्राप्त नहीं होता है। सम्भव है कि उन कवियों को राज्याश्रयी एवं कूटनीति विशारद होने के कारण अपने काव्यों में ऐसा पांडित्य प्रदर्शन करना पड़ गया हो अथवा उनमें महाकाव्यत्व की प्रतिष्ठापना के लिए उनकी शैली रचि की प्रधानता भी हो सकती है। गोस्वामीजी के समक्ष एक तो ऐसी कोई विवशता नहीं है और दूसरे उनका ध्यान इस दिशा में सैद्धान्तिकता से अधिक प्रयोगात्मकता की ओर है। इसके अतिरिक्त उनके राम केवल राजा ही नहीं हैं अपितु साक्षात् भगवान् भी हैं जिनके पास पहुँचने में कोई विशेष आडम्बर नहीं करना पड़ता है प्रत्युत उनकी उपासना ही मानसकार का प्रधान लक्ष्य है। राजा को ईश्वरांश कहने में भी उनका यही अभिप्राय है इसीलिए उनके राम अपने प्रजा सम्मेलन में अपनी स्पष्टहृदयता का बड़ा सरस परिचय देते हैं —

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥ ७।४३

प्रजा के साथ इतनी सहृदयता और आत्मीयता का निरूपण उन निष्ठुर सिद्धान्तों के संदर्भ में कभी नहीं किया जा सकता है।

(४९) निष्कर्ष —गोस्वामीजी के नीति-शास्त्रीय सिद्धान्तों के सम्बन्ध में यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उनमें 'भावप्रकाशन की अद्भुत क्षमता है और उसी उद्देश्य से मानस में उनका प्रसंगानुकूल प्रयोग भी किया गया है। अन्य सिद्धान्तों के समान नीति-शास्त्र के सिद्धान्तों में भी गोस्वामीजी सार के ग्रहण पक्षपाती हैं। इसी दृष्टिकोण से उन्होंने अनेक ग्रन्थों से नीति सम्बन्धी भावों का स्वीकरण करके उनको अपने पावन उद्देश्य के समन्वय से एक सर्वथा नवीन और मौलिक रूप दे दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अवसर के अनन्त लोक जीवन से भी रोचक भावों को लेकर विभिन्न मौलिक उद्भावनाएँ भी प्रस्तुत की हैं। अपने सिद्धान्त-विवेचन में वे शास्त्रीय विवादों में कहीं भी नहीं उलझे हैं प्रत्युत उन्होंने सर्वत्र स्पष्टता सुबोधता एवं व्यावहारिकता को ही प्रधानता दी है।

---

1 हनुमन्नाटक ६।१३-३१ 2 भट्टिकाव्य १२।२६-४०
3 रा०मंजरी। लंका ।१२८-१६९ 4 रामचरित २१।५७-११, २७।६०-६२

उपसंहार

रामायणेतर संस्कृत काव्यों के साथ 'रामचरित मानस' के इस तुलनात्मक अध्ययन से गोस्वामी तुलसीदास के विशाल अध्ययन, प्रकाण्ड पाण्डित्य तथा अद्वितीय काव्य-कौशल का विशिष्ट परिचय प्राप्त होता है। वाल्मीकि, भास, कालिदास, कुमारदास, भट्टि, भवभूति, मुरारि, राजशेखर, क्षेमेन्द्र एवं जयदेव आदि अनेकानेक महाकवियों की परम्परा में रामकथा पर सशक्त लेखनी उठाकर गोस्वामी तुलसीदास ने अपने प्रतिभाज्ञान का जो समर्थ प्रकाशन किया है वह उनको उन सभी पूर्व कवियों में सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादित करता है।

'नानापुराणादि' विभिन्न स्रोतों से वस्तु-ग्रहण करके उन्होंने अपनी अनुपम कारयित्री प्रतिभा के बल पर जिस महान् काव्य का निर्माण किया है वह भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में भी अपना सर्वोच्च स्थान रखता है।

राम कथा में, यथास्थान सोद्देश्य परिवर्तन करने में उन्होंने कवित्वात्मकता और काव्य-सौंदर्य दोनों का अनूठा सम्मिश्रण किया है। पात्रों के चरित्र चित्रण में उन्होंने उनके आकर्षक शील, तेज, दास्य, गाम्भीर्य, औदार्य, माधुर्य तथा आभिजात्य से समन्वित व्यक्तित्व का दिव्य विकास किया है। रस-सृष्टि में आवश्यक संयम और मर्यादा से पूर्ण शृंगार के निरूपण के अतिरिक्त उन्होंने हास्य, करुण, रौद्र, अद्भुत, शान्त आदि रसों का भी सफल निदर्शन किया है। 'वीर रस' की प्रधानता तो आदि से अन्त तक प्रसारित है ही।

काव्य-कला की दृष्टि से भी यदि देखा जाय तो अलंकारों में, केवल उन्हीं को 'मानस' में स्थान मिल पाया है जो भाव के प्रवाह, प्रभाव एवं उत्कर्ष की दृष्टि से उसमें स्वतः समा गए हैं। 'मानस' की भाषा में अनेक पूर्व परम्परायें अपने पूर्ण विकसित गौरव की सकल झलक देख सकती हैं। उसका महाकाव्यत्व भी स्वतः सिद्ध है। उसके 'छन्द' तो स्वयं गोस्वामी जी की मान्यता के अनुसार ही 'बहुरंग कमलों' के समान प्रतिपाद्य नवीन सौंदर्य की सृष्टि करते हैं। 'मानस' की भाषा भी वस्तु, भाव और रस आदि की दृष्टि से बड़ी समर्थ एवं सुगम है। 'अनेक ग्रन्थों से' उसमें जो पद, भाव, छन्द और अर्थ आदि का सोद्देश्य ग्रहण किया गया है वह 'मानसकार' की मधुसंचयी और समन्वयवादी प्रतिभा का परिचायक तो है ही साथ ही अनुभूति को प्रधानता देने वाली उनकी उस प्रवृत्ति का भी द्योतक है जिसके फलस्वरूप वे अनुकूल तत्वों का साभार और निस्संकोच स्वीकरण कर लेते हैं।

यही बात उनके विभिन्न सिद्धान्तों के निरूपण में भी पाई जाती है। 'मानस' जैसे विश्वमहान् के महाकाव्य का निर्माण करते हुए भी वे काव्यतत्त्वों के प्रति अपनी

नित नवीनता का पुन: पुन: उल्लेख करते हैं, यह उनके भक्त हृदय की नम्रता एवं विनम्रता का परिचय देती है। दर्शन-सिद्धान्तों के विवेचन में उनका मुख्य प्रतिपाद्य राम का ईश्वरत्व और उनके प्रति दास्यभक्ति का सर्वश्रेष्ठत्व है। इसी सन्दर्भ में, वे दार्शनिकों की प्रसिद्ध दुरूहता से बचकर, अपनी सरस ललित और सुबोध शब्दावली में वह बड़ी से बड़ी बात कह जाते हैं जिसे पंडितों का बहुपृष्ठ ग्रन्थाम्बार आज तक व्यक्त नहीं कर सका है। इसी प्रकार धर्मसिद्धान्तों के विवेचन में भी उन्होंने उनके कर्म-सौन्दर्य एवं व्यावहारिक निरूपण को ही महत्व प्रदान किया है, जिसके फलस्वरूप वे सिद्धान्त उपदेशात्मक बनने की अपेक्षा अपने आचरण की क्रिया प्रतिक्रिया के साथ मानव-मन को आकर्षित प्रफुल्लित एवं रोमांचित भी करते हैं। उनके 'नीति-वर्णन' में भी उनके जीवन के विस्तृत ज्ञान और विशाल अनुभव का सुस्पष्ट प्रतिबिम्ब है। वहाँ वे व्यक्ति एवं परिवार, व्यक्ति एवं समाज तथा राजा एवं प्रजा के मधुर सम्बन्धों की आकर्षक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए 'मानस' के पाठकों को सत् के ग्रहण और असत् के त्याग की ओर भी बड़ी निपुणता से प्रेरित करते हैं। उनका 'कलियुग-वर्णन' यहाँ वर्तमान अशोभनीय परिस्थितियों का चित्रण है, वहाँ उनका 'राम राज्य वर्णन' एक काम्य और लोभनीय आदर्श भी है। दोनों ही सोद्देश्य हैं। उनमें यदि प्रथम यथार्थ से अरुचि उत्पन्न करके हमें आदर्श की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित और उत्साहित करता रहता है, तो द्वितीय यह भी बतलाता है कि विश्व में मानवता का पूर्ण विकास किस स्तर तक किया जा सकता है। इन सभी वर्णनों में गोस्वामीजी यद्यपि आधारग्रंथों से अनेक स्थलों में मूल प्रेरणा प्राप्त करने में उपकृत एवं अनुगृहीत हुए हैं, तो भी उनके सरस एवं सुरुचिपूर्ण प्रतिपादन में उनकी मौलिक प्रतिभा सदैव सतर्क और जागरूक रही है।

वस्तुतः उन ग्रंथों में और 'मानस' में वही अन्तर है जो कच्ची सामग्री और उससे निष्पन्न वस्तु में हुआ करता है।

'मानस' और 'मानसकार गोस्वामीजी' की सर्वोत्कृष्टता के सम्बन्ध में जितना भी कहा जाय उतना थोड़ा है। मेरे विचार से 'मानस' का सम्पूर्ण महत्व गोस्वामीजी के अतिरिक्त केवल वही जान सकता है जिसे वे बतला दें किन्तु वह फिर स्वयं वही हो जायगा —

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

संदर्भ-ग्रन्थ

संस्कृत के ग्रन्थ

१ अग्निपुराण
२ अद्भुतदर्पण
३ अध्यात्मरामायण
४ अनर्घराघव
५ अभिनवराघव
६ अभिज्ञान शाकुन्तल
७ अभिषेक
८ आश्चर्यचूडामणि
९ उत्तररामचरित
१० उत्तररामचरित काव्य
११ उत्तररामचरित चम्पू
१२ उदात्तराघव
१३ उदारराघव
१४ उन्मत्तराघव
१५ कथासरित्सागर
१६ काव्यप्रकाश
१७ काव्य मीमांसा
१८ काव्यालंकार सूत्र
१९ कुन्दमाला
२० कल्याणबोधम
२१ कूर्मपुराण
२२ कोशलखण्ड
२३ कृष्णारामायण
२४ गरुडपुराण
२५ चम्पूरामायण
२६ जामदग्नीय
२७ चित्र चम्पू
२८ चित्रबन्ध रामायण
२९ जमित रामायण
३० जानकी परिणय नाटक
३१ जानकी परिणय चम्पूकाव्य
३२ जानकी हरण
३३ दशावतार चरित
३४ दूतांगद
३५ ध्वन्यालोक
३६ नारद पुराण
३७ नारायणीय
३८ नीतिशतक
३९ पवनदूत
४० पृथ्वीराज विजय
४१ प्रतिमा
४२ प्रसन्नराघव
४३ पद्मपुराण
४४ पंचरात्र
४५ बालरामायण
४६ मधुररस मंजरी
४७ ब्रह्मपुराण
४८ ब्रह्मवैवर्तपुराण
४९ ब्रह्माण्डपुराण
५० भविष्यपुराण
५१ भट्टिकाव्य
५२ भगवद्गीता
५३ भ्रमर दूत
५४ भागवत पुराण
५५ भारत चम्पू
५६ महाभारत

५७ महानाटक
५८ महावीर चरित
५९ मत्स्य पुराण
६० मार्कण्डेय पुराण
६१ माया पुष्पक
६२ मैथिली कल्याण
६३ यादव राघवीय
६४ रघुवीर चरित
६५ रघुवंश
६६ रघुविलास
६७ रघुनाथाभ्युदय
६८ रघुनाथविजय चम्पू
६९ रामकथा
७० राघवार्जुनीय
७१ रामलीलामृत
७२ राघवयादवीय
७३ रामकृष्ण विलोम काव्य
७४ रामचरित
७५ रामचरित
७६ राम विजय
७७ रामचरित (संध्याकर नन्दी)
७८ रामतापनीयोपनिषद
७९ राघवीय
८० रामाभ्युदय
८१ राघवाभ्युदय
८२ राघव पाण्डवीय (धनंजय)
८३ राघवनैषधीय
८४ राघवपाण्डवीय (कविराज)
८५ राघवपाण्डवयादवीय
८६ रामायणमंजरी
८७ लिंगपुराण
८८ वरदाम्बिका परिणय चम्पू
८९ वराहपुराण
९० वामनपुराण
९१ वातदूत
९२ वाल्मीकि रामायण
९३ विष्णुपुराण
९४ विदुरनीति
९५ शिवपुराण
९६ शुक-संदेश
९७ शुक्रनीति
९८ श्रीरामचरित
९९ श्रीरामाभ्युदय
१०० स्कन्दपुराण
१०१ स्वप्नदशानन
१०२ साहित्य दर्पण
१०३ सीता स्वयंवर
१०४ हनुमन्नाटक
१०५ हितोपदेश
१०६ हंसदूत (वेदान्त देशिक)
१०७ हंसदूत (रूपगोस्वामी)
१०८ हंस सन्देश

अन्य ग्रन्थ

१ अपभ्रंश साहित्य — डा० हरिवंश कोछड़
२ अपभ्रंश काव्य परम्परा और विद्यापति — डा० अम्बादत्त पन्त
३ अष्टछाप — डा० दीनदयालु गुप्त
४ आ० केशवदास — डा० हीरालाल दीक्षित
५ आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना — डा० पुत्तूलाल शुक्ल
६ कवितावली — गोस्वामी तुलसीदास

७ कबीर की विचारधारा	
	डा० गोविन्द त्रिगुणायत
८ काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध	श्री जयशंकर प्रसाद
९ गो० तुलसीदास	
१० गो० तुलसीदास	आ० रामचन्द्र शुक्ल
११ गो० तुलसीदास	श्री शिवनंदन सहाय
१२ गो० तुलसी की समन्वय साधना	डा० श्यामसुन्दर दास और डा० बड़थ्वाल
१३ चन्द्रवरदायी और उनका काव्य	श्री व्योहार राजेन्द्र सिंह
१४ विद्यापति	डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी
१५ जायसी ग्रन्थावली	आ० रामचन्द्र शुक्ल
१६ जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी	सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
कवि और काव्य	डा० सरला शुक्ल
१७ तुलसीदास	
१८ तुलसी रसायन	डा० माताप्रसाद गुप्त
१९ तुलसीदास और उनका युग	डा० भगीरथ मिश्र
२० तुलसी दर्शन	डा० राजपति दीक्षित
२१ तुलसी साहित्य की भूमिका	डा० बलदेव प्रसाद मिश्र
२२ तुलसीदास की भाषा	डा० रामरतन भटनागर
२३ तुलसी और उनका काव्य	डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव
२४ तुलसीदास-चिन्तन और कला	पं० रामनरेश त्रिपाठी
२५ तुलसी के चार दल	सं० डा० इन्द्रनाथ मदान
२६ तुलसीदास	श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी
२७ तुलसी साहित्य रत्नाकर	श्री चन्द्रबली पाण्डेय
२८ तुलसीदास-जीवन और	श्री रामचन्द्र द्विवेदी
विचार धारा	डा० राजाराम रस्तोगी
२९ तुलसी दर्शन	
३० पल्लव	डा० रामदत्त भारद्वाज
३१ प्रथमा	श्री सुमित्रा नन्दन पन्त
३२ बिखरे फूल	डा० मुंशीराम शर्मा
३३ भक्ति दर्शन	डा० सरनामसिंह शर्मा
३४ भारतीय साधना और सूर साहित्य	डा० मुंशीराम शर्मा
३५ भक्ति का विकास	
३६ भारतीय दर्शन	
३७ भारतीय दर्शन	श्री बलदेव उपाध्याय
३८ मानस में रामकथा	डा० राधाकृष्णन
३९ मानस दर्शन	डा० बलदेव प्रसाद मिश्र
	डा० श्री कृष्ण लाल

४० मानस की रूसी भूमिका	ए० पी० बरान्निकोव अनु० डा० केसरी नारायण शुक्ल
४१ मानस व्याकरण	श्री विजयानन्द त्रिपाठी
४२ मानस प्रसंग	
४३ मानस दर्शन	श्री चन्द्रमौलि सुकुल
४४ मानस पीयूष	श्री अंजनी नन्दन शरण
४५ मानस मीमांसा	श्री रजनीकान्त शास्त्री
४६ मानस मयंक	श्री शिवलाल पाठक
४७ मानस की रामकथा	श्री परशुराम चतुर्वेदी
४८ मेघनाद वध (हिन्दी अनुवाद भूमिका)	श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर
४९ रामचरित मानस का पाठ	डा० माताप्रसाद गुप्त
५० रामकथा (उत्पत्ति और विकास)	डा० कामिल बुल्के
५१ रामचरित मानस के स्रोत और रचनाक्रम	डा० मिस बोदवील
५२ रामचरित मानस के साहित्यिक स्रोत (अप्रकाशित)	डा० सीताराम कपूर
५३ रामचरित मानस की भूमिका	श्री रामदास गौड़
५४ रामानन्द संप्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव (अप्रकाशित)	डा० बदरीनारायण श्रीवास्तव
५५ रामकाव्य परम्परा में रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन	डा० गार्गी गुप्ता
५६ रामचरित मानस में लोकवार्ता	श्री चन्द्रभान
५७ विनय पत्रिका	गोस्वामी तुलसीदास
५८ विश्वसाहित्य में रामचरितमानस	श्री राजबहादुर लमगोड़ा
५९ संस्कृत साहित्य का इतिहास	श्री बलदेव उपाध्याय
६० संस्कृत कवि दर्शन	डा० भोलाशंकर व्यास
६१ सिद्धांत और अध्ययन	डा० गुलाबराय
६२ सूफी महाकवि और जायसी	डा० जयदेव
६३ सूफीमत और हिन्दी साहित्य	डा० विमल कुमार जैन
६४ हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
६५ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।	डा० राम कुमार वर्मा
६६ हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य	डा० कमल कुलश्रेष्ठ

६७ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास — डा० शम्भू नाथ सिंह

६८ हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव। — डा० सरनामसिंह शर्मा

६९ अकबर दी ग्रेट मुगल — श्री वी० ए० स्मिथ

७० इंडेक्स वर्बोरम आफ दी रामायण आफ तुलसीदास — डा० सूर्यकान्त

७१ क्रेफ्टमैनशिप आफ तुलसीदास इन रामचरितमानस (अप्रकाशित) — डा० हरिहरनाथ हुक्कू

७२ दी एपिक — श्री एबर क्राम्बी

७३ दी हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर — श्री विंटरनिट्स

७४ बियोग्राफी आफ तुलसीदास — रेव० जे० एन० कारपेन्टर

७५ नोट्स आन दी ग्रामर आफ रामायण आफ तुलसीदास — डा० ग्रियर्सन

७६ रामचरित (अंग्रेजी भूमिका) — श्री के०एस० राम स्वामी शास्त्री शिरोमणि

७७ रैटोरिक एण्ड प्रोसोडी — श्री एल० आर० बॅडेर

रामचरितमानस के विभिन्न संस्करण

१ रामचरितमानस — सं० डा० माताप्रसाद गुप्त

२ " — सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

३ " — सं० रामनरेश त्रिपाठी

४ — पं विजयानन्द त्रिपाठी

५ — डा० रणबहादुर सिंह

६ " — गीताप्रेस गोरखपुर

पत्र-पत्रिकायें

आलोचना कल्याण नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती हिन्दी अनुशीलन विशालभारत, विश्वभारती, वीणा माधुरी भारतीय साहित्य।

४० मानस की रूसी भूमिका — ए० पी० बरान्निकोव, अनु० डा० केसरी नारायण शुक्ल

४१ मानस व्याकरण — श्री विजयानन्द त्रिपाठी

४२ मानस प्रसंग — ,,

४३ मानस दर्पण — श्री चन्द्रमौलि सुकुल

४४ मानस पीयूष — श्री अंजनी नन्दन शरण

४५ मानस मीमांसा — श्री रजनीकान्त शास्त्री

४६ मानस मयंक — श्री शिवलाल पाठक

४७ मानस की रामकथा — श्री परशुराम चतुर्वेदी

४८ मेघनाद वध (हिन्दी अनुवाद भूमिका) — श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर

४९ रामचरित मानस का पाठ — डा० माताप्रसाद गुप्त

५० रामकथा (उत्पत्ति और विकास) — डा० कामिल बुल्के

५१ रामचरित मानस के स्रोत और रचनाक्रम — डा० मिस वोदवील

५२ रामचरित मानस के साहित्यिक स्रोत (अप्रकाशित) — डा० सीताराम कपूर

५३ रामचरित मानस की भूमिका — श्री रामदास गौड़

५४ रामानन्द संप्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव (अप्रकाशित) — डा० बदरीनारायण श्रीवास्तव

५५ रामकाव्य परम्परा में रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन — डा० गार्गी गुप्ता

५६ रामचरित मानस में लोकवार्ता — श्री चन्द्रभान

५७ विनय पत्रिका — गोस्वामी तुलसीदास

५८ विश्वसाहित्य में रामचरितमानस — श्री राजबहादुर लमगोड़ा

५९ संस्कृत साहित्य का इतिहास — श्री बलदेव उपाध्याय

६० संस्कृत कवि दर्शन — डा० भोलाशंकर व्यास

६१ सिद्धांत और अध्ययन — डा० गुलाबराय

६२ सूफी महाकवि जायसी — डा० जयदेव

६३ सूफीमत और हिन्दी साहित्य — डा० विमल कुमार जैन

६४ हिन्दी साहित्य का इतिहास — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

६५ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास। — डा० राम कुमार वर्मा

६६ हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य — डा० कमल कुलश्रेष्ठ

६७ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास डा० शम्भू नाथ सिंह
६८ हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव। डा० सरनामसिंह शर्मा
६९ अकबर दी ग्रेट मुग़ल श्री वी० ए० स्मिथ
७० इंग्लिश वर्बोरम आफ दी रामायण आफ तुलसीदास डा० सूर्यकान्त
७१ कैम्पैरेटिव आफ तुलसीदास इन रामचरितमानस (अप्रकाशित) डा० हरिहरनाथ हुक्कू
७२ दी एपिक श्री एबर क्रम्बी
७३ दी हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर श्री विंटरनित्स
७४ बिब्लोग्राफी आफ तुलसीदास रेव० जे० एन० कारपेन्टर
७५ नोट्स आन दी ग्रामर आफ रामायण आफ तुलसीदास डा० सरजार्ज ग्रियर्सन
७६ रामचरित (अंग्रेजी भूमिका) श्री के०एस० राम स्वामी शास्त्री शिरोमणि
७७ रैटोरिक एण्ड प्रोसोडी श्री एम० आर० कॅडेर

रामचरितमानस के विभिन्न संस्करण

१ रामचरितमानस सं० डा० माताप्रसाद गुप्त
२ ,, सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
३ ,, पं० रामनरेश त्रिपाठी
४ सं विजयानन्द त्रिपाठी
५ , ठा० रणबहादुर सिंह
६ ,, गीताप्रेस गोरखपुर

पत्र-पत्रिकायें

आलोचना कल्याण भारतीप्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती हिन्दी अनुशीलन विद्याप्रभात, विश्वभारती, वीणा, माधुरी भारतीय साहित्य।